प्रगतिवादी साहित्य में सामाजिक द्वन्द्व
(1936 - 42)

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल
की उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध प्रबन्ध

शोधकर्त्री
सुषमा अग्रवाल

निर्देशक
डा० रुद्रदेव त्रिपाठी

हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

1988

आमुख

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ "प्रगतिवादी साहित्य में सामाजिक द्वन्द्व" (1936-42) मैंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के डा० रुद्रदेव त्रिपाठी के निर्देशन में लिखा है।

अभी तक इस विषय में कई शोध प्रबन्ध लिखे तो गये है लेकिन समस्त सामग्री को एक रूप नहीं दिया गया है। अतः मैंने सम्पूर्ण प्रगतिवादी साहित्य को एक जगह संगठित करने का प्रयास किया हैं।

इस शोध ग्रन्थ को लिखने की प्रेरणा मुझे हिन्दी विभाग के प्रवक्ता डॉ० अश्वनी कुमार चतुर्वेदी "राकेश" एवं मेरे पिता जी से मिली। इसको लिखने में मुझे विभिन्न पुस्तकालयों विशेषतः लखनऊ के पुस्तकालयों से सहयोग प्राप्त हुआ। अतः मैं उन सभी लोगों के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर सहयोग दिया।

शोधकर्त्री

सुषमा अग्रवाल

अनुक्रमांक

====

प्रस्तावना

परिवर्तन चाहे जिस भी क्षेत्र में हो आवश्यक होता है, साहित्य में भी आवश्यक है । छायावाद अपने उत्तरार्ध में था। छायावाद पर इतना कुछ लिखा जा चुका था कि अब कुछ शेष नहीं रह गया था, फिर युग की माँग कुछ और थी स्थितियाँ बदल रही थीं। सर्वत्र एक उथल-पुथल का वातावरण था पूरे संसार में राजनैतिक सरगर्मी थी । मानवता खतरे में थी, फासिस्टवाद, साम्राज्यवाद का पंजा बुरी तरह फैल रहा था। साहित्य समाज और अपने युग का दर्पण होने के नाते इन सब परिस्थितियों से दूर न रह सका । युग की माँग को देखते हुए अनेक साहित्यकार साहित्य के उद्देश्य को लेकर चिन्तित हो गये और कविता को भावनाओं और कल्पनाओं के कोमल पंख लगाकर स्वप्निल आकाश से उतार कर कंकड़ीली और पथरीली धरती पर खड़ा करने को व्याकुल हो गये।

भारत की भूमि पहले से ही इस क्रांति के लिये तैयार थी ।सन् 1918 को रूसी क्रांति से भारत भी अप्रभावित न रह सका । अंग्रेजों के साथ साथ पूँजीवाद का दमनचक्र निरीह जनता पर तेजी से घूम रहा था, फलस्वरूप सन् 1925 में एक साम्यवादी दल की स्थापना हुई और मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रसार प्रारम्भ हो गया। छायावादी कविता से लोग उकताने लगे थे साहित्य नयी विचारधारा की ओर मुड़ना चाहता था, तत्कालीन साहित्यकार भी मार्क्सवादी परम्परा से प्रभावित हुये और एक नये युग का सूत्रपात हुआ जिसका नाम प्रगतिवाद रखा गया।

डा० मुल्कराज आनन्द सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य, जे०सी० घोष एम सिन्हा आदि लेखकों ने सन् 1935 में भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की और इसके उद्देश्यों को एक विस्तृत परिपत्र का रूप देकर भारत भेजा गया जिसमें समाज में फैली प्राचीन रूढ़ियों और विश्वासों की खुलकर आलोचना और नये समाज के

जन्म का आवाहन किया गया और भारतीय साहित्य को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मुख्य आधार बनाया गया ।

तत्कालीन प्रकाशित होने वाला प्रेमचन्द पत्र हंस इस उद्देश्य की पूर्ति में खुलकर आया और विभिन्न प्रगतिवादी विचार इस पत्र में छपने लगे। प्रेमचन्द जी ने अधिवेशन प्रारम्भ किये और साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा की दुन्दुभी बजा दी। भारतीय तरुण साहित्यकारों को समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली जीवन्त रचनाओं के लिये आमंत्रण दिया । साहित्य के उद्देश्य को स्पष्ट किया सोती हुई जनता में नवचेतना का संचार किया, उसमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक किया। साहित्यकारों को कर्म प्रधान, गतिशील और संघर्ष प्रधान रचनायें लिखने का सन्देश दिया। इससे साहित्य को एक नयी दिशा मिली और अनेकानेक नवोदित लेखक इस प्रकार के साहित्य सृजन में जुट गये ।

"प्रगतिवादी लेखक संघ के सात अधिवेशन हुये और प्रत्येक घोषणा पत्र में साहित्य के उद्देश्य और साहित्यकार के कर्तव्यकी बात कही जाती रही। इस संघ ने भारतीय लेखकों में एक नवीन सृजनात्मक जागृति का संचार किया। प्रगतिवादी चिन्तन केवल काव्य तक ही सीमित नहीं रहा, अपितु गद्य की विधायें-कहानी, उपन्यास छिटपुट नाटक आदि । केवल इतना मात्र नहीं हिन्दी में एक नवीन "प्रगतिवादी आलोचना शैली काआविर्भाव हुआ।

"प्रगतिवादी लेखक संघ" से प्रभावित होकर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की अध्यक्षता में "अखिल भारतीय हिन्दी प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना हुई, जिसने प्रगतिवादी का अर्थ उसके उद्देश्य को स्पष्ट किया। इस तरह पूरे देश में तरह-तरह के संघों का निर्माण हुआ जैसे "उत्तर प्रदेश प्रगतिशील लेखक संघ" तथा "काशी प्रगतिशील लेखक संघ"। प्रथम अधिवेशन में जहाँ केन्द्रीय अथवा राष्ट्रभाषा तथा जनपदीय भाषाओं के विकास पर बल दिया गया, वहाँ द्वितीय अधिवेशन में प्रगतिशील लेखकों से जातीय संकीर्णता एवम् साम्प्रदायिकता से दूर रहकर साहित्य निर्माण का आग्रह किया गया।

अधिवेशनों और संघों की स्थापना के बाद अनेक प्रगतिवादी पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी प्रारम्भ हो गया था जिसमें "हंस" तो था ही, श्री सुरेन्द्रनाथ गोस्वामी तथा हीरेन्द्र मुखोपाध्याय के सम्पादकत्व में "प्रगति"नामक एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया। पं0 सुमित्रानन्दन पन्त और नरेन्द्र शर्मा द्वारा सम्पादित "रूपाभ"इसी प्रकार का पत्र था।प्रेमचन्द और सम्पूर्णानन्द द्वारा सम्पादित "जागरण" प्रगतिवादी आन्दोलन को पूर्ण प्रश्रय दे रहा था। इन पत्र पत्रिकाओं ने अनेक कवियों की महत्वपूर्ण रचनाओं को प्रकाशित कर प्रगतिवाद को प्रसारित करने में योग दिया वे कवि थे डा0 राम विलास शर्मा, प्रकाश चन्द्र गुप्ता, रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा, शिवदान सिंह चौहान ,अमृतराय । पत्र-पत्रिकाओं की छुटपुट रचनाओं के बाद साहित्यकार खुलकर सामने आये और स्वतंत्र रूप से शुद्ध प्रगतिवादी रचनायें प्रारम्भ हो गई । कुछ लोग छायावादी कवि पन्त की रचनाओं "युगवाणी" और "ग्राम्या" को प्रथम प्रगतिवादी रचना मानते हैं। "युगवाणी" पन्त जी की प्रथम प्रगतिवादी काव्य कृति है। इसमें वह छायावाद के काल्पनिक आकाश से उतर कर यथार्थ की धरती पर खड़े दृष्टिगत होते हैं, इसका विकसित रूप ग्राम्या में स्पष्ट रूप से दिखायी देता हैं। ग्राम, ग्रामवासी और ग्रामीण जन-जीवन की व्यावहारिक झाँकी इस रचना में प्रस्तुत की गई है। किन्तु ग्राम्या के बाद अन्य किसी रचना में उनकी ये भावना प्रकट नहीं हुई ।

छायावाद के एक अन्य कवि "निराला" जी की कई रचनाओं में यथार्थवादी समाज के दर्शन होते हैं, जो उन्हें प्रगतिवाद के अधिक निकट दर्शाता है। उनकी "बादल राग" "भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर" आदि में समाज के दलित वर्ग की पीड़ा के स्वर सुनायी पड़ रहे थे। सन् 1942 में निराला जी की प्रथम प्रगतिवादी कृति "कुकुरमुत्ता" प्रकाशित हुई।इसके पश्चात "अणिमा" ।1943। बेला ।1946। और नये पत्ते ।1946। कृतियाँ प्रकाशित हुईं ।

इन कवियों के अतिरिक्त केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा, डा0 शिवमंगल सिंह सुमन , नागार्जुन, डा0 रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री, रांगेय राघव, शील, शंकर शैलेन्द्र

कवि ऐसे भी हैं जो पत्र-पत्रिकाओं में ही अपनी रचनायें छपवाकर रह गए। इनमें रामचन्द्र वर्मा, शरदचन्द्र व्यास, रमेशचन्द्र "मुक्त" भवभूति मिश्र, रामपाल सिंह करण, मानसिंह राही, वीणा कुमारी "मृदु" रामदेव आचार्य, ओमप्रकाश शर्मा, हरिशंकर, गंगाराम पथिक, रामेश्वर करण, राजीव सक्सेना, सुमेरसिंह आदि हैं और भी अनेक कवि हैं जो ज्यादा प्रसिद्ध तो न हो सके किन्तु प्रगतिवादी साहित्य को विस्तृत करने में उनका योगदान महत्वपूर्ण था।

केदारनाथ अग्रवाल-

केदार जी भी थे तो छायावाद के कवि किन्तुपरिस्थितियों की माँग को देखते हुए समाज के दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने लगे। केदार जी की प्रमुख रचनाओं में "नींद के बादल", "युग की गंगा", "लोक और आलोक" और "फूल नहीं रंग बोलते" है" आदि। "नींद और बादल" में कवि छायावाद के व्यामोह से पूर्णतः मुक्त नहीं हो सके है। "युग की गंगा" मेंसमाज की नीति के विरूद्ध प्रहार हैं, कटु जीवन का व्यंग्य है, जागरण का संदेश है। "लोकऔर आलोक" मे कवि की लेखनी वास्तविक रूप से आलोक बिखेरती दिखायी देती है, इसकी शैली ज्यादा मुखर और वाणी ओजस्वी हो गई है। "फूल नहीं रंगबोलते है" इसमें कवि की सामाजिक भावना के नजदीक से दर्शन होते हैं और वह समाज के प्रति अधिक जागरूक दिखायी देता है। सामाजिकयथार्थ के चित्र और मार्मिक व्यंग्य की अभिव्यक्ति दोनों में कवि को सफलता मिली है।

प्रगतिवादी कवियों में नरेन्द्र शर्मा जी का नाम भी लिया जाता है इनकी प्रमुखरचनायें है-"मिट्टी और फूल" हंस माला"कदलीवन, प्यासा निर्झर, बहुत रात गये।" उनके अनुसार वह कवि प्रगतिशीलता के उतना ही निकट समझाजायेगा, जो वस्तुस्थिति और उसकी छाया में अकुलाने वाले अपने व्यक्तित्व को, व्यक्तित्व में निहित सक्रिय सामर्थ्य और सीमाओं को तथा वस्तुस्थिति और व्यक्तित्व के घात प्रतिघातपूर्ण परस्पारिक संबंध और तज्जनित प्रगतिशीलता के नियम को जितना ही अधिक समझ सकता है और व्यवहारिक जीवन में ग्रहण करता है।"[1]

- -

1- मिट्टीऔर फूल -पृ0-2 नरेन्द्र शर्मा

शिवमंगल सिंह सुमन प्रगतिवादी कवियों की श्रृंखला की ही एक कड़ी हैं। यद्यपि इनकी रचनाओं में व्यक्तिक प्रणय भावना की अभिव्यक्ति है किन्तु कुछ रचनायें जीवन के यथार्थ और सामाजिक विकृतियों को भी उजागर करती हैं और सामाजिक विषमताओं से संघर्ष की प्रेरणा भी देती है। जीवन के गान में दलित वर्ग की संघर्ष भावना और उसके विजय की कामना की गई। कवि की अनेक रचनायें सामाजिक अन्तर्द्वन्द्व और पूँजीवाद के प्रति क्षोभ की भावना व्यक्त करती हैं। "विश्वास बढ़ता ही गया" में कवि के प्रगतिवादी स्वर सुनायी तो दिये हैं किन्तु आवेश और आवेग में कुछ कमी आ गयी थी। कुल मिलाकर कवि समाज के प्रति सजग दिखायी देता है और कहीं कहीं पर समाज की विषमताओं और उससे उत्पन्न आक्रोश का तीखा वर्णन किया गया है।

नागार्जुन-

नागार्जुन प्रगतिवादी कवियों की श्रृंखला को आगे बढ़ाते हैं। सच्चे अर्थों में सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति और पूँजीवाद के प्रति विद्रोह की भावना कवि की रचनाओं में व्यक्त होती है। उन्होंने अपने काव्य में समाज के विभिन्न पक्षों का यथार्थ चित्रण कर प्रगतिवादी स्वर को गति प्रदान की। सामाजिक विसंगतियों और सामाजिक अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण कवि की रचनाओं में हुआ। "युगधारा", "सतरंगी पंखो वाली" और "प्यासी पथराई आँखें" नागार्जुन के मुख्य काव्य संकलन है। लघु कृतियों में "खून और शोले" "प्रेत का बयान" तथा "चना जोर गरम" आदि में सामाजिक विषमताओं एवं शोषित वर्ग की पीड़ा का सहज और मार्मिक चित्रण हुआ है।

त्रिलोचन-

नागार्जुन के साथ साथ त्रिलोचन जी भी प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रमुख कवि हैं, जिन्हें वास्तव में प्रगतिवादी कवियों की कोटि में रखा जाता है। "धरती", गुलाब और बुलबुल" तथा "दिगन्त" उनकी प्रमुख रचनायें हैं। इन सभी रचनाओं में शोषित वर्ग एवं ग्राम जीवन के यथार्थ चित्र अंकित है एवं नव समाज के निर्माण में आस्था है।

शील-

शील का काव्य संघर्ष का काव्य है, वह संघर्षशील कवि रहे हैं, उनका ये जीवन संघर्ष उनकी रचनाओं में पूर्णतः परिलक्षित होता है। "अंगड़ाई, "एक पग" और "हृदय पथ" उनकी प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं। उनकी इन कृतियों में विविध विषमताओं का और उससे संघर्ष का सहज वर्णन है मानों उन्होंने इसे अत्यन्त नजदीक से देखा हो। शोषितों और प्रताड़ितों का संघर्षमय चित्रण ही कवि का ध्येय है।

डा० रांगेय राघव-

रांगेय राघव कवि मात्र नहीं थे वरन् उपन्यासकार, कहानीकार, इतिहासकार समीक्षक, निबन्धकार और एक अनुवादक के रूप में हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। "अजेय खण्डहर" कवि का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रबंध काव्य है। "पिघलते पत्थर" प्रगतिवादी भावना को पुष्ट करती है, इस संकलन में पूँजीवाद, साम्राज्यवाद, सामंतवाद, धार्मिक कट्टरतावाद आदि का जमकर विरोध किया गया और जन जागरण का आह्वान किया गया ।

डा० रांगेव राघव की अन्यप्रसिद्ध काव्य कृतियों में "राह के दीपक" "मेधावी "रूपछाया" और "पांचाली" का मुख्य स्थान है। जो बात रांगेव राघव जी को अन्य प्रगतिवादी कवियों से अलग करती है वह है उनके मुक्तक काव्य और प्रबंध काव्य की रचना।

महेन्द्र भटनागर-

महेन्द्र भटनागर की रचनायें क्रांति का स्वर लिये जन जागरण में स्फूर्ति फूकती है। इसमें सवहारा वर्ग के संघर्ष में अडिग विश्वास, नये समाज की प्रबल आकांक्षा और साम्यवाद के प्रति अडिग आस्था के दर्शन होते हैं। "जिजीविषा" इसका सफल उदाहरण है।

ये तो वे कवि थे जो प्रसिद्ध हो गये किन्तु कुछ और भी कवि हैं जो किसी कारण से विकसित न हो सके। तमाम तरुण कवि प्रगतिवाद के तेज प्रकाश से प्रभावित होकर

बहुत आवेश में आते थे मगर थोड़ा सा विकसित होकर मुरझा गये। कवियों का जम्घट ये सिद्ध करता है कि "हिन्दी काव्य जगत में प्रगतिवाद एक बड़ी और व्यापक शक्ति लेकर आया था।उसने उसके पूर्व चल रहे सभीवादों और उन वादों से मुक्त काव्य को झकझोर दिया और एक विजयी शासक की तरह कोई पन्द्रह वर्ष से भी अधिक समय तक हिन्दी काव्य जगत पर एक छत्र शासन करता रहा। इसके पश्चात "प्रयोगवाद" आया।कुछ प्रगतिवादी कवि भी प्रयोगवादी बन गये,कुछ नये आये और काव्य क्षेत्र में अपनी अपनी तरंग के अनुसार नये नये प्रयोग करते रहे, किन्तु सभी प्रयोग उखड़े उखड़े रहे।"[1] वाद के कवियों में भी प्रगतिवाद की छाप स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। तार सप्तक के सभी कवियों में प्रगतिवादी भावनाओं एवं मान्यताओं के दर्शन होते हैं।

इस प्रकार अनेक प्रसिद्ध कवियों और उनकी रचनाओं ने प्रगतिवादी स्वर को विस्तार दिया और प्रगतिवाद खूब फूला-फला। आगे के अध्यायों में इनकी कुछ रचनाओं का विस्तार से वर्णन हैकिन्तु चूँकि शोध कार्य को कालबद्ध किया गया है,सन् 1936 से 1942 तक अतः अनेक मुख्य और प्रसिद्ध रचनायें इसकी परिधि से बाहर रह जाती हैं। 1936 से तो प्रगतिवाद का जन्म ही है अतः उस छिटपुट रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में छपती थीं स्वतंत्र रूप से काव्य कृतियों का निर्माण धीरे-धीरे बाद में आरम्भ हुआ। अतः 1936 से 1842 का काल प्रगतिवाद की शैशवावस्था मानी जा सकती है जो विकसित होने के लिये पूर्ण यौवन प्राप्त करने के लिये अपने हाथ-पैर चला रहा था।

प्रगतिवादी काव्य की कथावस्तु-

इस काल के कवियों की रचनाओं का मुख्य विषय सामाजिक विषमताओं का चित्रण, उससे संघर्ष और विजय की कामना,कवियों का प्रतिपाद्य विषय था वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था के प्रति असन्तोष । साहित्य का उद्देश्य कल्पना के पंख लगाकर स्वप्निल आकाश में उड़ना नहीं था वरन्समाज के यथार्थ का चित्रण करनाथा। साहित्य का क्षेत्र बढ़ा उसके क्षेत्र में विस्तार आया और साहित्य राष्ट्रीयता की परिधि से बाहर निकल अंतर्राष्ट्रीयता को लांघ गया। मात्र भारत के किसानों और मजदूरों के प्रति

1- प्रगतिवादी काव्य साहित्य-डा० कृष्णलाल हंस-मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ आकादमी, भोपाल-1971 ,पृ0- 192

सहानुभूति न दिखाकर पूरे संसार के मजदूरों और गरीब तबके के अधिकार की बात कही जाने लगी। समाज मैंतेजी से फैलते हुए साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के प्रति आक्रोश की भावना प्रगतिवादी रचनाओं का लक्ष्य बना । मात्र यथार्थ का वर्णन, मजदूरों की अवस्था पर आंसू बहाना ही साहित्य का कर्तव्य न था इस विसंगति के प्रति सर्वहारा वर्ग की विद्रोह की भावना जाग्रत करना और अपने अधिकारों के प्रति सचेत करना भी साहित्यकार का कर्तव्य हो गया। समाज का पूरा ढाँचा जर्जर हो गया है, वे सड़गल गया है अनेक कुरीतियाँ, रुढ़ियाँ नासूर बन चुकी हैंइसमें सुधार नहीं किया जा सकता, प्रगतिवाद ने सुधार में अपना अविश्वास प्रकट किया और पूर्ण परिवर्तन करके नव निर्माण की आकांक्षा की जिसमें एक ही वर्ग होगा, पूँजी पर पूरे समाज का हक होगा किसी विशेष वर्ग का नहीं। बदलते हुए समाज में सभी मान्यतायें बदली ईश्वर में अनास्था हुई, धार्मिक आडम्बरों का खण्डन हुआ वह कोई भी बात, कोई विश्वास जो मनुष्य अकर्मण्य बनाये, डरपोक, निकम्मा बनाये उसे जड़ से उखाड़ फेंकना प्रगतिवाद का कर्तव्य हो गया। धर्म मनुष्य को नियतिवादी बनाता है, अकर्मण्य बनाता है अतः धर्म का कोई स्थान प्रगतिवादी कविताओं में नहीं रह गया ।

सभी क्षेत्रों में परिवर्तन के साथ और नवनिर्माण के लिये संघर्ष में जब तक नारी का सहयोग न हो समाज का ढाँचा बदलना असम्भव है अतः नारी के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाया गया। कवियों द्वारा कही जाने वाले अबला, सबला हो गई। कोमलांगी, साज-श्रृंगार से सुसज्जित प्रिया, जीवन रण में पुरुष की सहयोगिनी हो गई। युग युग की कारा से बाहर निकल घूंघट को उलट कर नारी अपने परिवार को पालने में धूल भरे जूड़े पर बोझा उठाये धूप और बरसात में तपने लगी, वह पुरुष के लिये प्रेरणा बनी और नवीन समाज की रचना का मुख्य हिस्सा बनकर सामने आयी। इस प्रकार साहित्य को एक नयी दिशा मिली, साहित्य समाज से जुड़ गया, वह गली गली, घर घर और इसे लाँघता हुआ गाँव-गाँव, झोपड़ियों तक जा पहुँचा। साहित्य का इतना विस्तार इतना सहजीकरण कभी नहीं हुआ था।

प्रगतिवाद काव्य तरंगिणियों में बहता हुआ गद्य साहित्य तक प्रवेश कर गया। प्रगतिवादी विचारधारा को लिये हुए अनेक उपन्यासों और कहानियों को रचना प्रारंभ हो गई।

उपन्यास में बदली हुई विचारधारा की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द युग से ही प्रारम्भ हो गई। प्रेमचन्द के उपन्यास जो कि समाज की कुरीतियों का उद्घाटन करते थे किन्तु पूँजीवादी और सामन्तवादी शक्तियों के हृदय परिवर्तन की आशा रखते थे और आदर्शोन्मुख होते थे, किन्तु अन्त तक आते आते प्रेमचन्द जी की विचारधारा कुछ बदली आदर्श का स्थान यथार्थ ने ले लिया, हृदय परिवर्तन का स्थान परिवर्तन ने ले लिया। पात्रों ने संघर्ष करते हुए अव्यवस्थित सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह कर दिया, इसका उदाहरण "गोदान" था। "गोदान हिन्दी पाठक को तिलस्म के मायाजाल से निकालकर सामाजिक रस के स्तर तक खींचकर लाने की प्रेमचन्द की कला साधना का ऐतिहासिक प्रतीक हैं।"[1] गोदान में प्रगतिवादी स्वर अभिव्यक्त हुए हैं। जिसका आगे विस्तृत विवेचन किया गया है।

प्रेमचन्द युग में जो उपन्यास लिखे गये उनके बारे में रामेश्वर शुक्ल अंचल ने अपने समाज और साहित्य में लिखा "समस्त सामाजिक अभावों और अविचारों का सम्बन्ध या लगाव एक अन्यायी सामाजिक व्यवस्था से है। उनका यह निष्कर्ष था कि जो सामाजिक व्यवस्था इन सब अभावों और असंगत विषमताओं को आश्रय देती है वह सिर से पैर तक भयावह और विषाक्त हैं।"[2]

प्रेमचन्द जी ने जिस परम्परा का सूत्रपात किया था उसे आगे बढ़ाया यशपाल जी ने। यशपाल जी का योगदान प्रगतिवादी साहित्य कभी नहीं भूलेगा, वह इस धारा के एक सफल और सशक्त साहित्यकार थे और आपके साहित्य में सही अर्थों में प्रगतिवादी स्वर सुनायी पड़ते हैं। यशपाल जी की चर्तुदिक सेवा से प्रगतिवादी साहित्य हमेशा ऋणी रहेगा। यशपाल जी ने जो प्रमुख उपन्यास लिखे वो निम्न हैं-दादा कामरेड।1941। इस उपन्यास में किसानों और मजदूरों के लिये एक नवयुवक का जीवन भर संघर्ष है और अंत में संघर्ष करते हुए आगे भी संघर्ष का मार्गदर्शन करके मर मिटने की कहानी है। मजदूरों की बेबसी, उसके विरोध में हड़तालें, विद्रोह आदि का व्यावहारिक वर्णन है। नारी के प्रति

1- एक आलोचक, गोपाल कृष्ण कौल- हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, ले०डा० त्रिभुवन सिंह-पृ० - 21।

2- रामेश्वर शुक्ल अंचल-समाज और साहित्य-पृ०- 105

भी बदले हुए विचारों के दर्शन हैं और नारी को घर की चहारदीवारी से निकालकर पुरुष के कन्धे से कन्धा मिलाकर चलते दिखाया गया है। अन्य उपन्यास भी इसी प्रकार के हैं- जैसे-देश द्रोही ।1943। पार्टी कामरेड ।1947। दिव्या ।1945। मनुष्य के रूप ।1949। अमिता ।1956। झूठा सच ।दो भाग-1958, 1960। और अप्सरा का श्राप ।

यशपाल जी के प्रत्येक उपन्यास में सामाजिक अव्यवस्था के प्रति विद्रोह और उसका प्रगतिवादी, मार्क्सवादी दृष्टि से समाधान प्रस्तुत है। नारी के प्रतिनया दृष्टिकोण नारी और पुरुष के सम्बन्धों के प्रति नयी दृष्टि किसी भी प्रकार के बन्धन के प्रति असहमति, पूर्वाग्रहों से असन्तुष्टि और परम्पराओं, रूढ़ियों के प्रति अनास्था, धर्माडम्बरों के प्रति घृणा और पूँजीवाद के प्रति बगावत का स्वर कूट कूट कर भरा है और उनका पूरा साहित्य इसी का प्रतिनिधित्व करता है।

नागार्जुन जीएक ऐसे क्रांतिकारी कवि हैं जिनका संपूर्ण साहित्य, वर्तमान अवस्थाओं से जूझते और उससे संघर्ष करते आम नागरिक की कहानी कहता है। नागार्जुन जी की रचनाओं में समाज के सामान्य वर्ग का इतनी सहजता से वर्णन हुआ है मानों उन्होंने उसे बड़ी नजदीक से देखा है, भोगा है। लेखक की रचनाओं में ग्रामीण, किसान और देहाती जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण देखने को मिलताहै। आपने अधिकांश आंचलिक उपन्यास भी लिखे हैं।

नागार्जुन जीके मुख्य उपन्यास हैं- रतिनाथ की चाची ।1948। बलचनमा ।1952। नईपौध ।1953। बाबा बटेसर नाथ ।1954। वरुण के बेटे ।1957। दुखमोचन ।1957। । नागार्जुन जी के ये सभीउपन्यास -देहात की सामंतवादी संस्कृति का मूल्यांकन करते हैं। लेखक ने समस्याओं का निराकरण सुधारवादी या आदर्शवादी धरातल पर न करके समाजवादी शक्तियों के संदर्भ में किया है। सामंतवादी, पूंजीवादी शक्तियों के प्रति खुला विरोध परिलक्षित होता है।

- - - - - - - - - - - - --

रांगेय राघव-

रांगेय राघव उपन्यास विधा के एक अन्य सशक्त और प्रमुख लेखक हैं। राघव जी ने लगभग 30 उपन्यास लिखे हैं और सभी में मार्क्सवादी स्वरों को प्रश्रय मिला है। "घरौंदे"

"सीधे सादे रास्ते" ।जो कि टेढ़े मेढ़े रास्ते के विपरीत लिखा गया था। "विषाद मठ" ।आनन्द मठ के विपरीत लिखा गया था। "हुँजूर" कब तक पुकारें, मुर्दे का टीला आदि।

भैरव प्रसाद गुप्त-

भैरव प्रसाद जी के भी कुछ उपन्यासों ने तत्कालीन संघर्ष और बुर्जुआ और सर्वहारा वर्ग की लड़ाई का चित्रण किया है-जैसे मशाल।1951। गंगा मैया।1953।तथा "सत्ती मैया का चौरा"। "मशाल" में कानपुर के मजदूरों के संघर्ष की कहानी है और मजदूरों का अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये लड़ाई का चित्रण है।इसका उद्देश्य मजदूरों औरकिसानों में स्वाधिकार के प्रति जाग्रति फैलाना था। "गंगा मैया" में दो कृषक परिवारों के माध्यम से ग्रामीण जीवन एवं उनके संघर्ष का वर्णन है। ग्रामवासी बहुत आशावादी हैं, आज दिन खराब हैं कल अच्छे भी आयेंगे इस आशा में वे कठिन से कठिन जीवन व्यतीत कर जाते हैं बस इसी आशावादी संघर्ष को सामने लाता है उपन्यास "गंगा मैया"। "सत्ती मैया का चौरा" एक आंचलिक उपन्यास है। अन्य उपन्यासों में जंजीरे "नया आदमी" आदि हैं।

अमृत राय-

अमृत राय ऐसे लेखक हैं जिनकीरचनायें व्यंगात्मक स्वर से ओत प्रोत है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्थाओं एवं सामंतवादियों के प्रति व्यंगात्मक दृष्टिकोण रखा है और व्यंग्य के माध्यम से अपनी बात को स्पष्ट किया है। "बीज" में सन् 1942 से 1947 तक के भारतीय जीवन के सामाजिक एवं राजनीतिक पक्षों की झाँकी प्रस्तुत की गई है। एक अन्य उपन्यास "हाथी के दाँत" में एक सामंत का व्यंग्य चित्र खींचा गया है।

लक्ष्मी नारायण लाल-

लक्ष्मी नारायण जी के उपन्यासों में कठोरता के स्थान पर कोमलता है, बुद्धिवाद का स्थान भावुकता ने लिया है, उपन्यासों में आंचलिकता का पुट है। "धरती की आँखे" बया का घोंसला और साँप" काले फूल का पौधा" रूपा जीवा तथा मनवृन्दावन में सामंतवाद एवं पूँजीवाद के प्रति असंतोष की भावना हैएवं इनके पात्र उसके प्रति विरोध प्रकट करते

प्रस्तुत किये गए हैं। "काले फूल का पौधा" में मध्यवर्गीय समाज की विषमता, अशांति, सूनापन, असंतोष आदि का सुन्दर एवं मार्मिक चित्रण किया गया है।

राजेन्द्र यादव-

राजेन्द्र जी के उपन्यास स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आये। राजेन्द्र जी के उपन्यास मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। "प्रेत बोलते हैं" उखड़े हुए लोग" ।1956। "कुलटा" शह और मात" तथा मंत्र विद्ध ।1967। आदि इसी तरह के उपन्यास है। इन उपन्यासों में सामाजिक विघटन, पूंजी और सत्ता के अनैतिक गठबंधन, प्राचीन संस्कार रूढ़ियों औरपरम्पराओं और नव जागरण से संघर्ष करती नयी पीढ़ी का चित्रण है।

राहुल सांकृत्यायन जी के "सोने की ढाल" विस्मृति के गर्भ में, जीने के लिये आदि उपन्यास इसी श्रृंखला के उपन्यास हैं। इस प्रकार प्रगतिवादी उपन्यासों की एक बाढ़ सी आ गई और कई वर्षों तक उपन्यास के माध्यम से वर्तमान विषम परिस्थितियों से जूझती सामाजिक द्वन्द्व में फँसी निरीह जनता का चित्रण किया जाता रहा।

कहानी-

कहानी का सिलसिला भी उपन्यास की भाँति प्रेमचन्द जी से ही शुरू हो जाता है। प्रेमचन्द जी तो कहानी लेखन में सम्राट थे किन्तु उनकी कहानियाँ ग्रामीण जीवन की कहानी तो कहती थीं, निम्नवर्ग का प्रतिनिधित्व करती थीं, गरीबों की झांकी प्रस्तुत करती थीं किन्तु पात्र संघर्ष करते करते मर जाते थे खुला विद्रोह नहीं कर पाते थे। किन्तु ऐसा नहीं कि किसी कहानी में ये भावना आयी ही नहीं कुछेक कहानियों में पात्र विद्रोह भी करते हैं उदाहरण के लिये "कफन"कहानी में काफी कुछ विद्रोह की भावना है और सामाजिक विषमता पर व्यंग्य भी है किन्तु जिस क्रांति की आवश्यकता थी उसे पूरी करती हैं यशपाल जी की कहानियाँ- यशपाल जी जीवन की वास्तविकता का वर्णन बड़ी निर्ममता से करते हैं। वर्तमान समाज व्यवस्था में धर्म, नैतिकता, प्रेम, न्याय, इज्जत सबके पीछे आर्थिक स्वार्थ निहित हैं, इस सत्य को यशपाल जी समझ गए थे और यही उनके कहानी का कथ्य

बना । यशपाल जी के 14 कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रमुख संग्रहइसप्रकार हैं- "ज्ञानदान" दुख का अधिकार, "जबरदस्ती" "पिंजरे की उड़ान" वो दुनियाँ" तर्क का तूफान आदि । कहानी लेखन में एक नाम जो अग्रणी है वह है राहुल सांकृत्यायन जी का। वोल्गा से गंगातक इनकी कहानियों में आर्यों के प्रागैतिहासिक काल से लेकर भारत में आने, बसने आदि का आधुनिक काल तक का इतिहास मार्क्सवादी दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है।

अन्य कहानीकारों में अमृत राय डा० रांगेय राघव, डा० भगवत शरण उपाध्याय, अमृतलाल नागर एवं मन्मथनाथ गुप्त है। रामेश्वर शुक्ल अंचल का एक कहानी संग्रह ये, वे, बहुतेरे मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर लिखा कहानी संग्रह है।अमृतराय ने जीवन के पहलू, लाल धरती, गीली मिट्टी आदि कहानियाँ लिखीं।

इस प्रकार जिन लेखकों ने उपन्यास के माध्यम से मजदूर वर्ग को वाणी दी पूँजीवाद का विरोध किया उन्हीं लेखकों ने छोटी छोटी कहानियाँ भी लिखी और प्रगतिवादी साहित्य का चतुर्दिक विकास किया। कहानियाँ छोटीहोने के बाद भी किसी विषय से अछूती नहीं रही। सामाजिक विषमता, मजदूर वर्ग का संघर्ष, पूँजीवाद के नाश के लिये क्रांति, प्राचीन रूढ़ियों और परम्पराओं का खण्डन नारी के प्रति बदला हुआ दृष्टिकोण औरनवनिर्माण की आकांक्षा सभी कुछ कहानियों में प्रकट हुआ ।

निबन्ध-

प्रगतिवाद ने हिन्दी की एक सेवा यह की कि साहित्यकारों की दृष्टि पर लगा हुआ आदर्श का चश्मा उतार दिया और जीवन की वास्तविकता के आमने सामने खड़ा कर दिया।अन्य विधाओं की भाँति यशपाल जी निबन्ध लेखन में भी किसी से पीछे नहीं रहे और "चक्कर क्लब" देखा सोचा समझा, "बात बात में बात , न्याय का संघर्ष आदि निबन्धलिखकर प्रगतिवादी विचारों को स्पष्ट किया। निबन्ध लेखन और जो प्रमुख नाम उभरे कर आते हैं वो है डा० नामवर सिंह एवं डा० प्रभाकर माचवे।इनका एक एक संग्रह प्रकाशित हुआ है। नामवर सिंह का "बकलम खुद" निबंध संग्रह प्रकाशित हुआ

जिसमें लेखकों, राजनीतिज्ञों, स्वतंत्रता, गान्धीवादियों, अखबार, शिक्षा, सामंतवाद, पूँजीवाद आदि परतीखे व्यंग्य किये हैं।

प्रभाकर माचवे जी का निबन्ध संग्रह "खरगोश के सींग" व्यंग्यात्मक निबन्ध संग्रह है। अमृतराय जी ने अनेक निबंध लिखे और उनके निबंधों में भी वर्तमान सामाजिक विषमता केप्रति व्यंग्यात्मक दृष्टि अपनायी है इसी प्रकार के कुछ निबंध हैं सहचिन्तन के सबसे भले है मूढ़, जितने पड़े उतने झड़े, गोबर गनेस का जागरण, कृपाचार्य की कूटनीति आदि ऐसे ही निबन्ध हैं। राहुल सांकृत्यायन जी का "साम्यवाद ही क्यों" और तुम्हारी क्षय सन् 1954 में प्रकाशित हुए।

समीक्षा-

प्रगतिवादी समीक्षा ने हिन्दी में 1938-39 तक स्वीकृति प्राप्त कर ली थी। श्री सुमित्रानन्दन पंत रूपाभ के सम्पादकियों के द्वारा इसका प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। "त्रिशंकु" के कुछ लेखों के कारण अज्ञेय जी को भी प्रगतिवादी समीक्षक माने जाने का भ्रम हुआ था किन्तु शीघ्र ही ये मुलम्मा उतर गया। प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त के लेखों में विश्लेषण की सूक्ष्मता, चिन्तन की गहराई अभिव्यक्ति की शक्ति इतनी कम है कि वह ज्यादा आगे न बढ़ सके और ज्यादा ख्याति न मिल सकी।

प्रगतिवादी समीक्षकों में प्रमुख रूप से डा० रामविलास शर्मा और श्री शिवदान सिंहचौहान, अमृत राय, नामवरसिंह आदि हैं। शर्मा जी की पकड़ बहुत पैनी है। प्रगतिवादी आलोचना मूल्यांकन केलिए निश्चित सिद्धांत की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। x x x x x x x उसके अनुसार यथार्थ का पूर्ण चित्रण की कला की कसौटी है। शर्मा जी इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर रचनाकारों और समीक्षकों की रचनाओं के निजी विरोधाभासों को बड़ी सरलता से पकड़ लेते हैं। आलोचना में व्यंग्य को शर्मा जी अनिवार्य मानते हैं। प्रगति और परंपरा, संस्कृति और साहित्य, भारतेन्दु युग, प्रेमचन्द और उनका युग, प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें आदि इसी प्रकार समीक्षात्मक ग्रन्थ हैं।

शिवदान सिंह चौहान ने पश्चिमी प्रगतिवादी आलोचना साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया और उसके बाद हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में पदार्पण किया इसीलिये उनके विचार ज्यादा स्वस्थ और स्पष्ट हैं। आलोचना क्षेत्र में प्रगतिवाद साहित्यिक रचना क्रिया को "मैं" से संबंधित कर उसे सीमित नहीं बनाता वरन् उसे साहित्य के मूल में "हम" की भावना से जोड़ता है। इसी प्रकार की भावना व्यक्त हुई है चौहान जी की आलोचनात्मक रचनाओं में चौहान जी के प्रमुख आलोचनात्मक ग्रन्थ इस प्रकार है- प्रगतिवाद जिसमें लेखक ने प्रगतिवाद के पूर्व स्वरूप का विवेचन किया है। अन्य ग्रन्थों में "साहित्य की परख" आलोचना के मान तथा साहित्य की समस्याएँ। चौहान जी ने अपनी समीक्षा में प्रगतिवाद के दार्शनिक आधार को स्पष्ट किया।

अन्य समीक्षकों में रामेश्वर शुक्ल अंचल, अमृतराय, डा० रांगेय राघव, डा० नामवर सिंह आदि प्रमुख हैं। डा० नामवर सिंह का "आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ" ऐसा ही आलोचनात्मक ग्रन्थ है।

प्रगतिवादी समीक्षा की एक बहुत बड़ी देन थी कि साहित्य का उद्देश्य बदला साहित्य को देखने का एक नया दृष्टिकोण दिया। साहित्य जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता यह चेतना प्रगतिवादी समीक्षा ने ही प्रदान की है। प्रगतिवादी समीक्षा में बौद्धिक विश्लेषण, वैज्ञानिक अध्ययन तथा अन्य अनुशासनों के संदर्भ में साहित्य के अध्ययन की प्रवृत्ति का प्रारम्भ हुआ । प्रगतिवादी समीक्षा की एक कमी भी है वह नितान्त एकांगिता से ग्रसित हैं और कलापक्ष की पूर्ण रूप से अवहेलना की गई है। भावपक्ष पर सबने अपनी लेखनी चलाई किन्तु कलापक्ष बिल्कुल अछूता रहा मानो साहित्य के लिए इसका कोई महत्व ही न हो ये कमी सबसे बड़ी है।

इस प्रकार प्रगतिवादी साहित्य सभी विधाओं में फलता फूलता आगे बढ़ता रहा और जन प्रतिनिधित्व करता रहा। जैसा कि स्वाभाविक है परिवर्तन होना कुछ नया होना उसी प्रकार साहित्य में भी कुछ नया हुआ, नये प्रयोग प्रारंभ हुए और साहित्य में मनोवैज्ञानिकता, बौद्धिकता, अन्तर्मन की कुण्ठा, बिम्ब प्रतिबिम्ब प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होने लगी और इसकी सूचना लेकर आया अज्ञेय जी का "तार सप्तक" और साहित्य में एक नयी धारा का सूत्रपात हुआ जिसे "प्रयोगवाद" नाम से जाना जाने लगा।

====

प्रथम-अध्याय

प्रगतिवादी साहित्य के प्रेरक तत्व

हिन्दी प्रगतिवादी साहित्य के प्रेरक तत्व

प्रगतिवाद का भारत में जन्म अवश्यम्भावी था उसका वातावरण भारत में तैयार हो रहा था परिस्थितियाँ भी इसी के अनुकूल थी एक ओर छायावाद की थूनियाँ हिल चुकी थी उसका धराशायी हो जाना संभव था और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप एक नयी धारा का उदय होना आवश्यक था, दूसरी तरफ देश की परिस्थितियाँ प्रगतिवाद को निमंत्रण दे रही थी और इसे और ज्यादा उत्साह दिया "रूस की सफल क्रान्ति" ने यद्यपि प्रगतिवाद के जन्म में परिस्थितियाँ तो भारतीय ही थीं पर उसका दर्शन अवश्य विदेशी था जो "मार्क्सवाद" से प्रभावित था। "प्रगतिवाद के दो मूलभूत स्रोत हैं, एक स्रोत स्वयं भारत की तज्जनित सामाजिक विषमताये है और दूसरा है उन विषम परिस्थितियों की माँग के अनुसार प्रयुक्त "मार्क्सवाद का वैज्ञानिक दृष्टिकोण।"[1]

प्रगतिवाद के जन्म के लिये भारत की परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं। उस समय की राजनैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक परिस्थितियाँ ऐसी थी जिनमें एक क्रान्ति आना आवश्यक था। उस समय का भारतीय वातावरण ऐसा था-"इस समय देश का समस्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन उद्वेलित होकर पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति की चपेट में आ गया था। पूंजीपति और मजदूर इन दो नये वर्गों का जन्म होने लगा था। मजदूर वर्ग किसानों की ही तरह शोषण के चक्र में पिस रहा था। शहरों की गंदी बस्तियों में रहने वाले इस वर्ग की अपनी समस्यायें थीं, अपना अलग संगठन था। ये मजदूर, किसानों की अपेक्षा अपने अधिकारों के प्रति अधिक जागरूक थे। इनके अतिरिक्त समाज में मध्यवर्ग के भी लोग थे। यह भारत का शिक्षित वर्ग था जो नवीन कृत्रिम जीवन के व्यामोह में फँसा, सच्चाइयों से कटा हुआ था। यह वर्गपरम्पराओं का विरोधी तथा आर्थिक अभावों में घुट-घुटकर पलता हुआ भी बाहरी तड़क-भड़क का आग्रही था। इसीलिये ये अनिश्चितताओं में जी रहा था। इसका व्यवहारिक एवं सैद्धांतिक जीवन असंगतियों से परिव्याप्त था।"[2]

- -

1- प्रगतिशील आलोचना- रवीन्द्र नाथ श्रीवास्तव-पृ0- 237-सन् 1962 साहित्य भवन इलाहाबाद

2- मार्क्सवाद और उपन्यासकार-यशपाल-पृ0- 338- लेखक डा0 पारसनाथ मिश्र-लोक भारती प्रकाशन सन्- 1972

एक ओर राष्ट्र अपनी राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था और दूसरी ओर उसकी अपनी निजी समस्यायें थीं जिनमें आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी थीं। संघर्ष की इस स्थिति में केवल विदेशियों का ही हाथ नहीं था बल्कि देशी भी थे जो अपने स्वार्थ के लिये समस्याओं को बढ़ावा दे रहे थे।

अंग्रेजों ने अपनी राजनैतिक कुशलता से भारत में साम्राज्यवाद का जहर घोला और धार्मिक स्वतंत्रता का झूठा आश्वासन देकर ईसाई धर्म को भारत में फैलाना आरंभ किया। अभी तक मुसलमानी शासन में भारत के समाज का केवल शरीर शासित होता था मगर अंग्रेजों के काल में समाज की आत्मा भी शासित हो गयी। अंग्रेजों ने भौतिक साधनों का अधिकाधिक विकास करके भारतीय जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कराया अतः देश के राजे-महाराजे, नवाब सब अंग्रेजों की ओर झुकने लगे वह उनकी चापलूसी करने लगे और उनसे मिलकर अधिक लाभ उठाने के लिये अपने ही देश की जनता का रस चूसने लगे। इन्हें राजनैतिक स्वतंत्रता से कोई सरोकार न था देश आजाद रहे या परतंत्र इनको अपने पूँजी कमाने से मतलब था इनका ईश्वर इनका "धन" था। अंग्रेजों ने भारत की संस्कृति, सभ्यता और धर्म पर करारा प्रहार किया और वह इस प्रयास में कुछ हद तक सफल भी हुए, नौ जवानों का अपनी संस्कृति अपने धर्म से विश्वास हटने लगा और अंग्रेजों की नीति में उन्हें ज्यादा सुख प्रतीत हुआ अतः भारतवासी विवाद में फँस गये- "ब्रिटिश साम्राज्य ने ध्वंसात्मक क्रिया के लिए अपनी संपूर्ण शक्ति लगा दी, पर रचनात्मक पक्ष उससे सर्वथा अछूता रहा। समाज का सुदृढ़ भवन इस विध्वंसकारी प्रहार के झोके में स्थिर नहीं रह सका। उसकी ईंटें एक-एक कर गिरने लगीं। धरती से चिपटे भारतवासी ऊपर से इन ईंटों की भार से पीड़ित हो उठे। उनका शरीर क्षत-विक्षत हो कराह उठा, वे इस असामाजिक प्रहार से इतना जर्जर और निर्बल हो गए कि स्वयं अपने ऊपर गिरे ईंटों को उठाकर अलग न कर सके। शाही व्यवस्था का कोई ऐसा पक्ष व्यवहार में नहीं लाया गया जिसके द्वारा इस प्रताड़ना से संत्रस्त जनता को प्राण मिलता। इसका परिणाम भी बहुत ही भयंकर हुआ। भारतवासी विषाद के सागर में डूबने-उतराने लगे।[1]

ब्रिटिश काल में बैंक पूँजी के माध्यम से शोषण का नया तरीका विकसित हो गया था पहले विदेशी बैंक "चार्ल्स बैंक लिमिटेड, लायडस बैंक, वेस्ट मिनिस्टर बैंक, नेशनल बैंक

1- कार्ल मार्क्स - आर्टिकल आफ इंडिया- पृ0-6

आफ इण्डिया, ग्रिण्डले बैंक, ईष्टर्न बैंक आदि के माध्यम से ब्रिटिश पूँजी ने भारतीय बाजार पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा था। लाभ की मात्रा में असीमित वृद्धि से उत्साहित पूँजीपतियों ने भी बैंको में पूँजी लगाना प्रारम्भ किया था।"[1]

इस लाभ कोदेखकर देशी राजाओं एवं नवाबों ने भी इस ओर ध्यान दिया और अपनी पूँजी को नया आयाम दिया बैंको के रूप में।साधारण जनता इस नये शोषण के रूप को समझने में असमर्थ थी।शोषण की प्रक्रिया वही थी बस उसका रूप बदल दिया गया था। अंग्रेजों ने भारत की आर्थिक व्यवस्था कीकमर तोड़कर उसे पंगु बना दिया यही उनकी सबसे बड़ी जीत बनी।भारत से कच्चा माल तैयार कराकर विदेशों में भेजा जाने लगा और वहाँ से बनकर आकर माल चौगुनों दामों में बेचा जाने लगा । पूँजीवादी व्यवस्था के विकास से देश में कल-कारखानों का जाल बिछने लगा और पूँजीपतियों ने आकर्षित हो विदेशियों के साथ मिलकर मिलें और कम्पनियाँ खोलनी प्रारम्भ कर दीं परिणाम हुआ देश के उद्योग धन्धे और खेती ठप्प होने लगी किसान और गरीब तपका भूखों मरने लगा, दाने-दाने को मोहताज हो गया।कारखानों में मजदूरी काम करने से एक नये वर्ग का जन्म हुआ मजदूर वर्ग और यहीं से दो वर्गों का विकास हो गया एक था बहुसंख्यक वर्ग जो शोषित था और दूसरा था अल्पसंख्यक वर्ग जो शोषक था। ऐसे समय में साधारण जनता जिनकी संख्या बहुत भारी थी दिशाहीन होकर भटकने लगी, इनके विश्वास हिल गये ऐसे समय इनको स्वतंत्र सक्रिय आत्मबोध दिया महात्मा गांधी ने। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करवाया और चरखा का प्रसार करके सबको कुटीर उद्योगों के लिये उत्साहित किया।इस प्रकार जागरण एवं विद्रोह की भावना को मात्र साम्यवाद की देन समझना निरर्थक है इसके लिये तो जनसाधारण कब से वातावरण तैयार कर रहा था। भारत से जो धन लूटा गया उसे स्वीकार करते हुए लेखक ब्रुकस्डमन ने लिखा जो की अमेरिका के थे-"शायद जब से दुनिया शुरू हुई है किसी भी पूँजी से कभी भी इतना मुनाफा नहीं हुआ , जितना हिन्दुस्तान की लूट से।"[2]

- -

1- हिन्दी कथा साहित्य पर सोवियत क्रान्ति का प्रभाव-डा० पुरुषोत्तम बाजपेयी
पृ०- 273 -सरस्वती प्रकाशन सन्- 1973

2- जवाहर लाल नेहरु-" हिन्दुस्तान की कहानी (पत्रिका से उद्धृत) पृ०- 366

जब अंग्रेजों का अत्याचार बढ़ता गया और देश के कुछ महापुरुष आजादी के लिये प्रयास कर रहे थे तभी सदियों से शोषित, असन्तुष्ट, निराशा और कुण्ठा का जीवन व्यतीत करने वाले निम्नवर्ग और मध्यमवर्ग इस आजादी की लड़ाई में संघर्षरत हो गये। राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ ही इस वर्ग की रोटी और वस्त्र का और जीवन भरण का सम्बन्ध था। "इस जाग्रति को क्रमशः विकास ही मिलता गया। सदियों बाद इस पौरुष को साहित्यकारों ने साहित्य का विषय बनाया। साहित्य सामान्य जीवन के आशा-विश्वास का साधन बना। असत्य और अंधकार को जीतने का चिंतनात्मक अस्त्र बना। आधुनिक काल का प्रारम्भिक सामाजिकबोध अपने यथार्थ रूप में समाज के निकट आया।[1]

एक तरफ विदेशी अत्याचारों से जनसाधारण विचलित था और दूसरी तरफ उसके अपने समाज की कुरीतियाँ, धार्मिक आडम्बर उसे व्याकुल बनाये थे। समाज में प्रचलित सामाजिक रूढ़ियाँ जिनका पालन करने में व्यक्ति का सर्वस्व न्यौछावर हो जाता था। अनेक महापुरुषों ने इन सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिये प्रयत्न किये "ब्रह्म-समाज" आर्य समाज, "रामकृष्ण सेवाश्रम" आदि का निर्माण हुआ।

समाज में विवाह के क्षेत्र में अनेक बुराइयाँ थीं जिसने पूरी नींव ही हिला रखी थी। इस क्षेत्र में अनमेल विवाह, बाल-विवाह, बहुविवाह और इन सबके पीछे जो कारण सक्रिय था वह था दहेज प्रथा। पैसे के लालच में माँ-बाप अपने बेटे की बोली लगाते थे और जहाँ ज्यादा पैसा मिलता था वहीं विवाह हो जाते थे चाहें लड़का-लड़की विचार, वय कुछ न मिलता हो बस पैसा मिलता हो। रिश्ते-नाते पैसों से होने लगे सब कुछ धन की तुला पर तोला जाने लगा। इन रूढ़ियों अंधविश्वासों ने भारतीय समाज को इतना बाँध दिया था कि इनकी उन्नति अवरुद्ध हो गयी थी इनका मस्तिष्क संकुचित हो गया था, ये निरन्तर भाग्यवादी होते जा रहे थे जिस देश के पूर्वज पुरुषार्थ के बल पर अपने गौरव का झण्डा पूरी दुनियाँ में फैलाये थे वहीं के ये वंशज गुलाम बनकर अपने भाग्य को कोसते हुये तेली के बैल की तरह जुते हुए समस्याओं और रूढ़ियों की बेड़ियों में जकड़े हुए जीवन के चारों ओर चक्कर लगा रहे थे। इन्हें इनके अधिकार के लिये ललकारने की आवश्यकता

1- छायावादोत्तर हिन्दी कविता-डा० रमाकान्त शर्मा-पृ०- 184 -देहरादून सन्-1970

थी इनमें जागृति और चेतना लाने की आवश्यकता थी। यही बात कार्ल मार्क्स ने अपने भारत सम्बन्धी लेख में कहा है परन्तु साथ ही हमें यह भी न भूलना चाहिए कि ये उपर से बड़ी सुन्दर और निर्दोष दिखने वाली ग्रामीण बस्तियाँ ही सदा पूरब की तानाशाहियों के दृढ़ आधार का लाभ करती आयी है, उन्होंने मनुष्य के मस्तिष्क को संकुचित से संकुचित सीमाओं में बांध रखा था, जिससे मनुष्य अंध-विश्वासों का निस्सहाय साधन और रूढ़ियों तथा पुराने-रीति-रिवाजों का गुलाम बन गया था और उसका सम्पूर्ण गौरव और गरिमा नष्ट हो गयी थी, उसकी ऐतिहासिक शैलियाँ जाती रही थीं।"[1]

देश में पूंजीवाद के विकास होने से धन ही सब कुछ हो गया। शराफत, कुलीनता गुण सभी धन की कसौटी पर कसे जाने लगे सब कुछ धन से खरीदा जाने लगा। धन लोभ ने मानव भावों को अपने अधीन कर लिया, जिसके पास पैसा है वह पूज्यनीय है, भले ही अन्दर से वह बगुला भगत ही क्यों न हो। औद्योगिक विकास की चरमोन्नति, स्वतंत्र बाजार तथा प्रतियोगिता की नीति के परिणाम स्वरूप पूंजी कम से कम हाथों में संचित होती चली गई और उसी अनुपात में निम्नवर्ग और मध्यवर्ग की संख्या में तीव्रता से वृद्धि होने लगी।" अतएव पूँजीवादी समाज अर्थरूपी दानव के पंजों में बुरी तरह जकड़ गया और उसके पंख अंततः गतिशील उड़ान भरने की स्थिति में नहीं रहे। परिणामतः जन-जीवन का विशेषतः सर्वहारा वर्ग का हृदय इस व्यवस्था के कृत्रिम और झूठे मूल्यों के प्रति विद्रोह कर उठा और वह इस शोषण प्रक्रिया पर आधारित वर्गिक समाज रचना को समूलतः परिवर्तित करने के लिये आतुर हो उठा। फलस्वरूप मार्क्सीय चिन्तनधारा का तीव्र गति से विकास होने लगा।"[2]

इस विकास में रूस की क्रान्ति ने भी भारतीय जनता को प्रेरित किया। सन् 1917 से 1936 के बीच रूस एक पिछड़े हुये खेतिहर राष्ट्र से एक महान औद्योगिक राष्ट्र के रूप में परिवर्तित हो गया। उसने स्वतंत्रता के अधिकार सुरक्षित कर दिये और देश में समानता, स्वतंत्रता एवं बन्धुत्व के सिद्धांत को व्यवहारिक रूप दिया। साम्राज्यवाद एवं फासिस्टवाद का खुलकर विरोध किया अतः समान परिस्थितियाँ होने से भारत का हृदय रूस की ओर आकर्षित हो गया इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। भारतवासी अपने

1- कार्ल मार्क्स- भारत सम्बन्धी लेख- प्रथम संस्करण-पृ0- 35

2- प्रगतिशील हिन्दी कविता-डा0दुर्गा प्रसाद झाला-पृ0-21 अभिनव प्रकाशन-सन् 1967

देश में भी स्वतंत्र आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचा बनाकर एक साम्यवादी देश का स्वप्न देखने लगे। डा० पट्टाभि सीतारमय्या ने भारत की इस स्थिति का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है-"आम जनता के उत्थान की दिशा में उस विशालकाय रूस ने जो लम्बे लम्बे कदम बढ़ाये थे और जो नई समाज व्यवस्था बनाई थी और जिससे रूस के सभी भाग समान रूप में प्रभावित थे, उसको देखकर, रूस और यूक्रेन से प्रेरणा लेकर यहाँ के लोगों में वैसा ही करने की तीव्र उत्कंठा थी।---हिन्दुस्तान विदेशी शासन से कुचला जा रहा था और वह शासन किसी राष्ट्रीय, निरंकुशतानाशाह के शासक से बेहतर नहीं था। रूस को देखकर यहाँ लोगों की कल्पनाएं जगतीं, आशाएं और आकांक्षाएं जागती और अपने पड़ोसी की एकांगी किन्तु आकर्षक कहानियों को सुनकर भावनायें सजीव होती।"[1]

समाजवादी चेतना भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अंतर्गत प्रसार पा रही थी। पहले कांग्रेस का उद्देश्य स्वतंत्रता की प्राप्ति मात्र था किन्तु धीरे-धीरे वह उग्र रूप धारण करती गई और राजनैतिक स्वतंत्रता के साथ आर्थिक, सामाजिक स्वतंत्रता का प्रश्न भी जुड़ गया। कांग्रेस ने राष्ट्रीय सम्पत्ति की उचित वृद्धि, देश की आर्थिक कृषि संबंधी उद्योग और व्यापार संबंधी हितों की ओर ध्यान देना शुरू किया और इनसभी क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुये ही अपने कार्यक्रमों कासंचालन किया। इसी संदर्भ में सन् 1934 में समाजवादी पार्टी का गठन हुआ जिसमें समाजवाद की व्याख्या की गई और आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता को स्पष्ट किया इस पार्टी को पंडित जवाहर लाल नेहरू का समर्थन भी प्राप्त था। 1936-20 दिसम्बर को समाजवादी सम्मेलन में जवाहरलाल नेहरू का संदेश था"---जैसा कि आप लोगों को मालूम है, मुझे हर समस्या के प्रति समाजवादी दृष्टिकोण में बड़ी भारी दिलचस्पी है। इस पद्धति के पीछे जो सिद्धांत है, उसे हमें समझना चाहिए। इससे हमारी दिमागी उलझन दूर होती है और हमारे लाभ की कुछ उपयोगिता हो जाती है।"[2]

इस प्रकार देश की हवा समाजवाद की ओर बह निकली कांग्रेस की छत्रछाया में ये फलने फूलने लगी। इससे प्रेरित हो अन्यपार्टियाँ भी समाजवादी उद्देश्यों एवं मूल्यों के लिये प्रयत्नरत हो गई, जिनमें साम्यवादी पार्टी, प्रजा समाजवादी पार्टी, तथा समाजवादी पार्टी प्रमुख थीं।

- -

1- कांग्रेस का इतिहास।दूसरा खण्ड-प्रथम बार। डा० पट्टाभि सीतारामय्या

2- कांग्रेस का इतिहास -खण्ड-1 -पृ0- 449

सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों के साथ-साथ साहित्य में भी ऐसी स्थिति आ गई थी कि कुछ परिवर्तन अवश्यंभावी हो गया था। छायावाद अपने पूर्ण विकास पर पहुँच चुकी थी और अब जो कुछ लिखा जा रहा था वह पिष्टपेषण ही रह गया था अतः साहित्य नवीनता की खोज में लग गया। इसी खोज में उसकी दृष्टि जनाकांक्षा पर पड़ी जो बड़ी ही कातर दृष्टि सेनिहार रहा था कि कोई उसकी युगों से मूकवाणी को प्रसार दे अतः साहित्य अपने समाज के युगानुरूप बह निकला और परिस्थितियों के अनुकूल साहित्य की रचना प्रारम्भ हो गयी अनेक कवि बाहर निकलकर आये और आम जनता का प्रतिनिधित्व करने लगे।

"ऐसा नहीं होता कि समाज के रथ में लेखक पीछे बँधा हुआ हो और उसके पीछे लीक पर घसिटता हुआ चलता हो। लेखक सारथी होता है जो लीक देखता हुआ साहित्य की बागडोर संभालते हुये उचित मार्ग पर ले चलता है।"[1] कवि का कल्पना जगत सामाजिक यथार्थ का ही प्रतिबिम्ब है। कवि अपने आपमें कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो ये बात इतनी विशेष नहीं है जितना कि इस बात का महत्व है कि वह जनशक्ति का वाहक है उसमें सृजनशीलता कितनी है और यह सृजनशीलता उसे समाज से मिलती है।

देश की सांस्कृतिक परिस्थितियों को देखते हुये साहित्य कैसे रचा जाना चाहिये इस ओर संकेत किया है मुंशी प्रेमचन्द ने -"साम्राज्य-विरोधी संघर्ष में साहित्य निष्क्रिय नहीं रह सकता, उसे पूर्ण स्वाधीनता और जनतंत्र की लड़ाई में जनता को जगाना चाहिए, राह दिखाना चाहिए उसे साधारण जनता की आकांक्षाओं का चित्रण करना चाहिए, उस जनता का जिसका शोषण केवल विदेशी साम्राज्यवाद ही नहीं बल्कि देशी पूँजीपति, राजे रजवाड़े, जमींदार, जागीरदार सब करते हैं।"[2]

साहित्य केवल मनोरंजन नहीं वह समाज को गति देता है, मानवीय उच्च भावनाओं का विकास करता है, मानवीय मूल्यों की रक्षा करता है, समाज का पथ-प्रदर्शन करता है, वह जो हो रहा है केवल उसे नहीं दिखाता क्या होना चाहिये ये भी बताता है वह समाज के रथ का सारथी है इसलिये साहित्य की अपनी उपयोगिता है। प्रत्येक युग

1- इतिहास और आलोचना- रामविलास शर्मा

2- प्रेमचन्द- हंस -जुलाई- 1949

में साहित्य की कुछ न कुछ उपयोगिता रही है और आज भी रहेगी। साहित्य की इस उपयोगिता को प्रेमचन्द ने भी स्वीकार किया है। "मुझे यह कहने में झिझक नहीं कि मैं और चीजों की तरह कला को भी उपयोगिता कीतुला पर तौलता हूँ।----फूलों को देखकर हमें इसलिये आनन्द होता है कि उनसे फलों की आशा होती है।"[1]

भारतीय जन एक ऐसे दौर से गुजर रहे थे जिसमें चारों तरफ निराशा और अंधकार था एक तो पराधीनता, दूसरी तरफ अपने समाज की अव्यवस्था और तीसरी तरफ साम्राज्यवाद का आतंक । पूँजीपतियों की गिरफ्त में भारत का बहुसंख्यक वर्ग आ चुका था और वह अपने अधिकारों के लिये जूझ रहा था वह किसानों से ज्यादा जागरुक था क्योंकि वह शहर में रहता था वहाँ के तौर-तरीकों से कुछ परिचित हो जाता था और नये खून में कुछ चिनगारी थी वह कुछ पाना चाहता था अतः आवश्यकता इस बात की थी कि उस समय का साहित्य इनमें स्फूर्ति जगाये इनको संगठित बने का प्रयास करे साहित्य का यही उद्देश्य होना चाहिये अतः डा0रामविलास शर्मा ने इस दायित्व को समझा और साहित्यकारों से जोर दिया-"सामयिक संघर्ष में आधुनिक साहित्य जितना ही तपेगा, उसका रूप उतना ही निखरेगा। इस संघर्ष से दूर रहकरयदि लेखक सोने की कलम से भी काल्पनिक साधनों के गीत लिखेगा तो उसकी कलम और साहित्य का मूल्य दो कौड़ी से ज्यादा नहीं होगा।"[2] आगे भी शर्मा जी कहते हैं-" हम टिकाउ और प्रभावशाली साहित्य की रचना तभी कर सकेंगे जब समाज की गतिविधि को पहचानेंगे, समाज के प्रगतिशील वर्ग से नाता जोड़ेंगे, प्रतिक्रियावादी शक्तियों का विरोध करेंगे और अपनी रचना द्वारा समाज की प्रगति में सहायक होंगे।"[3]

प्रगतिवाद को बाहर से ढोई हुई वस्तु नहीं माना जा सकता। मार्क्सवाद समाजवाद से प्रभावित होने के बावजूद भी भारतीय मिट्टी की ही उपज है, हिन्दी की गौरवशाली और प्रगतिशील साहित्यिक परंपरा का प्रारंभ से ही चलता आता हुआ क्रम विकास है।"[4] भारत की परिस्थितियाँ प्रगतिवादी साहित्य के लिये पृष्ठभूमि तैयार कर चुकी थी। चारोंतरफ उथल-पुथल मची हुई थी राजनैतिक परिस्थिति, आर्थिक परिस्थिति, सामाजिक और साहित्यिकपरिस्थिति सभी कुछ प्रगतिवाद के लिये अनुकूल वातावरण तैयार कर रही थी

1- प्रेमचन्द- कुछ विचार

2-डा0 रामविलास शर्मा-भाषा-संस्कृति और साहित्य-पृ0- 15।

3- वही, पृ0- 14।

4- नया हिन्दी काव्य-डा0 शिवकुमार मिश्र-पृ0-152-अनुसंधान प्रकाशन- 1965

राजनैतिक परिस्थितियाँ-

किसी भी देश का साहित्य अपने युग की परिस्थितियों से प्रभावित रहता है। जैसी देश की परिस्थितियाँ होती हैं वैसा ही साहित्य रचा जाता है अतः इस पर राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक सभी प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। प्रगतिवादी साहित्य की पृष्ठभूमि में भी राजनैतिक परतंत्रता एकमुख्य कारण बनी। प्रगतिवाद एक विरोध के रूप में उभरा अपने तत्कालीन शासन के प्रति आम जनता का विद्रोह ही था जो फूट पड़ा था। देश की आजादी के लिये क्रान्तियाँ हो रही थीं आन्दोलन हो रहे थे किन्तु वह चन्द मुट्ठी भर लोगों तक ही सीमित रह गये थे, किन्तु गाँधी जी के नेतृत्व के बाद इस आन्दोलन को आम जनता का योग मिला और विद्रोह का लावा चारों तरफ से फूट पड़ा जिसने अँग्रेजी सरकार की जड़े हिला दीं। अब भारतीयजनता मूक दर्शक बनी चुपचाप जुर्म नहीं सहती थी अब उसमें एक नयीचेतना एक नयी स्फूर्ति ने जन्म लिया था वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो चुकी थी। पूँजीपतियों के शोषण का शिकार मजदूर वर्ग एकजुट होकर क्रान्ति के लिये उठ खड़ा हुआ। नारियाँ भी इसमें पीछे न रहीं सदियों से कारा में बन्द नारी को राजनैतिक समानाधिकार प्राप्त हुआ और वह आजादी की लड़ाई में कूद पड़ी। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का सारा कार्य नारियों ने सम्पन्न किया।

गाँधी जी के नेतृत्व में 1919 का आन्दोलन समग्र जनता का आन्दोलन बन गया। 1921 में गाँधी जी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन आरंभ हुआ इस आँदोलन में नारियों तथा मजदूरों ने भी सक्रिय भागलिया। किन्तु चौराचौरी के हत्याकाण्ड से क्षुब्ध गाँधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया इससे राष्ट्रीय एकता बिखर गयी और मौका पाकर अँग्रेजी शासन ने भारत में एक ऐसाजहर का बीज बो दिया जो आज तक अपने विषैले फलों से लदा फल-फूल रहा है वह था साम्प्रदायिकता का घिनौना बीज। सरकार ने मुसलमानों को भड़काया कि यह आन्दोलन मुसलमानों के हित के लिये नहीं है वरन हिन्दुओं के हित के लिये है। फलतः मुस्लिम लीग राष्ट्रीय आन्दोलन से सदैव के लिये अलग हो गई। काँग्रेस में भी बिखराव हो गया। इस बिखराव का परिणाम यह निकला कि 1930 तक कोई भी व्यापक आन्दोलन न हो सका। 1930 से "सविनय अवज्ञा आन्दोलन"

रावी के तट पर आरंभ किया गया जिसमें पहली बार पूर्ण स्वराज्य की मांग की गई। इस आन्दोलन से ब्रिटिश की दमनचक्र की गति तेज हो गई। भारतीय जनता को मूर्ख बनाने के लिये लंदन में तीन बार "गोलमेज कांग्रेस भी की गई" जिसमें नये विधान की बात आई गई और पाखंड सा रचा गया। सरकार ने अछूतों को विशेष प्रतिनिधित्व देकर उनको हिन्दू जाति से पृथक कर दिया जिसके फलस्वरूप गांधी जी को एक बार फिर आंदोलन वापस लेना पड़ा और उन्होंने हरिजनों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।"[1]

सन् 1935 में प्रांतों को स्वायत्त शासन दिया गया अतः चुनाव तैयारियां प्रारम्भ हो गईं। इस समय तक समाजवादी प्रभाव पूर्णरूप से उभर रहा था। जवाहर लाल नेहरु समाजवादी विचारों से पूर्णरूप से प्रभावित एवं प्रेरित थे जिसे उन्होंने अनेक अवसरों पर व्यक्त किये -"चाहे समाजवादी सरकार की स्थापना सुदूर भविष्य की ही बात क्यों न हो और हममें से बहुत लोग उसे अपने जीवन में भले ही न देख पावें, लेकिन समाजवाद वर्तमान में वह प्रकाश है जो हमारे पथ को आलोकित करता है।"[2] 1938 में सुभाषचंद्र बोस की अध्यक्षता में कांग्रेस का 51 वां अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में सुभाषचन्द्र बोस ने कहा था-"राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के विषय में हमारी प्रमुख समस्या होगी देश की गरीबी दूर करना। इसके लिये यह आवश्यक होगा कि वर्तमान भूमिव्यवस्था में बुनियादी रद्दो-बदल की जाय। निस्संदेह जमींदारी प्रथा का नाश करना भी इसमें शामिल हो। किसानों के सारे कर्ज बेबाक कर देने होंगे और देहाती भाइयों के लिये सस्ते दर पर कर्ज पाने की व्यवस्था करनी होगी। वैज्ञानिक तरीकों से खेती करना होगा जिसमें भूमि की पैदावार बढ़े।"[3]

इस प्रकार के अधिवेशनों से समाजवादी विचारधारा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और इसने जनता में एक नया उत्साह जगाया। श्रमिकों और किसानों ने संगठित होकर अपने हितों की रक्षा के लिये आंदोलन किये, अपने अलग संगठन करने लगे उन्होंने लाल रंग का सोवियत झंडा अपनाया जिसमें हंसिया और हथौड़ा के चित्र अंकित थे। किसानों और कम्युनिस्टों में यह झंडा अधिकाधिक चल पड़ा।---किसानों के नेताओं ने देहातों में दूर-दूर तक

1- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास। चतुर्दश भाग। पृ0-6 नागरी प्रचारणी सभा काशी-1985
2- स्टीन मैन इन इंडिया -पृ0-41-हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास से उद्धृत
3- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास से उद्धृत पृ0-6

दौरे किए।-----इस प्रकार इस दल की शक्ति और संघटन में वृद्धि हुई और वह कांग्रेस के मुकाबले पर डट गया।" श्रमिकों को भी इस संगठन से उत्साह मिला और वह भी एक समाजवादी राज्य की स्थापना का स्वप्न देखने लगे। श्री ए०आर० देसाई ने लिखा "जब तत्कालीन भारतीय समाज के दूसरे वर्ग भारत को स्वतंत्र करने की कामना कर रहे थे, भारतीय श्रमिक स्वतंत्र समाजवादी भारत का स्वप्न देख रहे थे।"[1]

सन् 1939 में द्वितीय महायुद्ध आरंभ हो गया। ब्रिटिश के अधीन होने के कारण भारत को भी इस युद्ध में भाग लेना पड़ा जिसका कि जागरूक भारतीयों ने जमकर विरोध किया फलस्वरूप भारतीयनेताओं ने अपने मंत्री मंडलों से त्यागपत्र दे दिया। भारतीय जनता फासिज्म के विरुद्ध थी, वह रूस की विजय चाहती थी। लालसेना का अपूर्व साहस देखकर भारतीयों के मन में उसके प्रति आदर और सहानुभूति जाग गयी। इस समय लाल सेना की प्रशस्ति में कवियों ने अनेकरचनायें लिखीं।

दूसरी तरफ मुस्लिम लीग अंग्रेजों की चापलूसी में लगी थी अंग्रेजों ने भी इसका फायदा उठाकर इन्हें अपनी कूटनीति के जाल में फँसाया और भारतीय राष्ट्रीयता की शक्ति को क्षीण कर देने के लिये उसे उकसाया। भारत देश की जनता के मन में साम्राज्यवाद के प्रति घोर आक्रोश पनप चुका था अतः अंग्रेजी सरकार के कोई भी हथकण्डे उस पर असर नहीं डाल रहे थे जनता अब कोई समझौता नहीं चाहती थी अतएव 1942 में "भारत छोड़ो' का नारा लगा दिया गया। सभी नेताओं ने कह दिया कि अब देश को आजाद कराकर ही दम लेंगे या शहीद हो जायेंगे अतः यह समाचार आग की तरहफैला और दूसरे ही दिन से व्यापक रूप से गिरफ्तारियाँ प्रारंभ हो गयी। अनेक देशभक्त शहीद हो गये। अगस्त 1942 की यह क्रांति एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जो भारत की आजादी का आधार बनी डा० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं-" अगस्त की यह क्रांति आधुनिक भारत के इतिहास में एक नवीन युग आरंभ करती है। यह अत्याचार और शोषण के विरुद्ध एक जनक्रांति थी और इसकी तुलना फ्रांस के इतिहास में बस्तील के पतन अथवा रूस की अक्टूबर क्रांति से की जा सकती है।"[2]

1- द सोशियोलाजिकल बैक ग्राउंड आफ इंडियन नेशनलिज्म -पृ0-183 हिन्दी साहित्य के वृहत इतिहास से उद्धृत -पृ0-

2- माडर्न हिस्ट्री आव इंडिया, पृ0- 458-59, हिन्दी साहित्य के वृहत इतिहास-पृ0-11 से उद्धृत

इस प्रकार देश की राजनैतिक परिस्थितियों ने प्रगतिवादी साहित्य में योग दिया और मजदूरों,श्रमिकों और किसानों को एकजुट होकर क्रान्ति के लिये मजबूर किया इस प्रकार भारत की परिस्थितियों ने ही साहित्य की इस धारा को जन्म दिया न कि रूस की धारा थी यह,रूस का प्रभाव अवश्य पड़ा उसने इस बहती धारा की उर्मि में हलचल तो जरूर पैदा की किन्तु उसका उदगम रूस नहीं बल्कि भारत ही था।

आर्थिक परिस्थिति-

ब्रिटिश शासन से पूर्व भारत औद्योगिक रूप से पिछड़ा हुआ नहीं था। "प्रत्येक गांव में खाने के लिये भोजन उत्पन्न किया जाता था,यंत्रों को बनाया जाता था तथा घरेलू बर्तनों का निर्माण किया जाता था,उदाहरणार्थ नमक,मसाला तथा सुन्दर कपड़े। भारत की दशाएं अन्य देशों की ही भांति उस समय एकांकी एवं आत्म निर्भर के रूप में निर्मित की गई थीं।"[1] 20वीं शताब्दी तक भारत का उद्योग अपने चरमोत्कर्ष पर था स्त्रियाँ भी परिवार की आय में वृद्धि करने में सहयोग देती थीं, किन्तु ब्रिटिश शासन के दौरान हस्तकला का शनैः शनैः ह्रास होने लगा तथा दूसरी ओर जनसंख्या तेजी से बढ़ने लगी जिसके फलस्वरूप देश के कुटीर एवं लघु स्तर उद्योग निरंतर बढ़ते हुए भूमिहीन वर्ग को पर्याप्त एवं नियमित रोजगार प्रदान करने में असफल रहे।"[2]

ब्रिटिश शासन ने आर्थिक रूप से भारत की कमर तोड़ दी भारत के सभी लघु धंधे बन्द हो गये।भारत से कच्चामाल विदेशों को भेजा जाने लगा और वहाँ से माल तैयार कराकर चौगुने दामों में बेचा जानेलगा। भारत का धन विदेशों को ढुलने लगा देश की जनता एक एक रोटी को तरसने लगी।साम्राज्यवाद के कारण किसानों एवं मजदूरों की स्थिति दिन-प्रतिदिन गिरती गयी नये-नये करों के बोझ से निम्नवर्ग एवं मध्यवर्ग पिसता रहा किसान एवं मजदूर को लगान चुकाने के लिये महाजन से ऋण लेने के लिये बाध्य होना पड़ा। फलस्वरूप उनका जीवन ऋण चुकाने में खत्म होने लगाऔर ऋण न चुका पाने के कारण वह अपने खेत से बेदखल किया जाने लगा फलतः किसान खेतिहर मजदूर बना,शहरकी ओर भी भागा और वहाँ आकर पूँजीवादी व्यवस्था की कराल बाहों में समा गया और मशीनों

1- श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा- के0पी0 भटनागर-पृ0- 3

2- वही, हिन्दुस्तान बुक हाउस-कानपुर

दुनियाँ में अपना अस्तित्व भी गँवा बैठा।

मजदूरों और किसानों का शोषण कई तरह से आरंभ हो गया एक ओर किसान का शोषणमहाजन और जमींदार वर्ग करता था, इन जमींदारों के शोषण की कोई सीमा न थीउन पर सरकार ने किसी भी प्रकार का व्यवहारिकप्रतिबंध नहीं लगा रखा था। जमींदार किसानों के साथ पशुओं का सा व्यवहार करते थे किसान की अपनी भूमि पर से भी उसका स्वत्व प्राय: समाप्त हो चला था वह दिन भर मेहनत करके भी पेट भर भोजन नहीं पाता था। चारों तरफ से परेशान होकर कितना ही किसान वर्ग श्रमिक बन गया और शहर की ओर आया किन्तु यहाँ भी वही कहानी यहाँ उसका शोषण करने केलिये पूँजीपति वर्ग तैयार खड़ा था इस वर्ग ने अपने स्वार्थ के लिये सुनियोजित ढंग से शोषण का एक जाल सा मजदूरों के चारों ओर बिछा दिया और उस जाल में फँसकर संपूर्ण मजदूर वर्ग असहाय हो तड़फड़ाने लगा।

मध्यवर्ग, इस वर्ग का जन्मदाता भी ब्रिटिशशासन ही था।अंग्रेजों शासन चलाने के लिये कुछ पढ़े-लिखे लिपिकों की आवश्यकता थी अत: कुछ लोगों को इस स्तर की पढ़ाई पढ़ाकर अंग्रेजों ने अपना काम निकालना शुरू किया। कुछ पढ़ लिख जाने से और सरकारी नौकरी करने से ये लोग मजदूर और किसान की श्रेणी में नहीं आते थे उससे कुछ उपर थे अत: मध्यमवर्ग एकनया वर्ग बन गया किन्तु इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी क्योंकि इनमें अपने वंश को मिथ्या धारणा होती है ये समाजमें अपने को प्रतिष्ठित करने के लिये सारा जीवन तनावग्रस्त चला करते हैं। सबसे अधिक ये वर्ग बौद्धिक वर्ग होता था अत: अपने अधिकारों के प्रतिज्यादा सतर्क रहता था इसलिये इस वर्ग का पूरा जीवन संघर्ष करते बीतता था।शोषण का शिकार और आर्थिक विपन्नता का शिकार मध्यवर्ग भी बना है कुछ मानों में मध्यवर्ग की अवस्था ज्यादा दयनीय थी। न वह उच्च वर्ग का बनने का मोह छोड़ पाता था न शोषण स्वीकार कर पाता था और शैक्षिक एवं जागरूक होने के कारण अपने अधिकारों का हनन होते भीनहीं देख पाता था। अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था, उद्योगों के विकास एवं अंग्रेजी पद्धति के कार्यालयों के विकास ने इस मध्यवर्ग को जन्मदिया जो कि बौद्धिक वर्ग था।देशकी गिरती हुई आर्थिक स्थिति और द्वितीय महायुद्ध के बादमंहगाई एवं बेकारी ने इस मध्यवर्ग की कमर

तोड़ दी। बेकारी की समस्या एक विकराल समस्या बन गई जो समाज के लिये एक भयंकर रोग साबित हुई "बेकारी के रोग ने मध्यवर्गीय नवयुवकों के मानसिक ढाँचे में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। अपने स्वप्नों की असफलताओं ने उन्हें पराजयवादी निराशावादी तथा नियतिवादी, यहाँ तक कि बिल्कुल अन्तर्मुखी बना दिया। वे अनेकप्रकार की मानसिक बीमारियों से ग्रस्त हो गये।"[1] बेकारी ने ही अनेक सामाजिक अपराधों को भी जन्म दिया जिसमें नवयुवक स्वयं से निराश हो हत्यारे, लुटेरे बन गये, नशीलीवस्तुओं का सेवन कर अपना समय इधर-उधर आवारा गर्दी कर व्यतीत करने लगे।

ब्रिटिश काल औद्योगिक विकास का युग था किन्तु सभी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ अंग्रेजों के ही हाथों में थीं भारतीय पूँजीपतियों को इससे कोई खास लाभ नहीं होता था किन्तु प्रथम विश्वयुद्ध ने उद्योगपतियों को लाभार्जन का एक सुनहरा अवसर दिया और भारतीय पूँजीपतियों ने उद्योगों को अपने हाथों में कर लिया। चाय बागान जूट की मिलें आदि जो पहले अंग्रेजी उद्योगपतियों के अधिकार में थीं अब भारतीय पूँजीपतियों के हाथ में आ गईं। "दैनिक उपयोग की वस्तुओं कपड़ा, नमक आदि के मूल्य इतने चढ़ गये थे कि किसान बिना कर्ज लिए अपना जीवन आवश्यकतानुसार उचित स्तर पर नहीं चला पाता था। 1929 में अंतर्राष्ट्रीय मंदी हुई थी और धान्यानों के मूल्य गिर गए थे। इस प्रकार किसान पर दुहरी मार पड़ी। एक ओर उसकी आय कम हो गई और दूसरी ओर अन्य वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाने के कारण उसकी क्रयशक्ति का ह्रास हो गया। अतएव उसे ब्याज की किसी भी दर पर महाजन से ऋण लेना ही पड़ता था। सरकार की ओर से महाजनवर्ग पर कोई कैद न थी। अतएव धीरे-धीरे वह भूमि का स्वामी बनता गया और उसकी स्थिति जमींदार से भी अधिक सम्पन्न और शक्तिशाली हो गई।"[2]

द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय औद्योगिक विकास हुआ। मित्र राष्ट्रों की सहायता के लिये भारत में औद्योगिक उत्पादन कराना ब्रिटिश के

1- नया हिन्दी काव्य-डा0शिवकुमार मिश्र-पृ0-29 -अनुसंधान प्रकाशन-1965

2- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास-सम्पादक भाटिया-चतुर्दश भाग-पृ0-21 नागरी प्रचारिणी सभा काशी-सन् 1985

लिये आवश्यक हो गया अतः युद्ध सामग्री की माँग बढ़ गयी। भारतीय पूंजीपति इस माँग को पूरा करने में जुटगये और समय का लाभ उठाकर खूब मुनाफा कमाया काम तो बढ़ा किन्तु मजदूरी नहीं बढ़ी । रात दिन मजदूरों से काम करवाया गया और वेतन कम दिया गया और जैसे ही विश्वयुद्ध बन्द हुआ युद्ध सामग्री की माँग भी कम हो गयी परिणाम निकला मजदूरों की संख्या में कमी । उत्पादन कम कर दिया गया मजदूरों के लिये ये और भी बुरा हुआ मजदूरों में बेकारी बढ़ गयी वह पेट भर अन्न को तरसने लगे सारी आर्थिक शक्ति पूँजीपतियों में सिमट कर रह गयी।

आखिर कब तक देश की एक तिहाई जनता इस आर्थिक विभीषिका को सहन करती जन आक्रोश में सुलग रहा था और इस आग में घी का काम किया रूस की क्रान्ति ने मजदूर वर्ग में एक नई स्फूर्ति का संचार किया, परिणाम स्वरूप शोषण और उत्पीड़न के बीच द्वन्द्व शुरु हुआ। मजदूरों में वर्ग संघर्ष और विद्रोह का समावेश हुआ। इस प्रकार आर्थिक पृष्ठभूमि भी प्रगतिवादी साहित्य के लिये तैयार थी ।

सामाजिक पृष्ठभूमि-

जैसे-जैसे समाज में उद्योग और व्यापार बढ़ता गया वैसे-वैसे समाज की परिस्थितियाँ और व्यक्ति की आवश्यकतायें बदलने लगी। अब पहले की मान्यतायें, परम्परायें प्रगति के मार्ग में रोड़े अटकाने लगीं अतः उनका बदलना अनिवार्य हो गया। लोग नये व्यापार और उद्योग की ओर आकर्षित होने लगे और अपने अपने परम्परागत धन्धों को छोड़कर व्यापार करने की सोचने लगे। शिक्षा के विस्तार, रेल और यातायात के विकास से एक दूसरे के संपर्क में नजदीक से आने के कारण व्यक्ति अधिक जागरूक होने लगे, एक दूसरे के सम्पर्क में आने से लोगों में एक चेतनता का विकास होने लगा वह अपनी स्थिति को दूसरे की स्थिति से तोलने लगा। अधिक पैसा कमाने के लिये बाहर जाकर अकेले रहना अधिक सुविधाजनक प्रतीत हुआ अतः वैयक्तिकता की भावना बढ़ने लगी। भारत की कौटम्बिक परम्परा अब शिथिल होने लगी। नये पढ़े-लिखे युवकों को घर का अनुशासित जीवन उबाऊ लगने लगा।

विज्ञान और बुद्धिवाद के प्रभाव से धार्मिक प्राचीन परम्पराओं की जड़े हिलने लगीं। लोग उसे बुद्धि और विवेक की कसौटी पर कसने लगे। "हिन्दू धर्म में ऐसे तत्व पहले से ही विद्यमान थे, जिनके कारण वह युगानुरूप परिवर्तन को अपनाने की शक्ति और सामर्थ्य से युक्त था। वह कभी भी जड़ और अगतिशील नहीं रहा।"[1]

"धर्म अवश्य ही अध्यात्म प्रधान देशों में समाज व्यवस्था का एक निर्धारक तत्व होता है किंतु जब दैनिक जीवन की नितांत आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पड़ने लगती है तब मनुष्य का ध्यान स्वाभाविक रूप से जीविका पर केन्द्रित हो जाता है और इसी स्थिति में आर्थिक सुविधा प्राचीन व्यवस्था के विघटन और नवीन के निर्माण का आधार बन जाती है। भारतीय सामाजिक जीवन में यह विघटन और नये वर्गों का निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारंभ है जो अब तक चल रहा है। उद्योग प्रधान आर्थिक प्रणाली इस संक्रमण का मूलभूत कारण है।"[2]

नवीन औद्योगिक प्रणाली के विकास से श्रम विभाजन की समस्या ने जटिल रूप धारण किया, इस नव युग में कोई भी वर्ग अपने निश्चित परम्परित पेशे को अपनाने में रुचि नहीं रखता था और न ऐसा कर जीवन व्यतीत कर पाना उसके लिये सुलभ ही रह गया था। परिणाम भयानक निकला छोटे-छोटे उद्योग धन्धे नष्ट हो गये उसकी जगह बड़े-बड़े उद्योगों ने ले ली और व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिए नगरों की ओर भागने लगा और तरह तरह के नये पेशों के जन्म से व्यक्ति उसे सीखने के लिए विवश हो उठा अतः भारत की प्राचीन जीवन पद्धति में उथल-पुथल पैदा हो गयी। जीविकोपार्जन के लिये विभिन्न स्थानों से भिन्न-भिन्न धर्मों के लिये एक साथ रहने लगे जिसमें उनकी आर्थिक समस्यायें समान थीं लक्ष्य भी समान था अतः वह अपने वैयक्तिक धर्म भावना को भूलकर एक वर्ग के रूप में उभरने लगे। नगरों में पाश्चात्य के प्रभाव से अनेक होटल वगैरह खुले जिसमें सभी तरह के लोग साथ बैठकर खाने-पीने लगे अतः छुआ-छूत जाँति-पाँति के बन्धन ढीले पड़ने लगे जिसे समाजसुधार संबंधी आन्दोलनों ने और भी योग दिया किन्तु एक तरफ जातिभेद के बंधन ढीले तो अवश्य हुए पर दूसरी ओर इस आदर्श को प्रतिगामिता की ओर खींचने वाली

- -

1- आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- कृष्ण विहारी मिश्र
पृ0-80, आर्य बुक डिपो दिल्ली- 1972

2- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास- चतुर्दश भाग खण्ड-1, पृ0- 24

औद्योगिक प्रणाली भी साथ-साथ चल रही थी, जिसने जातिभेद को पूरी तरह मिटने नहीं दिया। उपजातियों के बन्धन ढीले हुए तो बड़ी जातियों की श्रृंखलाएं और ज्यादा दृढ़ हो गयीं। डा० राधा कमल मुखर्जी लिखते हैं कि "जातिगत भावना नवीन प्रतिनिधिक शासनव्यवस्था, पेशेवर संघठन तथा ट्रेड यूनियन जैसी संस्थाओं में चुनाव एजेंट जैसा काम करती है।"[1] नवीन औद्योगिक विकास का प्रभाव संयुक्त परिवार पर पड़ा। नव युवकों को अपने परम्परागत पेशे में रुचि नहीं रह गयी और जब वह रोजी-रोटी कमाने दूर-दूर जाकर बसने लगे तो धीरे धीरे अपने परिवार को भी वहीं बुलाकर रखने लगे, अपने परिवारसे तात्पर्य पत्नी और बच्चे या हद से हद एक बहन या भाई या माँ भी साथ रहती थी इस प्रकार संयुक्त परिवार विघटित होने लगे।

संयुक्त परिवार के विघटन का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव नारीजीवन पर पड़ा। गांधी जी का अहिंसात्मक आन्दोलन नारी की प्रकृति के अनुकूल था अतः नारी ने खुलकर राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया। समाज के नवजागरण के साथ ही नारी शिक्षा और नारी स्वतंत्रता आन्दोलन भी चल निकला । स्त्री जो सदियों से एक कारा में बन्द थी सार्वजनिक क्षेत्र में निकली और जन सभाओं में जुलूसों में बढ़-चढ़कर भाग लेने लगी। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का मुख्य मोर्चा स्त्री ने सम्भाला। इस प्रकार राजनीतिक समानाधिकार मिलने से स्त्री को बाहर निकलने का एक सहारा मिला। समाज सुधारक महापुरुषों ने नारियों की दुर्दशा की ओर ध्यान दिया और उनको इस नारकीय जीवन से उबरने के लिये अनेक प्रयत्न किये। लाला लाजपत राय ने कहा -" स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है। क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है। चाहे भूतकाल हो या भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियों पर निर्भर है।----उन स्त्रियों से आप निश्चय ही वास्तविक नर पैदा करने की आशा नहीं कर सकते, जो कि गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई है।"[2] महात्मा गांधी ने भी नारी के पुरुषों के समान अधिकारों पर बल देते हुए कहा-" स्त्रियां पुरुष की सहगामिनी

- -

1- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास-चतुर्दश भाग -खण्ड-1, पृ0-24

2- आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना-शैल कुमारी -आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- कृष्ण बिहारी मिश्र-पृ0- 81 -82 पर उदधृत। आर्य बुक डिपो दिल्ली- 1972

हैं। वह बुद्धि में पुरुष से तुच्छ नहीं हैं। उसे पुरुष के छोटे-छोटे कामों में भाग लेने का अधिकार है। उसे पुरुष की भाँति स्वाधीनता और स्वतंत्रता पाने का अधिकार है।"[1] लेकिन भारतीय पुरुष अब भी उसे आर्थिक स्तर पर समानाधिकार नहीं देना चाहता था। अतः 1931 में "हिन्दू विमेन प्रापर्टी बिल" पास नहीं हो सका। लेकिनऔद्योगिक विकास के साथ-साथ शिक्षा का प्रसार होने से नारी में आर्थिक स्वाधीनता का भाव प्रबल हुआ और वह पुरुष के ही समान सामाजिक व्यवस्था में एक शक्तिशाली आधार के रूप में कर्मक्षेत्र में उतर पड़ी और यहीं से एक संघर्ष की शुरुआत हो गयी। अब नारी पहले जैसी नहीं रह गई जो चुपचाप सब कुछ सहती हुई उसे अपना भाग्य समझकर एक अबला की तरह घुट घुट कर रहे, अब वह प्राचीन मान्यताओं एवं रूढ़ियों को तोड़ देना चाहती थी वहअपने कर्तव्यों को अच्छी तरह पहचान गई थी और अपने अधिकारों के प्रतिसचेष्ट हो गई थी। नारी की यह स्वतंत्रता पुरुषका पुरुषत्व भला कैसे सहसकता था उसका स्वाभिमान ये कभी नहीं सह सकता था कि उसकी पत्नी उसके बराबर या उससे ज्यादा कमा कर लाये या बाहर निकलकर तरह तरह के लोगों से मिले और बात करे फलतः एक सामाजिक विघटन की समस्या ने जन्म लिया। दाम्पत्य संबंधों में विच्छिन्नता आ गयी एक कुण्ठा और निराशा ने परिवारों को खोखला करना शुरू कर दिया। तत्कालीन साहित्य इसी संघर्ष का दर्पण है।

अंग्रेजों की नीति ने एक अन्य वर्ग को जन्म दियाजो था मध्यवर्ग। इस वर्ग की अपनी समस्यायें थीं शिक्षा का प्रसार होने से ये वर्ग अधिक जागरूक हुआअतः नारी स्वतंत्रता की बात भी इस वर्ग के लोगों में ज्यादा बढ़ी। स्त्री शिक्षित हो जाने से अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट हो गयी फिर उसके लिये उपयुक्त वर ढूंढना बहुत मुश्किल हो गया दहेज प्रथा ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया अतः याती मुँह माँगा दहेज दो अन्यथा

- -

1- आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी भावना-शैलकुमारी
आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य से उद्धृत लेखक-कृष्ण बिहारी मिश्र-पृ0-81-82 प्रकाशन आर्य बुक डिपो दिल्ली-सन् 1972

लड़की को किसी बूढ़े खूसट या कि गंवार जाहिल के पल्ले बांध दो इस प्रकार विवाह भी मध्यमवर्ग में एक समस्या बन गया। अभी समाज इतना ज्यादा स्वतंत्र नहीं था कि वह लड़की को विवाह के लिये अपनी इच्छा पर छोड़ दे कि वह जैसा चाहे वैसा विवाह करे या न इच्छा हो तो कुआँरी रहे।मगर स्त्री अब जागरुक हो जाने के कारण अपने मनपसन्द वर से या तो विवाह करना चाहती थी या फिर अविवाहित रहना मगर समाज को यह मंजूर न था अतः इधर भी एक संघर्ष ने जन्म लिया।

इस प्रकार सामाजिक पृष्ठभूमि प्रगतिवाद के स्वागत के लिये तैयार खड़ी थी वह इसीप्रकार के साहित्य में अपने लिये राह ढूंढ़ रही थी अतः साहित्यकारों ने युग की मांग को समझा और इन समस्याओं से जूझती नारी को रास्ता सुझाने का प्रयास किया ।

भारतीय समाज का नवीन जागरण साम्प्रदायिकता तथा वर्गवादी खंडित विचारधारा के ऊपर व्यापकता की भावभूमि पर हुआ।धार्मिक रुढ़ियों और आर्थिक विषमता की अलंघ्य दीवारों में अलग अलग बंटे हुए भारतीय समाज की आत्मा और शरीर दुर्बल बन चुका था। नये विकास की दृष्टि एक सबल स्वस्थ समाज की व्यवस्था की ओर आकर्षित हुई।"[1]

साहित्यिक पृष्ठभूमि-

संस्कृति मूल्यों की अंतश्चेतना है जिसकी बाह्य चारितार्थता सभ्यता के नाम से अभिहित होती है।"[2] साहित्य अपने युग का दर्पण होता है अतः जैसी परिस्थितियां होती हैं साहित्य की रचना उसी के अनुसार होती है। प्रगतिवाद के आगमन के पूर्व साहित्य में छायावाद की धारा अपने पूर्ण यौवन के साथ बह रही थी।छायावाद के अनेक

1- छायावादोत्तर हिन्दी कविता- डा० रमाकान्त शर्मा-पृ०- 209
साहित्य सदन-देहरादून-सन् 1970

2- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास-चतुर्दश भाग-पृ०- 32
नागरी प्रचारिणी सभा-काशी-सन् 1985

काव इस धारा को सजा संवार रहे थे। किन्तु तत्कालीन युग की मांग को छायावाद पूरा नहीं कर पा रहा था उसकी धारा मद्धिम पड़ने लगी थी।छायावाद के कुछ कवियों ने ही उसका विरोध कर नवीन परिस्थितियों के अनुसार लिखना प्रारम्भ कर दिया जैसे पन्त और निराला,और कुछ कवियों ने मौन साध लिया जैसे महादेवी वर्मा ।

किन्तु छायावाद अपने आप में अनन्त महत्वपूर्ण रचनाओं से भरी एक पालित पुष्पित विराट वृक्ष के समान था । इस धारा ने साहित्य कोश्रीवृद्धि की अतः इसका अपना स्थान था, धीरे-धीरे जैसे ये अपने पूर्ण विकास पर पहुँचती गई इसमें अनेक दोष आ गये वयक्तिकता अपने चरम पर पहुँच गयी और कविता कल्पना के पंख लगाकर असीम आसमान में उड़ने लगी तत्कालीन समाज जो यथार्थता से जूझ रहा था जिसमें किसी व्यक्ति विशेष का कोई मूल्य नहीं समस्त मानव सृष्टि समस्याओं से जूझ रही थी, ऐसी कविता की नहीं, यथार्थमयी कविता की आवश्यकता थी। अतः छायावाद के इन दोषों ने प्रगतिवाद का मार्ग प्रशस्त कर दिया ।

उस समय की साहित्यिक परिस्थिति को समझने के लिये छायावाद की संक्षिप्त विशेषताओं पर प्रकाश आवश्यक है जिसने प्रगतिवाद का मार्ग प्रशस्त किया और उसके लिए अनुकूल साहित्यिक वातावरण तैयार कर दिया -

छायावादी काव्य धारा का विकास और ह्रास-

काव्य के क्षेत्र में नये मानदण्ड लेकर चलने वाला छायावाद अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। छायावाद ने द्विवेदी कालीन इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध कल्पना एवं सौन्दर्य की सृष्टि की। जो कविता मर्यादा के बन्धनों में जकड़ी तापसी का जीवन व्यतीत कर रही थी उसके बन्धन खोलकर उसे स्वच्छन्द वातावरण में विचरण करने के लिये कवि की आत्मा चीत्कार कर उठी। छायावाद ने मानवतावादी दृष्टिकोण की स्थापना की। "छायावाद सुधार न लेकर सज्जा लेकर चला,उपदेश न लेकर आद्रता लेकर बढ़ा।विश्व करुणा को इसने जन्म दिया और जीवन को संवेदना,भावुकता तथा छायावाद चित्रों से रंजित किया।"[1]

1- हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद एवं प्रवर्तक- विश्म्भरनाथ उपाध्याय- पृ0-55

छन्द, भाषा-शैली, संगीत, माधुर्य-कल्पना प्रत्येक दृष्टि से अपने क्रांति का एक स्तर बनाया, सौन्दर्य की अनुपम मुद्राओं के चित्रण से उसने हमारा काव्य उपवन, जो झाड़-झंखाड़ों व वासना के गन्दे नालों से दूषित था, सजाया, यह सजावट कोरी सजावट न थी। उसने एक ओर मानवता के सौरभ से दिगंत को सुरभित किया जीव मात्र के लिये करुणा का वरदान किया। कण-कण में एक ही सत्ता का दर्शन कर हमें विश्व मानव-वाद की ओर बढ़ाया और साम्प्रदायिक तत्वों को दबाया।[1]

छायावादी काव्य की कुछ अपनी विशेषतायें थी इसने रीतिकाल की घोर श्रृंगारिकता के स्थान पर शुद्ध रहस्य के पर्दे में छिपाकर एक मर्यादा के अन्दर बाँधकर श्रृंगारिकता का चित्रण किया। प्रसाद आदि छायावादी कवियों ने तो विलासिता का निषेध किया है और भारतीय सामाजिक मर्यादाओं में बधे आध्यात्मिक प्रेम को महत्व दिया है। इनका प्रेम अधिकतर रहस्यवादी होता है। उनका प्रेम लौकिक न होकर अलौकिक होता है। छायावादी कवियों ने द्विवेदी कालीन स्थूलता को सूक्ष्मता दी।

छायावाद की विशेषतायें

1- <u>वैयक्तिता</u>-

छायावादी कवि अपने अश्रु-हास को काव्यमय अभिव्यक्ति देता है, हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठता है। अपने स्व की व्यंजना छायावाद की प्रमुख विशेषता रही है।[2] वर्तमान युग के प्रारंभ तथा विकास में कवि का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण प्रधान है। युग-युग से भारतीय कवि पर व्यक्तिगत संवेदनाओं को व्यक्त करने के क्षेत्र में प्रतिबन्ध रहा है, सामाजीकृत तथा साधारणीकृत की शर्तें उसके सामने रही थीं। आधुनिक युग के पूर्वार्द्ध में ही ये बन्धन ढीले पड़ने लगे थे, सीमाएँ मिटने लगी थीं। पर वर्तमान युग के कवि ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता का मुक्त उद्घोष किया।[3]

1- हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद एवं प्रवर्तक-विश्वम्भरनाथ उपाध्याय- पृ0-60
2- वही, पृ0-47
3- डा0 रघुवंश-हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ ।भूमिका। पृ0-1

अत्यधिक अन्तर्मुखी होने के कारण इन कवियों की रचनाओं में रहस्य भावों का बोलबाला है। ईश्वर के स्थान पर मानव के प्रति इनमें अनुराग है। मूलतः ये कवि मानवतावादी हैं, सांसारिक जीवन के प्रति इनमें आसक्ति है, किन्तु आत्मिक विकास द्वारा यह एक सुन्दर समाज का निर्माण करते हैं।

मानवता का नवीन परिवेश-

ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते हुये भी मानव की नास्तिक और आध्यात्मिक सत्ता को स्वीकार मानवतावाद की स्थापना इस युग की अनुपम देन है। मनुष्य गुणों और दुर्बलताओं का पुतला है उसमें कुछ गुण हैं तो कुछ मानवीय दुर्बलतायें भी हैं इस बात को ये कवि स्वीकार करते हैं। वह इस संसार में मानव का जय घोष करते हैं।

प्रकृति का अद्भुत चित्रण-

शुक्ल जी के विचार से प्रकृति परिवेश में जीवन जीते हुए उसके साहचर्य का सुख मनुष्य को मिलता है। स्वभाव से ही मनुष्य प्रकृति की निकटता से आनन्द का अनुभव करता है। "छायावादी कवियों ने जीवन-सापेक्ष दृष्टि के सहारे प्रकृति-सौन्दर्य का चित्रण किया है। प्रकृति के जीवन चक्र और मानव के जीवन चक्र में साम्यता है। छायावादी कवियों ने प्रकृति सौन्दर्य का मानवीकरण करके प्रकृति को एक विशाल क्षितिज प्रदान किया। प्रकृति को कवि जिज्ञासा और आत्मीयता के सहारे देखता है। प्रकृति चित्रण के सहारे छायावादी कवि जीवन का दर्शन, जीवन रहस्य की बातें, मनुष्य के आन्तरिक सुख-दुख बड़े ही आकर्षक ढंग से चित्रित करता है। हृदय के भावों को गहराई से व्यक्त करने के लिये कवि ने प्रकृति का सहारा लिया है मनुष्य के भावों की प्राकृतिक दशा से तादात्म्य करवाया है। छायावादी कवियों को प्रकृति जड़ नहीं दृष्टिगत होती वह उसमें चेतना का आरोप करता है।

वह ऊषा को नवेली दुल्हन की तरह देखता है-

घूंघट खोल ऊषा ने झांका और फिर
अरुण उपांगों से देखा, कुछ हंस पड़ी,
लगी टहलने प्राची प्रांगण में तभी।[1]

जल की धारा में नौका विहार करते समय कवि को उसमें द्वन्द्व दर्शन का पुट मिल जाता है वह उन लहरों में ही जीवन का शाश्वत क्रम खोज लेता है।

नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण-

रीतिकाल में नारी का विलास मय वर्णन होता था उसे मात्र भोग्या समझा जाता था नारी-स्थूल नख-शिख वर्णन रीतिकाल का प्रतिपाद्य विषय था, उस काल में नारी के शारीरिक सौन्दर्य पर ध्यान आकर्षित किया जाता था परन्तु छायावाद में आकर नारी के प्रति कवियों का दृष्टिकोण बदला उसने उसमें मात्र श्रृंगार के दर्शन न करके उसकी सम्पूर्ण आत्मा को पहचाना इन कवियों ने नारी के अन्दर की ममता, त्याग क्षमा उसका सामाजिक, क्रान्तिकारी रूप भी दिखाया। इस काल में नारी को पवित्र और देवी का दर्जा दिया गया उसे श्रद्धा की वस्तु समझा। इस काल की रचनाओं में नारी का सर्वांगीण विकास हुआ है वह पुरुष की छायामात्र नहीं है बल्कि अपने प्रभाव से पुरुष पात्रों को एक नयी राह दिखायी है, उसके व्यक्तित्व को सजाया-संवारा है। निराला की तुलसीदास की रत्नावली, प्रसाद की "कामायनी" की श्रद्धा और इड़ा महान सामाजिक व्यक्तित्व को अपने आप में संजोये हुये हैं और भटके हुए निराश मनु को शक्तिप्रदान करने वाली प्रेरणा देने वाली, कर्मशील बनाने वाली, यही नारी पात्र हैं। प्रसाद के नाटकों में भी अनेक ऐसे नारीपात्र हैं जिनकी करुणा, क्षमा वीरता और महान प्रेम ने जीवन को विकास और आनन्द प्रदान किया है।

आध्यात्मिक दृष्टि-

आध्यात्मिक जीवन की सबसे बड़ी दुर्घटना है-इच्छा, क्रिया और ज्ञान की विशृंखलता। मानव चेतना के इतिहास में जब-जब इन तीनों में असामंजस्य हुआ है, जीवन का

1- जयशंकर प्रसाद- झरना पावस प्रभात-पृ0-11

विकास अवरुद्ध हो गया है। संसार में अराजकता और अशांति फैल गई आज के भौतिक जीवन का भी सबसे बड़ा अभिशाप यही है कि हमारे धर्म और संस्कृति की दिशा एक है, राजनीति की दूसरी और विज्ञान की तीसरी। क्रमशः भाव, क्रिया और ज्ञान के ये प्रतिरूप एक दूसरे, से असम्बद्ध हैं। इसका परिणाम है -वर्तमान अशांति जो वास्तविक युद्ध अथवा शीत-युद्ध आदि के रूप में व्यक्त हो रही है। इस भीषण समस्या का समाधान है मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए जीवन की इन तीनों प्रवृत्तियों में एकात्मता स्थापित करना। ज्यों ही मानव कल्याण को लक्ष्य बनाकर हमारी संस्कृति हमारी राजनीति और हमारा विकास एकान्वित हो जायेंगे, तुरन्त ही इस युग की विषम समस्या का समाधान हो जायेगा । इस प्रकार कामायनी में वर्तमान के आधार-फलक पर प्रसाद जी ने मानव की उस मूल समस्या का चिरन्तन समाधान प्रस्तुत किया है, जो सामाजिक होकर भी शाश्वत है।"[1]

इन कवियों ने ईश्वर की सत्ता में आस्था रखतेहुये भी मानव के अस्तित्व की अवेहलना नहीं की वह अध्यात्म को मानव के विकास में सहायक मानता है लेकिन व्यक्ति का उसमें लय होकर अपने अस्तित्व का लोप उसे मंजूर नहीं वह व्यक्ति की सत्ता को भी स्वीकार करता है। भक्तिकाल की तरह यह संसार को नश्वर नहीं मानते और न ही यहमानते हैं कि जीव को केवल उस लोक के लिये ही कर्म करना चाहिये, केवल ईश्वर में ही ध्यान लगाना चाहिये। इस "वाद" में ईश्वर की आराधना करते हुये भौतिक जीवन को स्वीकार करते हुये स्वस्थ मानवता का विकास उचित समझते हैं जिसमें हर जगह समता हो, हृदय और बुद्धि का समन्वय करके मनुष्य उस ईश्वर की बनाये हुये साधनों का भोग करते हुए इस संसार का विकास करते चलें। इस संसार में मानवता विजयिनी हो जाये।

छायावाद की प्रमुख विशेषता रहस्यवाद-

मानव स्वभाव जिज्ञासु होता है वह अपने आस-पास की वस्तुओं को प्रश्न भरी निगाहों से देखता है वह कहाँ से आया? कहाँ जायेगा? क्यों आया? क्यों दुनिया कौन चलाता

1- अनुसंधान और आलोचना-डा0 नगेन्द्र-पृ0- 52

है? ये सूरज-चाँद किसके आकर्षण में खिंचते रहते हैं? आदि प्रश्न उसके सामने घूमते रहते हैं जब उसे अपने सांसारिक संघर्ष से क्षण भर भी मुक्ति मिलती है तो उसका मन इन गुत्थियों में उलझ जाता है वह इसका रहस्य जानने के लिये व्याकुल हो जाता है। भारतीय चिन्तन का प्रबल पक्ष इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्न शील रहता है।आदिम युग से न जाने कितनी ज्ञानी, योगी इस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं, न जाने कितने पंथ-सम्प्रदाय इस ज्ञान को पाने के लिये चल पड़े, सबकी अपनी विचारधारा अपने-अपने मत थे किन्तु प्रश्न सबके एक थे और शायद उसका उत्तर भी एक ही था।

भक्तिकाल में रहस्यभावना का रूप दूसरा था, रीतिकाल में भी ईश्वरानुराग की वृत्ति विद्यमान है-किन्तु छायावाद में यह रहस्यवादी भावना नया रूप लेकर आयी। इसमें सांसारिक जीवन के प्रति विरक्ति की भावना नहीं है, इस रहस्य भावना में सत्य, शिव, सुन्दर के अखंड स्रोत और ईश्वर के प्रति अनुराग की भावना है।प्रकृति में चेतनता का आरोप करके चित्रित करते समय कवियों ने प्रकृति के अनन्य स्रोतों के दर्शन किये उसी के साथ ही एक सूक्ष्म भाव, सौन्दर्य और शील का अनुभव भी इन कवियों को हुआ और इस अनुभूति को रहस्यवादी शैली में अभिव्यक्त किया गया है।

अद्वैतवाद और बौद्ध दर्शन दोनों का मिश्रित रूप छायावादी कवियों में मिलता है। प्रसाद जी शैवमतावलम्बी है किन्तु बौद्ध दर्शन में भी विश्वास करते थे। जीवन के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों पक्षों को मान्यता देते हुये किसी भी प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त हो। छायावादी कवियों ने एक स्वस्थ चिन्तन का विकास किया। आज की नवीन चेतना जीवनके केन्द्र-बिन्दु से नवीन विश्वासों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील है।मृत्यु का भय आज इतना महत्वपूर्ण नहीं रहा।मृत्यु है तो है परन्तु जीवन का लक्ष्य क्या है? आज के ज्ञान की यह उच्च स्वीकारोक्ति है कि यह जीवन दुखमय है। परन्तु यह दुख, एक साथ सब जगह क्रियाशील नहीं है। मनुष्य की सहृदयता इस दुख को बांटने का ही कार्य कर सकती है। करुणा का महामूल्य जीवन इस लिए ही है। आज का समूचा दार्शनिक चिन्तन ईश्वरीय सत्ता की स्वीकारोक्तिके साथ ही मानवता के नये सीमा चिह्नों की ओर अनुरक्त है, मनुष्य में ईश्वर की खोज के लिए।"[1] और छायावाद आज की

- -

1- छायावादोत्तर हिन्दी-कविता-डा० रमाकान्त शर्मा-पृ०- 89-90

इस माँग को पूरा करता है।

छायावादी काव्य धारा में प्रेम-

छायावादी कवियों ने प्रेम और सौन्दर्य का बड़ा ही स्वस्थ चित्रण कियाहै। ये कवि प्रेम को मानव विकास में सहायकदिखाते हैं न कि विलास और भोग के लिये। नारी की एक अलग ही मूर्ति इन्होंने स्थापित की जो सौन्दर्य की देवी भी है, क्षमा, त्याग, प्रेम की देवी भी है। उसमें इन कवियों ने स्थूल सौन्दर्य ही नहीं देखा उसका अंतरंग चित्रण हुआ है उसकी आन्तरिक भावनायें उभारी हैं, नारी के कोमल स्वभाव में लज्जा का अत्यंत महत्व है। इन कवियों का प्रेम भी कई तरह का है कभी ये प्रकृति से अटूट प्रेम करते हैं जैसे पन्त जीवन भर प्रकृति से ही प्रेम करते रहे वह उसका मोह छोड़ न पाये। किसी कवि ने अलौकिक प्रेम में अपने आँसू बहाये हैं, कोई अपने लौकिक प्रियतम को पाने के लिये आतुर है अतः प्रेम का बड़ा ही हृदयग्राही चित्रण छायावाद में हुआ है-

यह लीला जिसकी विकस चली
यह मूल शक्ति थीप्रेम कला
उसका संदेश सुनाने को
संसृति में आई वह विपल।।[1]

नियति पर आस्था-

जीवन चक्र में घटने वाली अनेक घटनाओं के प्रति छायावादी कवि नियतिवादी दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। प्रकृति पक्ष से अनेक सुखमय एवं दुखमय घटनायें घटती हैं जो मनुष्य के पुरूषार्थ को दुर्बल कर देता है प्रकृति की ये मार मानव हृदय को हिला देती है, किन्तु जीवन का विकास प्रकृति का नहीं बल्कि पुरूषार्थ का आभारी है। छायावादी कवियों की यही एक दुर्बलता है कि उसने नियति पर आस्था व्यक्त की है जरा सा दुख या अव्यवस्था हो जाने पर वह घबरा उठता है उसका पुरूषार्थ ढीला पड़ जाता है। कामायनी में मनु आरंभ में नियतिवादी ही है वह निष्क्रिय बैठा अपने भाग को कोसता रहता है अकर्मण्य बना रहता

1- कामायनी (कामसर्ग) जयशंकर प्रसाद-पृ0- 84

है बाद में आता है उसके पुरुषार्थ को जगाने से वह कर्मशील बनता है।

नये यथार्थबोध का जन्म-

जड़ता की जिस सीमा ने साहित्य और जीवन के विकास को अवरुद्ध कर दिया था उसके प्रति क्रान्तिकारी भावना को लेकर छायावादी कवि साहित्य क्षेत्र में उतरा। उसने पुरानी परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ दिया, बन्धनों में बंधा व्यक्तित्व निखर नहीं पाता वह कुण्ठित हो जाता है, छायावादी कवि ने परम्परा में बंधे व्यक्तित्व को विकास दिया जिसके पीछे दृष्टिकोण था सामाजिक और सामयिक। साहित्य और जीवन एक नयी चेतना का स्फुरण हुआ, विचार और भाव-भूमि में एक प्रकार की क्रांति सी आ गयी, मानव अपनी अभिव्यक्ति केलिये आतुर हो उठा। प्राचीन परम्परा से साहित्य आध्यात्मिक जीवन के विकास का साधन रहा है किन्तु आज का जीवन मनुष्य की महानता की अवेलना नहीं कर सकता आज जो कुछ भी किया जाता है वह महान मानवीय सृष्टि के लिये, आज वह कोई भी मूल्य स्वीकार नहीं किया जा सकता जिसमें मनुष्य के किसी भी पक्ष की अवहेलना हो। आज धर्म, परम्परा, रीति-रिवाज, समाज सब मानव के लियेही स्वीकार किये जाते हैं इनके वही मूल्य स्वीकार किये जाते हैं जिसमें मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास हो उसे कोई अड़चन महसूस न हो अन्यथा धर्म को रूढ़ि आडम्बर और ढकोसला कहकर छोड़ दिया जाता है अगर वह मनुष्य के विकास में अड़चन डालता है आज इन सबकी उपयोगिता इसी बात है कि मानवीय सृष्टि का विकास करे और उसे भौतिक जीवन के लिये सक्षम करे आज का युग इसी लोक में सुख प्राप्त करना है अध्यात्म के द्वारा उस लोक कीबात कोई नहीं सोचता। अतः साहित्य भी निरन्तर यथार्थ की ओर उन्मुख होता चला गया।

सामाजिक यथार्थ से पलायन-

छायावादी कवियों ने सामाजिक और आर्थिक विषमताओं के तत्वों से पीड़ित जन समाज का किसी भी प्रकार मार्गदर्शन या चित्रण अपनी रचनाओं में नहीं किया ये सामाजिक जीवन वैषम्य से परिचित तो ये इसका इनको बोध भी था मगर खुलकर उसके प्रति विद्रोह करने ये नहीं आये। छुटपुट कविताऍं इस वैषम्य पर आयी भी लेकिन वह कोई प्रभाव

न छोड़ सकी। भाव और विचार की ऊँचाई बातें पेट भर भोजन न मिलने वाले निरन्तर संघर्षरत व्यक्ति की समझ से परे थीं। वे चल मुझे भुलावा----लहर।

छायावादी कवियों ने सीधे-सीधे पूंजीवाद का विरोध कर, जनसाधारण का चित्रण तो नहीं किया लेकिन उनका व्यक्तिवाद चित्रण का दृष्टिकोण भी सामाजिक ही था। इन कवियों ने बढ़ती भौतिकता में अपने को समायोजित न कर पाने के कारण अशांति निराशा कुंठित का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है बढ़ती भौतिकता ने धन का महत्व बढ़ा दिया उसी के साथ व्यक्ति की आवश्यकतायें भी बढ़ी और आवश्यकतायें पूरी न होने से कुंठायें बढ़ी, व्यक्ति एक पीड़ा और कष्ट का जीवन व्यतीत करने लगा उसका संघर्ष भी बढ़ गया- "जिस विज्ञान वाद ने नये नये राजनैतिक सिद्धांतों को प्रश्रय दिया वह भी स्वयं जड़ता का ही पोषक बना। समस्यायें अनन्त हो गयी और आगे भी होती जायेंगी। इनका अंत दीखता नहीं ह मनुष्य अपने केन्द्र से स्खलित होकर असत्य स्थानों पर आश्रय के लिये भटक रहा है। व्यवस्था मात्र सुख-शांति और आनन्द को बल नहीं दे सकती। व्यवस्था के पीछे भी मानवात्मा का शिव तत्व कार्य करता है। आज की यंत्रवादी-जड़वादी वैज्ञानिक संस्कृति स्वयं अपनी दरिद्रता पर हजार आँसू रो रही है। शांति का मूल्य बहुत बढ़ गया है। एक क्षण की असावधानी सर्वनाश कर सकती है। तो आखिर अब इससे त्राण क्या है? यह एक प्रश्न सबके सामने है। इसका उत्तर एक ही है कि संकीर्णता सबका नाश करने में समर्थ है। इस महान सामाजिक मानवीय प्रश्न को छायावादी कवियों ने बड़ी तटस्थता से साहित्यिक विषय बनाया है।[1]

"छायावादी कविता में समस्त जगत को कवि अपने हृदय की सीमा में समेट लेता था। उन विषयों तक उसके पहुँचने की प्रणाली बहुत ही संश्लिष्ट और अर्न्तमुखी थी। वह जगत की चिन्ता से मुक्त अपनी ही मनोभावनाओं के रंग में जगत को भी रंगता था। चूँकि उसका अपना रंग एक ही था इसलिए उसके काव्य विषय विविध होते हुए भी सीमित हो गये।"[2] छायावादी कवि व्यक्तित्व की आत्मा को स्वीकार करता है वह जगत के वाह्य रूप को नहीं अपने हृदय के सौन्दर्य पर ही आकर्षित होता है और उसी को विभिन्नताओं में

- -

1- छायावादोत्तर हिन्दी कविता- डा० रमाकान्त शर्मा-पृ०- 83
2- छायावाद युग-शंभूनाथ सिंह-पृ०- 108

रँग कर अपनी रचनाओं में चित्रित करता है। इनकी सभी अनुभूतियाँ "स्व" के बन्धन में जकड़कर बन्दिनी बन गयी और उनकी सीमा बंध गयी। प्रारम्भ में छायावाद जिस स्वस्थ परम्परा को लेकर चला था, व्यक्तिवाद में भी सामाजिक दृष्टिकोण को लेकर चला था शनैः शनैः वह नितान्त व्यक्तिवादी होते गये, उसकी दृष्टि स्वयं में ही संकुचित हो गयी, वह केवल अपनी निजी सीमाओं में बंध गये, वह केवल कल्पना के पंख लगाकर उड़ने लगे, जीवन लक्ष्य की उपेक्षा होने लगी।

राष्ट्रीयता की भावना-

राष्ट्रीयता की भावना छायावाद के कवियों में निराला और प्रसाद में प्रचुरता से देखने को मिलता है। प्रसाद ने अतीत के ऐश्वर्य के माध्यम से वर्तमान जनता में प्रेरणा का संचार किया। प्रसाद ने खण्डहरों में भटक कर इतिहास के तथ्य को खोजा और उन्हें अपनी रचनाओं का विषय बनाया उन्होंने अतीत को गुण गाये अतीत का ऐश्वर्य और समृद्धि दिखाकर आज की जनता का ध्यान उस ओर आकर्षित किया और पराधीनता की बेड़ियाँ काटने के लिये सोती जनता को जगाने का कार्य किया। प्रसाद के कितने ही नाटक वीर रस से ओत-प्रोत हैं उसमें उन्होंने महान पुरुषों की वीरता, त्याग, धर्म का पालन और नारी का एक नया ही रूप निखारा है। निराला ने समाज में शोषित, गरीब जनजीवन को वाणी दी है। निराला एक महान व्यक्तित्व थे उनका शरीर विहंगम किन्तु हृदय बड़ा कोमल था। समाज में व्याप्त गरीबी को देखकर उनका हृदय तड़फ उठता था इसीलिये उनकी रचनायें हिन्दू विधवा, भिखारी, मजदूरनी आदि ने अभिव्यक्ति पायी है। निराला ने बाद में प्रगतिवादी रचनायें भी लिखीं और वर्ग विषमता, सामाजिक अव्यवस्था, सामाजिक कुरीतियाँ रुढ़ि आदि पर जमकर प्रहार किया।

निराला ने राष्ट्रीय भावना पर आधारित रचनायें भी लिखी हैं उन्होंने भारत माता की वन्दना की और जय भारती के गीत गाये, सरस्वती वन्दन किया-

भारति, जय , विजय करे
कनक-शस्य-कमल धरे,
लंका पदतल -शतदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।[1]

नगेन्द्र जी छायावाद को एक व्यापक विद्रोह के रूप में देखते हैं उपयोगिता के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रुढ़ियों के प्रति मानसिक स्वतंत्रता का विद्रोह और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेकनीक का विद्रोह ।[2]

"छायावादी कवियों ने अपनी रचनाओं में प्राचीन आध्यात्मिकता और नवीन जीवन की वैज्ञानिक संस्कृति को उच्चकोटि की मानवता से समृद्ध करने का प्रयत्न किया, जीवन की इस आत्मिक विकास के लक्ष्य को अधिक स्वस्थ बनाया। इस सांस्कृतिक निष्ठा का स्वर आधुनिक काव्य में बड़ा ही प्रबल रहा। छायावादी कवियों की रचनाओं की यह महान उपलब्धि है । वैयक्तिक चेतना के इन रोमान्टिक कवियों ने अपनी स्वच्छन्दता में भी नव-जीवन के इस गंभीर विषय को महत्व दिया। छायावादी कवि स्वयं निर्मित स्वप्नों में अनुरक्त रहे परन्तु उनकी सामाजिक वृत्ति इन सांस्कृतिक विचारों की प्रतिष्ठा में दिखाई देती है।[3]

छायावाद के पतन के कारण-

छायावाद के कवि धीरे धीरे घोर व्यक्तिक होते गये वह अन्तर्मुखी हो गये केवल अपने ही राग गाने लगे और कल्पना का साहित्य रचने लगे, जिसमें व्यक्ति एक स्वप्न लोक को विचरण करता था और प्रकृति के व्यामोह में फंसा रहता था। मगर परिस्थितियाँ ऐसी न थी देश पराधीनता के फन्दे में जकड़ा हुआ था। पूंजीवादी व्यवस्था से देश में दो वर्गों का प्रादुर्भाव हो चुका था। एक अमीर वर्ग दूसरा गरीब ~~वर्ग~~। अमीर गरीबों

1-निराला-गीतिका
2-हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद एवं उनके प्रवर्तक-विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-पृ0-39
3-छायावादोत्तर हिन्दी कविता-डा0 रमाकान्त शर्मा-पृ0- 150

का शोषण कर रहे थे। अंग्रेजी शासन भारत की आत्मा (संस्कृति) को कुचलने का प्रयत्न कर रहा था ऐसे समय में कल्पना में उड़ने वाला, अपने हृदय का रूदन क्रन्दन गाने वाला, अपनी असफल प्रेम कथाओं पर आँसू बहाने वाला साहित्य नितान्त अनुपयोगी साबित हो रहा था। जनता को आवश्यकता थी एक ऐसे साहित्य की जो उसकी समस्याओं को समझ सके उनका चित्रण कर सके, उनका मार्ग दर्शन कर सके अतः छायावाद की चूलें चरमराने लगी और उनका ढहना अवश्यम्भावी हो गया।

"छायावाद की यह स्थिति बहुत दिनों तक संभव नहीं थी जीवन की अस्वीकृतियों को गौरवान्वित करके, मानसिक कुण्ठाओं को छिपाकर कल्पना लोक के छायाभास और रहस्याभास, वैभव में अपने आपको भुलाये रहना अधिक संभव नहीं था और सामाजिक भावनाओं के लिये अज्ञात, अशरीरी आलम्बन का रहस्यात्मक आधार भी अधिक टिकाऊ सिद्ध नहीं हो सका। परिणामस्वरूप आज के काव्य में एक नया मोड़ स्वाभाविक था।"[1]

छायावादी काव्य के पतन के कई कारण थे कवि अपने में ही खोया रहता था फलतः पाठक से उसका तादात्म्य नहीं हो पाता। "छायावादी काव्य में कवि और पाठक में अन्तराल द्वितीय-अतिशय आदर्श के बहाने यथार्थ की उपेक्षा अथवा अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच में आध्यात्मिकता का अस्पष्ट आरोप तृतीय-आत्मगत चेतना कल्पना, मूकता और अज्ञात सत्ता की खोज के साथ ज्ञान की ओर से उदासीनता, चतुर्थ भावनाओं के निश्छल प्रकाशन में दुराव।[2]

युग की मांग को कुछ कवियों ने पहचाना और छायावाद के ही कुछ कवि अपने आपमें परिवर्तन करके छायावाद को परिस्थितियों के अनुकूल न समझकर उसके स्थान पर एक स्वस्थ, यथार्थ सामाजिक, क्रान्तिकारी, राष्ट्रीय स्वाधीनता से ओत-प्रोत साहित्य की धारा चलाने को आतुर हो गये। कवि पन्त जो कि घोर छायावादी थे, कोमल हृदय के मालिक थे, माधुर्य और सौन्दर्य पर विश्वास करने वाले, जीवन के संघर्षों से दूर कल्पना में

- -

1- साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य-डा० रघुवंश -पृ0- 121-122

2- वही, पृ0- 104

विचरण करने वाले थे, युग की माँग को ठुकरा न सके और अपनी राह बदल दी और छायावाद की अनुपयोगिता को बताते हुये एक पत्र का सम्पादन किया जो "रूपाभ" नाम से निकला और उसमें छायावाद का पतन और प्रगतिवाद का उद्घोष किया-"इस युग जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससेप्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती, उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिये कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। हमारा उद्देश्य इस इमारत में थूनियाँ लगाने का कदापि नहीं जिसका कि गिरना अवश्यंभावी है। हम तो चाहते हैं कि उस नवीन के निर्माण में सहायक होना है, जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है।"[1]

छायावाद सामाजिक दायित्व की चिंता न कर, साहित्य को केवल सामाजिक चेतना न मानकर व्यक्तिगत राग-विराग को वाणी देना है। कल्पना लोक में विचरण कर यथार्थ की उपेक्षा करता है, संघर्ष से भय खाता है, यथार्थ की चुनौती स्वीकार नहीं करता, अतः वह प्रगतिशील न होकर प्रतिक्रियावादी है।[2]

छायावादी कवि धीरे-धीरे स्वप्न लोक में चला गया, वह समाज से कट सा गया, यथार्थ से संघर्ष करने की उसमें शक्ति नहीं रह गई अतः विषयों में एक रसता रह गयी। ऐसा साहित्य रचा जाने लगा जिसका जनसाधारण से कोई सरोकार न था कविता केवल कवि की ही वस्तु बन कररह गई थीउसमें उसी के हृदय का रुदन और क्रन्दन उसमें दृष्टिगत होता है। "छायावाद का कवि अपने भावों पर चारों ओर बन्धन ही बन्धन देखता है। उसके मधुमय/कमनीय सुख-स्वप्न टूट चुके हैं। वह सामाजिक जीवन की चेतना को विकराल और भयानक पाता है। उसकी चेतना भी आज मानवता का प्रतिनिधित्व नहीं करती। निदान इन रचनाओं में इतना क्रन्दन-रुदन, इतनी निराशावादिता मिलती है।"[3]

- -

1- सुमित्रानन्दन पंत "रूपाभ" सम्पादकीय अंक-1 जुलाई 1938
2- हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद एवं प्रवर्तक-विश्वम्भरनाथ उपाध्याय--पृ0- 56
3- शिवदान सिंह चौहान- प्रगतिवाद- पृ0-37

हर वस्तु परिस्थितियों के अनुसार अच्छी प्रतीत होती है,परिस्थितियाँ ही मनुष्य के विचारों का निर्माण करती हैं।अगर देश खुशहाल हैं,सब सुखी हैं-चारों तरफ शान्ति है तो भोग-विलास खुशी का साहित्य या मनोरंजन या कोई भी बात अच्छी लगती है,मन शान्त हो तो स्वप्न लोक में खोये रहना भी अच्छा लगता है,पेट भरा हो तो बड़ी-बड़ी कल्पना की बातें भीहो जाती हैं किन्तु जब देश की जनता भूखों मर रही हो,पेट के दाने के लिये उसे जानवरों की तरह भटकना पड़ता हो,सर छुपाने के लिये जगह न हो । तन पे चिथड़ा न हो तो वह ऐसी स्वप्नों की बातों से कैसे बहल सकता है? उसको सौन्दर्य हर वस्तु में कैसे नजर आ सकता है?प्रकृति भी तो व्यक्ति के हृदयगत भावों के अनुसार दिखाई पड़ती है,तो उसे भी चारों तरफ निराशा,अंधकार ही नजर आता है। और साहित्य तो समाज -सापेक्ष होता है वह अपने युग का दर्पण होता है वह अपने युग के यथार्थ से कैसे मुँह मोड़ सकता है अतः छायावाद का पतन आवश्यक हो गया था। "जिस व्यक्ति की वासना आर्थिक अभावों के कारण असफल रही हो,जो अपनी प्रेयसी का तुल्यानुराग न पा सका हो,जो रोजी-रोटी की खोज में सड़कों पर सोया हो,जो नियति के हथौड़े से चकनाचूर होकर भाग्यवादी हो गया हो जो समाज से कलुषित कहा जाकर परित्यक्त हो और जिसके समक्ष केवल धरती और उसके अँकुरों की ही उपयोगिता हो,तारों की नहीं, उस मानव का व्यक्तित्व छायावादी अतिकाल्पनिक भावुक उर्वरित संस्कारों के सौन्दर्य से तादात्म्य कैसे स्थापित कर सकता था। भारत में छायावादी सांस्कृतिक चेतना की आवश्यकता तो आगामी दिनों में हो सकती हैं पर उन दिनों उसकी उतनी महत्ता न थी।इसी अभाव के कारण छायावाद युग की परिसमाप्ति हुई।"[1]

छायावाद के विषय इतने कम थे कि उस पर लिखते-लिखते वह सब पुराने पड़ चुके थे और नये विषयों की कमीथी,वही प्रकृति का सौन्दर्य चित्रण,प्रकृति में अज्ञात सत्ता का आभास,नारी का सौन्दर्य चित्रण,प्रेम और विरह का चित्रण,निराशा और कुण्ठित हृदय का रुदन इन सब विषयों पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि अब कुछ नयापन शेष नहीं रह गया था कहने का तात्पर्य यह नहीं कि पहले विषयों में विविधता

- -

1- साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य- डा० रघुवंश-पृ०- 121-122

नहीं थी आरम्भ में छायावाद जिस स्वस्थ परम्परा को लेकर चला था जिस नवीन शैली का उसने चित्रण किया था उससे वह आगे चलकर भटक गया ये सारे विषय बासी पड़ गये अब पाठक को इसमें कोई रुचि न रह गई अबवह परिवर्तन चाहता था। इस सबका अभाव छायावाद में स्वयं "पन्त" जी ने भी अनुभव किया-"छायावाद इसीलिये नहीं रहा क्योंकि उसके पास, भविष्य के लिये उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौन्दर्य बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था वह काव्य न रहकर अलंकृत संगीत बन गया था।"[1]

पन्त जी के शब्दों में छायावाद के अश्रु, हास, आध, मधु, पानी नहीं हो पाये अतः छायावादी साहित्य संघर्षों से थककर पलायन की ओर प्रवृत्त दिखाई पड़ा। अतः छायावाद के पतन में मुख्य रूप से शब्द मोह "केन्द्रापगामी व्यंजना प्रवृत्ति आदि ने हाथ नहीं बटाया, जितना उसके घोर वैयक्तिक दृष्टिकोण ने, सामाजिक चेतना की अवहेलना करके काव्य नहीं जी सकता।"[2]

रामधारी सिंह दिनकर ने भी अपने निबन्ध "कोमलता से कठोरता की ओर" में छायावाद केपतन के कारणों की विवेचना की है। उनके मतानुसार छायावाद के पतन के मूल कारण निम्नलिखित हैं-

1- छायावादी कवियों की वैयक्तिकता की धुन
2- बौद्धिकता का प्रसार
3- भावुकता और रुदनशीलता
4- वास्तविकता की उपेक्षा
5- सजावट का मोह
6- काव्यचित्रों में उस पारदर्शिता का अभाव जिसके भीतर से जीवन को देखा जा सके।[3]

छायावाद युग के उत्तरार्द्ध में अनेक प्रकार के बौद्धिक तथा भौतिक प्रभावों के कारण व्यक्ति अपने प्रति अधिक जागरूक होने लगा। उसमें आत्मचेतना और आत्मविश्वास

1- आधुनिक कवि "पन्त"- पृ0-11
2- हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद एवं उनके प्रवर्तक-विश्वम्भर नाथ उपाध्याय-पृ0- 46
3- प्रगतिशील हिन्दी कविता से उद्धृत -डा0 दुर्गा प्रसाद झाला-पृ0- 68

की मात्रा बढ़ने लगी और वह प्राकृतिक तथा दार्शनिक प्रतीकों के आवरण त्याग साहसपूर्वक अपने हर्ष विषाद को प्रत्यक्ष रूप में अभिव्यक्त करने लगा । इस तरह एक प्रकार की अतिशय आत्मपरक कविता का जन्म हुआ जिसका प्रभाव हिन्दी के नवयुवक कवियों पर संक्रमक होकर पड़ा। आर्थिक और श्रृंगारिक कुंठाओं से पीड़ित तत्कालीन समाज अपने मन के प्रत्यक्ष सब चित्रों की ओर स्वाभावतः अत्यन्त वेग से आकृष्ट होने लगा।"[1]

इस प्रकार साहित्य में चली आ रही यथार्थ परम्परा और कुछ छायावाद के अति प्रगतिशील तत्व दोनों ने प्रगति वादी कविता के जन्म में महत्वपूर्ण सहयोग दिया। प्रगतिवाद का जन्म कोई आकस्मिक घटना नहीं उसके लिये भारत की उपजाउ भूमि बहुत पहले से तैयार हो रही थी। छायावाद में भी यथार्थ के प्रति प्रेम दृष्टिगोचर होता है और इसने भी प्रगतिवादी काव्य के लिये मार्ग प्रशस्त किया है।

1- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- पृ0-63

प्रगतिवाद का आगमन

रूसी क्रांति और भारत में मार्क्सवादी विचारों का प्रवेश-

जिस समय जारशाही युद्ध में व्यस्त थी उसी समय लेनिन के नेतृत्व में पार्टी ने साम्राज्यवादी युद्ध को गृह युद्ध में परिणत करने का नारा दिया। फलतः बोलशेविक पार्टी के नेतृत्व में कुछ समय तक गृह युद्ध चला और 25 अक्टूबर ।7नवम्बर, नवीन शैली के अनुसार । सन् 1917 को जारशाही का अन्त करके पार्टी ने राजसत्ता को हस्तगत कर लिया।"[1] रूसी क्रान्ति ने सारे विश्व में साम्राज्यवाद की जड़े हिला दी और सभी जगह मजदूर वर्ग को एक नयी प्रेरणा मिली। भारतीय मजदूर वर्ग में असंतोष की अग्नि तो पहले से ही जल रही थी, रूसी क्रांति की सफलता ने मजदूरों में आशा और उत्साह का भी संचार कर दिया। फलतः सन् 1918 से भारतीय मजदूर आंदोलन एक नयी स्फूर्ति से जाग उठा और बड़े पैमाने पर देश व्यापी हड़तालों का क्रम जारी हो गया। राजनैतिक आंदोलनों में जैसे-जैसे मार्क्सवादी विचार धारा का प्रचार बढ़रहा था वैसे ही वैसे प्रबुद्ध जनता में मार्क्सवादी साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न हो रही थी।

रूसी क्रांति से पहले बंगाल में बंकिम बाबू जो कार्लमार्क्स के समकालीन थे "साम्य" शीर्षक से एक निबंध लिखा था, जिसमें उन्होंने पूंजीमजदूरी और लाभ आदि पर विचार करते हुए विभिन्न सामाजिक विषमताओं की अपने ढंग से व्याख्या की थी और एक सीमा तक सामाजिक साम्य का समर्थन भी किया था।[2] मार्क्स के विचारों से प्रभावित होकरउसका प्रचार संपूर्ण देश में करने के उद्देश्य से कई पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया इसमें पहल दिखाई बंगाल ने और सन् 1920 में कलकत्ते से एक दैनिक"नवयुग"प्रकाशित किया गया। इस पत्र का प्रकाशन बंगाल के प्रसिद्ध कवि काजी नजरूल इस्लाम और कम्युनिस्ट पार्टी के संस्थापक मुजफ्फर अहमद की देखरेख में आरंभ हुआ था जिसका उद्देश्य था मार्क्सवादी मान्यताओं का प्रसार करना और मजदूरों किसानों के कार्यक्रमों को प्रमुखता देना। ये पत्र देश केबहुसंख्यक किन्तु शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व करने के लिये सामने आया। इस प्रकार मार्क्सवादी साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार करने वाला यह प्रथम भारतीय पत्र बना। इसके बाद लाहौर से उर्दू में इनकलाब नामक एक पत्रिका प्रकाशन हुआ जो मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित था। ~~इस पत्र के संपादक~~ गुलाम

1- सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास-पृ0- 222 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत ।

2- बंकिम चन्द्र साहित्य-ग्रन्थावली- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत। ग्रन्थमकानपुर-1974

हुसैन थे जो कि रूस से अपना संपर्क रखते थे और वह चाहते थे कि भारत में लोग मार्क्स को समझे और उनसे प्रेरणा ग्रहण करें। लेकिन इन सब पत्रों के अतिरिक्त एक नाम जिसने वास्तव में भारतमें मार्क्सवादी विचारों का प्रसार अत्यंत तीव्रता से किया वह थे श्रीपाद अमृतडांगे, इन्होंने सन् 1921 में "गांधी और लेनिन" नामकी अंग्रेजी में पुस्तक लिखी। सोशिलिस्ट नामक एक अंग्रेजी साप्ताहिक का प्रकाशन भी डांगे के संपादकत्व में सन् 1922 में आरंभ हो गया था।

हिन्दी के क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित एक निबंध श्रीजनार्दन भट्ट ने सन् 1914 में लिखा। "शीर्षक था "हमारे गरीब किसान और मजदूर जिसमें उन्होंने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से समाज को दो श्रेणियों की व्याख्या करते हुए लिखा "विचारपूर्वक देखा जाए तो संसार के हर एक देश में चाहे वह इंग्लैण्ड हो चाहे हिन्दुस्तान, दो जातियाँ दिखाई पड़ेगी। एक ओर तो धनी है, जिनकी संख्या संसार में बहुत थोड़ी है और जो हर तरह के ऐश-ओ-आराम में अपना जीवन बिताते हैं और दूसरी एक बहुत बड़ी संख्या उन अभागों की है जो किसी तरह बड़े परिश्रम और कष्ट से अपने जीवन की रक्षा कर सकते हैं। इन गरीबों की हालत रोम के गुलामों से भी बदतर है।"[1]

इन पत्रिकाओं के प्रकाशन से हिन्दी क्षेत्र में भी इसका प्रसार प्रारंभ हुआ और मार्क्सवादी विचारधारा से ओत प्रोत पत्रिकाओं का प्रकाशन हिन्दी क्षेत्र में भी प्रारंभ हो गया। इस परम्परा में कानपुर से गणेशशंकर विद्यार्थी के सम्पादकत्व में "प्रताप पत्रिका जो कि मार्क्सवादी विचारधारा की पोषक थी निकलनी प्रारंभ हो गई, इसके साथ ही इलाहाबाद से मर्यादा, जबलपुर से "श्रीशारदा" और कानपुर से "प्रभा" और "संसार" का प्रकाशन प्रारंभ हो गया। इसके अतिरिक्त रामचन्द्र वर्मा की "साम्यवाद" पुस्तक बम्बई से प्रकाशित हुई जिसमें समाजवादी विचारधाराओं का उल्लेख किया गया है-"जब तक धनी और दरिद्र आदि का भेदभाव बना रहेगा तब तक मानव जाति कभी संतुष्ट या प्रसन्न नहीं होगी और इस भेदभाव को नष्ट करने के लिए बराबर प्रयत्न करती रहेगी।"[2]

पत्र-पत्रिकाओं के अलावा मजदूरों में जागृति की भावना फैली और वह क्रान्तिकारी स्तर पर संगठन करने मेंजुट गये और एक मार्क्सवादी राजनैतिक वातावरण तैयार हो गया जिसमें वर्गों से दमित, पीड़ित जनता मैदान में उतर आयी और जब यह

- -

1- जनार्दन भट्ट-"हमारे गरीब किसान और मजदूर शीर्षक निबंध सरस्वती जून सन् 1914 पृ0-34।-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत। ग्रन्थम कानपुर-सन् 1974

2-रामचन्द्र वर्मा-"साम्यवाद" पृ0- 454

वर्ग क्रान्ति पर उतारु होता है तो दुनिया की कोई ताकत इस जनशक्ति को रोक नहीं पाती। अतः शोषण से पीड़ित जनशक्ति एक जगह एकत्रित होने लगी। बंगाल में "मजदूर किसान पार्टी" की स्थापना हुई और एस०एस० मिरजकर उसके मंत्री नियुक्त हुए। इसी वर्ष पंजाब में सोहन सिंह जोश के प्रयत्न से "कीर्ति किसान पार्टी" का सूत्रपात हुआ। सन् 1928 में उत्तर प्रदेश में भी "मजदूर किसान पार्टी" बनाई गई और पी०सी० जोशी उसके मंत्री नियुक्त हुये। जगह जगह कम्युनिस्ट पार्टी की सभायें होने लगी। मजदूर हड़ताल करने लगे उसमें वर्ग चेतना की भावना तीव्र तर होती गई। देश की आम जनता में कम्युनिस्ट पार्टी के इस बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर सरकार को बड़ी चिन्ता हुई फलतः देश भर में कम्युनिस्ट नेताओं की गिरफ्तारी प्रारम्भ हो गई ।

कम्युनिस्ट प्रभावित ट्रेड यूनियन आन्दोलन का विकास भी इसी काल में हो गया था। सन् 1929 से सन् 1933 तक जो विश्वव्यापी मंदी और औद्योगिक संकट का समय आया उसने मजदूरों की आर्थिक स्थिति को बहुत ही शोचनीय बना दिया। कारखानों में छटनी और मजदूरी में कटौती होने लगी जिसके फलस्वरूप गरीबी और बेकारी बहुत बढ़ गई तथा मजदूरों में मिल मालिकों के विरुद्ध असन्तोष की भावना बढ़ने लगी । इस अनुकूल परिस्थिति को प्राप्त करके वामपंथी समाजवादी नेता ट्रेड यूनियन आन्दोलन के द्वारा मजदूरों को संगठित करके उन्हें अपने हितों की रक्षा के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित करने लगे।"[1] मंदी समाप्त होते ही पूँजीपति फिर नये उत्साह से अपने धंधे में जुट गये। मजदूरों के श्रम का अधिक से अधिक शोषण हो सके इसके लिये पूँजीपतियों ने बड़ी ही तीव्रता से काम करने वाली बड़ी-बड़ी मशीने लगाईं। जो काम दस व्यक्ति कर सकते थे मशीन उस काम को एक व्यक्ति के सहयोग से करने लगी फलतः अधिक संख्या में लोग बेरोजगार हो गये उनकी बेरोजगारी से फायदा उठाकर पूँजीपतियों ने उनकी मजदूरी की दर घटा दी। पेट में रोटी डालने की विवशता से मजदूर कम से कम मजदूरी पर काम करने को राजी होने लगे अगर ऐसा न करें तो खायें क्या?" इसके विरोध के लिये जनवरी

- -

1- एस०एस० माथुर एण्ड जे०एस० माथुर- ट्रेड यूनियन मोमेन्ट इन इंडिया-पृ०- 28
हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत । ग्रन्थम कानपुर सन् - 1974

सन् 1934 में एक "अखिल भारतीय टेक्सटाइल वर्कर्स कान्फरेन्स" बुलाई गयी जिसमें एक प्रस्ताव पास करके देश भर में आम हड़ताल करने का निश्चय किया गया।[1]

इस प्रकार पूरे देश में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रसार हो गया और जनसाधारण में एक नयी चेतना का संचार हुआ वह संगठित होने लगे और अपने अधिकारों के लिये संघर्ष में जुट गये ये एक ऐसीधारा आयी जिसमें सभी अबाध गति से बह निकले कवि भी इससे अछूते कैसे रह सकते थे अतः साहित्य में इस धारा ने प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया।

प्रगतिवाद का जन्म-

छायावादी काव्य धारा का पूर्ण विकास हो चुका था, वह बूढ़ी हो गई थी अतः उसकी जीवन लीला समाप्त होना स्वाभाविक था। उसके जीवन के अंतिम चरण में ही प्रगतिवादी काव्य भावनाओं को जन्म दे दिया था दूसरे शब्दों में, उसके समाप्तिकाल के पूर्व ही प्रगतिवादी काव्य धारा उसके गर्भ में आ गई थी और एक गर्भस्थ शिशु की तरह विकसित हो रही थी, जिसने गर्भ काल पूर्ण होने पर उचित और अनुकूल स्थिति में जन्म ग्रहण किया। पन्त और निराला ने सोहर गीत गाकर इसके जन्म की सूचना दी, प्रगतिशीललेखक संघ ने इसकानामकरण संस्कार बड़ी धूमधाम से किया और नागार्जुन, केदार नरेन्द्र, सुमन त्रिलोचन, रांगेय राघव, रामविलास आदि इस नवजात शिशु के पालन-पोषण में प्रवृत्त हो गये। यौवन प्राप्त होने पर उसके ये अभिभावक उससे दूर हटते गये, यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि वह अब बालिग हो गया था, उसमें अपने पैरों पर खड़े होने की ही नहीं, पर विरोधियों से लोहालेने की भी शक्ति आ गयी थी। उसकीयह शक्ति देखकर मुक्तिबोध, गिरिजा कुमार, भारत-भूषण, शमशेर बहादुर आदि ने उससे हाथ मिलाया और एक प्रभावशाली शील सम्पन्न मित्र के रूप में उसका महत्व स्वीकार किया।[2]

- -

1- एस०एस० माथुर एण्ड के०एस० माथुर -ट्रेड यूनियन मोमेन्ट इन इंडिया- पृ०-28 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत। ग्रन्थम-कानपुर -सन् 1974

2- प्रगतिवादी काव्य साहित्य- डा० कृष्ण लाल हंस- मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी -सन् 1971

और इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में छायावाद का अन्त हो गया और प्रगतिवाद के बीजपड़ने प्रारम्भ हो गये। इसके अतिरिक्त जन सामान्य भी रूस की क्रान्ति से प्रभावित होकर संगठित हो रहा था और "प्रगतिवाद" के लिये राजनैतिक वातावरण बना रहा था इसी संदर्भ में सन् 1920 ई0 में मजदूरों की एक प्रतिनिधि संस्था "अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन"कांग्रेस का जन्म हुआ। मजदूर संगठित होकर अपने अधिकारों के लिये संघर्षरत हो गये थे और निरंतर सभायें, जुलूस, भाषण होने लगे जनसाधारण में अपने अधिकारों के प्रति जागृति आ रही थी वे अपनी मांगे पूरी न होने पर हड़तालें रखने लगे। मजदूरों की इस जागृति को देखकर किसानों में भी उत्साह जागा और सन् 1931 में "अखिल भारतीय किसान सभा" का जन्म हुआ ।

सन् 1935 में पैरिस में "प्रगतिशील लेखक संघ" नामक संस्था की स्थापना हुई। जनसामान्य से सहानुभूति रखने वाले कुछ समाजवादी लेखकों ने इस संस्था में भाग लिया। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार ई0एम0 फार्स्टर इस अधिवेशन के सभापति थे। फ्रांस के मानवतावादी चिन्तक और लेखक रोमां रोला ने इस नई चेतना का स्वागत किया ।

सन् 1935 में ही इंग्लैण्ड में भारतीय लेखकों ने भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की। इनमें डा0 मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर, भवानी भट्टाचार्य प्रमुख थे । इस संघ का प्रथम अधिवेशन फिर भारत में हुआ। सन् 1936 में लखनऊ में पहली बार "प्रगतिशीललेखक संघ" का अधिवेशनहुआ। इसके सभापति मुंशी प्रेमचन्द थे। अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्द ने नये साहित्य की उच्च और नवीन परिभाषा प्रस्तुत की जो आगे चलकर प्रगतिवादी साहित्यकारों के लिये आदर्श बने।

"हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा , जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो जो सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो हममें गति संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।[1]

1- मुंशीप्रेमचन्द -साहित्य का उद्देश्य- पृ0- 19

प्रगतिशील लेखक-संघ के घोषणा पत्र में कहा गया " अपने साहित्य और दूसरी कलाओं को पुजारियों और अप्रगतिशील वर्गों के आधिपत्य से निकालकर उन्हें जनता के निकटतम संसर्ग में लाना, उनमें जीवन और वास्तविकता लाना तथा भारतीय सभ्यता की परम्पराओं की रक्षा करते हुये अपने देश की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों की कड़ी निर्ममता से आलोचना करनाप्रगतिवादी साहित्य का उद्देश्य है।"-------" भारत के नये साहित्य को हमारे वर्तमान जीवन के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिये और वह है हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का, हमारी सामाजिक अवनति का और हमारी राजनीतिक पराधीनता का प्रश्न । वह सब कुछ जो है निष्क्रियता, अकर्मण्यता, अंध-विश्वास की ओर ले जाताहै, हेय है। वह सब कुछ जो हममें समीक्षा की मनोवृत्ति करता है, जो हमें प्रियतम रूढ़ियों को भी बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिये प्रोत्साहित करता है, जो हमें कर्मण्य बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है, उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।"

प्रगतिशील लेखक संघ के कुछ पहले 1936 में ही हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन नागपुर में हुआ था। इस अधिवेशन में भाग लेने वालों में प्रेमचन्द, कन्हैया लाल माणिकलाल मुंशी, जवाहर लाल नेहरू, आचार्य नरेन्द्र देव आदि लेखक उपस्थित हुए थे । जिसमें "अख्तर हुसेन रामपुरी" ने एक घोषणा पत्र लेखकों को वितरित किया था " हमारा ख्याल है कि साहित्य की समस्याओं को जीवन की समस्याओं से अलग नहीं किया जा सकता। साहित्य जीवन का दर्पण है । यही नहीं बल्कि वह जिंदगी के कारवाँ का पथ-प्रदर्शक है। उसे सिर्फ जीवन के साथ-साथ नहीं चलना है बल्कि उसका नेतृत्व करना है। लेखक मनुष्य भी है और समाज की उन्नति के लिए उसे उतना तो करना ही है, जो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। हम पूछते हैं कि आज जब प्रगति और प्रतिक्रियाकी शक्तियों में निर्णायक संग्राम छिड़ चुका है, क्या साहित्य अपने आपको तटस्थरख सकता है? सौन्दर्य और कला का आवरण ओढ़कर वह जीवन संघर्ष से पलायन का मार्ग ग्रहण कर सकता है? क्या वह यथार्थ चित्रण की कालीन पर बैठकर क्रांति और क्रिया का चित्र ले सकता है? भावना प्रत्येक कला का प्राण है तो फिर गरीबों और पीड़ितों की दुर्दशा लेखक को भावनाशून्य क्यों कर रख सकती है? अगर जीवन की सबसे प्रमुख समस्या यह है कि समाज के चेहरे से बेकारी, दरिद्रता और अत्याचार के दाग धोये जायें, तो कदाचित यह कहने की

आवश्यकता नहीं रहजाती कि साहित्य का संकेत किसओर हो।"[1]

इस प्रकार इस घोषणा पत्र में साहित्य को दिशा दी गई, ये प्रगतिवाद का भारतीय रूप था, जिसमें साहित्य के उद्देश्य को परिभाषित किया गया, कवि के कर्त्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया और जिसे आगे चलकर प्रगतिवादी साहित्यकारों ने अपना आदर्श माना ।

"प्रगतिशील लेखक संघ" का दूसरा अधिवेशन 1938 में कलकत्ता में हुआ जिसके अध्यक्ष कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर थे किन्तु अस्वस्थ होने के कारण वह अधिवेशन में न आ सके और उनकाघोषणा पत्र पढ़कर सुनाया गया–

"प्रत्येक भारतीय लेखक का कर्तव्य है कि वह भारतीय जीवन में होने वाले परिवर्तनों को अभिव्यक्ति दे और साहित्य में वैज्ञानिक बुद्धिवाद का समावेश करके देश में क्रांति की भावना के विकास में सहायता पहुँचाये।उन्हें साहित्य समीक्षा के ऐसे दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए, जो परिवार धर्म,काम,युद्ध और समाज के ज्वलंत प्रश्नों पर सामान्यतः प्रतिक्रियाशील तथा पुराणपंथी प्रवृत्तियों का विरोध करे उन्हें ऐसी साहित्यिक प्रवृत्तियोंका विरोध करना चाहिए, जो साम्प्रदायिकता जातिद्वेष तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की भावना को पुष्ट करती हो।हमारे संघ का उद्देश्य साहित्य तथा अन्य कलाओं को जो अभी तक रुढ़िपंथी वर्गों के हाथ में पड़कर निर्जीव होती जा रही हैं, उनको उन हाथों से मुक्त कराके उनका निकटतम संबंध जनता से कराना और उन्हें जीवन के यथार्थों का माध्यम और नये विश्व का निर्माण करने वाली शक्ति बनाना है।[2]

दूसरे अधिवेशन ने अन्य भाषाओं के लेखकों को भी इस नयी धारा को प्रगतिवाद नाम से प्रचलित हुई आकर्षित किया। और इस धारा का व्यापक प्रचार होने लगा,लेखकों में एक नयी चेतना, एक स्फूर्ति दृष्टिगोचर होने लगी। लेखकों की कलम आग

- -

1– प्रो०कृष्ण लाल हंस–"प्रगतिवादी काव्य साहित्य"– संस्करण– 1971 पृ०– 19–20

2– शिव कुमार मिश्र–प्रगतिवाद ,प्रथम संस्करण– 1966 पृ०– 17–18

उगलने लगी, विद्रोह की चिन्गारियाँ फूट पड़ी और रचनाओं में पन्न सदियों से पीड़ित शोषित जन सामान्यके आंसुओं से गीले होने लगे।

दूसरे "प्रगतिशील लेखक संघ" के अधिवेशन के एक वर्ष बाद दूसरा विश्व-युद्ध आरंभ हो गया जो मानवीय मूल्य केलिये एक खतरा बन गया, मानवता खतरे मेंपड़ गयी उसका प्रभाव भारतपर भी पड़ा आर्थिक संकट देश के सामने मुँह फैलाये खड़ा था। लेखकों का ध्यान इस ओर चला गया और वह फासिज्म का विरोध करने में जुट गयेएक तरफ फासिज्म का दमन चक्र सारे विश्व में चल रहा था दूसरी ओर स्वाधीनता संग्राम अपने जोर पकड़ रहा था इसी बीच सन् 1942 में दिल्ली में तीसरा अधिवेशन प्रारंभ हुआ यह अधिवेशन मुख्यतः फासिज्म का विरोध कर के ही रह गया-"फासिज्म की विजय ने समस्त प्रगतिशील आन्दोलनों और विचारों को ठेस पहुँचाई है। सांस्कृतिक आत्माभिव्यक्ति के मूल स्रोत को बंद कर दिया है। जनता के उत्तराधिकार का नृशंसता से विनाश किया है। आज की दुनिया में फासिज्म की विजय कामतलब एक नये अंधकार युग की शुरुआत होगी। इस संकटको दूर करने में जनता को अपना कर्तव्य पूरा करना होगा। हमारा कर्तव्य होगा कि हम देश में एकता पैदा करें और जातियों के बीच की खाई पाट दें। अपनी रचनाओं के द्वारा हमें फासिज्म के खिलाफ अपने को दिमागी तौर पर मजबूत बनाने में जनता की मदद चाहिए।"[1]

इस प्रकार प्रगतिवादी कवि समसामयिक विषयों पर लिखते रहे समय की सभी परिस्थितियाँ लेखकों पर प्रभाव डालती रहीं फासिज्म पर कड़ा प्रहार करने के बाद सन् 1943 में बंगाल में अकालपड़ाकवियों की लेखनी उस मानव हा-हाकार को व्यक्त करने में जुट गई।

प्रगतिशील लेखक संघ का चौथा अधिवेशन एक वर्ष बाद सन् 1943 ई0 में हुआ इसके अध्यक्ष साम्यवादी नेता श्रीपाद अमृतडांगे थे ये अधिवेशन बम्बई में हुआ-इस घोषणा पत्र में कहा गया -"इस गंभीर संकट के काल में हिन्दुस्तान के प्रगतिशील लेखकों का कर्तव्य है कि

- -

1- शिवदान सिंह चौहान-"प्रगतिवाद" पृ0-340 -प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद पृ0-344 सन् 1946

वे राष्ट्र के मनोबल को दृढ़ बनाये। उनका फर्ज है कि वे साहस और संकल्प को मजबूत करें, ताकि हमारी आजादी का दिन नजदीक आये, हमारी संस्कृति और सभ्यता सुरक्षित रहे, उसकी उन्नति हो और हम कठिन संकट काल से स्वतंत्र, शक्तिशाली तथा संगठित होकर निकल सकें। प्रगतिशील लेखक सदा से भारत की स्वतंत्रता और देश में एक न्यायोचित सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था के लिए लड़ते रहे हैं।"[1]

ये अधिवेशन भारत की स्वतंत्रता के लिये आवाज उठाने के लिये हुआ प्रतीत होता है इसमें साम्राज्यवाद को समाप्त कर देश में समाजवाद की स्थापना पर बल दिया गया। देश को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद करना इस घोषणा पत्र का उद्देश्य था। "किंतु विडंबना यह थी कि भारतीय साम्यवादी दल अपने अंतर्राष्ट्रीय आग्रहों में उलझ कर विपरीत करनी करता रहा जिसका प्रभाव प्रगतिशीलता की अभिव्यक्तियों पर भी पड़ा।"[2] सन् 1950 में मराठी कहानीकार और श्रमिक नेता अण्णा भाऊ साठे के सभापतित्व में प्रगतिशील लेखक संघ का पाँचवा अधिवेशन बम्बई में हुआ। 1953 में पुनः ये अधिवेशन दिल्ली में हुआ। लेकिन अब पहले जैसा जोश और उत्साह लेखकों में नहीं रह गया था, वह अब एक राजनैतिक पार्टी का रूप धारण कर चुका था। इसी संघ का अंतिम अधिवेशन सन् 1978 में "डा० नीहार रंजन रे" की अध्यक्षता में दिल्ली में हुआ था।

इन अधिवेशनों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं ने भी प्रगतिवादी साहित्यकारों का मार्ग प्रशस्त किया और समय-समय पर साहित्य के उद्देश्यों को विश्लेषित करते हुए कलाकारों का कर्तव्य निर्दिष्ट किया और उन्हें परिस्थितियों से अवगत कराया। प्रेमचन्द जी के सम्पादन में हंस एवं जागरणपत्र निकाले गये जिसमें प्रगतिवादी साहित्य की भाव-भूमि स्पष्ट की गई। प्रेमचन्द ने जनवरी के "जागरण" के सम्पादकीय में साम्यवादी चेतना का प्रतिपादन करते हुए लिखा था-" साम्यवाद का विरोध वही तो करता है जो दूसरों से ज्यादा सुख भोगना चाहता है, जो दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता है। जो अपने को

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1- शिवदान सिंह चौहान-"प्रगतिवाद" पृ0-344 सन् 1946

2- हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका- अनिल कुमार -पृ0- 135

भी दूसरों के बराबर समझता है, जो अपने में कोई सुर्खाब का पर लगा हुआ नहीं देखता, जो समदर्शी है, उसे साम्यवाद से विरोधक्यों होने लगा?" सन् 1937 के मार्च के माह में "विशाल भारत" में श्री शिवदान सिंह चौहान ने "भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता" नामक एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने कहा -----"कला कला के लिये नहीं वरन् संसार को बदलने के लिए है। इस नारे को बुलन्द करना प्रत्यक प्रगतिशील साहित्यिक का फर्ज है। " इसके अतिरिक्त सुमित्रानन्द पन्त और नरेन्द्र शर्मा के सम्पादकत्व में"रूपाभ" पत्र निकला जो शुद्ध प्रगतिवादी था और इसने साहित्य के क्षेत्र में छायावाद के अन्त और प्रगतिवाद के जन्म की उद्घोषणा की ।

प्रगतिवाद का जन्म कोईआकस्मिक घटना न थी और न ही वे पूर्णतः विदेशी था। व्यवस्था में नवीनता और परिवर्तन की आवश्यकता तभी अनुभूत होती हैजब प्रचलित व्यवस्था की विषमता असह्य हो जाय। "कोई भी नवयुग, चाहे साहित्य का हो, चाहे समाज का अथवा राजनीति का हो वह अपने साथ घटनाओं, विचारों एवं वातावरण को लंबी श्रृंखला लिए रहता है।- ----इसी कारण हमें प्रगतिशील तथा क्रांतिकारी विचारधारायें किसी घटनात्मक परिणाम के रूप में सहसा उद्भूत नहीं प्रतीत होती वरन् हम उनकी अपनी वैचारिक परंपरा से भीपरिचित होते हैं जो एक निश्चित समय में अनुकूल अवसर पाकर सबसे ऊपर आ जाती है। इसी कारण हमें यह परिवर्तन आकस्मिक तथा अस्वाभाविक नहीं लगता।"[1] इसके अतिरिक्त जब किसी भी धाराका प्रसूत होता है तो वह सहसा नहीं होता वह पहले से विकसित हो रहा होता है और नयी धारा के चलते पूर्व की धारा का पूर्णतः ह्रास नहीं होता वह भी चलती रहती है नयी धारा के साथ साथ । कभी कभी कईधारायें एक साथ चलती रहती हैं। प्रगतिवाद भी अपने समय में अकेला नहीं चला उसके साथ-साथ और भीधारा की रचनायें होती रही छायावाद भी उसके साथ चलतारहा।

साहित्य में मार्क्सवादी चेतना की प्रतिध्वनि-

राजनैतिक और सामाजिक जीवन पर रूसी क्रांति का प्रभाव प्रचुर मात्रा में बढ़ गया था, अतः उसकी साहित्य में अभिव्यक्ति भी अनिवार्य हो गई थी। मार्क्सवादी

1- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास- चतुर्दश भाग पृ0-40- नागरी प्रचारिणी सभा- काशी- सन् 1985

विचारधारा ने आशा का संचार किया और व्यक्ति को संगठित होकर संघर्ष करने का संदेश दिया अ: आशावादी चेतनाकी लहर राजनीतिक और सामाजिक सीमाओं को पार करती हुई साहित्य तक आ पहुँची जहाँ आकर उसे पूर्णता प्राप्त हुई उसे सागर की भाँति साहित्य ने अपने आप में अंगीकार कर लिया और मार्क्सवादी धारा का प्रचार प्रसार व्यापक रूप से होने लगा। कलाकारों का ध्यान इस नवीन सिद्धान्त की ओर आकर्षित होने लगा सदियों से भटकते मन को एक सहारा दिखाई दिया और वहउसे थामकर इस संघर्षमय जीवन से टक्कर लेने के लिये तैयार हो गया।राजनैतिक आन्दोलनों श्रमिकों की चेतना, मजदूरों की संगठन चेतना, पत्र-पत्रिकाओं और विभिन्न संस्थाओं आदि ने मार्क्सवादी धारा कीपृष्ठभूमि तैयार कर दी। "आर्थिक विषमता को लोग पहले से ही अनुभव कर रहे थे अब मार्क्सवादी विचारधारा के स्पर्श से उनकी वर्ग चेतना भी जाग उठी।युग दृष्टा, संवेदनशील कवियों ने जीवन की इस सत्य को देखकर युग की आवश्यकता को हृदयगंम कर उसे अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करने लगे।इन कवियों के स्वर काव्य के पूर्ववर्ती परम्परागत स्वरों से भिन्न थे। शोषित एवं श्रमिक वर्ग के प्रति सहानुभूति , शोषण एवं अत्याचार का विरोध, श्रेणी सजगता तथा शोषकवर्ग के प्रति घृणा एवं विद्रोह की भावना, जनशक्ति में आस्था, विजय में विश्वास, अत्याचार, अनीति और विषमता को मिटाकर साम्य के आधार पर समाज के नव निर्माण के लिये क्रांति का आवाहन, जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण आत्मनिर्भरता एवं स्वाभिमान की भावना, मानवता का समर्थन, सोवियत के प्रति सहानुभूति एवं प्रशंसा का भाव, समाजवादी विधान में विश्वास आदि अनेक ऐसी बातें थी जो स्पष्टरूप से इस बात का संकेत कर रही थी कि परम्परागत हिन्दी काव्य धारा की एक शाखा उससे अलग होकर एक नया मोड़ ले रहीथी, जिसमें प्रवाहित होने वाला काव्यरूपी जल तो वही है परन्तु उसके प्रवाह की दिशा नवीन है।"[2] हिन्दी कीद्विवेदी युगीन और भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय काव्य धारा ने मार्क्सवादी विचारधारा को हिन्दीकाव्य में पैर जमाने में और विकसित होने में अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दिया है। हिन्दी के साथ-साथ प्रादेशिक भाषाओं में भी अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया जिसमें

- -

1- हिन्दीकाव्य में मार्क्सवादी चेतना-जनेश्वर वर्मा-पृ0- 232 ग्रन्थम कानपुर-सन् 1974
2- वही.

मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट था जिनमें बंगला के "तीन मंजूर" मार्क्सपथीऔर जनशक्ति, मलयालम के प्रभातम, तेलगू के "नवशक्ति" और तमिल के "जनशक्ति" का नाम उल्लेखनीय है।

निबन्धों में मार्क्सवादी धारा पूर्णतय: स्पष्ट होने लगी और सिद्धान्तों के विवेचन की दृष्टि से इस युग के निबन्ध अत्यन्त उत्कर्ष और उच्चकोटि के हैं। सन् 1936 में हंस में प्रकाशित प्रेमचन्द का निबन्ध "महाजनी सभ्यता" वर्ग संघर्ष का अनुपम उदाहरण है लेखक ने महाजनी समस्या को मार्क्सवादी ढंग से सुलझाने पर बल दिया-आज दुनिया में महाजनों का ही राज्य है। मनुष्य समाज दो भागों में बंट गया है, बड़ा हिस्सा तो मरने और खपने वालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में किए हुये हैं। इन्हें इस बड़े भाग के साथ किसी तरह की हमदर्दी नहीं, जरा भी रियायत नहीं, उसका अस्तित्व केवल इसलिए है कि अपने मालिकों के लिये पसीना बहाए, खून गिराये और एक दिन चुपचाप दुनिया से बिदा हो जाय।"[1]

मार्क्सवादी धारा का प्रचार पत्र-पत्रिकाओं में प्रारंभ हो गया अधिवेशन एवं सम्मेलन प्रारम्भ हो गये जिसमें मार्क्सवादी विचारधारा का प्रचार किया जाने लगा। अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखकसंघ का घोषणा पत्र 1938 में इसी विचार से ओत प्रोत निकला गया जिसमें वर्तमान समाज के प्रति लेखक का कर्तव्य और साहित्य के उद्देश्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया।

"प्रत्येक भारतीय लेखक का कर्तव्य है कि वह भारतीय जीवन में होने वाले परिवर्तनों को अभिव्यक्ति दे और साहित्य में वैज्ञानिक बुद्धिवाद का समावेश करके देश में क्रांति की भावना के विकास में सहायता पहुँचाये। उन्हें साहित्य समीक्षा के एक ऐसे दृष्टिकोण का विकास करना चाहिए जो परिवार, धर्म, काम, युद्ध और समाज के प्रश्नों पर सामान्यत: प्रतिक्रियाशील तथा पुरातनपन्थी प्रवृत्तियों का विरोध करें। उन्हें ऐसी

1- प्रेमचन्द "महाजनी सभ्यता" शीर्षक निबन्ध हंस सितम्बर सन् 1936- पृ0-5।

साहित्यिक प्रवृत्तियों का विरोध करना चाहिए जो साम्प्रदायिकता, जाति-द्वेष तथा मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की भावना को प्रतिबिम्बित करती हो।

हमारे संघ का उद्देश्य साहित्य तथा अन्य कलाओं को जो अब तक रुढ़िपन्थी वर्गों के हाथ में पड़कर निर्जीव होती जा रही है, उनको मुक्त कराके, उनका निकटतम संबंध जनता से कराना और उन्हें जीवन के यथार्थों की अभिव्यक्ति का माध्यम और नये विश्व का निर्माण करने वाली शक्ति बनाना है। भारतीय संस्कृति की सर्वश्रेष्ठ परम्पराओं के उत्तराधिकारी होने के कारण देश में फैली हुई प्रतिक्रिया की प्रत्येक भावना की आलोचना करना हमारा कर्तव्य है। और हम रचनात्मक तथा विवेचनात्मक साहित्य के माध्यम से उन सभी शक्तियों को बलप्रदान करेंगे जो हमारे देश को उस नये जीवन कीओर ले जायेंगी जिसके लिए वह संघर्षकर रहा है। हमारा विश्वास है कि नये भारतीय साहित्य को हमारे दैनंदिन जीवन की आधारभूत समस्याओं-भूख और विपन्नता-पुराणपन्थी सामाजिकता औरराजनीतिक परतंत्रता का चित्रण करना चाहिए। जो कुछ भी हममें उदासीनता निष्क्रियता और विवेकहीनता उत्पन्न करता है, उसे हम प्रतिक्रियाशील समझते हैं और उसका प्रतिवाद करते हैं, जो कुछ भी हममें एक आलोचक की वह स्वस्थ जिज्ञासा उत्पन्न करता है, जो संस्थाओं और प्रचलित रीति रिवाजों को विवेक की रोशनी में देखती है और हमें अपने कार्य में अपने को संगठित करने में परिवर्तन लाने में सहायता पहुँचाती है, उसे हम प्रगतिशील समझते हैं और स्वीकार करते है।"[1]

साहित्य को जनता की विरासत देशी विदेशीसभी कवियों ने स्वीकार किया है। साहित्य को ऐसा होना चाहिये जो जनता को प्रगति के मार्ग पर प्रशस्त करे मात्र मनोरंजन ही नहीं। लेनिन भी मानते हैं कि "साहित्य को तो जनता के महान विकास और प्रगति का ही एक अंग होना चाहिए।"[2]

मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव से ये अंतर आया कि कला की धारा को जनजीवन की ओर मोड़ दिया गया उसका सामाजिक उत्तरदायित्व का अहसास दिलाया

- -

1- प्रगतिवाद-शिवदान सिंह चौहान-पृ0- 237-338 से उद्धृत
प्रदीप कार्यालय-मुरादाबाद-सन् 1946

2- समाज और साहित्य-नई हिन्दी कविता का प्रगतिवादी पक्ष-पृ0- 179

गया । उसमें आम जनता की प्रस्तुति पर जोर दिया गया। साहित्य के लक्ष्य को स्पष्ट किया गया और उस परजनता का अधिकार माना गया"कला जनता की विरासत है।उसकी व्यापक और प्रसरणशील जड़ों को विस्तृत जनता के मर्म तक पहुँचना चाहिए।उसमें जनता के विचारों,इच्छाओं और भावों की वह सामूहिक परिणति होनी चाहिये जो लोक परम्परा की प्रगति को बल दे सके और सत्य को साम्यवादी जनता ने कला को यही क्रान्तिकारी योजना प्रदान की है और साहित्य शास्त्र को यही अभिनव अर्थ दिया है कि जनता की सेवा मानवता को विविधमुखी प्रगति के साथ पूर्ण विनियोग ही साहित्य और कला का लक्ष्य होना चाहिये।"[1]

डा० सुधीन्द्र के अनुसार इस युग में कार्ल मार्क्सने शिक्षित वर्ग को नया जीवन दर्शन दिया है आज पूँजीवाद,साम्राज्यवाद फासिस्टवाद के साथ मरणासन्न है। इस प्रकार विश्व इतिहास की प्रगति कीअगली कड़ी होगी सर्वहारा का अधिनायकत्व और अंत में वर्गहीन समाज की स्थापना। उस स्थिति को लाने के लिए साहित्य और कला को अपना सक्रिय योग देना है। इसी धर्म का पालन करने में वह प्रगतिशील है।"[2]

समाज के सभी जिम्मेदार कलाकारों का ध्यान समाज की इस महत्वपूर्ण जिम्मेदारी को ओर आकर्षित हुआ और सभीसर्वहारा वर्ग का पक्ष ग्रहणकर पूंजीवाद के सर्वनाश के लिये मैदान में उतर पड़े और बाकी के कलाकारों के अपने कर्तव्यों के प्रति जाग्रत करने मेंजुट गये कुछ छायावादी कवि जो मात्र रोमान्स और प्रकृति के घेरे में फँसे थे कल्पना की ऊँची उड़ाने भर रहे थे वह भी धरती पर उतरने लगे। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक डा० नगेन्द्र ने मार्क्स के विचारों का समर्थन किया और उसकी आवश्यकता पर बल दिया।" जगत का एक मात्र सत्य भौतिक जीवन ही है।उसी का स्वस्थ उपभोग हमारा ध्येय है-इस भौतिक जीवनकी प्रमुख संस्था है समाज, जिसका आधार है अर्थ।----आज के समय में दो विरोधी शक्तियाँ हैं:पूँजीवाद और साम्राज्यवाद। पूँजीवाद जिसका साम्राज्यवाद भीएक अंग है, [illegible] है और साम्यवाद विकासोन्मुख। निदान प्रगतिवादी साम्यवाद का पोषक है और पूँजीवाद का शत्रु है। बल्कि यों कहिये कि प्रगतिवाद साम्यवाद की ही साहित्यिक है।----साम्यवाद से सहज संबंध होने के कारण प्रगतिवादी साहित्य को मुख्यतः

1- समाज और साहित्य-नई हिन्दी कविता का प्रगतिवादी पक्ष-पृ०- 182

2- डा० सुधीन्द्र -हिन्दीकविता का क्रान्ति युग-पृ०- 443--445
हिन्दी कविता में युग[illegible]-दिल्ली-सन् 1950

सामाजिक या सामूहिक चेतना मानता है वैयक्तिक नहीं। जिस प्रकार साम्यवाद समष्टि या समूह के हितों की चिन्ता और रक्षा करता है, व्यक्ति के नहीं उसी प्रकार प्रगतिशील साहित्य समाज के सुख-दुख की अभिव्यक्ति को ही महत्व देता है---आज सत्य से तात्पर्य है भौतिक वास्तविक, शिव का अर्थ है भौतिक जीवन----सामाजिक स्वास्थ्य में सहायक होने वाला और सुन्दर का आशय है स्वाभाविक एवं प्रकृत।"[1]

अब समय आ गया था जनता पूंजीवाद के फन्दे को समझने लगी थी अपने हित का उसे ध्यान आ गया था आम जनता में धीरे-धीरे जागृति फैली उनमें अपने अधिकार के प्रति संघर्ष की भावना उभरी और उन्हें आवश्यकता पड़ी मार्गदर्शन की और ये कार्य साहित्य आसानी से कर सकता था। अतः कलाकार ने इस जरूरत को पहचाना और आम जनता की पीड़ा को समझने की कोशिश की उन्होंने सोचा-"मनुष्य की निराशा, उसके पिछड़ेपन और उसकी जड़ता को बनाये रखना यह एक व्यापक षड्यंत्र है जिसे अवकाश भोगी अभिजात्य रच रहा है तब उसे यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि वह ऐसे काव्य, उपन्यास नाटक, संगीत, चित्र रचना करे जो मनुष्य का मोह भंग कर सके और निहित स्वार्थ वाले अभिजात्य की क्रूरता और षड्यंत्र तथा दुष्चेष्टन को उद्घाटित कर दे। यह विचार धीरे-धीरे आस्था का रूप लेने लगा कि उत्पादन के साधनों का स्वामित्व बदल दिया जाये यानी मुट्ठी भर श्रेष्ठजनों के स्वामित्व के स्थान पर सर्वहारा वर्ग का स्वामित्व स्थापित हो जाये तो एक नयी जन संस्कृति की और जन साहित्य की पुनर्रचना संभव है।"[2]

इस समय साहित्य करवट बदल रहा था नयी स्फूर्ति से आह्लादित था। यूँ तो साहित्य में सामाजिक परम्परा भारत में प्राचीन है किन्तु कुछ समय के लिये यह धारा अवरुद्ध हो गई थी और कवि मनुष्य की अहम आवश्यकताओं से दूर श्रृंगारिक कल्पनाओं में मग्न रहने लगे थे-"एक समय मनुष्य के विराट अस्तित्व को नकारकर काव्य ने दिशा बदल दी थी। उसमें मनुष्य की सामाजिक तृष्णाओं और अतृप्तियों की चर्चा नहीं थी। साहित्य की जुबान आम आदमी की जबान से अलग होती जा रही थी तब मनुष्य की इच्छाओं तथा साहित्य को लौटाने का काम महत्वपूर्ण था और इस महत्वपूर्ण काम को प्रगतिवादी साहित्य

1- डा० नगेन्द्र आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- पृ०-99

2- लेनिन और भारतीय साहित्य में संकलित नंद चतुर्वेदी के निबंध-लेनिन का भारतीय साहित्य पर प्रभाव से उद्धृत। गौतम बुक डिपो-सन् 195।

कर्मियों ने किसी कदर सम्पन्न किया। प्रगतिवादी साहित्य कर्मियों का यह विश्वास था कि किसी भी रचनाकार को आकाश में धुएं की लंबी लकीर बनाने के बजाय समाज की क्रूर, दुष्ट और शोषण करने वाली शक्तियों के साथ संघर्ष करने की इच्छा शक्ति पैदा करनी चाहिए। यह बहस बाद में उठी कि इस प्रकार का साहित्य, नारेबाजी, विज्ञापन, अकलात्मक और पार्टी दस्तावेजों की शक्ल ले सकता है, लेकिन एक बार तो साहित्य को रूमानी और महज वैयक्तिक होने से बचाना था जिसे प्रगतिवादियों ने एक सीमा तक बचा लिया।"[1]

स्वयं छायावाद केमुख्य कवि पन्त ने नवीन विचारधारा का स्वागत किया और प्राचीन की समाप्ति कर नवीन धारा की घोषणा कर दी और उन्होंने ऐसा क्यों किया इस पर वह कहते हैं-"कविता के स्वप्न भवन को छोड़कर हम इस खुरदरे पथ पर क्यों उतर आये इस संबंध में दो शब्द लिखना आवश्यक हो जाता है। इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा आकाश में पलने वाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव उस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है और युग जीवन ने उसमें चिर संचित सुख स्वप्नों को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड़ रहा है।"[2]

समय की मांग सबसे बड़ी होती है और सच्चा साहित्यकार उससे कभी दूर नहीं रह सकता भारतीय कवि सदैव से समाज के प्रति जिम्मेदार रहा है। क्या कारण था कि पन्त जैसा सुकोमल प्रकृति पर न्योछावर भावुक कवि ही सबसे पहले यथार्थ की कंकड़ीली धरती पर उतर आया कल्पना की ऊँची ऊँची पैंगे लगानेवाला झुग्गी झोपड़ियों में झांकने लगा। कोयल की कुहुक सुनने वाला भूखे बच्चों की किलकारियां भी सुनने लगा। सुकोमल सुन्दर नारी के स्वप्न देखने वाला, झुके झुके, मैले कपड़े सर पर टोकरा लिये एक श्रमिक और बेबस माँ की ओर मुड़ गया, ये और कुछ नहीं [illegible] थी जिसेकवि ने सुना और स्वीकार किया-"मेरा संसार बदल गया है, मेरा दृष्टिकोण बदल गया है, मैं बदल गया हूँ। कल वाली कल्पनायें, कल वाले सपने वे सबके सब न जाने कहाँ गायब हो गये, वास्तविकता की कुरूपता से जकड़ा हुआ मैं

1- लेनिन और भारतीय साहित्य-नंद चतुर्वेदी-पृ0-48। हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ से उद्धृत-डा0 नगेन्द्र सन् 195।

2- ग्राम्य सन् 1938 वर्मा की मैं और मेरा युग

आज के संघर्ष में अपने पन को खो चुका हूँ, यही नहीं यह संघर्ष ही अपना बन चुका है।"[1]

काव्य में पंत ने समाज की आवश्यकता की ओर कवियों का ध्यान आकर्षित किया तो दूसरी ओर गद्य साहित्य में प्रेमचन्द ने कलाकारों को उनके कर्तव्य के प्रति सचेष्ट किया। 1936 में प्रगतिशील लेखक सम्मेलन में उन्होंने सभापति पद से दिये गये भाषण में समयकी माँग पर बल देते हुए कहा-"जब साहित्य पर संसार की नश्वरता का रंग चढ़ा हो और उसका एक एक शब्द नैराश्य में डूबा, समय की प्रतिकूलता के रोने से भरा और श्रृंगारिक भावों का प्रतिबिम्ब बना हो तो समझ लीजिए कि जाति जड़ता और ह्रास के पंजे में फंस चुकी है और उसमें उद्योग तथा संघर्ष का बल बाकी नहीं रहा। उसने ऊँचे लक्ष्यों की ओर से आँखें बन्द कर ली हैं और उसमें से दुनिया को देखने समझने की शक्ति लुप्त हो गई है।"[2]

कवि का हृदय अत्यन्त भावुक है, उससे किसी का दर्द नहीं देखा जा सकता। मानव समाज का दर्द ही कवि का दर्द है और वही कवि की अनुभूति है जो वाणी पाकर अभिव्यक्त होता है "उसका दर्द से भरा हृदय इसे सहन नहीं कर सकता कि एक समुदाय क्यों सामाजिक नियमों और रूढ़ियों के बन्धन में पड़कर कष्ट भोगता रहे क्यों न ऐसे सामान इकट्ठे किये जायें कि वह गुलामी और गरीबी से छुटकारा पावे।"[3]

" रम्जे हयात जोई जुज्दर तीपश नयाबी
दर कुल जुम आरमीदन नंगस्त आबे जूरा।।

"अगर तुझे जीवन के रहस्य की खोज है, तो वह तुझे संघर्ष के सिवा और कहीं नहीं मिलने का। सागर में जाकर विश्राम करना नदी के लिए लज्जा की बात है।।

"हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी, अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्हीं की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलंबित था और उन्हीं के सुखदुख, आशा-निराशा प्रतियोगिता और प्रतिद्वंद्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अंतःपुर और बंगलों की ओर उठती थी, झोपड़े और खंडहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे, उन्हें वह मनुष्यता के परिधि के बाहर समझता था। कभी इनकी चर्चा करता भी, तो इनका मजाकउड़ाने के लिए।"[4]

1- रूपाभ- 1938, वर्मा जी मैं और मेरा युग
2- साहित्य का उद्देश्य-प्रेमचन्द, प्रगतिशील लेखक सम्मेलन में सभापति पद से दिया गया अभिभाषण-हंस पत्रिका से उद्धृत सन् 1936 जुलाई
3-साहित्य का उद्देश्य-प्रेमचन्द हंस- 1936 जुलाई
4-वही,

इस प्रकार साहित्य में प्रगतिवादी सामाजिक धारा का प्रवाह आरंभ हो गया। कुछ प्रतिष्ठित कवियों ने इसके लिये वातावरण तैयार किया और नव युवक कवियों केलिये मार्गदर्शन किया। नवीन कवि सामाजिक धारा की ओर आकर्षित हुए और युगों से उपेक्षित जनता का प्रतिनिधित्व करने वाला साहित्य रचनेलगे। प्रगतिवाद विदेशी है यह कहना और सोचना सरासर गलत है। भारतीय साहित्य में प्रारंभ से सामाजिक चित्रण का बोलबाला है, भले ही उसका रुप कुछ बदला हुआ हो मगर उस समय समाज की जो परिस्थिति थी उसी के अनुरुप साहित्य रचा गया। उस समय समाज में जो कुरुतियाँ थीं उनके विरुद्ध सभी कवियों ने आवाज उठायी। आज की परिस्थिति बदली हुई है आज की समस्यायें दूसरी हैं अतः उसी के अनुरुप साहित्य कीरचना हुई। उसमें विदेशी धारा कहाँ से आ गई हमारा साहित्य इससे सूना कभी नहींरहा बल्कि पहले का साहित्य आज से ज्यादा प्रगतिशील था वह किसी लीक से बंधा नहीं था उसकाकोई दायरा नहीं था आज का कवि अपने एक सीमित दायरे में बन्द है वह उससे बाहर नहीं निकल सकता वह एक लीक से बंधा हुआ है।

भारत की परिस्थितियाँ पहले से इस प्रकार के साहित्य के लिये तैयार हो रही थी हाँ उस पर प्रभाव कुछ अवश्य पड़ा मार्क्सवाद का। रुस की सफल क्रान्ति ने एक आशा अवश्य जगायी और भारतीय क्रान्तिकारियों को प्रेरणा अवश्य दी। मार्क्स पर भी हर्वीगेल वगैरह का प्रभाव पड़ा था वह मात्र मार्क्स का ही दर्शन नहीं था जो भारत आया और फिर कोरा मार्क्सदर्शन भारत मेंनहीं अपनाया जा सका वह अपने देश की परिस्थितियों और संस्कृति के अनुसार था भारत की संस्कृति दूसरी थी। मार्क्स के हर सिद्धान्त पर सहमत होने के बाद भी आध्यात्मिक पक्ष पर भारत उसे पूरा अपना नहीं सका भारत एक धर्म प्रधान देश है। सदियों से उसका मन एक आस्था और श्रद्धा में पला है उसका मन ईश्वर के सम्पूर्ण खण्डन के लिये तैयार नहीं हो पाया फलतः यहाँ मतभेद हुआ और भारतीयों ने एक मध्यम रास्ता अपनाया जिसमें ईश्वर को पूरी तरह नकारा नहीं गया बल्कि अन्ध-विश्वासों का बहिष्कार किया गया। इस प्रकार प्रगतिवाद शुद्ध भारतीय धारा केरुप में प्रकट हुई -

भारतीय साहित्य में सामाजिक चित्रण की परम्परा-

कुछ लोगों का विचार है कि साम्यवाद का नारा भारत में पाश्चात्य जगत से आया जिसका चित्रण मात्र प्रगतिवादी साहित्य में हुआ किन्तु यह सत्य नहीं है भारत में सामाजिक चित्रण और साम्यवाद का भाव हिन्दी साहित्य के शैशव काल से ही रहा है बल्कि उससे भी पहले हमारे वेदों, उपनिषदों, पुराणों आदि में जातियों में सामाजिक सहयोग एकता एवं कर्मशीलता का परिचय मिलता है। वेदों के मंत्रों में परस्पर सहयोग एवं सहृदयता पर जोर दिया है। उसमें सम्पत्ति को समाज का अधिकार माना गया है, सम्पत्ति पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं सभी सामूहिक रूप से श्रम करते थे और सामूहिक रूप से ही अपनी अपनी आवश्यकतानुसार उसका उपभोग भी करते हैं-

" अर्यम्यं वरुण मित्रयंवा सखत्यं वा सदोमद भ्रातरवां
वेशं वा नित्यं वरुणावरणं वा यत्सीभागश्चकुमा शिश्रायस्तत। "[1]

वेदों में धार्मिक आडम्बरों की भी खिल्ली उड़ायी गयी है, यज्ञ में होनेवाली हिंसा के विरुद्ध सामाजिक चिन्तकों ने आवाज उठायी है। उनकी समझ में श्राद्ध, पुनर्जन्म आदि महज एक ढकोसला है इसी परिप्रेक्ष्य में बृहस्पति ने यज्ञ में होने वाली हिंसा पर व्यंग्य किया "यज्ञ में मरा हुआपशु यदि स्वर्ग जायेगा तो यजमान अपने पिताको ही उस यज्ञ में क्यों नहीं मारता? मरे हुए प्राणियों की भी तृप्ति का साधन यदि श्राद्ध होता है तो बाहर जाने वाले पुरुषों केराह खर्च के वास्ते वस्तुओं को लेना भी व्यर्थ है।---यदि आत्मा देह से पृथक है, वह इस देह से निकल कर परलोक में जाता है तो क्यों नहीं स्वजनों के प्रेम से व्याकुल हो पुनः लौट आता है?-----बात यह कि ब्राह्मणोंने अपनी जीविका का उपाय रचा है। मृत जीवों का प्रेत कर्म किसी और उद्देश्य से नहीं किया जाता। "[2]

उपनिषदों मेंआकर कर्मकाण्डों का खुलकर विरोध हुआ और उन्होंने यज्ञ विधान और संस्कार आदि की जगह ज्ञानको प्रमुखता दी। समाज के चिन्तकों ने स्वस्थ समाज की संरचना के लिये गृहस्थ जीवन, सत्य, संयम और नैतिकता पर जोर दिया। उपनिषदों में नारी की सामाजिक चेतना पर भी महत्व दिया गया जिसकाउदाहरण गार्गी और याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद है। उस काल की नारियां विद्वान होतीथीं और समाज में उनको समान अधिकार

1- ऋग्वेद मंडल 5 सूक्त 85 मंत्र-6 आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य कृष्ण बिहारी मिश्र-पृ0-1 पर उद्धृत। आर्य बुक डिपो दिल्ली-1972

2- पशुश्चेन्निहतः स्वर्गम् ज्योतिष्टो में गमिष्यति-----।"वही, पृ0-3

प्राप्त था उनको पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे,घर की चहारदीवारी में बन्द रहकर घुटना ही उनका जीवन न था उनका अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता था।

इस सामाजिक व्यवस्था की परम्परा भारत मेंचलती हुई विकास पा रही थी और तत्कालीन साहित्य में उस समय की सामाजिक स्थिति का पूर्ण चित्रण प्राप्त होता है। रामायण काल में आकर समाज का और विकास होता है।बाल्मीकि की रामायण में समाज के स्वस्थ स्वरूप के दर्शन होते हैं जहाँ समान नीतियाँ थीं उस समय भी साम्यवाद का एक रूप विकसित था उस सामंत युग में भी सामंत जनता को कितने समान अधिकार प्राप्त थे। राम का जनता से अपने स्वजनों के समान ही कुशलमंगल पूछना एक धोबी के कहने पर सीता को घर से निकालना आदि इसबात की ओर संकेत करते हैं कि न्याय सबके लिये बराबर था अगर राजकुमार कोइ अपराध करता है तो उसको भी वही सजा मिलेगी जो किसी निम्न जाति या अन्य किसीसाधारण व्यक्ति ने किया है। राम का केवट गुह और सबरी आदि को अपनाना जाति-पाँति के भेद का खंडन करता है। स्वयंवर की प्रथा स्त्री की स्वतंत्रता का प्रतीक है नारी पर कोई जबरदस्ती नहीं थी वह अपनी इच्छा से अपने जीवन साथी का वरण करती थी और अपने योग्य वर को चुनती थी अत: बेमेल विवाह और दहेज प्रथा की समस्या नहीं उठती थी कोई गरीब माँ-बाप धन की कमी से लोक-लाज के डर से अपनी लाडली कली को किसी मुरझाये बूढ़े फूल को सौंपने को मजबूर नहीं था।

किन्तु धीरे-धीरे वर्ण-व्यवस्था काआधार कर्म के स्थानपर जन्म होने लगा और जाँति-पाँति की व्यवस्था संकीर्ण रूप लेने लगी समाजमें शूद्रों का महत्व घटने लगा लोग उसे घृणा की दृष्टि से देखने लगे चाहे शूद्रों में अप्रतिम प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति ही क्यों न हो किन्तु यदि उसने निम्न जाति मेंजन्म लिया है तो उसका समाज के उच्चवर्ग की घृणा और उपेक्षा का पात्र बनना ही पड़ेगा।

महाभारत कालीन साहित्य में इस बदलते हुए समाज का कुछ कुछ रूप दिखाई देने लगा था। अब सामाजिक बन्धन कुछ जटिल होने लगते हैं। किन्तु जाति व्यवस्था अभी इतनी संकीर्ण नहीं हुई थी उसका कुछ ही प्रभाव आरंभ हुआ था। "गीता की समदृष्टि तो समाज की विषमता और व्यवहार भेद पर ही कुठाराघात करने वाली है, यद्यपि यह मानना पड़ेगा कि यह समान व्यवहार सामाजिक और धार्मिक स्वर पर ही अधिक है। कृष्ण के अनुसार वास्तविक सत्यज्ञ वही है जो ब्राह्मण और चाण्डाल को समान भाव से देखें-

विद्या-विनय-सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनी
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता: समदर्शिन:।"[1]

उत्तरवैदिक काल के बाद से भारत में कर्मकाण्ड बहुत जटिल हो गये। धार्मिक क्षेत्र में वाह्याडम्बर, अन्धविश्वास बढ़ने लगे, जाति-पाति के बन्धन जटिल हो गये छुआ-छूत की भावना बढ़ गयी, ब्राह्मण वर्ग घोर स्वार्थी होता गया अपने स्वार्थ के लिये उसने धर्म को अत्यन्त जटिल बना दिया यज्ञ में पशुबलि आदि की भावना प्रबल हो गई, यज्ञ करना जन सामान्य की सामर्थ्य से बाहर होगया। निम्नवर्ग के प्रति घृणा बढ़ गई, धर्म के दरवाजे निम्नवर्ग के लिए बन्द हो गये, उच्चवर्गीय समाज ने उनका बहिष्कार कर दिया अत: सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी चतुर्दिक पाखण्ड और स्वार्थ का वातावरण बन गया, सामान्य जनता निराश-हताश सी बिना पतवार वाली नौका के समान जीवन सागर में इधर-उधर भटकने, लड़खड़ाने लगी ऐसे विकट समय में गौतम बुद्ध का आविर्भाव हुआ और बौद्ध साहित्य में समाज की इस कुव्यवस्था का कड़ा विरोध हुआ और एक सामाजिक क्रान्ति की लहरदौड़ पड़ी, बौद्ध धर्म प्राणी मात्र के लिए सुलभ कर दिया गया। धर्म को सरल, संयमपूर्ण बनाकर सर्वजनग्राह्य बना दिया। जटिल कर्मकाण्डों का विरोध किया, कठोर जप-तप और पशुबलि आदि के प्रति विद्रोह किया। बुद्ध ने धर्म की गतिशीलता में विश्वासकिया उसकी रुढ़िबद्धता में नहीं। बौद्ध धर्म में व्यवहारिक जगत को महत्व दिया है। परलोक, पुर्नजन्म, आत्मा-परमात्मा आदि के विषय में न पड़कर मनुष्य के दुखों की निवृत्ति की ओर अधिक ध्यान दिया ।

जब जब समाज में कुरीतियां बढ़ी तब तक देश में सामाजिक आन्दोलन हुए, महापुरुषों ने आगे बढ़कर कुरीतियों का विरोध किया और समाज सुधारके लियेअपनी आवाज को बुलन्द किया, साहित्य ने भी आगे बढ़कर इस समाज-सुधार का बीणा उठालिया और साहित्यकारों ने समाज के प्रतिनिधित्व की बागडोर सम्भाली। मुसलमानों के आने के बाद से समाज का रूप निरन्तर कुत्सित होता है समाज में सबसे ज्यादा स्तर गिरा, नारी को पर्दे में कैद कर दिया गया और अनमेल विवाह, बाल विवाह , बहुविवाह, दहेज-प्रथा, सती प्रथा जैसी कुत्सित कुरीतियों ने जन्म लिया। समाज में विधवा की स्थिति दयनीय हो गई,

- -

1- आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र पृ0- 7-8, दिल्ली सन्- 1972

मनुष्य वो एक कुत्ते को तो पालकर प्यार से रख सकता है किन्तु अभागन विधवा नारी उसे किसी भी तरह स्वीकार नहीं। पति की मृत्यु के साथ ही वह पत्थर की समझ ली जाती है, जिसको सांस तक लेने का अधिकार नहीं। भोग-विलास ऐश्वर्य ने वेश्यावृत्ति को जन्म दिया और विधवा की शोचनीय स्थिति ने भी वेश्यावृत्ति में सहयोग दिया क्योंकि स्त्री आर्थिक रूप से पराधीन होती थी पति के मरते ही उसे घर से बन्दे कूड़े की तरह निकाल बाहर फेंका जाता था, अशिक्षित होने से वह और भी कुछ नहीं कर सकती थी अतः वह रूप नगरी के बाजार में अपने आपको इस भेड़िये समाज के आगे अर्पित करने को मजबूर हो जाती थी।

समाज के अलावा धर्म के क्षेत्र में भी अनेकों आडम्बर और अंधविश्वासों ने घर कर लिया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म की आड़ में घोर पाखण्ड ही करते थे अतः इन सबके प्रति घोर आक्रोश व्यक्त किया गया है। कबीर दास एक सच्चे समाजसुधारक थे उनका पूरा काव्य तत्कालीन समाज की कुव्यवस्था पर कुठाराघात करता है उन्होंने समाज में व्याप्त कुरीतियों के प्रति तीव्र घृणा दिखाते हुये इनके जन्मदाताओं की खुलकर खबर ली है।

मध्ययुग में सामाजिक चित्रण-

कबीरदास ने एकता का सन्देश दिया, उन्होंने जाति-पाति का विरोध किया उनकी दृष्टि में ब्राह्मण कुल में जन्म ले लेने से ही वह ब्राह्मण नहीं बन जाता, ब्राह्मण होता है अपने ज्ञान से कर्म से।-"

" जे तूं बाँमन बमनी जाया, तो आनवाँट ह्वै काहे न आया
जे तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनाँ क्यूँ न कराया।"[1]

कबीर ने समाज में व्याप्त छुआ छूत की भावना का कड़ा विरोध किया उनके अनुसार सभी मनुष्य समान हैं उनका शरीर एक ही मिट्टी से बना है सबके अंदर एक रंग का खून दौड़ रहा है सबमें एक ईश्वर का निवास है अतः हिन्दू, मुसलमान, शूद्र एक एक हैं इनको भिन्न दृष्टि से देखना गलत है-

---

1- कबीर ग्रन्थावली-पदावली संख्या- 41 पृ0- 79

* एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा
एक जोति थे सब उतपना, कौन ब्राह्मन कौन सूदा।।[1]

कबीर ने धर्म में व्याप्त अंधविश्वासों, कर्मकाण्डों का खुलकर विरोध किया है। उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के धर्मों की कुरीतियों का जमकर खण्डन किया है। कबीरदास ने बाह्य कर्मकाण्डों का विरोध किया है और जो लोग ईश्वर को तीर्थ में मंदिरों में ढूंढते फिरते हैं उनकी हंसी उड़ायी है। कबीर दास का यह दर्शन कि ईश्वर मन में है, आजके परिप्रेक्ष्य में खरा उतरता है, आज भी "मार्क्सवाद", मनोविश्लेषणवाद संसार में ईश्वर की उपस्थिति का खण्डन करते हैं और मानवीय कर्म को, भौतिक कर्म को ही सत्य स्वीकार करते हैं, कबीरदास के विचार भी उनके समय के संदर्भ के अनुसार प्रगतिशील ही थे, वेभी मानवीय धर्म एवं प्रेम पर विश्वास रखते थे, कबीर ने भी कर्म पर जोर दिया है वह स्वयं कपड़ा बुनकर अपनी जीविका चलाते थे आज का मार्क्सवाद भी कर्म पर जोर देता है कामचोर आलसी व्यक्ति उन्हें पसन्द नहीं। उस समय की जो पुकार थी उसी के अनुसार कबीरदास ने अपनी आवाज बुलन्द की और समाज में व्याप्त सभी कुरीतियों का डटकर मुकाबला किया।

* रोजा किया नमाज गुजारी, बंग देलोगसुनावा
हिरदे कपट मिले क्यूँ साईं, क्या हज काबे जावा।[2]

अतः मध्ययुगीन साहित्य में तत्कालीन समाज की झाँकी सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। हमारे देश के कवि सदैव समाज के प्रति जागरूक रहे हैं। हिन्दी साहित्य ने सदैव समाज का प्रतिनिधित्व किया है। कला का उद्देश्य ही कला जीवन के लिये माना गया, जो कला जीवन के लिये उपयोगी न हो, जो मनुष्य को उदात्त जीवन के लिये प्रेरित न करे वो कला बेकार है।

सामाजिक आंदोलन की यह धारा आगे बढ़ती रही कभी यह कुछ अक्षुण्ण हो जाती और कभी फिर तीव्र गति से प्रवाहित होने लगती। सगुण काव्य धारा में कवियों का मुख्य उद्देश्य अपने ईष्टदेव का गुणगान था। जनता जो एक घोर निराशा के सागर में डूबी

1-कबीर-कबीर ग्रन्थावली- [illegible] सबद-57 पृ0-82
2-कबीर ग्रन्थावली- वही -464 पृ0- 178

थी, उसको कोई संबल नजर नहीं आ रहा था, मुसलमान से पराजित होकर उसकी बुद्धि कुण्ठित हो रहीथी अतः समय की माँग के अनुसार कवियों ने निराशा के गर्त में डूबती-उतराती जनता को अध्यात्म की ओर मोड़ दिया और अपनी कल्पना द्वारा एक सरस, मधुर और कल्याणकारी रूप का सृजन किया जिसमें राम और कृष्ण के सुन्दर सलोने, मर्यादित, कल्याणकारी अवतार कल्पित किये गये और उनका परोपकारी, नैतिक चरित्र दिखाकर निराश और भ्रमित जनता के मनमें आस्था और आशा का संचार किया। इन कवियों ने भी अपनी तत्कालीन सामाजिक माँग को स्वीकार किया और अपनी रचनाओं में उसका भरपूर चित्रण किया।

सगुण धारा के कवियों ने अपने इष्टदेव के गुणगान के माध्यम से ही समाज में व्याप्त कुरीतियों का खंडन किया है और एक स्वस्थ समाज की कल्पना की है। एक ऐसा समाज जिसमें ऊँच-नीच, अमीर-गरीब सब बराबर हो कोई खाई न हो। इस तरह के चित्रण कवियों ने अपनी रचनाओं में अनेक स्थानों में किये हैं-सूरदास ने कृष्ण और सुदामा मिलन-प्रसंग के माध्यम से गरीब अमीर और ऊँच-नीच में समानता दर्शायी है इस मिलन में प्रेम कोसर्वोपरि चित्रित किया गया है सूरदासका नायक भी कोई राजा या सामंत न हो एक दूध दुहने वाला साधारण सा ग्वाला है जो मिट्टीमें खेलकर दूध पीताहुआ सुलभ बाल लीलायें करता हुआ गौएं चराता हुआबड़ा हुआ हैउसमें कुछ भी असाधारण नहीं सब कुछ स्वाभाविक है। सूरदास के श्रीपति के दरबार में जाति-पाँति की पूछनहीं होती है-

" कह्यो शुक श्री भागवत विचार
जाँति पाँति कोउ पूछत नाहिं, श्रीपति के दरबार।[1]

सूरदास की यह [illegible] प्रगतिशीलता ही थी जिन्होंने कृष्ण के बाल सखा रूप का वर्णन करके उन्हें एक सामान्य परिवार में जन्म लिया हुआ चित्रित करके अपने पराक्रम के बल पर कंस जैसे शक्तिशाली राजा के अत्याचार और शोषण के दमन चक्र को समाप्त कर दिया। ग्वालों की यह क्राँति आज के मजदूर वर्ग की क्राँति से भिन्न न थी बस तरीका थोड़ा भिन्न था वह अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपने अधिकारों के लिये लड़े थे किन्तु उनके उद्देश्य आज के मजदूर वर्ग के उद्देश्य के समान ही थे। कंस का वर्ग आज का पूँजीपति वर्ग था जो

1- सूरसागर-प्रथम स्कन्ध, आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दीसाहित्य लेखक कृष्ण बिहारी मिश्र-पृ0- 30 से उद्धृत। दिल्ली सन् 1972

चारों तरफ अपना आतंक फैलाये था और कृष्ण एक अहीर बालक गायों को चराने वाला उसने एकजुट होकर उस अत्याचारी शासन को चुनौती दी और उसके राज्य को नष्ट करके स्वयं एक स्वस्थ शासन की स्थापना की जिसमें साम्यवाद और समाजवाद की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

सूरदास भक्त कवि तो अवश्य थे किन्तु मानवीय जीवन को जो भाव उदात्त की ओर प्रवृत्त करता है मानि प्रेम उस पर ही जोर दिया आज का भी यही नारा है कि सबसे सहानुभूति करो सबसे प्रेम करो यही बातउस समय के भक्त कवियों ने भी कहीं। कोरे अंधविश्वास, ढोंग शरीर को कष्ट देने वाले कर्मो, यज्ञों का खण्डन किया-"

> जोग भस्म तनु दहे वृथा करि कर्म बंधावै
> जुहिम दाहिनी देहि गुफा बसि मोहि न पावै
> तजि अभिमान जो नावहि गदगद सुरहि प्रकाश।[1]

कृष्ण काव्य धारा के कवियों केप्रयास से जनता में कटुता और निराशा की भावना तो दूर हो गई अब आवश्यकता थी जनसाधारण को एक आदर्श और उदात्त जीवन जीने केलिये मार्गदर्शन की अतः यह काम पूरा किया रामभक्ति धारा के कवियों ने।राम का लोकमंगलकारी मर्यादा पुरूषोत्तम का रूप सामने रख कर कवियों ने एक आदर्शमय जीवन व्यतीत करने का जनता को प्रेरणा दी।

महाकवि तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना के समय तत्कालीन सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही उसकी कथा का संगठन किया था।उस समय का समाज घृणा और आपसीवैमनस्य का था अतः कवि ने भाई-भाई के निःस्वार्थ आदर्श प्रेम को दिखाकर हिन्दू जाति में व्याप्त वैमनस्य को समाप्त करने की कोशिश की।सती के आदर्श रूप को रखकर वर्तमान भारतीय नारी को जीवन का संदेश दिया तथा उसे विषम परिस्थितियों में दुख से विचलित होकर धैर्य खोने की नहीं बल्कि हर मुसीबत का डटकर सामना करने की प्रेरणा दी। सीता एक कोमलांगीराजकुमारी और राजवधू होते हुए भी, कंकड़ीले सिंह पशुओं से भरे भयानक जंगल में जाने से नहीं घबड़ायी और राक्षस द्वारा अपहरण कर किये जाने पर भी अनेक प्रकार से डराये, धमकाये जाने के बाद भी अटल , अडिग भाव से हर विपत्ति

1- सूरसागर-दशम स्कन्ध-आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- कृष्ण बिहारी मिश्र- पृ0-32 दिल्ली सन् 1972

का सामना करती रही। पति के द्वारा त्याग दिये जाने पर भी सीता का जो रूप वाल्मीकि रामायण में दर्शाया गया वह एक प्रेरणा स्रोत था भारतीय नारी के लिये। उस समय भी मुगलों के आक्रमण से चारों तरफ आतंक का राज्य था नारी स्वयं को असहाय महसूस कर रही थी, उसके लिये सीता का चरित्र मार्गदर्शक बनकर सामने आया जिसने नारी जाति में एक नयी चेतना एक नयी स्फूर्ति फूँक दी।

तुलसी देश में व्याप्त जाति पाँति के भेद भाव से और निम्न जाति के प्रति समाज कीउपेक्षा से बहुत क्षुब्ध थे अतः उन्होंने अपनी रचना में नीची जाति के व्यक्तियों के चरित्र को उच्च स्तर का दिखाया है। केवट राम को पार उतारता है, राम उसे कुछ देना चाहते हैं मगर केवट केवल प्रेम का भूखा है उसे और कुछ नहीं चाहिये कितना निःस्वार्थ प्रेम था और राम ने भी उसे गले लगाकर एक आदर्श प्रस्तुत किया जिसने तुलसी की इच्छा को व्यक्त किया है। निषाद और गुहा का राम के प्रति आदर और आतिथ्य सत्कार इस बात की ओर संकेत करता है कि वे निम्नजाति के व्यक्ति भी उच्च संस्कारों से युक्त थे सारे संस्कारों का ठेका मात्र उच्चवर्ग का ही नहीं था। राम का सबके प्रति बराबर का स्नेह सामाजिक प्रगतिशीलता का ही उदाहरण है। कवि ऊँच नीच के बीच समानता के समर्थक हैं।

तुलसी की आध्यात्मिक भावना के पीछे इस लोक के आदर्श जीवन की भावना ही कार्य कर रहीथी वह किसी और लोक की बात न कर इस लोक में ही राम का आदर्श प्रस्तुत कर एक उदात्त जीवन जीने का संदेश देते हैं। उनकी रचनाओं का उद्देश्य सर्व-जनः कल्याण है।

" परहित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधिभाई।"[1]

तुलसीदास लोक जीवन के कवि थे, इसीलिये अपनी रचना भी उन्होंने लोक भाषा और सरल शैली में की और साथ ही कभी किसी सामन्त या पूँजीपति की प्रशंसा में कोई रचना नहीं लिखी और न ही उनके आगे घुटने टेके। कवि ने हिन्दू धर्म में व्याप्त अंधविश्वास का घोर विरोध किया और सभी इष्ट देवों को जो अलग-अलग मान्य थे समन्वय

1- रामचरित मानस-उत्तरकांड-दोहा संख्या-40-41

करके उनका संगठन करने की चेष्टा की। "रामचरित मानस" में चित्रित रामराज्य एक आदर्श राज्य था जिसमें सभी समान हैं सभी को समान अधिकार प्राप्त हैं। राजा प्रजा की इच्छा से प्रतिचालित रहता था, उसे हर जगह प्रजा की इच्छा का ध्यान रखना पड़ता था। नारियों को रामराज्य में उचित स्थान प्राप्त था वह आदर की दृष्टि से देखी जाती थी। राजा निरंकुश नहीं दिखाया गया है अगर वह कुछ अपराध करता है तो उसे भी वही दण्ड मिलेगा जो किसी भी वर्ग के व्यक्ति को मिलना चाहिए-

" नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहिं सोहाई

× × × ×

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।"[1]

इस प्रकार मध्ययुग के सभी कवि समाजके प्रति जागरूक थे और अस्त-व्यस्त सामाजिक व्यवस्था के निर्माणक थे इन कवियों ने दो महापुरुषों के जीवन चरित्रों के माध्यम से देश के सा ने एक आदर्श रखा ।

मध्ययुग की समाप्ति के बाद धीरे-धीरे जनता में आशा का संचार हो गया था हिन्दू-मुसलमानों में भी आपसी द्वेष-वैमनस्य दूर हो गया था और उन्होंने एकदूसरे के आचार-विचार ग्रहण कर लिये थे शासन सुव्यवस्थित हो गया था, युद्ध का वातावरण समाप्त हो गया था चारों तरफ शान्ति हो गई थी। अतः शान्ति का समय निश्चितरूप से भोग विलास और ऐश्वर्य की ओर खींचता है अतः रीतिकालीन कविता आध्यात्मिक जीवन की अतिवादिता को समाप्त कर भौतिक जीवन की ओर उन्मुख हुई और कविता का साज-श्रृंगार करके उसे रजवाड़ो में प्रस्तुत किया जाने लगा अतः इस काल में कविता से समाज का जन साधारण वर्ग कुछ उपेक्षित, अवश्य हुआ। इस काल मेंकला का उद्देश्य बहुत कुछ "कला, कला के लिये हो गया, कवियों में पाडित्य प्रदर्शन की होड़ सी लग गयी। कुछ कवियों के लिये कविता बाजार की वस्तु बन गई और कुछ कवि अपनी कविता की इति श्री अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने में समझने लगे। इस काल के कवि किसी न किसी के राज्याश्रित रहते थे अतः उन्हें अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिये वैसी रचना वह चाहते थे लिखनी पड़ती थी। ये तो सिक्के का एकपहलू था ऐसा नहीं था [illegible] अपने सामाजिक उत्तरदायित्व से एक दम शून्य था कुछ कवि ऐसे भी थे जो अपने सामाजिक कर्तव्य के प्रति जागरूक थे और इस श्रृंगारिक

- -

1- रामचरित मानस- उत्तरकाण्ड- दोहा संख्या-42

तूफान में भी जनसमाज के लिये एक तिनके का सहारा बनकर सामने आये।कवि भूषणने वीर और उत्साह से ओत-प्रोत कवितायें लिखीं। देव और मतिराम ने भी भक्ति,नीति आदि पर अच्छी कवितायेंलिखी और मांसल सान्दर्य वर्णन का खुलकर विरोध किया।

वैदिक कालीन मान्यतायें तत्कालीन समाज केलिये व्यर्थ साबित हो रही थी हर व्यवस्था अपनी परिस्थितियों के अनुसार उचित रहती है समय की मांग जैसी हो वैसी ही मान्यतायें भी होनी चाहिये। अतः उस समय का तप, यज्ञ, श्राद्ध आदि मात्र स्वार्थ का हेतु बन गया था उसे उदरपूर्ति का एक मात्र साधन बना लिया गया।इस समय जाति भेद,छुआ-छूत की भावना समाज के लिये घातक सिद्ध हो रही थी अतः इन कवियों ने इस आचरण का विरोध किया-"

को तप कै सुरराज भयो,जमराज को बंधन कौन खुलायो
मेरा मही मैं सहिकरि कै,गथ ढेर कुबेर को कौन तुलायो
पाप न पुण्य नर्क न सर्ग,भरो तुमरो फिरि कौने बुलायो
झूठ ही वेद पुराननि बाँचि लबारनि लोग भले मुरकायो।[1]

इस प्रकार रीतिकालमें जनसाधारण के योग्य साहित्य का अभाव दृष्टिगत होता है किन्तु जब परिस्थितियाँ बदलती हैं तब कवि उस मांग से अछूता नहीं रह पाता अतः सामाजिक आन्दोलन की प्रक्रियाहमारे साहित्य में निरन्तर चलती रही।

प्राचीन भारत में वर्ण भेद सामाजिक जीवन को क्रियात्मक बनाने के लिये किये गये थे किन्तु उन्होंने भयंकर रूप धारण कर लिया जो भारत के लिये अभिशाप बन गया-----"वर्ण भेद सामाजिक जीवन का क्रियात्मक विभाग है।यह जनता के कल्याण के लिये बना परन्तु देव की सृष्टि में दम्भ का मिथ्या गर्व उत्पन्न करने में अधिक सहायक हुआ ---- गुण कर्मानुसार वर्णों की स्थिति नष्ट होकर आभिजात्य के अभिमान में परिणत हो गई । वर्णों के शुद्ध वर्गीकरण के लिये इस प्रतिवाद को मिटाना होगा । भगवान का स्मरण कर नारी जाति पर अत्याचार करने से विरक्त रहे।किसी को शबरी के सदृश अछूत मत समझो। सर्वभूतहित रत होकर भगवान के लिए सर्वस्व समर्पण करो।"[2]

1- देव-सुधा-सम्पादक- मिश्र बन्धु-पृ0- 22 छन्द संख्या-1। आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-लेखक कृष्ण बिहारी मिश्र-पृ0- 40 से उद्धृत-दिल्ली सन् 1972

2- कंकाल का सामाजिक दृष्टिकोण-रामस्वरूप व्यास,हंस अप्रैल 1937

भारतेन्दु युग में सामाजिक चित्रण-

कुछ समय के लिएकवि समाज की ओर से विमुख हो गये थे जैसे रीतिकाल में साहित्य का सम्बन्ध जन सामान्य से टूट गया और वह साज श्रृंगार से लदी हुई रजवाड़ों की सीमा में कैद हो गयी।घोर श्रृंगारिक-विलासी जीवन की रचना कवियों का एक मात्र उद्देश्य हो गई।भारतेन्दु का आगमन हिन्दी साहित्य के लिए एक नया सन्देश लाया और साहित्य जनसामान्य से जुड़ गया, समाज का चित्रण,जन सामान्य के सुख-दुख का चित्रण उसका उद्देश्य बन गया।भारतेन्दु ने साहित्य को यथार्थ से जोड़ दिया।भारतेन्दु की आत्मा देश की पराधीनता को देखकर कराहती थी अतः उस समय की रचनाओं मेंदेश प्रेम की भावना का स्वर उच्च है। अंग्रेजी शासन द्वारा कर लगाये जाने पर भारतीयों को कितना कष्ट था इसे देखकर भारतेन्दु जी कहते हैं-

सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई,
हा!हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई!!

अंग्रेज भारतीयों का शोषण करते थे भारत से कच्चा माल विदेश जाता था और वहाँ से माल बनकर भारत आता था और दुगने-तिगुने दामों में बिकता था। भारत का धन धीरे-धीरे विदेशों में भरकर जा रहा था।कवि इसे देखकर व्याकुल हो उठा। अंग्रेजों पर कितना चुटीला व्यंग्य किया है-

भीतर भीतर सबरस चूसै
हँसि हँसि के तन,मन,धन मूसै
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि सज्जन नहीं,अंग्रेज"[1]

भारतेन्दु जी ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध बलिया के व्याख्यान में आवाज उठायी है- "बहुत सी बातें जो समाज विरुद्ध मानी है किन्तु धर्म शास्त्रों में जिका विधान है,उनको चलाइये।जैसे जहाज का सफर, विधवा विवाह आदि।लड़कों को छोटेपन में ही ब्याहकरके उनका बल,वीर्य,आयुष्य सब मत घटाइये।आप उनके माँबाप हैं या उनके शत्रु हैं----कुलीन प्रथा, बहुविवाह को दूर कीजिए।"[2]

- -

1- भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग दो पृष्ठ- 811
2- भारतेन्दु ग्रन्थावली-भाग तीन पृ0-901

"हिन्दी कवितामें भारतेन्दु ने सर्वप्रथम समाज के वक्षस्थल की धड़कन को सुनाया। आर्थिक जीवन में मँहगी और अकाल, टैक्स और धन का विदेश प्रवाह, धार्मिक क्षेत्र में बहुदेव पूजा और मत मतान्तर के झगड़े सामाजिक क्षेत्र में जाँति-पाँति के टंटे और खान-पान के पचड़े और बाल विवाह, नैतिक क्षेत्र में पारस्परिक कलह और विरोध उदासीनता और आलस्य, भाषा-भूषा-भेष की विस्मृति तथा राजनीतिक क्षेत्र में पराधीनता और दासता, जीवन के ये भिन्न भिन्न स्वर उनकी वेणु से प्रसूत होने लगे थे।"[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अनेक स्थान पर भारतीय समाजिक कुरीतियों पर अपनी कलम चलाई हैजिससे उनकी समाज के प्रति जागरकता परिलक्षित होती है। भारतेन्दु जी के समाज की प्रत्येक व्यवस्था को प्रगतिशील कवि की दृष्टि से देखा बस कमी इतनी रही कि वह उसका खण्डन इतने विद्रोहात्मक रुप में न कर सके जितना कि प्रगतिवादी कवियों ने। भारतेन्दु जी ने "कवि वचन सुधा" में मई 1879 के अंक में लिखा है-

"बाल विवाह से हानि, जन्मपत्री मिलाने की आशास्त्रता, बालकों को शिक्षा अँग्रेजी फैशन से शराब की आदत, भ्रूण हत्या फूट और बैर, बहुजातित्व और बहुभक्तित्व, जन्मभूमि से स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता, नशा, अदालत, स्वदेशी-हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यहृवत करना इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन आदि पर छोटे छोटे सरल देश-भाषा में गीत और छन्दों की आवश्यकता है, जो पृथक पृथक पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारणजनों में फैलाये जायेंगे।"[2]

नारियों को सदैव पुरुषों से हीन समझकर उन्हें पुरुष की छाया मात्र बताया गया है और नारियों में सदैव दोषों को ढूँढकर उसका ही उद्घाटन किया है अतः इसप्रकार के विचारों का खण्डन भी भारतेन्दु युग में हुआ, बालकृष्ण भट्ट ने इसकी निन्दा करते हुए लिखा-

"हमारे यहाँ के ग्रन्थकार और धर्मशास्त्र पढ़ने वालों की कुण्ठित बुद्धि में न जाने क्यों यही समाया हुआ था कि स्त्रियाँ केवल दोष कीखान हैं, गुण उनमें कुछ है ही

- -

1- हिन्दी कविता का क्रान्ति युग-प्रथम संस्करण-सन् 1947-पृ0- 26

2- डा0 कृष्ण लाल हंस-प्रगतिवादी काव्य साहित्य से उद्धृत।

नहीं। उससे चुन-चुनकर उन्हें जहाँ तक ढूंढे मिला केवल दोष ही दोष इनके लिए लिखे गये और जहाँ तक इनके हक में बुराई और अत्याचार करते बनाअपने भरसक न चूके और उन्हें हर तरह पर घटाया।कानून में इनका सब तरह का हक मार दिया, धर्म संबंध में इन्हें प्रधान न रखा, दरजे में इन्हें और महाजघन्य शूद्रों को एक ही माना और किसकी कहे मनु जिसके समान चोखा और हर एक समय में बरतने के पक्षपात विहीन शास्त्र प्रणेताओं में किसी दूसरे का धर्मशास्त्र ऐसा नहीं है, उन्होंने शूद्रों और स्त्रियों कीसब तरह पर रेढ़ मारी है।"[1]

इस काल के कवियों ने जाति भेद की भावना पर आघात किया है और आपसी भेद-भाव को ही सब कष्टों का मूल बताया है।अतः इस काल के कवि इन सब सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठाते रहे।हमारे उन्नति के पथ में काटा बनने वाले जहाँ और बहुत से कारण हुए हैं उनमें इस जाति विवेक को भी हम महा अनिष्ट सर्व विध्वंसी केतु ग्रह के समान मानते हैं।"[2]

श्री बदरी नारायण चौधरी "प्रेमधन" की रचनाओं में भी तात्कालिक सामाजिक जीवन की झाँकी मिलती है।वर्तमान कृषक जीवन की करुण अवस्था पर कवि ने अपनी लेखनी चलाई है-

> दीन कृषक जब न औरहु दया योग दरसावहीं
> जिनके तन पर स्वच्छ वस्त्र कहुँ लखियत नाहीं।

प्रतापनारायण मिश्र भी भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध कवि थे। मिश्र जी का काव्य भी यथार्थवादी था उनके काव्य में भारतीयसमाज की दयनीय दशा का चित्रण चतुर्दिश दिखाई पड़ताहै।

भारतेन्दु काल के कवियों ने सामाजिक अव्यवस्था के प्रति आवाज तो उठायी किन्तु वह उसके पूर्णतः परिवर्तन के समर्थक नहीं थे उनका प्राचीन के प्रति मोह अभी शेष था। वह सामाजिक कुरीतियों को दूर करना चाहते थे मगर कहीं कहीं कुछ रीति रिवाजों का समर्थन भी करते थे यह कवि खुलकर सभी कुरीतियों का खण्डन करके नयी मान्यताएँ स्थापित करने सामने नहीं आये अतः सामाजिक आन्दोलनकारी होते हुए भी प्रगतिशील नहीं बन पाये। ये नवीनता से समझौता नहीं कर पाये।किन्तु आगे के लिए मार्ग अवश्य

1- भट्ट निबन्ध माला- प्रथमभाग-सम्पादक धनंजय भट्ट सरल-पृ0- 22

2- भट्ट निबंध माला-द्वितीय भाग-पृ0- 46

प्रशस्त कर दिया, जिसमें सामाजिक क्रांति जोर पकड़ती गई। "मिथ्या धार्मिक पाखण्ड, जाति व्यवस्था, वैवाहिक असामंजस्य, अंधविश्वास, पदलोलुपता, यश लोग ऐसी कोई भी सामाजिक कुरीति या नैतिक दुर्बलता नहीं है जिन पर इन साहित्यकारों की तीव्र दृष्टि न गई हो। अस्पृश्य जातियों के उत्थान के लिए भी इन लोगों ने प्रयत्न किया।"[1]

भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी लेखकों की वास्तविक महत्ता इसी बात में निहित है कि उन्होंने काव्य को उक्त संकीर्ण सीमा के घेरे से बाहर निकाला तथा उसे जिन्दगी के चहल-पहल से भरे चौराहे पर लाकर खड़ा कर दिया। अब कविता और जिन्दगी के बीच किसी प्रकार का आवरण न रह गया। कविता जिन्दगी का नगेबान साक्षात्कार करने लगी। परिणामतः वह अनुभव की एक ऐसी अद्वितीय वाणी मानी गई जिसकी तुलना किसी अन्य युग की कविता से संभव ही नहीं।"[2]

स्पष्ट है कि भारतेन्दु युग के लेखक केवल दृष्टा नहीं थे बल्कि भोक्ता भी थे। वे किनारे बैठकर लहरों को गिनने वाला नहीं, सागर की उत्ताल तरंगों से जूझकर मोती हासिल करने वाले थे। अतएव उनके काव्य में उनका अनुभूत जीवन ही शब्दायित हुआ है। और यही कारण है कि वह इतनी ताजगी से भरा हुआ, इतना जीवंत तथा इतना मार्मिक रूप ग्रहण कर सका निकला और शिल्प संबंधी समस्त अनगढ़ता के बावजूद वह आज भी जनमानस को आन्दोलित करने की अद्भुत क्षमता से संपन्न है।[3]

- -

1- आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र-पृ0-63
दिल्ली- 1972

2- हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका-प्रभाकर श्रोत्रिय-पृ0- 91

3- वही, पृ0- 92

द्विवेदी युग में सामाजिक आन्दोलन-

"नवीन आवश्यकताओं और परिस्थितियों से निर्मित सामाजिक सम्बन्ध और पिछले युग की समाज व्यवस्था के संघर्ष से समाज में अनेक अन्तर्विरोधों की सृष्टि होती है, वे वर्ग जिनके हित पूर्व समाज व्यवस्था में सुरक्षित होते हैं, उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विरोध करते हैं। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करने वाले सामूहिक प्रयत्न को ही सामाजिक आन्दोलन कहा जाता है।"[1] जिस प्रकार नदी की धारा के थपेड़ों से धीरे-धीरे तट के नीचे की मिट्टी कटती जाती है और एक दिन ऊपर की निर्बल आधार पर स्थित कगार एक साथ ही ढह पड़ती है और जल के अतल गर्भ में विलीन हो जाती है उसी प्रकार विकास के द्वारा क्रमशः घटित आंशिक परिवर्तन एक दिन क्रान्ति या आमूल परिवर्तन का वेगमय रूप ले लेते हैं। लेकिन नवीन समाज-व्यवस्था भी कोई आकाश से टपकी हुई वस्तु नहीं होती।उसके बहुत से तत्व विकास की प्रक्रिया में पूर्व स्थित समाज-व्यवस्था में ही आ चुकते हैं और नये युग के विधान, दर्शन और साहित्य उसी श्रृंखला की अगली कड़ी बन जाते हैं।"[2]

भारतेन्दु काल के काव्य की धारा द्विवेदी काल में भी अक्षुण्ण रही इस युग में गांधी जी के राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक क्रान्ति के आविर्भाव में इस युग के साहित्य को और भी प्रभावित किया इस समय के साहित्य ने अंग्रेजी साम्राज्य का आतंक जन-मानस में कमकर उनमें आत्मविश्वास एवं आत्म गौरव की भावना का जागरण किया। इस काल के काव्य में देश भावना, मातृभूमि के प्रतिप्रेम, समाज-सुधार सांस्कृतिक उत्थान की ललक, अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति, रूढ़ि विरोध आदि का चित्रण हुआ। इस काल में सामंतों जमींदारों और ताल्लुकेदारों के शोषण के विरुद्ध तीव्र आक्रोश व्यक्त हुआ है। सरस्वती पत्रिका इस विद्रोही भावना का माध्यम बनी किसानों की दीन अवस्था पर बहुत से निबंध सरस्वती में प्रकाशित हुए। सरस्वती पत्रिका में अप्रैल 1913 में प्रकाशित "अमरीका

- -

1- सोशलिज्म एण्ड सोशल मूवमेन्ट आफ नाइनटीन्थ सेन्चुरी -आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र-पृ0-70 से उद्धृत। दिल्ली-1972

2- आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य-कृष्ण बिहारी मिश्र पृ0-71 दिल्ली-1972

कावर्णन" निबंध में लेखक ने भारतीय किसान की विपन्नता और अमरीका के किसानों की सम्पन्नता के माध्यम से बड़ा ही मार्मिक चित्र खींचा है-"मुझ देहाती को देहात का सैर देखने की बारी आई। मैंने देखा कि इधर-उधर एक दूसरे के लगभग एक मील की दूरी पर तारे चमक रहे हैं।तारे नहीं,अरे यह तो किसानों के बंगलों पर बिजली की रोशनी है। मैंने मन में कहा कि तेरे देश में इस समय किसानों के यहाँ "दिया जले किसी भाँति तेल के दाम नहीं हैं" वाला मामला हो रहा होगा।तेरे भाई किसी किसान की बेटी हाथ में मिट्टी के तेल की डिब्बी लिये तेल बेचने वाले के दर पर खड़ी हुई आर्त स्वर से तेल माँग रही होगी। तेल बेचने वाला पिछले पैसों का तकाजा कर रहा होगा---बिना तेल बिचारी लड़की वापस आई होगी।"[1]

इस काल के कवियों में "मैथिलीशरण गुप्त,अयोध्या सिंह उपाध्याय,नाथूराम शंकर शर्मा, श्रीधर पाठक,रामनरेश त्रिपाठी,महावीर प्रसाद द्विवेदीआदि कवियों में गाँधी जी के प्रभाव स्वरूप राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त अभिव्यक्ति विद्यमान है।

इस काल के कवियों ने जिन जिन कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठायी वे निम्न थीं -

धार्मिक आडम्बर के प्रति विद्रोह-

द्विवेदी काल में मुफ्तखोर एवं पिण्डोपजीवी ब्राह्मण वर्ग की खूब खबर ली गई है,जिसने भारत के धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों के विश्वासका गलत फायदा उठाया। वह बिना किसी प्रकार का श्रम किये ही बड़े-बड़े लाला पण्डित बन बैठे,ये समाज के ठेकेदार बनते हैं और धर्म की आड़ में चारों तरफ से शोषित जनता को जोंक की भाँति चूसते हैं।माधव शुक्ल ऐसे पाखण्डियों के लिये कहते हैं-

" रँग लिये कपड़े,कमण्डल भी लिया एक हाथ में
बैल माने बैल से जिस दर पैये जाकर अड़े
कुछ न कुछ लेकर हटेंगे क्या भरे पत्थर पड़े
हाय बावन लाख ऐसे मुफ्त खोरे आज हैं

1- सरस्वती अप्रैल 1913,आधुनिक सामाजिक [illegible] और आधुनिक हिन्दी साहित्य- कृष्ण बिहारी मिश्र पृ0-91 से उद्धृत। दिल्ली- 1972

जिनके घर दर गाँव गोरू, घोड़े, हाथी राज है
खान हैं पापों के, बेपरवाह हैं कानून के
हिन्दके रक्षक हैं या, प्यासे हमारे खून के। "[1]

द्विवेदी कालीन कवियों ने इन मोटी तोंद वाले मुफ्त खोरों की पेटूलता उनका धर्म के नाम पर शोषण आदि की पोल खोली है। भारतीय धर्म में बहुत विश्वास करते हैं, यहाँ की जनता धार्मिक प्रवृत्ति की है विशेषकर गाँव के लोग ज्यादा धार्मिक शोषण का शिकार होते हैं। क्योंकि वे अशिक्षित होते हैं और सही गलत का उन्हें कुछ विवेक नहीं रहता भोली जनता बगुला भगतों के चंगुल में फँस जाती है। ये पाखण्डी उसे ईश्वर का भयावह रूप दिखाते हैं और हर तरह से उसका खून चूसते हैं।

देश की अनावश्यक परम्पराओं एवं कुरीतियों पर भी इस काल के निबंधों में प्रकाश डाला गया जैसे श्राद्ध और मृत्यु आदि पर हिन्दू परिवारों में काफी धन व्यय किया जाता है। समाज में अपने आपको उच्च दिखाने के लिये ये लोग खर्च करने में होड़ लगाते हैं। यदि ऐसा न करके किसी ऐसी योजना में धन लगायें जिससे कुछ लोगों को लाभ हो तो उसकी उपयोगिता भी है अन्यथा वहधन निरर्थक चला जाता है।

पूँजीपतियों के विरुद्ध विद्रोह-

इस काल के कवियों ने पूँजीपतियों के भ्रम जाल को समझ लिया था अब उनकी समझ में आ गया था कि इन पूँजीपतियों का उद्देश्य भारत की प्रगति नहीं इसके पीछे स्वाधीनता की भावना नहीं, व्यक्तिगत लाभ की भावना काम कर रही है और देशी पूँजीपति भी भारतीय जनता का शोषण करने में विदेशियों से पीछे नहीं है अतः देश स्वाधीन रहे या पराधीन इनको अपने स्वार्थ से मतलब अतः साहित्यकारों ने इनके प्रति आक्रोश व्यक्त किया है-

" अगर सभ्यताआज भरे ही को है भरना
नहीं भूलकर कभी गरीबों का हित करना
तो सौ-सौ धिक्कार सभ्यताको है ऐसी
जीवमात्र को लाभ नहीं, तो समता कैसी। "[2]

1- राष्ट्रीय सिंहनाद कविता संग्रह

2- वर्षा और निर्धन-केशव प्रसाद मिश्र सरस्वती अगस्त 1916, आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य से उद्धृत। दिल्ली- 1972

द्विवेदी काल की समय की परिस्थिति ऐसी थी जब कि नवयुवक वर्ग पाश्चात्य संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहा था अपनी सभ्यता संस्कृति उसे हीन नजर आ रही थी वह आत्मगौरव खो रहा था अत: पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव भारतीयों पर पड़ना प्रारम्भ हो गया था। इस युग में एक और वर्ग का जन्म हुआ मध्यवर्ग यह वर्ग है जो अपनी सीमाओं के कारण उच्च भी नहीं हो पाता और शिक्षित होकर बुद्धिजीवी होने से निम्नवर्ग भी नहीं कहलाता। अत: वह समाजमें अपनी प्रतिष्ठा के लिये दिखावा करता है अपने घर की दुर्दशा को बाहरी प्रदर्शन से ढक देता है। अन्दर से खोखला किन्तु बाहर से चिकना चिपड़ा रहता है। घर में चाहे खाने को न हो किन्तु वह दूसरों पर रोब जमाने के लिये मिथ्या अहं का सहारा लेता है स्वयं अपने आप से लड़ता हुआ अपने आप से झूठ बोलता हुआ जीता जाता है, मध्यवर्ग की इस स्थिति पर भी कुछ लेखकों ने लेखनी चलायी है-

" फटी धोतीगृहिणी पहने, औरों को पहनाते हार
घर में मूस चौकड़ी मारे, बाहर दावत की भरमार
कुरसी पर बाबू बन बैठे, नहीं देखते निज घर द्वार
फिर भी कैसे देश सुधारक बनते हो मेरे सरकार। "[1]

इस प्रकार इस काल के कवियों में अपनी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति अगाध प्रेम था और पाश्चात्य सभ्यता में रंगकर अपनी संस्कृति को तुच्छ समझने वालों की खूब खबर ली है इस काल के साहित्यकारों ने अपनी सभ्यता संस्कृति से प्रेम करना तो इन लेखकों ने सिखाया किन्तु रूढ़ियों और अनावश्यक परम्पराओं का इन्होंने भी खण्डन किया। कूपमण्डूकता का विरोध सभी कलाकारों ने किया नयी चेतना के प्रगतिशील तत्व अपनाना चाहिये किन्तु अन्धानुकरण गलत है। सरस्वती में अनेक निबंध और लेख इस अन्धानुकरण पर प्रकाशित हुए जिसमें प्राचीन संस्कृति के आदर्श प्रस्तुत कर भारतीयों में आत्मगौरव जगाने का प्रयास किया गया इसके साथ ही "मर्यादा" व "इन्दु" में भी लेखक भारतीय जनता का निरंतर मार्गदर्शन कर रहे थे। पुरानी रूढ़ियों को तोड़कर नयी व्यवस्थायें स्थापित करना बहुत आवश्यक है इस पर अपने विचार प्रकट किये-" पुरानी जंजीरों को तोड़ना, नई रोशनी को अपनी तौर से

1- सरस्वती- [illegible]

लेकर सर्वथा अपना बना लेना, ये सब योग्य बनने के साधन हैं। जब तक हम किसी पुरानी चाल को, केवल इसलिए छोड़ना पसन्द नहीं करते कि वह हमारी पुरानी चाल है तब तक हमारे जीवन की स्थिरता का कोई भी लक्षण नहीं है। नयी विद्या, नयी सभ्यता इन सबको अपना बनाकर ले लेने में हीहमारीजाति का भला है।"[1]

धार्मिक आडम्बरों के प्रति विद्रोह-

इस काल तक लोगों में अनेकों अंधविश्वास व्याप्त थे लोग भूत-प्रेतों पर विश्वास करते थे और बीमार होने पर ज्योतिष आदि की शरण जाकर अपनी बीमारी को और बढ़ा लेते थे। पण्डित, ज्योतिष आदि जनता की अज्ञानता का लाभ उठाकर खोटे गृह आदि बताकर जनता से पैसा वसूलना, साधु संतों को भोज आदि कराना इन धर्म के ठेकेदारों का काम था लेखकों ने इसका जमकर विरोध किया। मात्र वंश में जन्म ले लेने से ही ये पण्डित और पूज्य बने रहते हैं चाहे अशिक्षित हो मंत्र का एक शब्द भी ठीक से उच्चरित न कर सेते हो किन्तु छापा-तिलक लगाकर नित्य समय से स्नान आदि कर लेने पर ही ये अपने वंश के दीपक बन जाते हैं-मैथिलीशरण गुप्त का यह सन्देश में कितनी प्रगतिशीलता है-

प्राचीन हो कि नवीन, छोड़ो रूढ़ियाँ जो हो बुरी
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस जैसी चातुरी
प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार अलीम है
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है।"[2]

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू स्त्रियाँ और सामाजिक कार्य "शीर्षक व्याख्यान में कहती हैं- छुआछूत के धंधों में हम ही जकड़ी हुई हैं, जिसके ध्यान में हमारा रात दिन व्यय होता है। छुआ छूत की चिंता के आगे हमें अन्य किसी बात पर विचार करने का समय नहीं मिलता। हम ही अपनी मूर्खता से इसमें ईश्वरोपासना और धर्म को अटकाये हुए हैं। दान देना एक बड़े अंश में स्त्रियों का ही काम है। हम हीअविद्या के अंधकार में डूबकर मोटे-मोटे कुचरित्र ब्राह्मणों को अपने घर का धन निकाल निकाल कर देती है और ऐसा करके मन में प्रसन्न होती हैं कि हम धर्म कर रही है। यदि हम प्रतिज्ञा कर लें कि आज से हम अपनी कुरीतियों का परित्याग करेंगी तो बहनों! विश्वास मानो थोड़े ही समय में हमारा समाज कुछ का कुछ हो जायेगा।"[3]

1- क्या हम जीवित रहेंगे-श्रीयुत इन्दुशर्मा "प्रभा"। खण्डवा। वैशाख शुक्ल-।
2- भारत- भारती -मैथिली शरण गुप्त पृ0-160

जातिगत असमानता का विरोध-

शूद्र जाति जिन्हें उच्चवर्ग हीन दृष्टि से देखता था और जो सदियों से उपेक्षित एवं घृणा का पात्र बनते आ रहे थे। गांधी जी ने उनको सुन्दर नाम से संबोधित किया "हरिजन" और उनके उद्धार के लिए जबर्दस्त आन्दोलन चलाया। इस आन्दोलन को तत्कालीन कवियों का भी समर्थन प्राप्त हुआ और द्विवेदी काल में अपृश्य वर्ग पर सहानुभूति प्रदर्शित की गई।

गद्य साहित्यमें भी लेखकों ने सामाजिक कुरीतियों को हर मुसीबत की जड़ बताया है। "समाज शास्त्र" नामक लेख में सत्यशोधक महोदय कहते हैं "हिन्दुओं में बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, विवाह वगैरह में फिजूल खर्च इत्यादि बहुत सी सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित हैं। उनकोदूर करने के लिए सैकड़ो सभायें स्थापित हुई है--- पर इन सभाओं के कार्यकर्त्ताओं ने यह विचार नहीं किया कि हमारी सारी सामाजिक कुरीतियों की जड़ वर्ण-व्यवस्था है। जातियों की ये छोटी-छोटी सभाये जो वर्ण व्यवस्था के भेद को और पुष्ट करती हैं लाभ के साथ-साथ हानियाँ पहुँचावेगी और व्यापक सुधार के आन्दोलन में विघ्न डालेगी।"[1]

नारी स्वतंत्रता आन्दोलन-

भारतीय समाज मे शोषित व्यक्तियों में केवल शूद्र ही नहीं नारी भी थी उसकी स्थितिभी बड़ी ही शोचनीय थी। उस समय की सबसे विकराल समस्या थी दहेज की समस्या लड़की के गुण और शील का कुछ महत्व नहीं रह गया केवल पिता की सम्पत्ति देखी जाती थी गरीब माँ बाप को अपनी लड़की के विवाह के लिए अपनी हस्ती बेचनी पड़ती थी। विवाह के पीछे कुलीनता की भावना पर लेखक ने लिखा है- "कुलीन होना चाहिए, फिर चाहे वह गरीब और मूर्ख भी हो, तो भी उसकी कीमत विवाह के बाजार में बहुत अधिक होगी। यह कृत्रिम कुलीनता इस कुप्रथा के प्रचलित होने के प्रधान कारण है।--- न जाने कितने कुटुम्ब इस कुप्रथा की बदौलत गारत हो चुके हैं।"[2] द्विवेदी जी उस समय प्रचलित "दहेज प्रथा" पर तीखा व्यंग्य करते हुए कहते हैं अपनी

1- सरस्वती जुलाई 1915-आधुनिक सामाजिक आन्दोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य- कृष्ण बिहारी मिश्र- पृ0-131 से उद्धृत दिल्ली-1972

2- सरस्वती जुलाई-1914- वही.

"ठहरौनी" रचना में-

> " बे ब्याही चाहें मर जावें, चाहें कर वंश बदनाम
> मर जावें परवाह नहीं है, हमें सिर्फ रुपये से काम
> पाँच का न व्यवहार हमारा, लेंगे हम तो एक हजार
> चार चमक वाले चाँदी के, वही अखण्ड मण्डलाकार।"

नारी की दयनीय स्थिति का एक कारण उनकी अशिक्षा भी थी। अज्ञानता के कारण वह रुढ़ियों और अंधविश्वासों के कूप में पड़ी रहती थी। तत्कालीन कवि महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त आदि बहुत से कवियों ने नारी शिक्षा का जोरदार समर्थन किया। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू ने स्त्रियों की अशिक्षा को उनकी दुर्दशा का प्रधान कारण माना है। "तीसरा महाकारण शिक्षा का अभाव है। शिक्षा के न होने से क्या क्या बराबियाँ हमारे घरों में हो रही हैं इससे आप और मैं भली प्रकार परिचित हैं। घरों में नित दिन के कलह, आये दिन के झगड़े टंटे सास बहू, देवरानी, जेठानी और ननद भौजाई की तू-तू मैं-मैं से हमारे देश के कितने भाग्यवान गृहस्थ बचे हुए हैं?"[1]

समाज में देहेज प्रथा के कारण ही बाल विवाह एवं अनमेल विवाह होता था और अनमेल विवाहमें कभी-कभी लड़की 8 या 10 साल की होती थी और वर 50-60 साल का अतः उसकी मृत्यु भी जल्दी हो जाती है और वधू को सारी जिन्दगी विधवा के रूप में गुजारनी पड़ती है क्योंकि विधवा का विवाह होना तो दूर इस बारे में सोचना भी भारतीय समाज में पाप है। इस कारण विधवा की संख्या में भी बढ़ोत्तरी होती है। एक दहेज की प्रथा अनेक समस्याओं को जन्म देती है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जी की "चुभते चौपदे" सामाजिक कुप्रथाओं पर लिखी गई एक व्यंग्यमयी रचना है। कवि बेजोड़ विवाह पर अपना व्यंग्यबाण छोड़ता है-

> " जो कली है खिल रही उसके लिए
> वर पके सूखे पातों- जैसा न हो
> दो दिलों में जाय जिसके गाँठ पड़
> भूल गठ जोड़ा कभी ऐसा न हो।"

1- स्त्रियाँ और सामाजिक कार्य-"स्त्री दर्पण" ।मार्च 1915 पृ0- 168

"कवियों का एक हाथ समाज के हृदय पर है, कान उनके जनपथ पर उठने वाली ध्वनि से लगा है और हाथ में लेखनी है। हृदय की धड़कन को उनका बाँया हाथ सुनता है और दायाँ लिखता है और कान से सुनी हुई जन ध्वनि को भी उसमें अंकित कर देता है। इस प्रकार की है द्विवेदीकाल की समाजपरक कविता। द्विवेदी काल के बाद से साहित्य में चार प्रकार की साहित्य रचना एक साथ चल रही थी। एक प्रकार के कवि प्राचीनतावादी मर्यादावादी, इतिवृत्तात्मक काव्य की रचना कर रहे थे, जिनमें महावीर प्रसाद द्विवेदी देवी प्रसाद पूर्ण जगन्नाथदास रत्नाकर, हरिऔध कामताप्रसाद गुरु आदि थे। द्वितीय प्रकार के काव्य में एक नयी ढंग की शैली, कल्पना, जीवन का हास विलास, नये बिम्ब प्रतीक, नयी शब्दावली और भावुकता से भरी हुई रचनायें होने लगीं जिसे छायावादी कविता से जाना जाने लगा। इस प्रकार के कवि थे प्रसाद, निराला, पन्त वगैरह।

तृतीय प्रकार के काव्य में घोर निराशा वैयक्तिक वेदना, विषाद आदि की अभिव्यक्ति हुई है। इस प्रकार के काव्य में वैयक्तिकता ही अधिक रही है। "इसी वैयक्तिकता ने आगे चलकर दार्शनिकता से समन्वित होकर "रहस्यवादी काव्यधारा" को और आनन्द तत्वों से समन्वित होकर "हालावादी काव्य धारा" को जन्म दिया था।[1] महादेवी वर्मा के काव्य में हमें निराशा और वयैक्तिक विषाद के दर्शन होते हैं। उनका पूरा काव्य वेदना और पीड़ा से भरा हुआ है, वह नीर भरी दुख की बदरी पूरे काव्य पर बरसी है। और "हालावाद" का रूप बच्चन में निखरा है, जिन्होंने सुरा का खूब मान किया है।

चतुर्थ प्रकार के काव्य ने प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि तैयार की इसमें क्रांति के ओजस्वी स्वर सुनायी देते हैं। कुछ तरुण कवि विद्रोह की अग्नि को अपने सीने में दबाये पराधीनता के विरोध में आग उगलते दिखायी पड़ते हैं इनमें वर्तमान अव्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना है। भारतीय स्वतंत्रता की उत्कट लालसा है और सामाजिक कुरीतियों के प्रति विद्रोह है। इन कवियों के काव्य में जागृति है और शोषितों, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति है। इस प्रकार के कवि हैं-पं0 माखनलाल चतुर्वेदी, एक भारतीय आत्मा, बालकृष्ण शर्मा "नवीन" रामधारी सिंह दिनकर, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि।

- -

1- प्रगतिवादी काव्य साहित्य- डा0 कृष्ण लाल हंस-मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी-1971

छायावादी युग में सामाजिक आन्दोलन-

छायावादी युग में कुछ कवि समाज के विपन्न कृषक वर्ग के प्रति सहानुभूति और सामन्तवाद पर आक्रोश व्यक्त कर रहे थे ।

गद्य-

गद्य के क्षेत्र में प्रेमचन्द मूक भारतीय किसान की वाणी बनकर हिन्दी साहित्य में आये और उनकी सभी कहानियां और उपन्यास तत्कालीन अल्पसंख्यक भारतीयों की करुण कहानी को आँकिया हैं जिसने समाज के बुद्धिजीवी वर्ग तक को हिला दिया।उपन्यास और कहानी कला को प्रेमचन्द जीकेमाध्यम से गति मिली और साहित्य जन हित और लोकहित का बन गया और पहली बार साहित्य संकुचित दायरे से कुछ व्यक्तियों की पकड़ से निकल कर आम जनता में,भारत के कूचे कूचे में फैल गया और साहित्य का संबंध गाँव के अशिक्षित ,गंवार और निरीह लोगों के साथ भी हो गया। प्रेमचन्द ने अशिक्षित,अज्ञानी जनता को अपनी दयनीय स्थितिसे परिचित कराया और उसे उससे उबरने का मार्ग सुझाया।

काव्य-

पूँजीवाद के विकास के साथ ही मनुष्यों का मूल्य घट गया और चारों तरफ धन काकाला बादल छा गया। सब कुछ पैसा हो गया ईश्वर,धर्म दीनईमान सब कुछ धन हो गया। शोषण इतना बढ़ गया कि धन कुछ चन्द हाथों में सिमटने लगाऔर देश का बहुसंख्यक वर्ग रोटी रोटी को मोहताज होने लगा। कुछ लोग ऊँची-ऊँची इमारतों में रहते और कुछ को सिर छिपाने के लिये एक छत भी नसीब नहीं होती। एक महल का निर्माण कितनी कुटियों का सर्वनाश करने के बाद होता है। इस पर रोष व्यक्त किया है- बलदेव प्रसाद ने-

" द्रव्य संघात!द्रव्य संघात!!छा गया सिक्कों कावह जाल
कौड़ियों पर ही लुटने लगे करोड़ों मनुजों के कंकाल
कई निर्धन कुटिया भरपूर धनी का उठा एक प्रसाद
अनेकों को दे दृढ़ दासत्व,एक ने पाया प्रभुतास्वाद। "[1]

1- साकेत संत-बलदेव प्रसाद मिश्र-द्वादश सर्ग पृ0- 143

छायावादी कविता अत्यंत अन्तर्मुखी एवं कल्पना पर आधारित थी किन्तु आवश्यकता थी उस समय ऐसी कविता की जो जीवन की नई चेतना एवं भौतिक स्फूर्ति से भर सके नवयुवक एवं युवतियों को प्रगति का मार्ग दिखा सके किन्तु छायावाद ने युग की इस माँग को कुछ हद तक पूरा नहीं किया। उसमें जीवन और मानस के तेज की कमी तो थी ही उस रस का अभाव था जो जनसंपर्क से पैदा होता है या पैदा किया जाता है। यही नहीं सामाजिक संघर्षों और सजीव सक्षमताओं से दूर हटकर कविताजीवन के गम्भीर व्यापारोंसे दिन-प्रतिदिन दूर होकर, कवि की ही सनक और इडियासिनक्रेसी की चित्रावली बनती गई ।

समाज सुधारक संस्थाओं का जन्म-

भारत की सामाजिक स्थिति बड़ी ही भयावह हो गई थी विभिन्न मत मतान्तरों के कारण देश में एकता का अभाव था और उस पर अंग्रेजों के साम्राज्यवाद के बीज बो देने से निरन्तर साम्प्रदायिक झगड़े होते रहते थे। समाज में अनेक कुरीतियाँ व्याप्त थीं जो समाज को निरंतर खोखला कर रही थीं। स्वस्थ सामाजिकता का प्रायः अभाव सा था। राजाराम मोहन राय ने पूरे देश को एकता के सूत्र में बांधने के उद्देश्य से "ब्रह्म समाज" की स्थापना की। विधवा विवाह समाज की बड़ी ही कुटिलसमस्या थी सन् 1842 में इसे रोकने के लिए कानून बनाया गया जो मान्य हो गया। सन् 1867 ई0 "ब्रह्म समाज" के समान ही महाराष्ट्र में "प्रार्थना समाज" की स्थापना हुई जिसनेसमाज सुधार का कार्य बड़े व्यापक पैमाने पर करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार भारतीय समाज को अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से मुक्त करने के लिए कई महापुरुष सामने आये जसे दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द ।

दयानन्द सरस्वती ने "आर्य समाज" की स्थापना करके समाज में व्याप्त कुरीतियोंएवंधार्मिक आडम्बरों और पाखण्डों को निर्मूल करने का प्रयत्न किया। वेदों के माध्यम से दयानन्द सरस्वती जी ने भारतीयों को अपनी संस्कृति के प्रति आदर जगाया, उस समय जबकि अंग्रेजियत का रंग भारतीय नौजवानों पर चढ़ रहा था और वह अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे थे और विदेशी संस्कृति की ओर आकर्षित हो रहे थे, जो राष्ट्र के लिये घातक सिद्ध हो रहा था। ऐसे समय स्वामी जी का यह समाजोत्थान आन्दोलन बड़ा कारगर सिद्ध हुआ।

आर्य समाज ने सामाजिक सुधार के अनेकों प्रयत्न किये। जिनमें प्रथम जाति भेद था। वर्ण व्यवस्था को जन्मगत न मानकर कर्मगत माना। जातिभेद भाव और खान-पान के छुआ-छूत और चौके चूल्हे की बाधाओं को मिटाया। "अंधविश्वास और धर्म के नाम पर कियेजाने वाले हजारों, अनाचारों की कब्र उसने खोदी हालांकि मुर्दे को उसमें दफन न कर सका और अभी तक उसका जहरीला दुर्गन्ध उड़ उड़कर समाज को दूषित कर रहा है।"[1]

1- एक भाषण प्रेमचन्द- आर्य समाज के अंतर्गत, आर्य भाषा सम्मेलन के वार्षिक अवसर पर लाहौर में दिया गया भाषण- हंस फरवरी 1937

तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था से भी समाज सुधारक सन्तुष्ट नहीं थे। उनकी दृष्टि में यह शिक्षा एकांगी है और व्यक्ति का सर्वांगीण विकास नहीं करती। वह पिटी-पिटाई लीक पर अंग्रेजी शासन के कारखानों के लिये कलपुर्जे तैयार करती है। शिक्षा की सामाजिक बेरुखी से क्षुब्ध इन कलाकारों नेअपना आक्रोश व्यक्त किया-" वहशिक्षा जो सिर्फ अक्ल तक ही रह जाय अधूरी है। जिन संस्थाओं में युवकों में समाज से पृथक रहने वाली मनोवृत्ति पैदा हो, जो अमीर और गरीब के भेद को न सिर्फ कायम रखे बल्कि और मजबूत करे। जहाँ पुरुषार्थ इतना कोमल बना दिया जाय कि उसमें मुश्किलों का सामना करने की शक्ति न रह जाय, जहाँकला और संयम में कोई मेल न हो जहाँ कि कला केवल नाचने गाने और नकलें करने में ही माहिर हो, उस शिक्षा का मैं कायल नहीं हूँ।"[1]

दयानन्द ने मूर्ति पूजा का विरोध किया वेदों का पाठ सभी जातियों के लिए वैध माना। दयानन्द ने मूर्ति पूजा, जातिभेद, छुआछूत, बाल विवाह, परदा और पशुबलि की रूढ़ियों का जबरदस्त विरोध किया।

दयानन्द की ही भाँति इस कड़ी को आगे बढ़ाया स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने "रामकृष्ण मिशन" की स्थापना की जिसमें उन्होंने सभी भारतीय धर्मों का समन्वय किया और सामाजिक सुधार में महत्वपूर्ण योगदान किया। सन् 1906 ई0 में "डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन" की स्थापना हुई, जिसके द्वारा भारतीय दलित समाज के उत्थान के अनेक महत्वपूर्ण कार्य हुए। "इण्डियन सोशल कान्फ्रेंस" के द्वारा भी दलित वर्ग उत्थान, स्त्री शिक्षा, बाल विवाह निषेध, जातिभेद उन्मूलन आदि की दिशा में अनेक कार्य हुये।

इस प्रकार भारत में सामाजिक आन्दोलन कोई नयी चीज नहीं थी साम्यवाद या समाजवाद की माँग एकाएक नहीं पैदा हो गई थी, ये प्राचीन समय से भारत में चली आ रही थी बस रूप में अंतर अवश्य था। भारत की परिस्थितियाँ ही ऐसी थी कि एक विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का जन्म होता अतः प्रगतिवाद सामने आया।

1- एक भाषण-प्रेमचन्द-आर्य समाज के अंतर्गत, आर्य भाषण सम्मेलन के वार्षिक अवसर पर लाहौर में दिया गया भाषण- सन् फरवरी 1937

प्रगतिवाद था क्या? उस पर किस किस का प्रभाव पड़ा। उसकी मान्यतायें क्या थी? प्रगतिवाद के सिद्धान्त क्या थे। ये प्रश्न स्वाभाविक हैं अतः इस पर रोशनी पड़नी आवश्यक है। प्रगतिवाद पर रूस के मार्क्सवाद का प्रभाव अत्यधिक पड़ा था। प्रगतिवाद में मार्क्स के भौतिकवाद और क्रान्तिवाद का पूर्णतयः समावेश है। प्रगतिवाद को समझने के लिये पहले मार्क्सवाद को समझना अत्यन्त आवश्यक है। कि मार्क्स का दर्शन क्या था? मार्क्स के क्या विचार थे? अतः प्रगतिवाद के स्वरूप से पहले हम मार्क्स पर कुछ रोशनी डालेंगे। मार्क्स का दर्शन वर्ग संघर्ष, द्वन्द्ववाद, क्रान्ति क्या था? मार्क्स की साहित्यिक मान्यतायें? मार्क्स का सौन्दर्य क्या था? ये जानना आवश्यक है।

====

द्वितीय-अध्याय

प्रगतिवादी दर्शन और हिन्दी साहित्य

वैज्ञानिक समाजवाद के जन्मदाता मार्क्स और एंगिल्स कहे जाते हैं। इन दोनों ने मिलकर संसार समाज और जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण को सामने रखा जो अभी तक प्रचलित सभी समाजवादी विचारधाराओं से सर्वथा भिन्न थे। मार्क्स एवं एंगेल्स ने समाज के किसी एक अंग के सुधार की बात नहीं कही और न ही कोरे सुधार की बात करके उसकी बुराइयाँ ही दर्शायी बल्कि इन दोनों ने एक वैज्ञानिक अध्ययन करके समस्याओं की मूल तह तक पहुँचकर उसकी परिभाषा करते हुये कारण और फिर उस समस्या के निदान के उपाय तक की बात की। मार्क्स का अपना एक दर्शन था उनके कुछ सिद्धांत थे उन्होंने अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र का गहन अध्ययन करके कुछ तथ्य निकाले और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आर्थिक अव्यवस्था ही सब विषमता की जड़ है।

मार्क्सवाद का दर्शन

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद—

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद ही मार्क्स तथा मार्क्सवादी चिन्तकों की कला और साहित्य अथवा काव्य विषयक मान्यताओं का प्रमुख आधार है। मनुष्य और प्रकृति के सम्पूर्ण क्रिया कलापों को समझने का जो मार्क्सवादी दृष्टिकोण है उसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की संज्ञा दी गई है। स्तालिन के शब्दों में, " यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इसलिए कहलाता है कि प्राकृतिक घटनाओं को देखने, परखने और पहचानने का इसका ढंग द्वन्द्वात्मक है और इन प्राकृतिक घटनाओं की इसकी व्याख्या, धारणा एवं सिद्धांत-विवेचना भौतिकवादी है।"[1] मार्क्स के अर्थ में द्वन्द्ववाद और कुछ नहीं बाह्य जगत तथा मानवीय विचारों से संबंधित गति के सामान्य नियमों का विज्ञान है। मारिस कार्नफर्थ के अनुसार "द्वन्द्ववाद की शुरुआत ही यह समझना है कि कैसे वस्तुयें और प्रतिक्रियायें अनिवार्य रूप से परस्पर संबद्ध होती हैं।"[2]

- -

1- जे0 स्टालिन प्राब्लम्स आफ लेनिनिज्म-पृ0- 569-जनार्दन वर्मा-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी विचारधारा से उद्धृत- पृ0-36

2- मार्क्सवादी साहित्य चिंतन इतिहास तथा सिद्धांत-शिवकुमार मिश्र

वि० अफनास्येव का कथन है, "ज्ञान के मार्क्सवादी सिद्धांत का भौतिक निरालापन इस बात में है कि वह संज्ञान की प्रक्रिया को व्यवहार पर, जनता के भौतिक उत्पादन संबंधी कार्य कलाप पर आधारित करता है।" मार्क्सवाद समस्त प्रकृति और जीवन को निरंतर गतिशील मानते हैं जो सतत् परिवर्तनशील है और अधःपतन एवं अधःउत्थान की ओर उन्मुख है। छोटी से छोटी वस्तु से लेकर बड़ी से बड़ी वस्तु तक, बालू के एक कण से लेकर सूर्य तक, छोटे से जीव कोष से लेकर मनुष्य तक संपूर्ण प्रकृति सतत गतिमय और परिवर्तनशील है। उसकी स्थिति निर्माण और निर्वाण के अविराम प्रवाह में है।"[1] प्रकृति जो मोटी दृष्टि से देखने में हमें स्थिर दिखाई देती है वास्तव में वह प्रतिक्षण गतिशील है, पेड़-पौधे जो निरंतर परिवर्तनशील हैं हमें उनमें परिवर्तन होते दिखाई नहीं पड़ता मगर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि उसकी अनेक शाखाओं कोषिकाओं में नष्ट होने और नयी बनने की क्रिया-प्रतिक्रिया चल रही है। ऐंगेल्स ने द्वन्द्ववाद की व्याख्या करते हुये अपनी पुस्तक "ड्यूहरिंग-मत खण्डन" में लिखा है "द्वन्द्ववाद प्रकृति, मानव-समाज और विचारों के विकास एवं गतिशीलता से संबंधित सामान्य नियमों के विज्ञानके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।"[2]

निरंतर परिवर्तनशील प्रकृति का रहस्य क्या है? निश्चित ही इसके अंतर में कोई नियम कार्य कर रहा है जिससे सभी क्रिया-व्यापार संचालित हो रहे हैं। गति तभी उत्पन्न होती है जब दो विरोधी शक्तियों का मिलन होता है और फिर आपस में संघर्ष की स्थिति आ जाती है। "विरोधी जब मिलेंगे तो संघर्ष जरूर होगा और संघर्ष नये स्वरूप, नई गति, नई परिस्थिति अर्थात विकास को जरूर पैदा करेगा।"[3] इस प्रकार विरोधियों का संघर्ष का नाम ही गति अथवा विकास है। "[4]संसार की प्रत्येक वस्तु विकास की अवस्था में है गति वस्तु अथवा पदार्थ का अनिवार्य गुण है। पदार्थ और गति एक-दूसरे से इस प्रकार बंधे हैं कि एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। एंगेल्स के अनुसार गति ही पदार्थ के अस्तित्व का आधार है।"[5] किसीभी वस्तु की स्थिरता उसकी मरणावस्था है अतः पदार्थ प्रत्येक वस्तु

1- मार्क्सएंगेल्स लिनिन [illegible] इन्ट्रोडेक्शन टु डाइलेक्टिस ऑफ नेचर एंगेल्स भाग-1। मास्को
"जनेश्वर वर्मा हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी [illegible] से उद्धृत।
2- एफ० एंगेल्स - एन्टी ड्यूरिंग - । [illegible]
3- राहुल सांकृत्यायन-वैज्ञानिक भौतिकवाद-पृ०-56 जनेश्वर वर्मा-हिन्दीकाव्य में मार्क्सवादी विचारधारा से उद्धृत।
4- [illegible] इन द स्टूडिज आफ अपोजिट -लेनिन मार्क्स एंगेल्स मार्क्सिज्म पृ०- 292
" जनेश्वर वर्मा-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना
5- [illegible] मोशन इज द मोड ऑफ इग्जिस्टेंस।

निरंतर परिवर्तन की है द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का यही मूल आधार है-एंगेल्स ने इसी गति और परिवर्तन पर जोर दिया है जिसे नितान्त अध्ययन और प्रयोग के बाद सिद्ध किया गया है-एंगेल्स का मत है-पदार्थ न तो कभी गतिहीन रहा है और न कभी गतिहीन हो सकता है। गतिहीन पदार्थ की कल्पना उसीप्रकार नहीं की जा सकती जैसे पदार्थ रहित गति की।[1]एक व्यक्ति अपने विचार रखता है दूसरा उसका विरोध करता है फिर पहला उसकी बात का विरोध करता है इस प्रकार एक नयी बात सामने आती है जिसको कि दोनों ने ही बात नहीं की थीफिर वह नयी मान्यता विकास पाती है अतः विरोध में ही विकास की प्रक्रिया निवास करती है। मार्क्सवादके आधुनिक व्याख्याता माओ के मत में भी विरोध सभी वस्तुओं के विकास की प्रक्रिया में वर्तमान रहता है और वस्तु के विकास कीप्रक्रिया में आद्योपांत यह विरोध बना रहता है।इसी को विरोधी समाश्रय को सार्वभौमता कहा जाता है।[2]राहुल सांकृत्यायन के कथनानुसार एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुँचने की गति सर्प के समान न ~~मेढ़क~~ मेढ़क के समान होती है।[2]सर्प रेंगकर चलता है अतः उससे पृथ्वी के स्थानों को स्पर्श होता है किन्तु मेढ़क एक स्थान से दूसरे स्थान पर सहसा उछल कर पहुँच जाता है।गुणात्मक परिवर्तन की गति भी ऐसी ही है। इसी परिवर्तन के नियम के आधार पर मार्क्सवादी सामाजिक क्रान्ति का समर्थन करते हैं। पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्थामें शोषित वर्ग में असंतोष की मात्र धीरे धीरे बढ़ती रहती है और फिर एकदम सहसा क्रांति का रूप धारण करके विस्फोट कर देती है जिसमें सभी पुरानी परम्परायें एवं मान्यतायें नष्ट हो जाती हैं और उनका स्थान नवीन मान्यतायें ले लेती हैं। मार्क्सवाद इसी सामाजिकक्रांति का पक्षधर है इसी बात को आचार्य नरेन्द्र देव ने अपने शब्दों में व्यक्त किया है नारी की प्रसव पीड़ा से-"जिस प्रकार बच्चा माँ के गर्भ में बढ़ता है किन्तु लगभग नौ मास के उपरान्त एक दिन वह अचानक माता को कड़ी प्रसव वेदना देते हुए बाहर निकल पड़ता है,उसी प्रकार पुराने समाज के भीतर नये समाज की अवस्थायें जब परिपक्व हो जाती हैं तो अचानक क्रांति के द्वारा नये समाज का जन्म होता है।क्रांति नये समाज की प्रसव वेदना है।एक समाज से नये उन्नत समाज की ओर जाने के लिए क्रांति एक अनिवार्य सीढ़ी है।"[3]

1- मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल- डा० पारसनाथ मिश्र-पृ0- 24

2- राहुल सांकृत्यायन-"वैज्ञानिक भौतिकवाद,पृ0-26 कमेश्वर वर्मा-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना।

3- आचार्य नरेन्द्र देव-समाजवाद-लक्ष्य और साधन-पृ0- 55 कमेश्वर वर्मा हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना।

विरोधी शक्तियों का संघर्ष ही विकास का मूल कारण है प्रत्येक व्यवस्था के अंतर में असंगतिया विद्यमान हैं प्रत्येक व्यवस्था अपने गर्भमें असंगतियों के रूप में विनाश के बीज लिये रहती है। इसी प्रकार सामाजिक व्यवस्था में भी असंगतियाँ धीरे धीरे बढ़ती रहती हैं और जब समाज इस असंगतियों के भार को ढोने में असमर्थ हो जाता है तो क्रान्ति का ज्वार आ जाता है एक विस्फोट होता है और यह क्रांति एक दूसरी व्यवस्था को जन्म देती है इस प्रकार एक का नाश दूसरे के उत्थानफिर उसका नाश किसी तीसरे का उत्थान यह क्रम चलता रहता है जैसी परिस्थितियाँ हो वैसी ही व्यवस्था मान्य होती है और सुचारु रूप से चलती है परिस्थितियों के प्रतिकूल होने पर वही व्यवस्था जो एक समय उपयोगी थी दूसरे समय में रूढ़ि बनकर आघात पहुँचाती है जैसे सती प्रथा कुछ समय पहले बहुत उपयोगी थी अगर यह न होता तो समाज में अव्यवस्था फैल जाती क्योंकि उस समय की परिस्थितियों की ऐसी ही माँग थी किन्तु आज यह एक जघन्य अपराध है। परिस्थितियाँ ही सिद्धान्तों का निर्माण करती हैं। एक समय का बोला हुआ सत्य किसी की जान बचा सकता है तो दूसरी परिस्थितियों में बोला हुआ सत्य किसी की जान ले भी सकता है इसलिये कोई भी सिद्धांत स्थिर नहीं किसी की कोई निश्चित गतिनहीं ये तो निरंतर युग सापेक्ष है, परिवर्तनशील है परिस्थितियों के अधीन है।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन में मार्क्स एवं एंगेल्स ने "प्रतिषेध का प्रतिषेध नियम" की अवस्था की भी व्याख्या की है। प्रतिषेध से तात्पर्य विनष्ट-विलीन वस्तु की स्थानापन्न वस्तु से है। यदि कोई वस्तु की पहली अवस्था है और वह नष्ट हो जाये और उसी वस्तु से एक नयी वस्तु बन जाये तो प्रतिषेध की अवस्था कहेंगे, फिर इस वस्तु के भी विनष्ट हो जाने से जो नवीन वस्तु उत्पन्न होगी उस उत्पन्न हुई तीसरी अवस्था को प्रतिषेध का प्रतिषेध नियम कहेंगे। जब कोई व्यवस्था अपने अंदर विनाश शील असंगतियों को बढ़ा लेती है तो उस जर्जरित व्यवस्था का चरमराकर धराशायी हो जाना अवश्यंभावी हो जाता है और फिर उसी से कुछ उपयोगी सिद्धांतों को लेते हुए एक नयी व्यवस्था को जन्म दिया जाता है और उसके भी जर्जरित हो जाने पर फिर तीसरी अवस्था का उन्नयन होता है और वह विकास पहलीऔर दूसरी अवस्था की तुलना में ज्यादा उन्नतिशील होता है यह निरंतर ऊपर उठता जाता हैउसका स्तर ऊँचा उठता जाता है वह निरंतर प्रगति करता जाता है।अतः "द्वन्द्ववादी मान्यता के अनुसार निषेध का आशय केवल यह नहीं है कि हम किसी वस्तु को मनमाने ढंग से मिटा दें या उसके अस्तित्व की घोषणा मात्र कर दें।हमें

प्रतिषेध के प्रथम भाग को इस प्रकार सम्पन्न करना चाहिये कि द्वितीय अवस्था भी संभव हो सके।[1] इसका तात्पर्य यह है कि प्रतिषेध का प्रतिषेध नियम तभी बन सकता है जबकि प्रथम स्थिति या वस्तु का विनाश होकर दूसरी वस्तु या स्थिति का विकास इस प्रकार हो कि प्रथम का अस्तित्व बचा रहा वह पूर्णतया नष्ट न हो गया है ताकि उसको तीसरी अवस्था भी संभव हो सके यदि प्रथमवस्तु का नाश पूर्णतय: हो गया और उससे दूसरी वस्तु का निर्माण हो गया तो प्रतिषेध तो हुआ किन्तु अब उसका अस्तित्व न बचने से फिर उस वस्तु का नाश होकर तीसरी वस्तु का निर्माण नहीं हो सकता इसलिये प्रतिषेध का प्रतिषेध नियम नहीं हो सकता, उदाहरण के लिये एक बीज बोया गया वह अपना अस्तित्व मिटाकर पेड़ बन जाता है और वहपेड़-पत्तों और फलों में परिवर्तित होता है तो ये हुआ प्रतिषेध का प्रतिषेध नियम और अगर उसी बीज को पीसकर किसी खाद्य सामग्री बनाने के काम ले लिया गया तो पहली अवस्था तो संभव हो गयी प्रतिषेध तो हो गया किन्तु वह पूर्णतया नष्ट हो गया इसलिये उसकी तीसरी अवस्था संभव नहीं अतः प्रतिषेध का प्रतिषेध नियम लागू नहीं हो पायेगा। अतः एंगेल्स ने इस बात पर काफी ध्यान आकर्षित करवाया है।

जैसे-जैसे विज्ञान का विकास होने लगा वैसे वैसे मनुष्यों में प्रत्येकवस्तु को तर्क की कसौटी पर कस कर और उसे सब तरह से परिक्षण करके ही मान्यता दी जाने लगी। धर्म को श्रद्धा और विश्वास की वस्तु समझा जाने लगा, वह उस समय बनाया गया जब आदिम अवस्था में मनुष्य में ज्ञान का अभाव था उसमें तर्कशक्ति, बुद्धि का इतना विकास नहीं हुआ था। उसने अपने आस-पास की प्रकृति को देखा और उसमें विभिन्न देवी-देवताओं की कल्पना कर ली। स्वयं का इस परमात्मा का प्रतिबिम्ब मात्र माना, संसार उनके लिये नश्वर है। आत्मवादी दर्शन आत्मा को परमात्मा का अंश मानता है सारा संसार एक दैवी शक्ति से परिचालित है और ये शरीर उसकी छाया मात्र है जो एक दिन नष्ट हो जायेगा। वह विचार को श्रेष्ठ मानता है वस्तु को नहीं। दूसरी तरफ भौतिकवादी इस सृष्टि को शाश्वत मानते हैं जो कुछ दिखाई दे जो इन्द्रियगम्य हो वह सब सत्य है आत्मा शरीर का ही एक अंग है मस्तिष्क उसकी कार्यशाला है यहीं से विचार उत्पन्न होते हैं हम जो कुछ देखते हैं उसी को देखकर हममें विचार उत्पन्न होते हैं अतः वस्तुप्रधान है और विचार उसी के देखकर उत्पन्न

1- ड्यूको एंगेल्स एन्टी ड्यूरिंग। पृ0- 160 — कमेश्वर वर्मा हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

हुए इसलिये उसकी अनुकृति मात्र है। इन सब मान्यताओं को इन्होंने विज्ञान की कसौटी पर कसा और प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया इसके विपरीत आत्मवादी सिद्ध नहीं कर सकते वह तो केवल अनुभव करते हैं उनके पास प्रमाण कुछ भी नहीं। जैसे जैसे विज्ञान ने उन्नति की उसने पहले की सभी मान्यताओं को झुठला दिया अनेक यंत्रों के अविष्कार ने सदियों से चलती आ रही मिथ्या धारणाओं का निवारण कर दिया उसने ग्रहों, उपग्रहों की दूरी, घनता आदि को सिद्ध कर सबके रहस्य को खोल दिया। शताब्दी के मध्य में डार्विन के जीवन-विकास के सिद्धांत ने विचारों में भारी क्रांति पैदा की और जड़-चेतन की सीमाओं को बहुत नजदीक कर दिया।"[1] इन भौतिकवादियों का विचार था "इस संसार को किसी देवता या मनुष्य ने नहीं बनाया वरन वह एक सप्राण ज्योति है, जो थी है और सदा रहेगी। वह नियमित रूप से जल उठती है और नियमित रूप से ही ठण्डी हो जाती है।"[2]

प्रकृति के विषय में भौतिकवादी दृष्टिकोण प्रकृति के किसी बाह्य मिश्रण के बिना, ठीक जिस प्रकार उसका अस्तित्व है, उस रूप में ग्रहण करने से अधिक और कुछ नहीं। प्रकृति की वास्तविक एकता उसकी भौतिकता में सन्निहित है, एवं यह दर्शन और प्राकृतिक विज्ञानके लम्बे और विरल विकास द्वारा प्रमाणित है। गति द्रव्य के अस्तित्व की दशा है। बिना गति के कभी द्रव्य नहीं रहा, न द्रव्य के बिना गति रही और न ऐसा संभव ही है।"[3]

मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन की व्याख्या करते हुए भूत के संबंध में लेनिन ने कहा था "पदार्थ (भूत) वह है जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर आघात करके संवेदना उत्पन्न करता है। पदार्थ वह वस्तुगत (वैज्ञानिक) सत्य है जो हमें संवेदना में प्राप्त होता है-----भौतिकजगत, पदार्थ सत्ता---जो कुछ भी प्राकृतिक है वह मूल है, आत्मा, चेतना, संवेदना---जो कुछ भी मानसिक है वह गौण है।"[4] भूत की स्थिति में देश और कालकी धारणा को भी मार्क्स और एंगिल्स ने सत्य माना है। देश काल की स्थिति हमारे अपने शरीर के अंदर नहीं है वरन् हमारी स्थिति ही देश काल के अंदर है। मार्क्स और एंगिल्स भूत की गति को स्वीकार करते है भूत निरंतर [illegible] है अतः उसके साथ, देश और काल की स्थिति की भी मान्यता हो जाती है।

1- राहुल सांकृत्यायन-दर्शन-दिग्दर्शन(1944) पृ0- 326-328 जनेश्वर वर्मा हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत

2- सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास, पृ0- 122-जनेश्वर वर्मा-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

3- लेनिन मार्क्स [illegible] मार्क्सिज्म- लेनिन।

4- लेनिन सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी काइतिहास मेंसे उद्धृत-पृ0- 123।

वस्तु में गतिशीलता होने से ही वह एक क्षण से दूसरे क्षण और एक स्थान से दूसरे स्थान में गति करता है इस गतिशील भूत को मार्क्स बोधगम्य मानता है वह इसे कोई अदृश्य इन्द्रियों की सीमा से परे कोई रहस्य के रूप में स्वीकार नहीं करता। वह प्रत्येक अज्ञेय रहस्यों को विज्ञान द्वारा और द्वन्द्ववाद के सिद्धान्तों की सहायता से ज्ञेयय करने में विश्वास रखते हैं मनुष्य ज्ञान द्वारा सभी रहस्यों की गुत्थियां खोलने में सक्षम है। मार्क्स भूत की सत्ताको ही एक मात्र सत्य मानते हैं जो कि बोधगम्य, मनः जगत से बाहर स्वतंत्र निरंतर दृश्यमान गतिशील एवं देश-काल में रहने वाली प्रत्यक्ष है जिसे [illegible] से विज्ञान के सहारे समझा जा सकता है।

प्रकृति या भौतिक संसार की सत्ता एक वैज्ञानिक वास्तविकता है जो हमारे चित्त में बाहर और उससे स्वतंत्र है। पदार्थ।भूत। मूल है, क्योंकि वही संवेदनाओं, कल्पनाओं और चित्त का उदगम है, चित्त गौण और उसी से उत्पन्न है क्योंकि वह पदार्थ का, सत्ता का प्रतिबिम्ब है।पदार्थ।भूत। विकसित होकर उच्च अवस्था में मस्तिष्क का रूप धारणकरता है, विचारों की क्रिया मस्तिष्क द्वारा सम्पन्न होती है, इसलिए विचार पदार्थ जन्म है। विचारों को प्रकृति और पदार्थ से विच्छिन्न करना भारी भूल होगी।"[1]

ऐतिहासिक भौतिकवाद-

मार्क्स ने अपने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का इतिहास पर आरोप किया और सामाजिकपरिवर्तनों और राजनीतिक क्रांतियों का कारण दार्शनिक नहीं उस युग की आर्थिक परिस्थितियां बताया। ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार आर्थिक परिस्थितियां ही सामाजिक व्यवस्थाओं की मूलाधार हैं प्रत्येक व्यवस्था के मूल में अर्थकाम करता है इस प्रकार सामाजिक संस्थाओं के उदगम, संबंध और उसके विकास आदि पर महत्त्व पूर्ण सिद्धांत दिये जो नितान्त वैज्ञानिक और तर्क सम्मत थे यह ऐतिहासिक भौतिकवाद मार्क्स की एक विशेषता है। जिस प्रकार प्रकृतिमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम से परिवर्तन होते हैं उसी प्रकार सामाजिक व्यवस्थाओं में भी समस्त परिवर्तन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम के अनुसार होते हैं प्रत्येक व्यवस्था में असंगतियां विद्यमान रहती हैं और यह [illegible] एक दिन इतनी

1- कमेश्वर वर्मा- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-पृ0- 73-74 1974, कानपुर

बढ़ जाती हैं कि पहली अवस्था का नाश करके एक नयी व्यवस्था को जन्म देती है ठीक यही दशा सामाजिक विकास क्रम की भी है मनुष्य अपने उत्पादन के ढंग में परिवर्तन चाहता है वह एक सुखमय जीवन व्यतीत करना चाहता है इसलिये वह अपने उत्पादन के ढंग में परिवर्तन करता है, जो पहले से अधिक सदृढ़ और ऊँचे स्तर की होती है अतः नई शक्तियों का पुरानी शक्तियों से संघर्ष आरंभ हो जाता है क्योंकि पुरानी शक्तियाँ नयी शक्ति को पैर जमाने देना नहीं चाहती अतः बड़े-बड़े आन्दोलन होते हैं क्रांतियाँ होती हैं जिसके फलस्वरूप नयी व्यवस्था का जन्म होता है।

आर्थिक तत्व की भूमिका-

उत्पादन की प्रक्रिया ही सामाजिक संस्थाओं को जन्मदेती है। एंगेल्स के कथनानुसार "उत्पादन और उत्पादित वस्तुओं का विनिमय ही प्रत्येक समाज-व्यवस्था का आधार है। [इतिहास] में जितनी भी सामाजिक व्यवस्थाएँ हुई हैं उनमें से प्रत्येक की वितरण-पद्धति और प्रत्येक का वर्ग विभाजन इस बात पर निर्भर रहा है कि उस समाज में क्या उत्पन्न होता है, कैसे उत्पन्न होता है और किस प्रकार उसका विनिमय होता है।"[1]

मार्क्स के अनुसार संसार में दो पदार्थ हैं स्वीकारात्मक और नकारात्मक। इन दोनों तत्वों के संघर्ष का नाम ही जीवन है, जिसका आधार वस्तु।मैटर।है, इसीसे चेतना का जन्म होता है। यही चेतना द्वन्द्वात्मक होती है।[2] और यही प्रक्रिया सामाजिक व्यवस्था में भी कार्य करती है जिसका मूलाधार आर्थिक तत्व है। मार्क्सवादी चिन्तन के अनुसार साहित्य और समाज का मूलाधार आर्थिक व्यवस्था है। मार्क्स ने सामाजिक जीवन की वास्तविक नींव आर्थिक ढाँचे को ही बतलाया है "लोग जो सामाजिक उत्पादन का कार्य करते हैं, उससे उनके बीच कुछ निश्चित संबंधों की स्थापना हो जाती है। ये संबंध अनिवार्य तथा उनकी इच्छा से निरपेक्ष रहते हैं। ये उत्पादन संबंध उनकी उत्पादन कीभौतिकशक्तियों के विकास की एक निश्चित अवस्था के अनुकूल होते हैं। इन उत्पादन संबंधों की समष्टि से ही समाज का आर्थिक ढाँचा निर्मित होता है और सामाजिक चेतना के विशिष्ट रूप भी इसी के अनुरूप होते हैं।"

1- फ्रेडरिक एंगेल्स-समाजवाद-वैज्ञानिक और काल्पनिक-पृ0- 29
2- [प्रगतिवाद] काव्य साहित्य-डा0कृष्ण लाल "हंस" पृ0-15

मार्क्स की दृष्टि में मूल्य वस्तुगत और अनुमानित है क्योंकि वह आवश्यक सामाजिक श्रम के आधार पर उत्पादन के खर्च को काटकर निश्चित किया जाता है यह सिद्धान्त मात्र शारीरिक श्रम का विभाजन का है क्योंकि उच्चकोटि के मानसिक श्रम का नाम इस विभाजन के अंतर्गत नहीं आ सकता।[1]

यद्यपि मार्क्सवादी दर्शन यह अवश्य प्रतिपादित करता है कि जब समाज के भौतिक जीवन का विकास समाज के सम्मुख नवीन कर्तव्यों को उपस्थित करता है त भी नवीन सामाजिक भाव एवं विचार धाराओं का उदभव होता है।

संसार में मनुष्य ऐसा प्राणी है जो सुख-शांति का जीवन व्यतीत करने के लिये संघर्षशील रहता है वह अपने जीवन को अधिक से अधिक आराममय बनाना चाहता है इसके लिये वह तरह तरह के साधनों का अविष्कार करता है इसमें अनेक यंत्र और मशीन आदि शामिल हैं, स्पष्ट है कि वह अकेले इसका प्रयोगनहीं कर सकता अत: वह अन्य लोगों से संबंध स्थापित करता है इसीको उत्पादन संबंध कहते हैं और जो साधन हैं उन्हें उत्पादक शक्ति कहते हैं और दोनों के बीच अनुकूल संबंध हो तभी सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चल सकती है अन्यथा क्रांति की संभावना उपस्थित हो जाती है संघर्ष बढ़ जाता है। पूंजीवादी व्यवस्था ऐसी ही है जिसमें उत्पादन शक्ति तो विकसित है किन्तु उत्पादन संबंध पिछड़ी अवस्था में है। उत्पादक शक्ति का तो बहुत विकास हो गया बहुत से कल-कारखाने मशीने बन गयी और उसमें बहुत से लोग मिलकर उत्पादन करने लगे किन्तु उसके उपभोग का ढंग व्यक्तिगत है मिल-मालिक या पूंजीपति उत्पादित वस्तुओं पर अपना स्वामित्व जमा लेता है जबकि समाज का एक बहुत बड़ा जनसमुदाय उसमें कार्य करता है उसे उसके जीवन निर्वाह भर का भी नहीं मिलता पूंजी एक ओर संचित होती जाती है और वह मुट्ठी भर लोगों का साधन मात्र रह जाती है उत्पादनशक्ति और उत्पादन संबंध की यह विषमता समाज में असन्तोष, विद्रोह, [illegible], संघर्ष आदि को जन्म देती है और यह संघर्ष की अवस्था तब तक चलती रहती है जबकि साम्यवाद की स्थापना नहीं हो जाती उत्पादित वस्तु का सामाजीकरण नहीं हो जाता उसे समाज की सम्पत्ति नहीं समझा जाता। इसी उत्पादित वस्तुओं की एकता की ओर संकेत करते हुए एंगिल्स ने लिखा-" अगर अधिकाधिक लोग अब यह अनुभव करने लगे हैंकि समाज की वर्तमान संस्थाएँ न्यायहीन और अविवेकपूर्ण हैं, बुद्धि कुंठित

- -

1- हिन्दीगद्य साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव-डा० शंकर लाल जयसवाल-पृ0-20

हो गई है और अच्छे काम भी अभिशाप बन रहे हैं, तो यह केवल इस बात का लक्षण है कि उत्पादन और विनिमय प्रणाली में चुपचाप ऐसे परिवर्तन होते रहे हैं जिनका पुरानी आर्थिक अवस्थाओं पर आधारित समाज-व्यवस्था से अब मेल नहीं रह गया। साथ ही इससे यह भी पता चलता है कि उत्पादन की बदली हुई परिस्थितियों में न्यूनाधिक विकसित रूप में वे साधन भी अवश्य मौजूद होंगे जिनसे इन प्रत्यक्ष बुराइयों का अंत किया जा सकता है। इन साधनों को मस्तिष्क के किसी कोने से नहीं निकाला जा सकता बल्कि मस्तिष्क की सहायता से उन्हें उत्पादन की विद्यमान भौतिक परिस्थितियों में ही खोजा जा सकता है।"[1]

वर्ग संघर्ष संबंधी मान्यता-

मनुष्य और उसका समाज जीवन रक्षा के प्रयत्नों से जुड़ा रहता है। मनुष्य अपने जीवन की रक्षा के लिये पैदावार करना चाहता है जीवन का निर्वाह सुचारू रूप से चलता रहे इसलिये समाज के लोगों को तरह तरह के कार्य करने पड़ते हैं इसलिये व्यक्ति कई श्रेणियों में बंट जाते हैं फलतः सबके हित भी भिन्न भिन्न हो जाते हैं इसका परिणाम ये होता है कि कुछ श्रेणियां बिना श्रम किये हुए ही दूसरे के श्रम का लाभ उठाना चाहती हैं और इस तरह श्रेणियों में आपस में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और मार्क्स के अनुसार-"समाज के दायरे में मौजूद इन श्रेणियों का परस्पर संघर्ष ही मनुष्य समाज का इतिहास है।"[2]

पूँजीवादी व्यवस्था के साथ ही समाज में दो वर्गों ने जन्म लिया एक था शासक वर्ग और दूसरा शोषित वर्ग। पूँजीपति बड़ी बड़ी मिलों के मालिक जो उत्पादित वस्तुओं पर अपना एकाधिकार रखकर अत्यन्त भोग विलास का जीवन व्यतीत करते थे, सुन्दर-सुन्दर मकानों में और बंगलों में रहते थे, तो दूसरी ओर वह विशाल जन समुदाय था जो गन्दी बस्तियों में टूटे-फूटे मकानों में चीथड़े लपेटे हुए जानवरों से बुरी जिन्दगी व्यतीत करता था। पहली अवस्था के लोग वे थे जो सर्वसाधन सम्पन्न थे जिनके पास धन था उत्पादन के सभी साधन थे और दूसरी अवस्था के वे लोग थे जिनके पास अपने श्रम के सिवा कुछ भी न था अतः पूँजीपति अपनी पूँजी के बल पर श्रम शक्ति खरीद लेता था।

1- फ्रेडरिक एंगेल्स-समाजवाद-वैज्ञानिक और काल्पनिक-पृ0-29-30
   जनेश्वर वर्मा-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

2- मार्क्सवाद- यशपाल- पृ0-68

संसार के सभी देशों में ये दोनों ही श्रेणियां विद्यमान हैं परन्तु -"दूसरे युगों की तुलना में हमारे युग की---पूँजीवादी युग की विशेषता यह है कि वर्ग विरोधों को इसने सीधा-साधा बना दिया है। आज पूरा समाज दिनों दिन प्रतिस्पर्धी शिविरों में एक दूसरे के खिलाफ खड़े हो विशालवर्गों में पूँजीपतियों और मजदूरों में बँटता जा रहा है।"[1]

पूँजीपति सामन्त ये सब अपने स्वार्थ के अनुसार कानून एवं नियम बनाते है सारी समाज व्यवस्था इन्हीं के इशारों पर चलती है। इन पूँजीपतियों के बड़े बड़े कारखाने चलाने के लिये अधिक संख्या में मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है जो दिन रात मशीन की भाँति मेहनत करें और पूँजीपतियों को निरंतर लाभ पहुँचायें। पदार्थों को बनाने के लिए कुछ वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है और उन वस्तुओं को पैदा करने के लिये मनुष्य को श्रम करना पड़ता है। जमीन से कपास [illegible] कुर्ता बन जाने तक न जाने कितने मनुष्यों की मेहनत उसमें लगती है तब जाकर माल तैयार है इस प्रकार मकान तैयार करने में या भोजन तैयार करने में हजारों मनुष्यों को श्रम करना पड़ता है परन्तु कारखाने किसी दूसरी श्रेणी के मनुष्यों की होने से उसके लाभ पर उनके मालिकों का हाथ होता है उत्पादन वह अपनी इच्छा से बाँटते हैं और अपने अधीन सभी मजदूरों को समान रूप से पैदावार का हिस्सा देता है इस प्रकार वह एकहीढंग से रहते भी हैं और उनकी एक श्रेणी बन जाती है। और इनके रहन सहन आदि से इनका समाज में भी उसीप्रकार का स्थान हो जाता है सब उन्हें हीन दृष्टि से देखते हैं जिनके श्रम से प्रत्येक व्यक्ति अपने रहन-सहन को ऊँचा उठाते हैं उन्हीं कर्मयोगियों की समाज में कोई इज्जत नहीं। ये कैसा न्याय है श्रम करे कोई और भोग करे कोई?।

"मार्क्सवाद का सिद्धान्त है कि साधनों की मालिक श्रेणी सदा ही मेहनत करने वाली श्रेणी से मेहनत कराकर पैदावार का अधिक भाग अपने पास रखने की कोशिश करती है और अपनी मेहनत से पैदा करने वाली श्रेणी अपने जीवन निर्वाह के लिये इन पदार्थों को स्वयं खर्च करना चाहती है। इस प्रश्न को लेकर इन दोनों श्रेणियों में तनातनी और संघर्ष चलता रहता है और यह तनातनी तथा संघर्ष ही मनुष्य समाज के आर्थिक विकास

- -

1- मार्क्स और एंगेल्स कम्युनिस्टपार्टी का घोषणा पत्र पृ0- 34-35 -जनेश्वर वर्मा हिन्दी काव्य मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

की कहानी है। मालिक श्रेणी और मेहनत करने वाली श्रेणी का यह संघर्ष सदा से चला आया है।परन्तु पूँजीवाद के जमाने मैंकल कारखानों के बहुत विराट रूप धारण कर लेने के कारण यह संघर्ष भी बहुत बड़े परिणाम में बढ़ गया है।[1] मार्क्सवाद की यह धारणा रही है कि आज तक के समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है------वस्तुतः इस वर्ग वैषम्य ने ही मनुष्य के व्यक्तित्व और जीवन को खंडित कर डालाहै।"[2]शोषित वर्ग पैदावार पर अपना अधिपत्य जमाने का प्रयत्न करता है और शोषक वर्ग ये बर्दाश्त नहीं कर सकता वह समाज को उसी प्रक्रिया से चलते रहने देना चाहता है वह सोचता है कि समाज की वर्तमान व्यवस्था स्वाभाविक है और जो इस नियम को बदलने का प्रयास किया गया तो समाज का विनाश हो जायेगा इस प्रकार वह अपने स्वार्थ के लिये संघर्ष करता है इस तरह वर्ग संघर्ष आरंभ हो जाता है। मार्क्स के अनुसार"पूँजीपति स्वयंतो शोषण करता ही है और अपनी पूँजीवादी व्यवस्था को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये वह अन्य देश के लोगों को भी यही व्यवस्था बनाने के लिये उकसाता है-"पूँजीपति को हरेक देश को विनाश का भय दिखाकर उसे वह पूँजीवाद उत्पादन के तरीके को अपनाने के लिये मजबूर कर देता है। वह उन्हें मजबूर करता है कि वह जिसे सभ्यता कहता है उसे वे भी स्वीकार करे अर्थात वे खुद पूँजीपति बन जाये।"

अपने अधिकारों की रक्षा के लिये और ये बात सिद्ध करने के लिये कि समाज में श्रेणियों का अस्तित्व आज कोई नई बात नहीं ये तो समाज में प्राचीन काल से चली आ रही प्रक्रिया है किन्तु इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य समाज में किसी भीप्रकार की वैयक्तिक सम्पत्ति जमा करने कीप्रवृत्ति नहीं थी। अपने आदिम काल मनुष्य संगठित होकर सामूहिक रूप से श्रम करते थे और सामूहिक रूप से पदार्थ का उपभोग करते थे अपनी अपनी आवश्यकतानुसार सभी उत्पादक वस्तुओं का उपभोग करते थे यह श्रेणीभेद की व्यवस्था तो तब से प्रारंभ हुई जबसे समाज में पारिवारिक और वैयक्तिक सम्पत्ति के संचय का कायदा चालू हो गया। आज की व्यवस्था तो प्राचीन काल से ज्यादा जटिल है ।सामन्ती या प्राचीन दास व्यवस्था में मालिक अपने दास को और सामंत अपने किसानों को जिन्दा रखने के लिये उसके खाने का इंतजाम कर देते थे जिससे कि वह भूख से मर न जाये यदि वह

1- मार्क्सवाद- यशपाल- पृ0- 196

2- साहित्य की समस्यायें- श्री शिवदान सिंह चौहान-पृ0- 64

मर गया तो उसका काम कौन करेगा एक स्वार्थ था पर फिर भी उससे उनका पोषण तो हो ही जाता था और गुलामों का जीवन निर्वाह हो जाता था। मगर पूँजीवादी व्यवस्था उससे भी भीषण निकली क्योंकि वह मजदूरों के प्रति इस दायित्व से भी मुक्त थी मजदूर मरें या जिन्दा रहें उन्हें इससे कोई मतलब नहीं वह मर गये तो दूसरे मिलेंगे। चूँकि उसके ऊपर मजदूर की जीवन रक्षा की कोई जिम्मेदारी भी नहीं हैं इसलिए वह खूब निर्दयता पूर्वक उसका शोषण करता है। औद्योगिक विकास के कारण मशीनों का जमाना आया और मशीनों पर काम करने के लिये उसे जितने मजदूरों की आवश्यकता थी वह केवल मजदूरों द्वारा बनायी गयी वस्तुओं से बहुत कम थी अर्थात जिस काम को एक मजदूर मिल कर करते थे वही काम मशीन पर ५ मजदूर कर सकने में समर्थ थे इस प्रकार मजदूरों की संख्या ज्यादा हो गई और जरूरत कम मजदूरों की होने लगी अतः ऐसे लोगों को लिया जाने लगा जो कम से कम मजदूरी में अधिक से अधिक श्रम कर सके। इस प्रकार प्राचीन सामंत के शोषण की कुछ सीमायें थी एक तो वह एक औसत मनुष्य की सामर्थ्य के बाहर पैदावार नहीं करता सकता था और दूसरा उससे काम लेने के लिये उसे जीवित रखने के उद्देश्य से उसे जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक धन भी देना पड़ता था किन्तु आज ऐसी स्थिति नहीं है आज मजदूर स्वतंत्र है इसलिये उसके जीवन रक्षा की कोई जिम्मेदारी पूँजीपति वर्ग पर नहीं है अतः वह उससे अत्यधिक श्रम करवाने और कम मजदूरी देने से नहीं हिचकता।

पूँजीवादी प्रणाली है क्या इसकी व्याख्या मार्क्स ने की है-"पूँजीवादी प्रणाली में सभी पदार्थ विनिमय के लिये तैयार किये जाते हैं। पूँजीवाद समाज में नई बात यह होती है कि मनुष्य की परिश्रम की शक्ति भी बाजार में बेची और खरीदी जाती है। इसके अतिरिक्त पूँजीवादी प्रणाली की विशेषता है मेहनत करने वाले अतिरिक्त श्रम या "अतिरिक्त मूल्य" के रूप में मुनाफा उठाना-पूँजीद्वारा पूँजी कमाना है। पूँजीवाद अतिरिक्त श्रम या अतिरिक्त मूल्य के रूप में ही और पूँजी कमा सकता है।"[1] मार्क्सवाद वर्ग संघर्ष का हिमायती है इसके लिये वह उसके रूप पर किसीप्रकार का परदा डालने या पूँजीपतियों से किसी भी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं वह केवल समाज में वर्ग विहीन समाज की स्थापना के लिये वर्ग संघर्ष का प्रसार कर के समाज से पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त करके साम्यवाद की स्थापना करना चाहता है जिसमें पूँजी का समाजीकरण हो जाय। इस प्रकार वर्ग संघर्ष मार्क्सवाद का प्रमुख अस्त्र है।

1- मार्क्सवाद- यशपाल- पृ0- 218

क्रान्ति का समर्थक-

मार्क्सवाद समाज में व्याप्त कुरीतियों में सुधार करने का पक्षपाती न होकर क्रांति का पोषक है। वह उसमें सुधार नहीं करना चाहता है। उसकी यह क्रांति वादिता द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नियम पर आधारित है क्योंकि विकास की निश्चित अवस्था में पूँजीवाद एक परिपक्व अवस्थामें पहुँच गया है और अब उसका पतन आवश्यक है क्रांति की आवश्यकता पर बल देते हुए मार्क्स ने कहा है-" जब पुरानी सामाजिक व्यवस्था के गर्भ में एकनई सामाजिक व्यवस्था परिपक्व हो जाती है तब उसके जन्म के लिए शक्ति रूपी धारा की आवश्यकता अनिवार्यहो जाती है।"[1] जब कोई भी व्यवस्था अपने चरम पर पहुँच जाती है तब उसका उतार प्रारंभ हो जाता है। पूँजीवादी व्यवस्था भी अब विनाश के कगार पर पहुँच चुकी थी जनता इससे बहुत ऊब चुकी थी वह इस व्यवस्था में पूर्णतः परिवर्तन चाहती थी, इसी आवश्यकता को महसूस करते हुए मार्क्स ने क्रांति को गति देना प्रारंभ किया और कम्युनिस्ट घोषणा पत्र में एंगेल्स के साथ लिखा-" आधुनिक पूँजीवादी समाज ने उत्पादन और विनिमय के विशाल साधनों को जादू की तरह जन्म तो दे दिया है, लेकिन उत्पादन, विनिमय और सम्पत्ति कीउसकी व्यवस्था उन्हें संभाल नहीं पाती, वह एक ऐसे जादूगर के समान है जिसने अपने जादू को जोर से इन शक्तियों को नैतिक जगत में बुला तो लिया है, लेकिन अब उन्हें काबू रखने में असमर्थ है।"[2]

कुछ समय पूर्व समाज में सामंतवाद का प्रभाव था औद्योगिकीकरण होते ही सामंतवाद का अन्त हो गया कारण सामंत अपने अधीन किसानों की जमीन अपने नाम करवा लेते थे और सारा दिन उन्हें कोल्हू के बैल कीतरह जोतकर भीउसे पेट भर अन्न नहीं देते थे और साथ में वहाँ के महाजन पटवारी भी अपने कर्ज के लिये किसानों का खून चूसते थे अतः किसानवहाँ से शहरों की ओर भागा और मिलों में आकर काम करने पर मजबूर हो गया । इस प्रकार पूँजीवादी व्यवस्था ने सामंतवाद का अंत कर दिया किन्तु आज वही वर्ग इस पूँजीवाद का अंत कर देने के लिये उत्सुक खड़ा है। फलतः जिन हथियारों से पूँजीपति वर्ग ने सामंतवाद का अंत किया था वे ही हथियार आज उसके खिलाफ तन गये हैं, लेकिन

1- कार्ल मार्क्स एस कोटेड बाइ जे0 स्टालिन -प्राब्लेम्स आफ लेनिनिज्म-पृ0- 594
2- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

पूँजीपति वर्ग ने केवल ऐसे हथियारों को ही नहीं गढ़ा है जो उसका अंत कर देंगे, बल्कि उसने ऐसे आदमियों को भी पैदा कर दिया है जो इन हथियारों का इस्तेमाल करेंगे, वे हैं आज के मजदूर वर्ग, सर्वहारा वर्ग के लोग।"[1]

पूँजीवाद के विकास ने स्वयं एक नये वर्ग को जन्म दिया, जो था सर्वहारा वर्ग जो शोषित था अतः समान रूप से शोषण का शिकार होने से सभी मजदूर एवं किसान संगठित होने में कामयाब रहे। सभी समान रूप से दमन चक्र में पिस रहे थे सबके रास्ते अलग मगर मंजिल एक थी, उद्देश्य एक था और तरीके भिन्न। अतः पूंजीवादी व्यवस्था के दमन चक्र ने सभी को एकत्रित होकर बगावत करने में परोक्ष रूप से मदद ही की वह स्वयं इस वर्ग को जन्म देने का जिम्मेदार है, मार्क्स के अनुसार जिसने स्वयं अपनी कब्र खोद ली। वह अपने घोषणा पत्र में इसी ओर संकेत करते है"पूँजीपति वर्ग जो सबसे बड़ी चीज पैदा करता है, वह है उन लोगों का वर्ग जो स्वयं उसी की कब्र खोदेंगे। उसका पतन और मजदूर वर्ग की विजय दोनों ही समान रूप से अनिवार्य हैं"[2]

मार्क्सवाद क्रान्ति का पक्षधर तो अवश्य है किन्तु वह उस क्रांति को संहार और विनाश के अर्थ में न लेकर स्वस्थ समाज के निर्माण के अर्थ में ही लेता है।

सर्वहारा का एकाधिपत्य-

सर्वहारा एकाधिपत्य एक क्रांतिकारी शक्ति है जिसका आधार पूँजीपतियों के विरुद्ध बल का प्रयोग है।"[3] मनुष्य के शोषण दासत्व और भाग्य में मनुष्य की शैतानी भरी साझेदारी को व्याख्यायित और उद्घाटित करने वाले कालमार्क्स थे। उन्होंने इस विचार को तर्क संगत दी जिसकी स्थापना के साथ ही "मनुष्य के भाग्य निर्माण में ईश्वर की इच्छा का तर्क विलुप्त हो गया। मार्क्स ने नैतिक इच्छा और सार्वभौम की भावना जैसे धुंधले और रहस्य शब्दों के स्थान पर एक निश्चित अर्थ देने वाले वैज्ञानिक चिंतन को प्रस्तुत किया।[4] मार्क्स के अनुसार सर्वहारा वर्ग संगठित होकर राजसत्ता पर अपना एकाधिकार जमा ले। सर्वहारा वर्ग के एकाधिपत्य का आशय था कि वह क्रांति के द्वारा पूँजीपतियों के विरोध को समाप्त

1- मार्क्स और एंगिल्स [illegible] पार्टी का घोषणा पत्र-पृ0-43, हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत

2- मार्क्स एंगिल्स सिलेक्टेड वर्क्स-भाग-1 पृ0-43 वही,

3- स्तालिन-लेनिनवाद के मूल सिद्धांत -पृ0-34 हिन्दी काव्य पर मार्क्सवादीय चेतना से उद्धृत।

4- लेनिन और भारतीय साहित्य।

करके एक ऐसी नयी व्यवस्था का निर्माण करे जिसमें किसी भी दूसरे वर्ग का साझा न हो सर्वहारा का स्वतंत्र राज्य हो अन्यथा इनकी प्रगति का रास्ता अवरूद्ध हो जायेगा किसी व्यवस्था के पतन के बाद उसके पूर्व संस्कार पूर्णतय: लुप्त नहीं हो पाते वो पलते रहते हैं और समय समय पर अपना सर उठाने का प्रयत्न करते है इसी प्रकार पूँजीपतियों के विरोध को समाप्त करने के पश्चात भी अपने संस्कारों के फलीभूत वह तरह तरह के षड्यंत्र रचकर अपनी प्रमुखता कायम रखने का प्रयत्न करते हैं इसके लिये सर्वहारा वर्ग को कुछ उपाय करने चाहिए-

1- "क्रांति द्वारा पराजित और अधिकारच्युत पूँजीपतियों के विरोध को बलपूर्वक दबा करके पूँजी का शासन फिर से स्थापित करने के उनके समस्त प्रयत्नों को असफल बनाना।

2- रचनात्मक और निर्माण संबंधी कार्य को इस ढंग से संगठित करना कि जिससे सारा श्रमजीवी जनसमूह मजदूर वर्ग का सहयोगी बन जाये। उसे इन कार्यों को इस ढंग से पूरा करना चाहिये किवर्ग भेद के और वर्ग समाज के भी अंत का रास्ता साफ हो जाय।

3- विदेशी शत्रुओं और साम्राज्यवादियों से लोहा लेने के लिए क्रांति के समर्थकों को हथियार बन्द करना और [illegible] की सेना संगठित करना जिससे कि वे इस कार्य में पूर्ण रूप से सफल हो सकें।"[1]

वर्ग विहीन समाज की स्थापना-

मार्क्स पूँ[illegible] व्यवस्था को समाप्त कर समाजवादी और समानतावादी व्यवस्था का पोषक है। समानता से अर्थ यह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से साधन और सुख सुविधायें दी जायेंगी चाहे वह काम करे अथवा न करे यदि करे भी तो कम करे कामचोरी करे। इसके विपरीत ऐसी व्यवस्था जिसमें सभी व्यक्तियों को उनके श्रम का उचित फल मिल सके, सभी को बराबर काम मिले कोई बेकार न हो एक प्रकार से सरकार की तरफ से सभी को जीवन निर्वाह की गारन्टी हो। मार्क्स के अनुसार समाजवादी समानता का अर्थ है-"प्रत्येक व्यक्ति के लिये जीविका निर्वाह का समान अवसर होना और प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिश्रम के फल पर समानरूप से [illegible] होना।[2]

1- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-जनेश्वर वर्मा-पृ0- 95-96
2- मार्क्सवाद-यशपाल-पृ0-88

मार्क्सवाद के आलोचकों का ये आक्षेप है कि यदि सबके श्रम का फल एक समान हो जायेगा तो किसी में भी बड़ी मेहनत करने का उत्साह नहीं रह जायेगा। सभी को जीवन निर्वाह की गारन्टी के कारण कोई काम करना ही नहीं चाहेगा सब कामचोर हो जायेंगे और देश की उन्नति अवरुद्ध हो जायेगी। मगर इसका जवाब मार्क्सवाद यूँ देता है कि जब शासन मजदूर वर्ग का हो जायेगा यानि काम करने वालों का तो सब समान रूप से कार्य करेंगे और कोई किसी के श्रम को खरीद नहीं सकेगा। रही बात यह कि लोगों में कार्य की चेष्टा मर जायेगी तो उसके लिये ये है कि मनुष्य की प्रवृत्ति परिस्थितियों के अनुसार बदल जाती है जब सामाजिक व्यवस्था ऐसी होगी जहाँ धन का कोई महत्व नहीं रहेगा तब सामूहिक रूप से सामाजिक हित के लिये काम करेंगे व्यक्तिक धन लोभ का लोप हो जायेगा। पूँजीवादी व्यवस्था में मनुष्य की प्रतिष्ठा की माप धन बन जाता है जो जितना धन वाला है वह समाज में उतना ही आदर पाता है इसलिए वह येन-केन-प्रकारेण धन जुटाने में जुट जाता है फलस्वरूप वह कई व्यक्तियों के श्रम का भाग स्वयं हजम कर जाता है इसके विपरीत जब समाजवादी व्यवस्था होगी उसमें समाज में प्रतिष्ठा पाने के लिये धन एकत्रित करने की आवश्यकता नहीं वह समाज के लिये यदि कुछ काम करता है तो उसको प्रतिष्ठा मिलती है उसका जुलूस निकलता है आवश्यकतानुसार उसे पुरस्कार भी मिलता है। कामचोरों की समाजवादी व्यवस्था में कोई प्रतिष्ठा नहीं। और जो बात उन्नति की है तो समाजवादी व्यवस्था में और भी ज्यादा उन्नति होगी क्योंकि पूँजीवादी उतनी ही पैदावार करता है जितने से बाजार में उसकी माँग ज्यादा रहे और पूर्ति न होने से वह मँहगा बिके वह हमेशा क्षमता से कम उत्पादन करता है जिससे उसके माल का मूल्य बढ़ा रहे और जैसे ही उसके पास माल एकत्रित हो जाता है वह मिल में काम बंद करवा देता है किसी भी तरह पैदावार रुकवा देता है संभव होता है तो किसी तरह हड़ताल भी वही करवा देता है। नये-नये आविष्कार को खरीद कर रख लेता है कि कोई दूसरा पूँजीपति उससे ज्यादा लाभ न उठा ले। ऐसी मशीनें लगवाता है जिस पर कम से कम व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा काम कर सकें। कोई काम यदि मशीन से महँगा पड़ता है और आदमी उसे सस्ते में करने को मिल जाता है तो वह मशीन से न कराकर मजदूर नियुक्त कर लेता है फल होता है एक दिन का काम दस दिन में होता है। इसके विपरीत समाजवादी व्यवस्था में मशीनों पर ज्यादा से ज्यादा काम लेने के लिये अच्छी

मशीनें लगाई जाती हैं और उतना माल तैयार किया जाता है जितना की खपत होती है और जो काम आदमी से जल्दी मशीन कर लेती है वह मशीन से ही करवाया जाता है पैदावार पर रोक नहीं लगाई जाती। कठिन कार्य मशीन करती है और सरल और रुचिकर कार्य आदमी करते हैं जो ज्यादा दूने उत्साह से कार्य करते हैं अपने उत्पादन पर अपना ही अधिकार होने से उनमें कोई लालच की बात नहीं आती सभी समान रूप से कार्य करते हैं सभी को सुखी जीवन निर्वाह करने का अवसर मिलता है सुखी और सम्पन्न होने से और कार्य के घंटे निश्चित होने से सबके पास पर्याप्त समय और बचता है जिससे वह "रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या से हटकर सर्वमुखी विकास की ओर ध्यान देते हैं कला, संस्कृति और शिक्षा में उन्नति होती है और देश सर्वांगिक उन्नति की ओर अग्रसर होता है आर्थिक समानता इसका सबसे बड़ा लक्ष्य है।

मार्क्सवाद समाज में किसी भी प्रकार की श्रेणी का विरोधी था। प्राचीन काल से लेकर अब तक का सामाजिक इतिहास वास्तव में वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है और इन श्रेणियों का विकास, उत्पादन शक्ति और उत्पादन संबंध के बीच विषमता के कारण हुआ है। अतः मार्क्सवाद इस श्रेणी संघर्ष को समाप्त करने के लिये आर्थिक व्यवस्था पर ही आघात करता है और यह करने के लिये वह सर्वहारा जन समुदाय में वर्ग चेतना का संचार करता है जिससे वह अधिकारों को पहचाने अपने अस्तित्व का भी अनुभव करें और समाज और संगठित होकर क्रांति करे और उत्पादन के सभी साधनों को व्यक्तिगत बनाकर पूँजीवाद नेअपने स्वार्थवश जिस असमानता को जन्म दिया था उसे समाप्त कर उत्पादन के साधनों को सामाजिक सम्पत्ति घोषित करें। "मार्क्सवादी मान्यता के अनुसार सर्वहारा एकाधिपत्य के फलस्वरूप जिस वर्ग विहीन समाज की स्थापना होगी उसमें प्रत्येक व्यक्ति के जीविकोपार्जन का एक ही आधार होगा और वह होगा उसका श्रम।"[1] वर्ग विहीन समाज की व्यवस्था में केवल श्रम वालों को ही मुनाफे आदि पर अधिकार होगा आराम तलब, मुफ्तखोरों का इस समाज में कोई स्थान नहीं, उत्पादन के साधनों पर किसी का व्यक्तिगत अधिकार नहीं होगा वह सामाजिक सम्पत्ति समझी जायेगी। समाज में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति एक श्रमिक की स्थिति होगी जो जितना श्रम करेगा उसे उतनी उपभोग सामग्री दी जायेगी जो जितना काम करेगा

- -

1- जॉन स्ट्रेची-द थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस आफ सोशलिज्म-पृ0-405-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

वह उतना ही प्राप्त करेगा। मार्क्स का कथन है"जो काम नहीं करता वह खाएगा भी नहीं।"

मार्क्स ने सबल श्रेणी की व्याख्या भी की है और क्यों दूसरी श्रेणी का आधिपत्य अनिवार्य है? इसका भी कारण बताया है जो व्यक्ति सबल होता है उसी के हाथ में शक्ति होती है और वहीशासक बनकर समाज की व्यवस्थायें बनाता है और जो व्यवस्थायें वह बनाता है वह ऐसी होती हैं जिसमें मात्र उसका स्वार्थ सिद्ध होता, रहे वह कभी ऐसी व्यवस्था नहीं बनाते जिसमें सभी का हित हो अगर ऐसा हो तो वह ऐश-ओ-आराम की जिन्दगी कैसे व्यतीत कर पायेंगे। यदि व्यवस्था सबके हित की होती है तो वह स्वयं ही कायम रहती है और उसके लिये विरोध उठना असम्भव रहता है कोई भी उसे नष्ट करने या बदलने कीचेष्टा नहीं करता है। चूँकि व्यवस्था इस प्रकार की नहीं होती इसलिये शासक वर्ग को सदैव शोषित वर्ग से भय बना रहता है कि कहीं वह उसके विरुद्ध विद्रोह न कर दें कहीं उनका बनाया हुआ खेल चौपट न हो जाय इस डर से आक्रान्त होकर वह अपनी व्यवस्था का ऐसा जाल बिछाता है जिसमें फँसकर शोषित वर्ग बाहर नहीं निकल सके भले उसी में तड़पकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर ले।इसीलिये मार्क्स ऐसी समाज व्यवस्था के पक्ष में है जिसकी बागडोर बहुसंख्यक वर्ग के हाथ में है जो मेहनती हो काम का मूल्य जानती हो और सबकेहित की बात सोचती हो। जब शासक अल्प संख्यक वर्ग का होता है तो उसके नियम भी अपने ही समान मुट्ठी पर लोगों के आराम के लिये होते हैं, जो और सभी वर्ग के लिये कष्टप्रद होते हैं किन्तु जब शासन की बागडोर बहुसंख्यक वर्ग के हाथ में होगी तो व्यवस्था भी बहुसंख्यक के पक्ष में होगी और एक स्वस्थ समाज की नींव पड़ेगी जो निरंतर सदृढ़ता को प्राप्त होती जायेगी।

मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त-

मार्क्स दार्शनिक होने के साथ-साथ अर्थशास्त्री भी थे उन्होंने अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन करके एक ऐसे सिद्धांत की स्थापना की जो मार्क्स की द्वन्द्वात्मकभौतिकवाद की तरह एक अनुपम भेंट है। मार्क्स ने पूँजीवादी अर्थनीति का गहन अध्ययन करके अपने विचारों को "कैपिटल" नामक ग्रंथ में सूचिबद्ध किया। इस किताब में मार्क्स ने पूँजीवादी अर्थनीति का बड़ा ही सूक्ष्म एवं वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया। उत्पादित वस्तुओं के मूल्य

निर्धारण में श्रम का क्या महत्व है? पूंजी का एक ही जगह एकत्रीकरण कैसे हो जाता है? पूंजीपति मुनाफा कहाँ से और कैसे प्राप्त करते हैं? आदि प्रश्नों को मार्क्स ने हल करने का प्रयास किया। इन सब समस्याओं पर विचार करके अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त की स्थापना की जो नितान्त मौलिक है।

वर्तमान पूंजीवादी आर्थिक व्यवस्था माल उत्पादन पर ही आधारित है। अतः मार्क्स ने अपने मूल्य सिद्धांत का प्रतिपादक माल के उपयोग-मूल्य और विनिमय मूल्य इन दोनों पक्षों की व्याख्या से प्रारंभ किया। उसने बतलाया कि हवा-पानी आदि ऐसी अनेक वस्तुयें हैं जिनका उपयोग मूल्य तो अधिक है परन्तु बाजार में उनका विनिमय मूल्य कुछ भी नहीं है। इसका कारण यह है कि इन वस्तुओं की उपयोगिता मानवीय श्रम का परिणाम नहीं है। इसके अतिरिक्त यदि कोई व्यक्ति अपने निजी उपभोग के लिए अपने ही परिश्रम से किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो मानवीय श्रम और उपयोग मूल्य दोनों के होते हुए भी उसे द्रव्य या माल की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती। मार्क्स केकथनानुसार द्रव्य या माल के उत्पादन के लिए केवल उपयोग मूल्यों की सृष्टि ही पर्याप्त नहीं है, इसके लिये सामाजिक उपयोग मूल्य अर्थात् दूसरों के लिये उपयोग मूल्य का होना भी आवश्यक है।"[1]

पहले के समय में मनुष्य अपने द्वारा उत्पादित एक वस्तु के बदले में दूसरे व्यक्ति से उस वस्तु का विनिमय कर लेता था लोग आपस में वस्तुयें बदल लेते थे। ये वस्तुएं उपयोग के मूल्य की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी बराबर कैसे समझ ली जाती हैं? इसका उत्तर देते हुए मार्क्स कहते हैं कि विभिन्न उपयोग मूल्य रखने वाली दो वस्तुओं को बराबर समझ कर जब इसका विनिमय किया जाता है तो इसका आशय यह होता है कि एक वस्तु में विद्यमान मानवीय श्रम की मात्रा दूसरी वस्तु में विद्यमान मानवीय श्रम की मात्रा के बराबर है।"[2]

अतः सबका आधार है श्रम कपड़े को उत्पादित करने में एक जुलाहा जितना श्रम लगाता है, गेहूँ को पैदा करने में एक किसान उतना ही श्रम लगाता है, "माल के विनिमय मूल्य को निर्धारित करने का एक ही आधार हो सकता है और वह है मानवीय श्रम।"[3]

1- कार्ल मार्क्स-कैपिटल-प्रथम अंक- पृ0-9 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत- जनेश्वर वर्मा

2- वही, पृ0-20

3- कार्ल मार्क्स वेल्यू प्राइस एण्ड प्राफिट पृ0-43

अतिरिक्त मूल्य बढ़ाने के लिये अधिक से अधिक उत्पादन की आवश्यकता होती है और इसके लिये वह मजदूरों से बारह-घंटे कार्य कराते हैं, इसके अतिरिक्त वह बड़ी बड़ी तीव्रगामी, ~~उत्पादक~~ मशीनें लगाकर कार्य करते हैं जिसमें कम व्यक्तियों के कार्य करने की आवश्यकता होती है इस प्रकार मजदूरों की छटनी हो जाती है और बेकार मजदूरों की संख्या दिन पर दिन बढ़ने लगती हैं। पूँजीपति अपने स्वार्थ लाभ के लिए बाजार में अधिक से अधिक वस्तुओं का उत्पादन करके भेजते रहते हैं। उत्पादन का लक्ष्य आवश्यकता पूर्ति न होकर उत्पादन ही उत्पादन का लक्ष्य बन जाता है। एंगेल्स के शब्दों में-" किसी को यह होश नहीं रहता कि उसके द्वारा उत्पादित माल किसी मात्रा में बाजार में पहुँच रहा है और वहाँ पर उसकी कितनी माँग है यह कोई नहीं जानता कि उसके द्वारा उत्पादित वस्तु विशेष की वास्तविक माँग कितनी होगी, उसकी लागत निकल सकेगी या नहीं, अथवा वस्तु बाजार में बिक सकेगी या नहीं। सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में अराजकता फैल जाती है। "[1]

पूँजीवाद की आन्तरिक असंगतियाँ-

सामाजिक उत्पादन का व्यक्तिगत उपभोग ही पूँजीवादी व्यवस्था की सबसे बड़ी असंगति है, जो सर्वहारा के मन में विद्रोह और असंतोष को जन्म देती है। किसी भी वस्तु का उत्पादन सामाजिक श्रम का फल है किन्तु इस सामाजिक सम्पत्ति पर अधिकार व्यक्तिगत पूँजीपतियों का हो जाता है। जो लोग उसके उत्पादन में सक्रिय भाग लेते हैं वहाँ उससे वंचित रहजाते हैं, अतः असंतोष की भावना का विकास अवश्यम्भावी है। पूँजी कुछ लोगों के हाथों में सिमटती जाती है और समाज का एक बहुत बड़ा अंग गरीबी और बेरोजगारी की जिन्दगी जीता है, जिसका परिणाम होता है समाज में कलह, अशांति और भ्रष्टाचार का जन्म ।

आर्थिक विषमता के परिणाम स्वरूप वर्ग संघर्ष आरंभ होता है। पूँजीपतिऔर सर्वहारा इन दो विरोधी दलों का विकास हो जाता है फलतः संघर्ष होता है और संघर्ष की स्थिति में समाजमेंशांति एवं व्यवस्था की कल्पना भी करना व्यर्थ है।

1- एफ एंगेल्स-एन्टी डयूरिंग-पृ0-305- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत लेखक- जनेश्वर वर्मा ।

किसी वस्तु में लगी श्रम शक्ति को नापने के लिए हमें किस मापदण्ड का प्रयोग करना चाहिए? इस संबंध में मार्क्स का कथन है किसी वस्तु में समाहित मानवीय श्रम को उस वस्तु के उत्पादन में लगाए गये श्रम काल के आधार पर नापना चाहिए। इस श्रम काल को घंटा दिन आदि के रूपों में नापा जा सकता है।"[1]

पूँजीवादी व्यवस्था ने एक ओर तो विशाल औद्योगिक कारखाने लगाये हैं और दूसरी ओर एक ऐसे वर्ग समुदाय को जन्म दे दिया जिसके पास वस्तु उत्पादित करने के अपने साधन नहीं है, केवल है तो उसका श्रम फलतः बाजार में जिस तरह वस्तुओं का क्रय-विक्रय होता है उसी प्रकार मानवीय श्रम शक्ति भी पूँजीवादियों द्वारा खरीदी जाती हैं। अतिरिक्त मूल्य की विस्तृत व्याख्या करते हुए मार्क्स ने बतलाया कि "वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत मनुष्य की श्रमशक्ति ने भी पण्य का रूप धारण कर लिया है और सामान्य पण्य के समान ही बाजार में क्रय-विक्रय की एक वस्तु बन गई है।"[2]

ये अतिरिक्त मूल्य कहाँ से आता है? तो इसके लिये पूँजीपति माना कि मशीनरी और कच्चे माल पर दस रूपये व्यय करता है और पाँच रूपये श्रमिक को देता है इस प्रकार कुल लागत पन्द्रह रूपये की लगाता है। पूँजीपति श्रमिक से काम तो लेता है दस घंटे मगर मूल्य देता है पाँच घंटे का इस प्रकार दस घंटे काम करके श्रमिक अतिरिक्त उत्पादन करता है पूँजीपति उसे बाजार में पन्द्रह की लगात लगाकर बीस की बेंच देता है इस प्रकार उसे पाँच रूपये के अतिरिक्तमूल्य का लाभ होता है।

मार्क्स के अनुसार श्रमशक्ति ही एक ऐसा पण्य है जो अतिरिक्त मूल्य को जन्म देता है क्योंकि "श्रम के उत्पादन के मूल्य और स्वयं श्रमशक्ति के मूल्य में अंतर है। पहले प्रकार का मूल्य।सामाजिक आवश्यकतानुसार। श्रम की उस मात्रा से निर्धारित होता है जो साधारण दशाओं में उसके उत्पन्न करने में व्यय होती है और दूसरा।श्रमशक्ति। उस श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है जो मजदूर और उसके [illegible] के आवश्यक भरण-पोषण के लियेपर्याप्त माल के उत्पादन में लगता है।[3]

- -

1- कार्ल मार्क्स- कैपिटल -भाग-1 पृ0-7

2- ।कार्ल मार्क्स-वेज लेबर एण्ड कैपिटल-मार्क्स एंगेल्स सिलेक्टेड वर्क्स-भाग-1 पृ0-77 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत ।

3- डा0 मारिस डाब-पूँजीवादी शोषण व्यवस्था-पृ0-11-12, हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना

पूँजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत शोषक वर्ग केवल वस्तु के उत्पादन पर ध्यान रखता है और छोटे पूँजीपतियों को बाजार से उखाड़ फेंकने के लिए सभी सम्भावित हथकण्डे प्रयोग में लाता है और परस्पर होड़ के लिये वह ज्यादा से ज्यादा और सस्ते से सस्ता माल बनाता है इस होड़ में उसे यह भी ध्यान नहीं रहता कि बाजार में इस माल की माँग कितनी है उसकी कोई उपयोगिता भी है या नहीं। बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती वह सस्ता बेचने के चक्कर में घटिया माल बनाता है, वस्तुओं में मिलावट करता है, नकली चीजें बनाता है जिसका फल भोगना पड़ता है निर्दोष उपभोक्ताओं को।

पूँजीवादी व्यवस्था ने अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म दे दिया जो आज तक हमारे देश का नासूर बने हुए हैं। इनमें पहली समस्या थी गाँव से किसानों का मजदूर के रूप में शहरों की ओर भागना जिसने देश के इस बहुसंख्यक वर्ग का सारा जीवन नारकी बना दिया। प्रवासी मजदूरों को यहाँ अनेकों समस्याओं का सामना करना पड़ता था उसमें सबसे महत्वपूर्ण था एकाकीपन और अजनबीपन महसूस करना गाँव के लोगों के रीति-रिवाजों और रहन-सहन में काफी अंतर होता है अतः यहाँ लोग ।शहर के लोग। गाँव वालों की हीन भावना से देखते हैं अतः श्रमिक अपने आप को अकेला महसूस करता है। दूसरी भयानक समस्या थी स्वास्थ्य की। पूँजीवादी व्यवस्था ने जिसमें बड़े बड़े कारखाने लगाये गये उन कारखानों का वातावरण प्रदूषित था मजदूरों को वहाँ अधिक समय काम करना पड़ता था अतः लगातार उबाऊ और अरुचिकर कार्य ऊपर से प्रदूषित वातावरण ने उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाला । उनका रहना का स्थान भी ऐसा जहाँ शायद साहब का कुत्ता रहना भी पसन्द न करे ऐसा। श्रमिकों को अहातों के अन्धकारपूर्ण, संकीर्ण कमरों में जहाँ सफाई नाम की कोई चीज नहीं होती रहना पड़ता है, दूसरी ओर गाँवों में झोपड़ियाँ खुली हवा में होती हैं और वातावरण भी शुद्ध होता है पदार्थ भी असली मिलते हैं अतः हृष्ट-पुष्ट गाँव का किसान शहर में आकर मजदूर बनने के बाद एक जिन्दा लाश बनकर रह जाता है। मजदूर के स्वास्थ्य की ओर किसी का ध्यानही नहीं जाता मानो पूँजीपतियों की निगाह में मजदूरों के स्वास्थ्य की कोई कीमत ही नहीं।

मजदूरों के प्रवासी हो जाने से एक और जटिल सामाजिक समस्या को जन्म दे दिया और वह था पारिवारिक विघटन। रहने का स्थान पूर्ण होने के कारण

अधिकांश श्रमिकों को शहर में अकेले रहना पड़ता है और अपने परिवार को अकेले गावों में छोड़ना पड़ता है जिससे स्त्री और पुरुष के बीच पृथकता के अनुपात में वृद्धि होने लगी और श्रमिकों की पारिवारिक दूरी बढ़ती गयी। इस दूरी ने अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म दे दिया, श्रमिक पारिवारिक आनन्द से वंचित हो गये और उनमें अनेक अनैतिक भावनाओं ने जन्म लिया जैसे मद्यपान, जुआ और वेश्या वृत्ति। परिवार में मां-बाप के सम्बन्ध अच्छे न होने से बच्चों पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। एक और सामाजिक समस्या ने सर उठाया वह थी बेकारी की समस्या। अकुशल भूमिहीन किसान अच्छे वेतन के लालच में शहरों की ओर भागा अत्यधिक श्रमिकों की भीड़ ने बेकारी की समस्या को प्रचण्ड रूप दे दिया जो आज तक समाज का एक अभिशाप बना हुआ है। मशीनरी के विकास ने भी बेकारी को बढ़ाने में मदद की जो काम दस व्यक्ति मिलकर करते थे वह अब मशीन पर एक ही व्यक्ति कम समय में कर सकता था इस प्रकार व्यक्ति अधिक हो गये और काम कम इस तरह बेकारी की समस्या लगातार बढ़ती गयी जो आज तक द्रौपदी के चीर के समान बढ़ती ही जा रही है उसका कोई अंत नजर नहीं आता।

पूँजीवादी व्यवस्था की आंतरिक असंगति ने एक और समस्या को जन्म दिया वह थी आवास समस्या- "एक अच्छे, पर्याप्त एवं स्वच्छ मकान की आवश्यकता शहरी जीवन के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। अच्छे मकानों से घरेलू जीवन आनन्द एवं स्वास्थ्य की सम्भावनाएं रहती हैं, बुरे मकानों से शराबखोरी, बीमारी, अनैतिकता तथा अपराधों का विकास होता है और अन्त में अस्पतालों, जेलखानों, आदि की मांग होती है जिनमें हम समाज की मानवीय कमजोरियों को दूर करने की चेष्टा करते हैं किन्तु जो अधिकांश रूप से स्वयं समाज के बहिष्कार का परिणाम होती हैं।"[1]

प्रगतिवादी काव्य की रूपरेखा

मार्क्सवाद का सैद्धान्तिक स्वरूप

मार्क्सवादी विचारधारा-

प्रगतिवादी साहित्य मार्क्सवादी मानदंडों के आधार पर विकसित और विभिन्न भारतीय प्रगतिशील मान्यताओं से अनुप्रेरित हुई है। प्रगतिवाद का दर्शन तो विदेशी था परन्तु

1- आवास-सम्पा० इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ [illegible] इन इण्डिया-पृ०-44 श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा-के०पी० भटनागर-पृ०- 221-221

उसका रूप उसका ढाँचा भारतीय था।

विदेशी साहित्य इस नवीन विचारधारा की स्थापना करने वालों में प्लेखनीव, काडवेल, राल्फ फाक्स, मेक्सिम गोर्की, जार्ज थाम्पसन, हावर्ड फास्ट, जेम्स टी फेरेल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। भारत में भी सन् 1936 के आस-पास प्रगतिवादी साहित्य की मान्यताओं की स्थापना होने लगी। "प्रगतिशील लेखक संघ" की स्थापना के बाद प्रगतिवादी समीक्षकों एवं लेखकों की बाढ़ सी आ गई और ये काव्य साहित्य नवीन दिशा देने में उसके सिद्धांतों की स्थापना में जुट गये। कला को ये उपयोगिता की तुला पर तोलने लगे कवि को समाज के लिये ही लिखने पर जोर देने लगे। इस प्रकार के कवि थे-श्री शिवदान सिंह चौहान, डा० रामविलास शर्मा, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त, डा० रांगेय राघव, श्री अमृतराय, डा० नामवर सिंह, नागार्जुन, यशपाल आदि। प्रेमचन्द ने तो सर्वप्रथम "प्रगतिशील लेखकसंघ" के अधिवेशन में सभापतित्व पद भी संभाला था और साहित्य का उद्देश्य निश्चितकिया था और प्रगतिवादी साहित्य की रूपरेखा प्रस्तुत की थी। प्रेमचन्द पूर्णतः मार्क्सवादी दर्शन के पक्षपाती नहीं थे किन्तु धीरे धीरे उनका दृष्टिकोण मार्क्सवाद से प्रभावित अवश्य ही रहा था और वह शुद्ध आदर्शवाद से यथार्थवाद पर उतर आये थे जिसका उदाहरण उनका गोदान है। वह मार्क्सवाद का भारतीयकरण करके उसे अपनाना चाहते थे।

1- सामाजिक मान्यता-

साहित्य की प्रगतिवादी धारा में सामाजिक मान्यताओं पर ज्यादा बल दिया गया है। "कवि का कल्पना जगत सामाजिक यथार्थ का ही प्रतिबिम्ब अथवा मानसचित्र है और इस नाते काव्य व्यक्ति के माध्यम से सामाजिक सत्य की ही अभिव्यक्ति हैं।"[1] कवि कितना ही प्रतिभासम्पन्न हो परन्तु उसमें सृजनशीलता की प्रतिभा समाज से ही उत्पन्न होती है, वही साहित्य ग्राह्य है जो अपने समाज का प्रतिनिधित्व करता है जो अपने समाज का आइना हो। समाज से अलग व्यक्ति का कोई अस्तित्व नहीं। समाज के प्रति कवि का एक दायित्व होता है जो उसे निभाता है वही सच्चा साहित्यकार

1- कॉडवेल

है, यही मान्यता है माक्सिम गोर्की की-" कलात्मक प्रतिभा व्यक्ति विशेष में भले ही हो परन्तु सृजनशीलता की वास्तविक प्रेरणा समाज में क्योंकि सामाजिक सत्य का आश्रय ग्रहण करके ही उसकी प्रतिभा सुव्यवस्थित और पल्लवित होती है। अतः व्यक्ति के रूप में कलाकार कोई भी हो, यह अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, जो बात विशेष महत्व रखती है वह यह है कि कलाकार जनशक्ति का वाहक और जन भावना का प्रतिनिधि है।"[1]

साहित्य सामाजिक जीवन की ही उद्भूति है वह समाज के दायित्व से कभी मुक्त नहीं हो सकता उसकी भावनाओं को आवाज समाज कोपरिस्थितियों से ही मिलती है। कॉडवेल ने कला की व्युत्पत्ति के संबंध में विचार करते हुए लिखा है- "कला समाजरूपी सीपी से उत्पन्न मोती के दाने की भाँति है।"[2] वह कला को एक सामाजिक कार्य के रूप में ही स्वीकार करते हैं, केवल वही कला है जो सामाजिक कार्य सम्पन्न करता है।

मार्क्सवाद इस धारणा का पोषण करता है कि कला सामाजिक चेतना का ही विशिष्ट स्वरूप है और इस नाते उसका मूल जन समुदाय के भौतिक क्रिया व्यापार में है, जिसके सूत्र किसी विशिष्ट उत्पादन पद्धति के अंतर्गत प्रतिफलित होने वाले सामाजिक सम्बन्धों से सम्बद्ध हैं।[3] कविता जीवन को प्रतिबिम्बित करती है जीवन की परिस्थितियाँ कवि की भाव-भूमि को दिशा देती हैं। युग की माँग को कवि अपने काव्य का विषय बनाता है श्री शिवदान सिंह चौहान की भी यही मान्यता है "--- कला या साहित्य को सामाजिक उद्देश्य या उपयोग से अलग नहीं किया जा सकता, ये दोनों आवश्यक अंग है।" साहित्य का यह उद्देश्य होना चाहिये की वह समाज की मान्यताओं का अध्ययन करे उसकी समस्याओं को समझे और उन समस्याओं को अपने साहित्य में स्पष्ट करके उसके निदान की बात सोचे वह जन साधारण का मार्गदर्शन करे वहउसे नयी चेतना प्रदान करे, उसका मनोरंजन करके मात्र उसको स्वप्न में विचरण न कराये और थपकियाँ देकर सुलाने का कार्य न करे कॉडवेल का स्पष्ट मत है "हम उसी वस्तु को

- -

1- मैक्सिम गोर्की-" लिटरेचर एण्ड लाइफ। पृ0- 117
2- इल्यूजन एण्ड रियल्टी -कॉडवेल, पृ0- 9
3- बी0के0 वरोव- कल्चर इन ए चेंजिंग वर्ल्ड।

कलाकृति के रूप में स्वीकार करते हैं जिसका कोई सामाजिक धर्म हो, जो सामाजिक मान्यता प्राप्त प्रतीकों के आवरण में वेष्ठित होकर अवतरित हुई हो।[1]

कवि स्वयं अपने लिये नहीं लिखता एक कलाकार होने के नाते उसका कर्तव्य है कि वह अपनी कला से सारा समाज आलोकित करता है उसमें तरह तरह की भावनायें समाज में निवास करते व्यक्तियों के जीवन को देखने से ही उठती हैं उसकी भावनाओं में विविधता भी समाज से ही आती है-" किसी स्वप्न दृष्टा की वैयक्तिक स्वप्न सृष्टि को कलाकृति की संज्ञाप्रदान नहीं की जा सकती। कवि अपने लिये नहीं दूसरों के लिये गाता ह और इसीलिये उसे भाषा के सामाजिक माध्यम की आवश्यकता पड़ती है। कला का संसार सामाजिक भावना का संसार है, शब्दों और चित्रों का संसार है जिसका निर्माण एक के नहीं, सबके भावात्मक सम्पर्क और जीवनानुभव के फलस्वरूप हुआ है।[2]

कवि जो कुछ भी लिखता है उसे समाज का बना देता है यानि कवि की भावना का साधारणीकरण हो जाता है कवि की भावना से समाज तादात्म्य स्थापित कर लेता है इस प्रकार कवि के विचारों का समाजीकरण हो जाता है-कॉडवेल इस पर अपने विचार व्यक्त करते हुये कहते हैं-" जिसे हम कलाकार की आत्माभिव्यक्ति कहते हैं वह वास्तव मेंउसका आत्म समाजीकरण ही है, क्योंकि कलाकार कलाकृति के माध्यम से अपनी आत्मानुभूति को एक सामाजिक स्वरूप प्रदान करते हुये स्वयं भी कला के सामाजिक जगत का एक भागीदार बन जाता है।"[3] मार्क्स मनुष्य को चेतन रूप में एक ऐसा प्राणी मानता है, जिसमें वातावरण को बदल देने की क्षमता है। मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण से ही सीखता है उसकी चेतना का विकास भी समाज में ही होता। मनुष्य की भाषा, विचार, व्यवहार सभी कुछ समाज के द्वारा बनाये जाते हैं इसी कारण एकसमुदाय का व्यक्ति दूसरे समुदाय से भिन्न लगता है उसका रहन-सहन उसकी बोल-चाल की भाषा सभी कुछ उसके आस पास के वातावरण पर निर्भर करती है। मार्क्स भी मानव चेतना का आधार उसकी सामाजिक स्थिति को मानते हैं-" मानव अस्तित्व उसकी चेतना से निर्धारित

1- कॉडवेल- स्टडीज इन डाईंग कल्चर-पृ0- 44
2- कॉडवेल- इल्यूजन एण्ड रियल्टी पृ0- 27
3- वहीं.

नहीं होता प्रत्युत इसके विपरीत उसका सामाजिक अस्तित्व ही उसकी चेतना को निरूपित करता है। "मार्क्स का समाजवाद किसी भी भूतकालीन आर्थिक संघ से संबंधित नहीं था। वह प्रतिक्रियावादियों के प्रयोगों को छोड़कर मानव-इतिहास के विकासशील पक्ष की ओर उन्मुख था।[1]

"कला जनता की वस्तु है" लेनिन को यह वाक्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि मार्क्सवादी धारणा के अनुसार कला स्वयम् व्यक्ति परक न होकर मूलत: समाजपरक है। व्यक्ति जिस समाज में रहकर जीविकोपार्जन के लिये प्रवृत्त होता है और सामाजिक संबंधों के सम्पर्क में आता है उसका प्रभाव उसके कल्पना जगत पर पड़ता है और उसी की अभिव्यक्ति वह अपनी रचनाओं में करता है। हमारे विचार, हमारे संस्कृति-सभ्यता सामाजिक विकास का ही परिणाम है यह सहसा किसी दैवी शक्ति से उत्पन्न नहीं हो गया। असामाजिक व्यक्ति पशु के समान निर्बोध और संकल्पविहीन होता है और इस कारण उसमें स्वतंत्र की भावना भी नहीं होती अत: [illegible] का प्रश्न ही नहीं उठता अत: साहित्य समाज प्रसूत है, सच्चे अर्थों में साहित्य वही कहा जा सकता है जो समाज से सम्बद्ध हो। कलाकार निरपेक्ष स्वतंत्रता तो पूँजीवाद की पोषक है। इस लिये मार्क्सवादी कलाकार की दृष्टि में वही साहित्य श्रेष्ठ है जिसमें कलात्मक सुघरता के साथ-साथ 'वर्ग-प्रेरणा का स्वस्थ संदेश भी हो। श्रेष्ठ कलाकृति को तृप्ति के साथ-साथ कर्मोत्तेजना भी प्रदान करना चाहिये। ऐसी कलाकृति जो सृजनात्मक शक्तियों को थपकियाँ देकर सुला देती है, जो मनुष्य को नशा सा पिलाकर जीवन संघर्ष से विरत करती है, वह निश्चित रूप से निकृष्ट है।[2] [illegible] का उद्देश्य यह नहीं होना चाहिये कि वह व्यक्ति को यथार्थ से खींचकर एक स्वप्न लोक की सैर करायें, ऊँची ऊँची कल्पनायें करवाये इससे व्यक्ति अकर्मण्य बन जाता है वह आलसी और अधीर बन जाता है उसमें वक्त के आघातों का सामना करने की क्षमता समाप्त हो जाती है वह जीवन की सच्चाइयों से मुँह मोड़ने लगता है क्योंकि कल्पना और यथार्थ में नितान्त अंतर है और सपने जब पूरे नहीं होते तो व्यक्ति निराश हो जाता है बिखर जाता है और यदि साहित्य व्यक्ति को कर्मशील बनाता है जीवन की समस्याओं से अवगत कराता चलता है उसे यथार्थ का कटु सत्य दिखाता चलता है तो

1-डा0 [illegible] लाल [illegible]-हिन्दी गद्य-साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव-पृ0-20

2- एफ0डी0 [illegible]- मार्क्सिज्म एण्ड माडर्न आर्ट।

व्यक्ति की मानसिकता जीवन की समस्याओं को झेलने के लिये तैयार होती चलती है वह उनसे भागता नहीं वरन उनका डट कर सामना करने के लिये तैयार रहता है। साहित्य कार का एक बहुत बड़ा कर्तव्य है कि वह व्यक्ति को जीने के लिये आगे बढ़ने के लिये उसका मार्ग प्रशस्त करे साहित्य में बहुत बल होता है कहा भी जाता है "जहाँ न पहुँचे रवि-वहाँ पहुँचे कवि।" मार्क्स भी इसी बात को स्वीकार करते हैं, मार्क्सवादी कलाकार की दृष्टि में वही रचना श्रेष्ठ है जो पाठक को बिना बदले नहीं छोड़ती जो आज के स्वप्न को कल के यथार्थ में परिणत करती है-----जो वास्तविक जगत में वास्तविक मनुष्य की वास्तविक समस्या को उपस्थित करती है-------जो यह सिखाती है कि मनुष्य को किस प्रकार जीना और किस प्रकार मरना चाहिए।"[1]

मार्क्सवाद व्यक्ति की समाज निरपेक्ष सत्ता को स्वीकार नहीं करता इसका अर्थ यह नहीं है कि वह व्यक्ति के महत्व को एक दम अस्वीकार कर देता है और उसे पूँजीवादियों के शिकंजे में फँसा हुआ एक अत्यन्त असहाय प्राणी के रूप में देखता रहता है। मार्क्सवादी विचारधारा में व्यक्ति और समाज के सम्बन्ध में जो लोग ये दृष्टिकोण अपनाते हैं कि मार्क्सवाद समाज के आगे व्यक्ति की उपेक्षा करता है वह नितान्त भूल करता है समाज कीसमस्यायें ही व्यक्ति की समस्यायें हैं-"मार्क्सवाद मानव को अपने दर्शन का केन्द्र मानता है, कारण कि जहाँ वह यह दावा करता है कि भौतिक शक्तियाँ आदमी को बदल सकती हैं, वहाँ पर भी यह स्पष्टता से घोषित करता है कि यह मानव ही है जो भौतिक शक्तियों को बदलता है और ऐसा करने के दौरान में अपनी भी कायापलट करता है।[2]

पूँजीवादी व्यवस्था के विकास से सामान्यजन निराशा के सागर में डूबने-उतराने लगा धन की कीमत बढ़ गई, व्यक्ति की इच्छायें आकांक्षायें बढ़ गयी वह आर्थिक द्वन्द्व में फँस गया परन्तु मार्क्स नेजन साधारण की समस्याओं को समझा और उन्हें राह दिखाने के लिये एक स्वस्थ विचारधारा को जन्म दिया जिसमें सर्वहारा वर्ग के सुख-दुख,

---

1- रोजर ग्रेजडी- लिटरेचर आफ द ग्रेवयार्ड

2- रैल्फ फॉक्स-उपन्यास और लोक जीवन-पृ0- 16

हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-जनेश्वर वर्मा।में उद्धृत-पृ0- 175

उतार-चढ़ाव की पीड़ा को वाणी मिली उसे निराशा के सागर से निकाल कर जीने के लिये रास्ता दिखाया उनके जीवन में आशा का संचार किया, सदियों से निराश व्यक्तियों को ढाढस बधांया जीवन से प्रेम करना सिखाया उनमें क्रान्ति की चेतना फूँक दी और सोते हुये जनसाधारण को ललकारा।-"जो लोग सचमुच निराश ही होना चाहते हैं। उन्हें आज की दुनिया में निराश होने के लिये सैकड़ों कारण मिल जायेंगे, परन्तु प्रश्न यथार्थ की विषमता को देखकर निराश होने का नहीं, उस यथार्थ में ही छिपे उन तत्वों को देखने, समझने और ग्रहण करने का है, जिनमें एक नये संसार और नयी मनुष्यता को जन्म देने की क्षमता है।"[1]

मार्क्सवादी दर्शन आशावादी है वह मनुष्य अंतिम सांस तक लड़ने को संघर्ष की प्रेरणा देता है वह जीवन से अत्यधिक प्रेम करता है और इस जीवन से प्रेम के कारण ही व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिये आरम्भ से अंत तक संघर्ष करता है सारा जीवन चक्र इसी पर घूमता रहता है। मार्क्सवाद को जीवन पर आस्था है उसे आत्मविश्वास है कि जीत उसी की होगी जो कर्मशील है, जो अंगारे की भाँति दहकता है और जो उसके रास्ते में अवरोधक बनकर आता है उसे जलाता जाता है चाहें वह धर्म हो ईश्वर हो, परम्परा जाँति-पाँति या संस्कृति सभ्यता ही क्यों न हो वह किसी रूढ़ि को स्वीकार नहीं करता वह एक स्वस्थ समाजवाद की वकालत करता है जिसमें सब कुछ समान हो किसी प्रकार की विषमता न हो जहाँ अनास्था का दर्शन संस्कृति के विनाश तथा संसार के पतन पर आठ-आठ आंसू बहाता है वहीं मार्क्सवादी रचनाकार एक नये संसार का जन्म होते देखता है और उसमें सहायता प्रदान करता है।"[2]

मार्क्सवाद में इस प्रकार का अंधविश्वास नहीं है कि साम्यवाद की स्थापना के बाद समाज से अन्तर्विरोध और विषमतायें एक दम समाप्त ही हो जायेंगी। यह समाज निरन्तर गतिशील है इसकी स्थिरता इसकी मृत्यु है कोई भी धारा जड़ हो गई तो वह मर जायेगी अतः गतिशील रहना है। इसका जीवन है समाज इसी में विकास पाता है, परिस्थितियाँ बदलती हैं उन्हीं के अनुसार नयी समस्यायें भी सामने आती हैं और मनुष्य

1- स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म- लुकाच ।
2- लुकाच- स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म।

उसका सामना करने के लिये संघर्षरत हो जाता है अतः यह संघर्ष समाज में चलता ही रहता है ये कभी समाप्त नहीं होता। "मार्क्सवादियों ने भविष्य के साम्यवादी, वर्गमुक्त समाज में अंतर्विरोधों और जटिलताओं के एक दम लुप्त हो जाने की बात नहीं की है। मार्क्सवादी दर्शन प्रकृति तथा समाज को एक स्थिर सत्ता न मान कर निरंतर गतिशील और परिवर्तनशील सत्ता मानता है, जिसमें कोई भी स्थिति एकदम जड़ अथवा स्थिर नहीं होती। उस वर्ग मुक्त साम्यवादी समाज में पूंजीवादी युग के अंतर्विरोध एवं संघर्ष अवश्य न होंगे परन्तु मानव के समक्ष अपने समूचे विकास को गतिशील रखने के लिये, नये द्वार उद्घाटित हो चुके होंगे अर्थात् उसकी सक्रियता को ललकारने के लिये नयी परिस्थितियाँ सामने आ चुकी होंगी। अर्थात मानव उस वर्ग मुक्त समाज में भी संघर्ष शील और सक्रिय मनुष्य ही होगा।"

समाजवादी यथार्थवाद के साथ गोर्कीका नाम संलग्न है क्योंकि गोर्की ही ऐसा पहला कलाकार था जिसने एक ऐसे यथार्थवाद को जन्म दिया जिसमें मात्र जीवन की सच्चाइयों का ही उद्घाटन नहीं था जिसने जीवन के प्रति एक घृणा और निराशा का भाव ही जाग्रत होता था। समाज का नंगा और वीभत्स चित्र चित्रित करना है। इन यथार्थवादियों का उद्देश्य था, उसने अपने सामाजिक यथार्थवाद में समाज की कुरूतियों, बुराइयों का विरोध करते हुए, वस्तु तत्व को निरन्तर विकास की अवस्था में देखा। उसने अतीत को समझते हुए वर्तमान को सुधार कर भविष्य की रूपरेखा तैयार करने पर बल दिया, वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के लिये भी सन्देश दिया वर्तमान जीवन के लिए आशा नयी प्रेरणा प्रदान की गोर्की के अनुसार जो है, केवल उसका चित्रण ही समाजवादी यथार्थ के लिए पर्याप्त नहीं है, जो हम चाहते हैं और जिसकी उपलब्धि संभव है, वह सब इसकी परिधि के अंतर्गत आता है।"[1] यथार्थ इतना व्यापक और जटिल है कि उसके ज्ञान के लिये अकेले व्यक्ति के श्रम की ही नहीं वरन् परम्परा संबंधित सामाजिक श्रम की सहायता भी आवश्यक होती है।[2] इस प्रकार श्रम और सामाजिकता मानवीययथार्थ के दो प्रधान अंग बन जाते हैं।[3]

1- मैक्सिम गोर्की- लिटरेचर एण्ड लाइफ पृ0-9, 145 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना जनेश्वर वर्मा से उद्धृत।

2- क्रिस टोफर [illegible]-स्टडीज इन ए डाईंग कल्चर, पृ0-3 वही,

3- मैक्सिम गोर्की- लिटरेचर एण्ड लाइफ पृ0-140, वही,

यथार्थ मानव परिस्थितियों के आगे घुटने नहीं टेक देतावह अपने अदम्य उत्साह और अपनी कर्मशीलता से उसे बदल देने की क्षमता रखता है अतः मार्क्सवादीय यथार्थ में मानवीय यथार्थ के इसी रूप को ग्रहण किया गया है, जिसमें जीवन का सन्देश है, जीवन से सृजन है सक्रियता है और यही मार्क्सवादीय विचारधारा का समाजवाद है जो मनुष्य में जीवन के प्रति प्रेम का संचार करता है उसको भौतिक सुख-सुविधाओं के लिये प्रेरित करता है। मार्क्सवादी सामाजिक यथार्थवाद में निराशा और हीनता का कोई स्थान तो नहीं है किन्तु इसका यह आशय नहीं है उसमें जीवन के ह्रास का चित्रण न होकर केवल उत्थान का ही चित्रण होता है यह तो वास्तविकता से काफी दूर हो जायेगा, ह्रास भी जीवन काएक अंग है जो जीवन को निरन्तर विकासमान और गतिशील रखता है अगर जीवन में ह्रास न हो कोई समस्या न हो तो जीवन स्थिर हो जाए वह जड़ हो जाय अतः मार्क्सवादी साहित्य में सम्पूर्ण जीवन की झाँकी होने के कारण जीवन के ह्रास पक्ष का भी चित्रण है। अन्तर मात्र इतना है कि वह जीवन की अवनति दिखाकर वहीं रुक ही नहीं जाता बल्कि वह जिन्दगी की नयी तस्वीर देता है आगे बढ़ने का रास्ता सुझाता है।

मार्क्सवाद की साहित्यिक मान्यता काव्य पर पूँजीवाद का प्रभाव-

वर्ग विभाजन और वर्ग वैषम्य का नग्न रूप पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत दृष्टि-गत होता है पूँजीवाद ने "धन" को दुनिया की सबसे बड़ी ताकत बना दिया। हर वस्तु की तुला धन हो गयी रिश्ते-नाते-प्यार-सम्बन्ध सब कुछ पैसा हो गया इसकी व्याख्या मार्क्स और एंगेल्स ने "कम्युनिस्ट घोषणा पत्र" में की है-

" पूँजीपतिवर्ग ने जहाँपर भी शक्ति प्राप्त की वहाँ सामन्तवादी अपितु सत्तावादी भावुकता के सभी सम्बन्धों का उसने अन्त कर दिया। स्वाभाविक रूप से ही उच्च कहलाने वाले लोगों से मनुष्य जिन नाना सामंती बन्धनों में बँधा हुआ था, उन सबको उसने निष्ठुरता से तोड़ दिया नग्न स्वार्थ के नकद पैसे कौड़ी के "हृदयशून्य व्यवहार के सिवा मनुष्यों के बीच और कोई दूसरा सम्बन्ध उसने बाकी नहीं रहने दिया। ऊँची से ऊँची धार्मिक भावनाओं वीरोचित उत्साह और भोली से भोली भावुकताओं, सब पर उसने आना-पाई-का

मुलम्मा चढ़ा दिया है। मनुष्य के गुणों को उसने बाजार की बिकाऊ चीज बना दिया है। पहले कीलनदों द्वारा प्राप्त होने वाली तरह तरह की स्वतंत्रताओं की जगह अब उसने केवल एक ही तरह की आत्महहित स्वतंत्रता की स्वतंत्र व्यापार की स्थापना कर दी है। एक शब्द में धार्मिक और राजनीतिक पर्दों के पीछे छिपे शोषण के स्थान में उसने नग्न-निर्लज्ज प्रत्यक्ष और पाशविक शोषण की स्थापना कर दी है।

जिन पेशों के सम्बन्ध में अब तक लोगों के मन में आदर और श्रद्धा की भावना थी, उन सबका रंग पूँजीपति वर्ग ने फीका कर दिया है। डाक्टर, वकील, पुरोहित कवि और वैज्ञानिक सभी को उसने अपना वेतनभोगी कर्मचारी बना लिया है।"[1]

पूँजीवादी युग का प्रभाव कवियों पर भी पड़ा। काव्य पवित्र भाव सम्पत्ति न रह कर साधारण पण्य के समान ही बाजार में विक्रय की वस्तु बन गया है और कवि सच्चे अर्थों में कवि न रहकर बाजार के लिये काव्य रूपी ऐसे पण्य का उत्पादनकर्ता बन गया है जिसकी माँग निरन्तर घटती जा रही है।[2] पूँजीवाद प्रगतिशील न होकर प्रतिक्रिया वादी है। फिर भी काव्य के इस बाजार रूप को छिपाने के लिए उसे आदर्शवाद के बड़े ही रंगीन आवरण में वेष्ठित करके प्रस्तुत किया जाता है, पूँजीवादी संस्कृति के जाल में उलझे हुए आलोचकों के लिए यह संभव नहीं है कि आदर्शवाद के इस आवरण को भेद कर उसके वास्तविक रूप को देख सके।[3] अब काव्य भी धन के लोभ से लिखा जाने लगा यह जीवी कोपार्जन का एक मुख्य साधन बन गया और कवियों में इस बात की होड़ होने लगी कि किसकी रचना कितने मूल्य की होती है। मार्क्स और एंगेल्स कीऐसी धारणा थी कि औद्योगिक पूँजीवाद के विकास कीउच्चतम अवस्था में प्रतिफलित होने वाला सामाजिक स्वरूप जिसमें भौतिक और मानसिक श्रम का विभाजन अपने विकास की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, कला के लिए सदा घातक होता है।"[4] इस व्यवस्था के (पूँजीवादी व्यवस्था) समय के कुछ आलोचकों ने मार्क्सवादी काव्य और कला के आर्थिक पक्ष पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है, निस्सन्देह ऐसे लोगों ने मार्क्स को समझने में बड़ी भूल की है। इन

- -

1- मार्क्स और एंगेल्स-कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणा पत्र, चौथा हिन्दी संस्करण, पृ0-37-38

2-क्रिस्टोफर कॉडवेल-इल्यूजन एण्ड रियलिटी-पृ0-55

3- काडवेल इल्यूजन एण्ड रियलिटी -पृ0-44 कमलेश्वर वर्मा हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

4- एम0डी0का सिलिन्डर-मार्क्सीलिज्म एण्ड मार्डन आर्ट पृ0-29

मान्यताओं का खण्डन करते हुए एंगेल्स ने अपने एक पत्र जे0ब्लाक को लिखा था उसमें लिखा था, "इतिहासकी भौतिकवादी धारणाके अनुसार वास्तविक जीवन में उत्पादन और पुनरोत्पादन ही अन्ततः इतिहास के निर्णयात्मक तत्व हैं। इससे बड़ा दावा नहीं मार्क्स ने किया है और न मैंने। इसलिए यदि कोई इसे तोड़ मरोड़ कर कथन गढ़ता है कि आर्थिक तत्व ही एकमात्र निर्णयात्मक तत्व है तो वह उसे एक निरर्थक, निराधार और बेहूदा फिकरा बना देता है।"[1]

काव्य पर पूँजीवाद को जो प्रभाव पड़ा उससे सांस्कृतिक जीवन का नितान्त पतन हो गया मार्क्स और एंगेल्स ने इनके कारणों पर विचार किया और अन्ततः निष्कर्ष निकाल कर उसके कारणों का अपने साम्यवादी घोषणा पत्र में प्रकाश डालते हुए कहा है कि "मध्य वर्ग का जहाँ जहा भी बस चला, उसने समस्त सामंतवादी, पितृसत्तात्मक तथा नैसर्गिक संबंधों को समाप्त कर दिया। उसने बड़ी निर्ममता से उन छोटे से छोटे सामंती संबंधों को भी टूक-टूक कर दिया जो मानव और देवताओं के बीच थे। उसने व्यक्ति व्यक्ति के बीच मात्र स्वार्थ तथा "पैसा ही भगवान" सिद्धांत के अतिरिक्त अन्य कोई भी संबंध नहीं छोड़ा। धार्मिक तन्मयता के अलौकिक आनंद वीर योद्धाओं के उत्साह तथा मूर्खों के भावुकतापूर्ण आह्लाद, इस सबको इसने अहम पूर्ण हिसाब किताब के बर्फीले जल में डुबो दिया। इसने मनुष्य कीप्रतिष्ठा को द्रव्य मूल में बदल दिया है और उसका विभिन्न क्षेत्रों में काम करने की स्वतंत्रता के स्थान पर केवल "उन्मुक्त व्यापार" की निरंकुश स्वतंत्रता को स्थापित कर दिया है। संक्षेप में इसने धर्म और राजनैतिक भुलावों के नामपर किए जाने वाले शोषण को सीधे निर्लज्ज और बर्बर शोषण में बदल दिया है।"[2]

पूँजीवादी व्यवस्था के उदय ने जहाँ भौतिक उत्पादन को विश्वव्यापी बना दिया उसी प्रकार बौद्धिक उत्पादन भी विश्वव्यापी बन गया। आज साहित्य सामूहिक सम्पत्ति बन गया है और स्थानीय साहित्य एक विश्व साहित्य के रूप में जन्म ले रहा है। परन्तु यह विश्व साहित्य एक ऐसा दुर्बल शिशु है जिसके सहज विकास की राह में

- -

1- रैल्फ फोक्स द्वारा उपन्यास और लोक जीवन में उद्धृत-पृ0- 15

2- पाश्चात्य काव्यशास्त्र मार्क्सवादी परम्परा से उद्धृत लेखक-डा0 मक्खन लाल शर्मा, पृ0- 193

स्वयं इसके जनक पूंजीवादी उत्पादन की परिस्थितियां ही सबसे बड़ी बाधा है। पूंजीवादी समाज के अंतर्विरोधों के कारण उत्पन्न जातीय तथा राष्ट्रीय राग-द्वेष, वर्ग शत्रुता, सबल राष्ट्रों द्वारा निर्बल राष्ट्रों को अपना राष्ट्रीय विकास करने से बलात रोकना स्त्री तथा पुरुष में शारीरिक भेद तथा आपसी विरोध, नगर तथा गाँवों के बीच असाम्य, माल के अधिक उत्पादन के फलस्वरूप बौद्धिक तथ शारीरिक श्रम के बीच दिन दिन बढ़ाती हुई खाई विश्व साहित्य के विकास की अवरोधक जंजीरे हैं।"[1]

काव्य का लक्ष्य-

मार्क्स से पूर्व ही रूसादि देशों में प्रगतिवादी सिद्धान्तों की परम्परा प्रारम्भ हो गई थी। कवियों की कला की कसौटी बदल गई थी अब कला की लक्ष्य मात्र मनोरंजन न होकर मनुष्य जीवन की झाँकी बन गया कला ने यथार्थ से नाता जोड़ा और दीन दुखी, निर्बल वर्ग ने काव्य में स्थान पाया। रूसकेबेलिंस्की ने मार्क्स से पहले कला और साहित्य के अनेक प्रश्नों का गहराई से अध्ययन किया। वे लेखक की प्रतिभा की कसौटी तर्कोंपुनाम्मुखता तथा विश्व नागरिकता मानते हैं। "बेलिंस्की साहित्य और कलाको जीवन की यथार्थ समस्याओं के साथ संलग्न करने का उद्देश्य लेकर चले किन्तु उन्हें यही चिंता सदैव बनी रही है कि साहित्य और कला की ...नता की रक्षा होती रहे।"[2]

चर्नीशेवस्की भीउसी साहित्य को श्रेष्ठ मानते हैं जिसमें वर्गगत पात्रों का चित्रण हो तथा जो जीवन की समस्याओं से संबंधित हो। चर्नशिव्सकी के अनुसार-"कला में जीवन की व्याख्या की गई है और माना गया है कि कला जीवन का पुनःअंकन है।--- यथार्थ का संबंध होने पर कला अधिक पूर्ण बन जाती है।[3]

मार्क्स के अनुसार यथार्थवादी दृष्टि कोण को छोड़कर चलने वाला साहित्य कभीभी प्रगतिशील नहीं माना जा सकता। समाजवादी यथार्थवादी काव्य में वह वर्गगत चरित्रों की उपस्थिति अनिवार्य मानते हैं और उसी के अनुसार परिस्थितियों को चित्रित

1- पाश्चात्य काव्यशास्त्र-मार्क्सवादी परम्परा से उद्धृत लेखक-डा०मक्खन लाल शर्मा, पृ0-197
2- वही, पृ0-21
3- वही, पृ0-3

करना भी अनिवार्य माना है। मार्क्स के अनुसार साहित्य सोद्देश्य होना चाहिए "इसके लिए उसे दोनों वर्गों के बीच चलने वाले संघर्ष का चित्रण करना चाहिए। जो साहित्य ~~वर्ग-संघर्ष का चित्रण करना चाहिए।~~ जो साहित्य वर्ग-संघर्ष का चित्रण नहीं करता-वर्ग संघर्ष से बच निकलने का प्रयत्न करता है-वह भविष्य के लिए अपना स्पष्ट दृष्टिकोण नहीं रखता। जो सर्वहारा के संघर्ष का सहायक सिद्ध नहीं होता, वह समाजवादी यथार्थ नहीं कहा जा सकता।"[1]

मार्क्सवाद "कला, कला के लिए सिद्धांत का विरोधी है और "कला जीवन के लिए सिद्धान्त का समर्थक है। मार्क्सवाद के अनुसार कला और जीवन का सम्बन्ध अविच्छेद्य है। मार्क्सवाद भौतिक जीवन को ही एक मात्र सत्य मानता है किसी परोक्ष सत्ता पर उसे विश्वास नहीं वह यथार्थ और भौतिक जीवन की साधना पर अधिक बल देता है और उसका स्वस्थ उपयोग ही अपना लक्ष्य मानता है। चूँकि समाज ही भौतिक जीवन की संस्था है अतः मार्क्स समाजहित को अधिक महत्व प्रदान करता है। वह समाजहित में ही व्यक्ति का हित भी देखता है अतः मार्क्स की मान्यता के अनुसार साहित्य में सामाजिक चेतना पर ज्यादा बल देना चाहिए। समाज का साधक होने के नाते वह साहित्य में भी जनहित के उद्देश्य को लेकर चलता है। साहित्य को वह सामाजिक चेतना का ही अंग मानता है, जिसके माध्यम से मनुष्य को मानव सामाजिक सत्य को प्रतिबिम्बित करता है।"[2]

समाज पर आर्थिक व्यवस्था का भी प्रभाव पड़ता है। आर्थिक व्यवस्था उसका मूलाधार है अतः मार्क्सवादी कलाकार समाज की आर्थिक व्यवस्था के प्रति भी सजग है। समाज में विकसित दो वर्गों के संघर्ष का मार्क्सवादी कलाकार दृष्टा मात्र नहीं है वह पूँजीवाद का शत्रु है तथा सर्वहारा वर्ग का हितचिन्तक है। समाजवाद का साधक होने के नाते मार्क्सवादी कलाकार को राजनीति से घृणा नहीं वह जिस सामाजिक सत्य को अपनी कला से अभिव्यक्ति प्रदान करना चाहता है, राजनीति उसी का एक महत्वपूर्ण अंग है अतः उसकी धारणा के अनुसार राजनीति से भागकर सत्य के वास्तविक स्वरूप का

1- पाश्चात्य काव्य शास्त्र मार्क्सवादी परम्परा-सम्पादक डा० मक्खन लाल शर्मा, पृ०-5

2- क्रिस टोफर काडवेल-इलूजन एण्ड रियल्टी पृ०-30 -हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत-लेखक जनेश्वर वर्मा ।

उद्घाटन सम्भव नहीं है।"[1] इसीलिए गोर्की साहित्य और राजनीति के परस्पर सम्बन्ध का कट्टर समर्थक था और पार्टी के नेतृत्व में ही साहित्य की रचना करने के पक्ष में था। लेनिन ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "साहित्य को पार्टी साहित्य होना चाहिए।" लेनिन ने पार्टी को सर्वहारा का अस्त्र माना है और सर्वहारा को पार्टी का अनुगामी होने का संदेश दिया और यह स्वीकार किया कि साहित्य को पार्टी के सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रमों का एक महत्वपूर्ण अंग बनना चाहिये। पार्टी संगठन और पार्टी साहित्य शीर्षक निबन्ध में लेनिन ने कहा है कि "कला का उद्देश्य जनता की भावनाओं, इच्छाओं और विचारों में एकता स्थापित करके उन्हें उत्कर्ष प्रदान करना है।[2] पार्टी साहित्य संबंधी सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा है कि समाजवादी सर्वहारा-साहित्य, समाज से अलग किसी व्यक्ति के समग्रगत उद्देश्य का ही एक अभिन्न अंग होना चाहिए। उसे सुसंगठित, सुआयोजित, संयुक्त समाजवादी जनतांत्रिक पार्टी कार्य का एक अविकल अंग होना चाहिए।"[3]

उपर्युक्त व्यक्तव्य का आशय यह नहीं कि मार्क्सवादी कलाकार कोरे राजनीति के प्रचार का समर्थक है जीवन का एक अंग होने के कारण राजनीति भी काव्य के वर्ण्य विषय में आ जाती है चूँकि मार्क्सवादी साहित्य का उद्देश्य है व्यक्ति के जीवन का समस्त चित्रण, उसके सम्पूर्ण चरित्र का उद्घाटन अतः राजनीति उसमें सक्रिय भाग लेती है अतः राजनीति से वह मुँह नहीं मोड़ सका। वह साहित्य में संवेदनीयता को ही प्रमुख स्थान देता है क्योंकि जिस काव्य में जितनी संवेदनीयता होगी वह उतना ही हृदय को स्पर्श करेगा। रैल्फ फाक्स के उपन्यास कला विवेचना में भी इस प्रकार के विचार के व्यक्त हुए है-"लेखक का काम उपदेश झाड़ना नहीं बल्कि जीवन का एक वास्तविक, ऐतिहासिक चित्र प्रस्तुत करना है।"[4] मार्क्स और एंगेल्स ने भी इस बात पर विशेष रूप से बल दिया है कि कलाकृति लेखक के विचार दृष्टिकोण के अनुकूल होनी चाहिए परन्तु साथ ही लेखक को कभी अपने विचारों की घोषणा न चाहिए। यह न मालूम हो कि दृष्टिकोण का प्रचार किया जा रहा है, परिस्थितियों और पात्रों के द्वारा वह स्वतः रूप में व्यक्त हो। वही सच्ची [illegible] कलात्मकता है।"[5]

1- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत-जनेश्वर वर्मा।

2- लेनिन आर्ट एण्ड लि[illegible]चर-एल०बी० लीनाचर्स्की-पृ०-45, हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

3- रैल्फ फाक्स-उपन्यास और लोक जीवन-पृ०-106, वही

4- वही, पृ०-105-106, वही,

प्लेखानव भी साहित्य के यथार्थवादी पक्ष के समर्थक हैं उनके अनुसार कलाकार अपने चारों ओर के वातावरण से जो अनुभव करता है उसी यथार्थ को जब वह अपनी कल्पना में साकार करके रचना के रूप में व्यक्त करता है तभी कलाका जन्म होता है। इतिहास को वे सामाजिक पद्धति का प्रतिबिंब मानते हैं। प्लेखानव व्यक्तिवाद को अस्वीकार करते हैं। प्लेखानव ने कहा है कि जब समाज तथा सर्जनात्मक कला में रुचि रखने वालों में परस्पर सामंजस्य हो, तब कला की सोद्देश्यता और सामाजिकता की प्रवृत्ति का विकास होता है।"[1] "कलाकृति में निहित भाव जितने अधिक उत्कृष्ट होंगे, वह कलाकृति सामाजिक प्रगति के लिए उतनी ही अधिक उपादेय सिद्ध होगी।"[2]

"प्राचीन कला का अनिवार्य संबंध श्रम से है। श्रम को आसान करने के लिए ही कला का जन्म हुआ था। समाजमें श्रम प्रथम तथा कला द्वितीय स्थान पर है। श्रम कला से अधिक पुराना है। कला श्रम के लिए है श्रम कला के लिए नहीं।सारांशतः वे प्लेखानव कला को जीवन का अनुगामी तथा जीवन को सुन्दर बनाने वाला मानते हैं।"[3]

इसी परम्परा में गोर्की भी यथार्थवाद के समर्थक के रूप में सामने आये। गोर्की प्राकृतवाद में साम्राज्यी मनोवृत्ति विकास पाती है।प्रकृतवाद साहित्य में सामान्य परिस्थितियों का अंकन होता है और वर्गगत चरित्रों का अंकन नहीं हो पाता। गोर्की के मतानुसार-"समाजवादी यथार्थवाद के प्रकाश में दो उद्देश्यों की पूर्ति आवश्यक है प्रथम मनुष्य की प्रगति में बाधा डालने वाली सभी [illegible] शक्तियों को उनकी यथार्थता में उद्घाटित करनाऔर द्वितीय-नये यथार्थ की सफलताओं को कलात्मक रूप देकर समेटना, संजोना तथा निर्धारित भविष्य की ओर अविराम गति से आगे बढ़ते हुए नायक को आदर्श पुरुष के रूप में प्रस्तुत करना।"[4]इस प्रकार गोर्की आर्थिक संबंधों को वर्ग संघर्ष का कारण मानते हुए ऐसे समाजवादी यथार्थ पर विश्वास करते हैं जो वर्तमान परिस्थितियों को चित्रित करता हुआ उसका [illegible] करे और साथ ही समाजवादी भविष्य के उच्च आदर्शों पर भी [illegible]काडाल सके।गोर्की के अनुसार-"जिस प्रकार प्रकृति केपुराने और जीर्ण अंगों का स्थान नये सृजन से लेते हैं और इस परिवर्तन से ही उसमें नये प्राणों की प्रतिष्ठा

- -

1- आर्ट एण्ड सोशल लाइफ- पृ०-51, प्रगतिवादी काव्य साहित्य से उद्धृत-डा०कृष्णलाल
2- वही, पृ०- 172
3- पाश्चात्य काव्यशास्त्र मार्क्सवादी परम्परा-सं०-मक्खन लाल शर्मा, पृ०- 7।
4- श्री शिव वर्मा- [illegible] साहित्य में यथार्थवाद का विकास।समालोचक, यथार्थ विशेषांक-पृ०-7। डा०कृष्ण लाल हंस के प्रगतिवादी काव्य साहित्य से उद्धृत।

होती है और वह विकसित होकर फलवती होती है, उसी प्रकार समाज के मृत और पतनशील तत्वों का स्थान प्रगतिशील तत्व ग्रहण करते जा रहे हैं। माओ-त्से-तुंग भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि साहित्य का कुछ उद्देश्य होना चाहिए और साथ ही उसका कुछ परिणाम भी होना चाहिए वह इस सिद्धांत पर विश्वास करते थे- "हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी हैं। हम उद्देश्य और परिणाम दोनों को एक साथ मिलाकर देखने में विश्वास करते हैं। ये दोनों एक दूसरे से पृथक नहीं किये जा सकते। यदि जनता के लिए कार्य करने का कोई परिणाम नहीं निकलता या उसके परिणाम का जनता स्वागत नहीं करती, तो वह व्यर्थ है।"[1] जो जन्म ग्रहण करता और जो क्रमशः बढ़ता जा रहा है वह अजेय है, उसकी प्रगति रोकना संभव नहीं है। उदाहरणार्थ सर्वहारा एक वर्ग के रूप में जन्म ग्रहण कर रहा है और बढ़ता भी जा रहा है। वह आजभले ही निर्बल हो और संख्या भी कम हो, पर अंततः उसकी विजय निश्चित है क्योंकि वह शक्ति एकत्र करता हुआ निरन्तर बढ़ता जा रहा है।"[2]

प्रगतिवादी साहित्यकार जीवन से निजी संबंध रखकर लिखना चाहता है। वह जिन परिस्थितियों के बारे में अपनी रचनामें लिखता है, वह उसी परिस्थितियों में रहकर उस मनोवृत्ति का अनुभव प्राप्त करना चाहता है। इससे काव्य में संवेदनीयता का गुण आ जाता हैं और वह सर्वग्राही बन जाता है। सभी प्रगतिवादी कवियों ने काव्य में संवेदनीयता के गुण को स्वीकार किया है-" कलाकार के लिए मूल वस्तु है संवेदना, सामाजिक जीवन से व्यापक परिचय अपने पात्रों से उचित अनुपात में सहानुभूति या घृणा।[3]

मार्क्सवाद कलात्मक सुघरता के साथ-साथ साहित्य में कर्म सन्देश को भी आवश्यक मानते हैं। साम्राज्यवाद के फलस्वरूप साहित्य में जोनिराशा और पलायन की प्रवृत्ति आ गई थी मार्क्सवाद उसका विरोध करता है वह पूंजीवादी विकृतियों का उद्घाटन करता हुआ व्यक्ति को विजय एवं आशा का संदेश देता है और निरन्तर समस्या से संघर्ष करना चाहता है उससे मुँह छिपाकर भागना नहीं। मार्क्सवादी धारणा के अनुसार कला का वास्तविक आधार है मनुष्यों का पारस्परिक सम्बन्ध।"[4] पूंजीवादी व्यवस्था ऐसी

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1- टाकस रेट येनान फोरम एन आर्ट एण्ड लिटरेचर-पृ0-24, डा0कृष्ण लाल हंस-प्रगतिवादी काव्य साहित्य से उद्धृत।

2- एनारचिज्म एण्ड सोशलिज्म- पृ0-14- प्रगतिवादी काव्य साहित्य से उद्धृत।

3- डा0 रामविलास शर्मा-"उपन्यास और लोक जीवन "भूमिका-पृ0- 6

4- क्रिस्टोफर काडवेल-स्टडीस इन ए डाइंग कलचर- पृ0-46, हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

है जिसमें सामाजिक संबंधों की महत्ता घट जाती है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति स्वार्थ के बंधन से बंध जाता है और बस पूँजी की महत्ता बढ़ जाती है। सारा समाज पैसे के बल पर ही टिका हुआ है चारों तरफ ईर्ष्या और घृणा का साम्राज्य फैला हुआ है।पैसे की होड़ में व्यक्ति को कुछ नजर नहीं आ रहा चारों तरफ लोभ का एक परदा सा पड़ा हुआ है व्यक्ति आँख मूँद कर उस ओर बढ़ता चला जा रहा है। "सामाजिक संबंधों से लेकर भावना जगत और कला जगत तक के इस वाणिज्यीकरण को देखकर सच्चे कलाकार का मन वितृष्णा और क्षोभ से खिन्न हो उठता है। उसके मन में इस स्थिति के प्रति एक तीव्र विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है।परन्तु पूँजीवादी संस्कारों से प्रभावित कलाकार का यह विद्रोह पूँजीवादी संस्कृति की सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर पाता।"[1] श्रेष्ठ कलाकार वही है जो पूँजीवादी घेरे से पूर्णतया: मुक्त होकर खुलकर उसका विरोध करने सामने आये,कलाकार किसी भी प्रकार के मध्यस्थ मार्ग को न अपनाये वह या तो उसका खुलकर विरोध करे या समर्थन। लेनिन भी श्रेष्ठ कलाकार उसी को मानते हैं जो वर्ग संघर्ष की भूमिका पर निषेधात्मक सौन्दर्य परक प्रभावों को लेकर ईमानदारी के साथ जीवन की उस वास्तविकता का चित्रण करता है जो उसका अपना उपकरण बन गया है। वे वास्तविक साहित्य उसे मानते हैं,जो वैयक्तिक नहीं पर देश के असंख्य श्रमिकों के उत्थान में सहायक है।[2]

आजकल साहित्य में एक प्रश्न बड़े जोर से चला हुआ है कि कला,कला के लिये है अथवा जीवन के लिए। अधिकतर बोलबाला कला,जीवन के लिये है का ही है। भारत में भी प्राचीन काल से कला को लोकजीवन के लिये ही माना जा रहा है। वही कला श्रेष्ठ है जो जीवन को उदात्त बनाती है और व्यक्ति का मार्गदर्शक बनकर विभिन्न परिस्थितियों में जीना सिखाती है। मार्क्सवाद का यह भी कला,जीवन के लिये के तरफ ही था। कला,कला के लिए सिद्धांत की [illegible] करते हुए मार्क्सवादी विचारक रैल्फ फॉक्स ने लिखा है-"उन्नीसवीं शताब्दी के समूचे दौरान में हम यह देखते हैं कि कलाकार इस दुनिया को अस्वीकार करने की व्यर्थ चेष्टा में लगा है जो उस पर ऐसे मानदण्ड लादती है जिन्हें वह कभी स्वीकार नहीं कर सकता। तो इस दुनिया से बचने के लिए कुछ तो अपनी काल्पनिक गढ़ में जा बसते हैं और

- -

1- क्रिस्टोफर कॉडवेल-स्टडीज इन ए डाईंग कल्चर- पृ0-46, [illegible] में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

2- लेनिन ऑन आर्ट एण्ड लिटरेचर- पृ0-45, प्रगतिवादी काव्य साहित्य से उद्धृत।

उसके ऊपर कला,कला के लिये की रेशमी पताका फहरा देते है। यह विचित्र नारा अगर सच पूछा जाय तो उस सभ्यता को चुनौती देता है जो चाँदी के कुछ सिक्कों के अलावा कला का और कोई मूल्य नहीं मानता।कला,कला के लिए का नारा "कला धन के लिए के नारे का एक बहुत ही निकृष्ट उत्तर है-निकृष्ट इसलिए कि कल्पना किलेबन्दी के लिए कभी कारगर सिद्ध नहीं हुई।"[1] इसके विपरीत जिनके लिये कला जीवन के लिये है वह सदा ही उज्ज्वल,आशामय भविष्य की कल्पना करते है और निराशा और पराजय की भावना उनके आस-पास फटकने भी नहीं पाती वह परिस्थितियों से मुँह मोड़कर पलायन नहीं करते बल्कि संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। कवि अपने आस-पास के वातावरण से ही सीखता है वह साधारण जन-जीवन से प्रेरणा ग्रहण करता है और अपनी रचनाओं के माध्यम से उसी का पथ-प्रदर्शन करता है। कवि की वाणी अपने लिये नहीं वरन समाज के लिये है अत: इसी कारण वह समाज की आन्तरिक विसंगतियों का उद्घाटन करके जनसामान्य को जीवन ,संघर्ष के लिये प्रेरित करता है और एक मित्र की भाँति उसके सुख-दुख का भागीदार बनता है। ऐंगेल्स ने एक पत्र में लिखा था-" समाज वाद रोटी का सवाल नहीं है एक सांस्कृतिक आन्दोलन है जो संसार में एक महती विचारधारा को प्रवाहित करता है। इस सांस्कृतिक आन्दोलन का केन्द्र मानव है। मानव सर्वोपरि है। जो सिद्धांतवाद या विचार चाहे वह कोई धर्म होगा दर्शन या अर्थशास्त्र मानव के उत्कर्ष को घटाता है,वह मार्क्स को मान्य नहीं।"[2]

मार्क्सवादी साहित्य चिंतन साहित्य एवं कलाओं को मात्र दर्पण नहीं मानता जिसमें वस्तुगत यथार्थ अपने प्रकृत रूप में प्रतिबिम्बित होता हो। वह साहित्य एवं कला को एक रचनात्मक क्षमता के रूप में स्वीकार करता है ,जहाँ वाह्य यथार्थ अपनी सारी प्रमाणिकता के साथ पुनर्रचित होता है।"

सर्जना के क्षेत्र में मार्क्सवादी विचारकों का प्रधान आग्रह अपनी संपूर्ण क्षमता में उस मनुष्य का चित्रण रहा है जो एक लम्बे ऐतिहासिक विकास क्रम के दौरान परिस्थितियों को बदलने के क्रम में अपने को भी बदलता हुआ विकास की वर्तमान अवस्था पर आ गया है।" मार्क्स के अनुसार-"साम्यवादी समाज में अलग से कोई चित्रकार न होंगे,अधिक से अधिक ऐसे मनुष्य ही होंगे जो तमाम दूसरी बातों के साथ चित्र भी रचते हों।"

1- रैल्फ-फॉक्स-उपन्यास और लोक जीवन-पृ0-35, हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

2- आचार्य नरेन्द्र देव-राष्ट्रीयता और समाजवाद,समाजवाद का मूलाधार मानवता,पृ0-559 लोकतांत्रिक समाजवाद से -लेनिन और भारतीय साहित्य।

मार्क्सवाद की सौन्दर्य भावना-

मार्क्सवाद सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता में विश्वास रखता है अर्थात् वह सौन्दर्य नाम के गुण को वस्तु से अलग करके नहीं देखता।[1]मार्क्सवादी कला का स्वरूप।।।बिम्बधर्मिता 2- संप्रेषणीयता। मार्क्सवाद की मान्यता है कि उपयोगिता का तत्व सौन्दर्य तत्व से पूर्ववर्ती है। मनुष्य में सौंदर्य भावना का जन्म उपयोगिता की भावना के अनन्तर ही हुआ है। कला के उद्भव का विवरण देते हुए उन्होंने तथा अन्य विचारकों ने भली-भाँति स्पष्ट कर दिया है कि जो वस्तुएँ मनुष्य के लिये मूलतः उपयोगी थी उन्हीं को उसने सुन्दर भी स्वीकार किया। अनुपयोगी वस्तुओं का न तो उसने निर्माण किया और न ही उनमें सौन्दर्य तत्व की खोज या परख की।

इस वस्तु जगत का परिचय मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा प्राप्त करता है और विकास क्रम में अपने अनुभवों को निरंतर सम्पन्न और समृद्ध करता जाता है । यथार्थबोध से मार्क्सवादी साहित्य-चिंतक का आशय अपने वस्तुगत रूप में स्थित इस बाह्य संसार को जानने और समझने से है।"

सौन्दर्य शास्त्र के क्षेत्र में मार्क्सवादी मान्यता की स्थापना "सर्वप्रथम चर्नीशेव्स्की ने की वह सौन्दर्य को मात्र नेत्रों की क्रिया न मानकर, नेत्र और मस्तिष्क की संयुक्त क्रिया मानते हैं। उनके अनुसार शोषक वर्ग सौन्दर्य का उपयोग शोषण के लिए करता है। वे सौन्दर्य को निस्वार्थ और द्वन्द्व का परिणाम मानते हैं। अब सौन्दर्य को केवल कला तक ही सीमित नहीं रखा जा रहा है वरन् सौन्दर्य का क्षेत्र विज्ञान तक प्रसारित हो गया। प्रगतिशील साहित्य को दो कार्य करने हैं। एक ओर उसे प्रतिक्रियावादी [illegible] के प्रति असन्तोष उत्पन्न करना था और दूसरी ओर भावी समाज के लिए एक दिशा निर्देश करना था जो सारे समाज का यथार्थ होगा, [illegible] वर्ग का दर्पण होगा।

मार्क्सवादी मान्यता के अनुसार हमारे मनोजगत की सत्ता वस्तुजगत से स्वतंत्र [illegible] नहीं है। भौतिक परिस्थितियां ही हमारे मन:जगत का निर्माण करती हैं, जिसमें

1- डा0राम विलास शर्मा-आस्था औरसौन्दर्य-पृ0-28 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत ।

हमारे भाव-विचारादि सभी कुछ सम्मिलित हैं। वस्तुजगत के सम्पर्क से ही मन में नाना प्रकार की संवेदनात्मक अनुभूति होती है अतः हम कह सकते हैं कि हमारा मनः जगत वस्तुजगत का ही एकपक्ष अथवा उसी का एक अंग मात्र है।[1]

हिन्दी प्रगतिवादी साहित्य का स्वरूप-

"जिस साहित्य में हमारे जीवनकी समस्याएं न हो, हमारी आत्मा को स्पर्श करने की शक्ति न हो, जो केवल जिन्सीभावों में गुदगुदी पैदा करने के लिए रचा गया हो वह निर्जीव साहित्य है, सत्यहीन प्राणहीन। साहित्य में हमारी आत्माओं को जगाने की हमारी मानवता को सचेत करने की, हमारी रसिकता को तृप्त करने की शक्ति होनी चाहिए। ऐसी ही रचनाओं से कौमें बनती हैं। वह साहित्य जो हमें विलासिता के नशे में डुबा दे, जो हमें वैराग्य, पस्तीहिम्मती, निराशावाद की ओर ले जाये, जिसके नजदीक संसार दुख का घर है और उससे निकल भागने में हमारा कल्याण, जो केवल लिप्सा और भावुकतामें डूबी हुई कथाएं लिखकर, कामुकता को भड़काए निर्जीव है।"[2] इस प्रकार की विद्रोहात्मक ध्वनि लेकर प्रगतिवाद की सरिता सबके हित के लिये प्रवाहित होनी प्रारम्भ हुई जो अपने साथ सभी के अच्छे और उपयोगी सिद्धान्तों को समेटती थी जिसमें प्रमुख था मार्क्सवाद। "हिन्दी की प्रगतिवादी धारा पर मार्क्सवाद का स्पष्ट प्रभाव था किन्तु मार्क्सवाद और प्रगतिवाद दोनों एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं एक मार्क्सवादी कलाकार का प्रगतिवादी होना तो अनिवार्य है किन्तु एक प्रगतिवादी कलाकार का मार्क्सवादी होना अनिवार्य नहीं है। भारत के बहुत से साहित्यकारों ने मार्क्सवाद के जीवन दर्शन को स्वीकार नहीं किया लेकिन समाज में शोषित आततायी व्यक्तियों का चित्रण और सामाजिक जीवन के स्वस्थ उपभोग के द्वारा जनकल्याण का समर्थन किया एवं मानवतावाद एवं साम्यवाद का उद्घोष किया। अतः वह भी प्रगतिवादी कहलाये। डा० रांगेय राघव के शब्दों में "प्रगतिशील साहित्य का सृजन करने के लिये यह आवश्यकनहीं है कि लेखक मार्क्सवादी ही हो। वह मानववादी भी हो सकता है। किन्तु उसे ईमानदार रहना आवश्यक है।"[3] इस प्रकार प्रगतिवाद कोई लीक नहीं कि उसे पीटा जाये या कोई लक्ष्मण रेखा नहीं कि उसके

1- डा० रामविलास शर्मा-आस्था और सौन्दर्य-पृ०-26-हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी भावना से उद्धृत।

2- एक भाषण-प्रेमचन्द-आर्य समाज के अंतर्गत आर्य भाषा सम्मेलन के वार्षिक अवसर पर लाहौर में दिया गया भाषण-हंस फरवरी 1937

3- डा० रांगेय राघव-"प्रगतिशील साहित्य के मापदण्ड- पृ०- 14

अन्दर बैठकर रहा जाय जनकल्याण को लेकर जनवाणी से कोई भी कलाकार प्रगतिवादी कहला सकता है।

प्रगतिवादी साहित्य से तात्पर्य-

जिस प्रकार समाजवाद का अर्थ है मनुष्य के जीवन का सामाजिक या सामूहिक तरीका, वैसे ही प्रगतिवाद का अर्थ है। साहित्य का समाजीकरण या साहित्य को केवल व्यक्ति के सुख-दुख, जन्म-मरण, आशा-आकांक्षा और उल्लास वेदना की अभिव्यक्ति का साधन न बनाकर समाज की पीड़ा, ग्लानि, उतार-चढ़ाव, हर्ष-उद्वेग, उमंग और कुतूहल को वाणी देना। प्रगतिवाद का उद्देश्य समाज का विकास है। प्रगतिवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता का पोषक और व्यक्तिवादका शत्रु है। प्रेमचन्द ने प्रगतिशील लेखक संघ के सभापति पद से कहा था " हमारे पथ में अहंवाद या अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है। और ऐसी कला न हमारे लिये व्यक्ति रूप में उपयोगी है और न समुदाय रूप में। "कलाकार अपनी कला से सौन्दर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के उपयोगी बनाता है। प्रगतिवाद के अन्दर यह सौन्दर्य की भावना व्यापक हो जाती है। उसकी परिधि किसी विशेष श्रेणी तक ही सीमित नहीं होती। तभी ऐसा लगता है जैसे जन जन के जीवन में व्याप्त कुरूपता कुरुचि, नंगापन और अभाव हमारे अपने ही हैं और हम क्यों ऐसी व्यवस्था की जड़ें खोदने के लिये कटिबद्ध नहीं होते जिसमें हजारों आदमी कुछ चुने हुओं की गुलामी करते हैं। प्रगतिवाद की मान्यता है कि कला कोई स्वतंत्र तत्व नहीं है जो अपने ही ऊपर जिन्दा रह सके बल्कि वह सामाजिक मनुष्य के उद्योग का नतीजा है और उसके जीवन और वातावरण से संबंधित है। ऐतिहासिक प्रगति का एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि मनुष्य का विकास समाज की दिशा में होता है और समाज का इतिहास की दिशा में।[1] प्रत्येक वर्ग अपने लिये अलग से कला पैदा नहीं करता और नहीं वातावरण का हर परिवर्तन कला में परिवर्तन ला सकता है। "असल में मनुष्य का कलात्मक उद्योग एक पूर्ण और सिलसिलेवार चीज है, जो द्वन्द्वात्मक है और भीतरी टूट-फूट से स्थापित होती है।"[2]

1- प्रगतिशील साहित्य के मापदण्ड- डा० रांगेय राघव

2- वही, पृ०- 13

प्रगतिवादी साहित्य में हमें जिन चीजों की झलक मिलती है वे है, 1-पूँजीवाद के अन्तर्विरोधों उसकी असमाजिक कार्यवाही की दुर्बलताओं को सामने लाना है। 2-ईश्वर, धर्म रुढ़ि आदि सामन्त युगीन आदर्शों के विरुद्ध यथार्थवादी विचारधारा का प्रसार करना है। 3-वर्गहीन समाज की उच्च व पूर्ण संस्कृति व व्यवस्था का स्वर्णिम चित्र सम्मुख रखना है। उसके प्रति मिथ्या आशंकाओं निर्मूल कर जनता के विश्वास को अपने प्रति दृढ़ करना है। 4- भूमिपतियों, धर्म के ठेकेदारों-पुजारी-पादरियों, मुल्लाओं सामन्तवाद के दलालों तथा जनता को गुमराह करने वालों के प्रति जनता को श्रद्धामूलक दृष्टिकोण को समाप्त कर जनवादी व्यवस्था के प्रति उसे वफादार बनाना है। 5- वर्ग संघर्ष की चेतना को जागकर सामन्तवादी;पूँजीवादी व्यवस्था को नष्ट करने के लिये,जनता को क्रान्ति की आवश्यकता समझाकर उसके लिये सर्वस्व त्याग की भावना को दृढ़ करना है। 6- सम्पूर्ण प्रगतिशील संस्थाओं, व्यक्तियों तथा विचारधाराओं का सहयोग देकर जनवाद की प्रतिष्ठा को बढ़ाना है।7- मानव की स्वाभाविक वृत्ति यों पर अब तक जो अनावश्यक दबाव था उसे समाप्त कर उन्हें स्वाभाविक रूप से स्पष्ट करना है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें असमाजिकता के पथ पर डाल कर मानव को प्रवृत्तियों का दास बनाना है।8-वस्तु को उसके यथार्थ रूप में देखकर उसका यथार्थ चित्रण करना हैं,जगत के प्रति रोमांटिक दृष्टिकोण असामाजिक है।[1]

<u>प्रगतिवादी साहित्य का दर्शन-</u>

मानव को हम दो बुनियादी तत्वों में बाँट सकते हैं।एक वहजो जीवन को आराध्यशक्ति मानकर चलता है और दूसरा जो मृत्यु को जीवन दमन शक्ति के रूप में चुनता है। जब कोई मनुष्य इन दोनों के बीच में चुनावकरता है तो मानोअपने ही दो हिस्सों के बीच में चुनाव करता है। मानव जैसे ही पैदा होता है या गर्भ में आता है जैसे ही जीवन और मृत्यु की शक्तियाँ अपना विरोधी कार्य उसके भीतर आरम्भ कर देती हैं। यहीं से उसके अस्तित्व का आरंभ होता है और कभी वह एक शक्ति के सम्मुख झुकता है,कभी दूसरी के सम्मुख लेकिन वह पूर्ण रुप से इन्हीं दोनों से मिलकर नहीं बना है।

1- हिन्दी साहित्य के प्रमुखवाद एवं उसके प्रवर्तक-विश्वम्भरनाथ उपाध्याय-पृ0- 126

यह अलग एक जीवित अस्तित्व है। यदि इच्छाशक्ति न सही तो कम से कम एक आकांक्षा अवश्य रहती है जो इन दोनों शक्तियों से भिन्न होती है और जो आगे चलकर एक प्रबल इच्छाशक्ति में रूपान्तरित हो सकती है। परन्तु वह चुम्बक की सुई की भाँति दो विरोधी शक्तियों के बीच में घूमा करती है। यह द्वैत विश्व में, सृष्टि में हर जगह स्वीकार किया गया है, न केवल प्रकृति में ही वरन मानव मस्तिष्क और आत्मा में भी।"[1] "अपनी अपूर्णता के आत्मबोध में मनुष्य जीवन की टिप्पणियाँ लिखने में असमर्थ हो जाता है कर्म की रेखायें खींचने में जबउसे एक सामाजिक साथी की आवश्यकता प्रतीत होती है तब वह अपने विवेक के आंदोलन के प्रकाश में उसे ढूँढ़ निकालता है और उसके संपर्क का आग्रह उसकी कविता में जाग उठता है।"[2] "प्रगति मानव स्वतंत्रता के सामाजिक विस्तार का ही दूसरा नाम है, और संसार की सभ्यता का इतिहास समस्त मानवीय संघर्षों का इतिहास प्रसरणशील स्वतंत्रता के समाजीकरण का ही इतिहास है।"[3]

कोई भी युग सत्यद्वन्द्व से परे नहीं होता। आज के युग का सत्य है एक तरफ जनता साम्राज्यवाद से मुक्ति के लिये संघर्ष कर रही है, दूसरी तरफ साम्राज्यवादी ताकतें और उनके हिमायती उसे दबाने और गुलाम बनाये रखने की कोशिश कर रहे हैं। इस द्वन्द्व में कलाकार किसी अद्वैत युग सत्य का सहारा न लेकर जनता या उसके विरोधियों का पक्ष लेता है। इसलिये स्वभावतः प्रगतिशील न होकर उसे युगविशेष और समाज विशेष के संघर्ष में जनता का पक्ष लेने पर ही प्रगतिशील कहा जा सकता है।"[4]

डा० नगेन्द्र के शब्दों में -"संसार का मूलाधार पंचभूत है। पंचभूत का अर्थ है पदार्थ मैटर संसार के सभीदृश्य, सभीसूक्ष्म स्थूल रूप पदार्थ से ही बने हैं। शरीर की परिचालिका शक्ति मस्तिष्क है और मस्तिष्क भी शरीर की अन्य इन्द्रियों की भाँति भौतिक ही है। बाह्य जगत की घटनाओं की हमारी इन्द्रियों पर प्रतिक्रिया होती है और इस प्रतिक्रिया के फलस्वरूप एक कम्पन होता है। शरीर का वह सूक्ष्मतम और सबसे अधिक विकसित अवयव, जो इस कम्पन का अनुभव और समन्वय करता है, मस्तिष्क कहलाता है। आत्मा कोईनिरपेक्ष

1- समाज और साहित्य- अंचल- पृ0- 155
2- वही, पृ0- 197
3- वही, पृ0- 200
4- प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें- डा0 रामविलास शर्मा

सत्ता नहीं है, अधिक से अधिक उसे मस्तिष्क के आगे की एक विकसित अवस्था मात्र माना जा सकता है। यह स्वभाव से ही गतिशील है। इसमें गति उत्पन्न करने के लिये ब्रह्म के ईक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती, वह तो पदार्थ के अंतर्गत वर्तमान विरोधी तत्वों के सतत संघर्ष का सहज परिणाम है। जिस प्रकार जगत को उत्पन्न करने के लिए किसी आधिदैविक शक्ति की आवश्यकता नहीं उसी प्रकार उसके संरक्षण और विनाश के लिए भी नहीं। क्योंकि जो पदार्थ अपनी परस्पर विरोधी शक्तियों के संघर्ष के परिणाम स्वरूप स्वयंगतिशील है, उसमें स्वस्थ रूप का उद्‌भव और अस्वस्थ रूप का लय आप से आप होता रहता है। इसलिए विश्व में केवल एक ही सत्ता है, वह है। आधिभौतिक गति की प्रेरक। इन्हीं परस्पर विरोधी शक्तियों के, जो स्वयं वस्तु में वर्तमान रहती है, संघर्ष या द्वन्द्व का अध्ययन करते हुए जीवन विकास का अध्ययन करना ही द्वन्द्वात्मक प्रणाली है। और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद वह दर्शन है, जो जीवन को एक ऐसी प्रगतिशील भौतिक वास्तविकता मानता है, जिसके मूल में विरोधी शक्तियों का संघर्ष चल रहा है।"[1]

इस प्रकार प्रगतिवादी संसार का सत्य भौतिक जगत को ही स्वीकार करते हैं किसी परोक्ष सत्तामें उनका विश्वास नहीं, जो कुछ प्रत्यक्ष है वहीं सत्य है और यह संसार निरन्तर विकास का फल है। अचानक किसी दैवीशक्ति से न उत्पन्न होता है और न ही नष्ट। प्रगतिवाद किसी भी अन्धविश्वास में पड़ना नहीं चाहता। यह विज्ञान का सहारा लेकर सबको अर्थ की कसौटी पर कसता हुआ चलता है, किसी भी कल्पना में उड़ना उसका लक्ष्य नहीं जो देखना, जो भोगना उसी का वर्णन करना इनका लक्ष्य है। प्रगतिशील साहित्य "विज्ञान से प्रेम" और कला जनता के लिए इन दो सिद्धान्तों पर चलता है।

प्रगतिवादी दर्शन में जड़ता एवं निष्क्रियता का कोई स्थान नहीं है। वह प्रत्येक स्थान में जीवन का सन्देश देता है, वह हर परिस्थिति में जीवन को चुनता है, उसमें मृत्यु की जड़ता का स्थान नहीं। वह किसी परोक्षता में [illegible] नहीं करता जो प्रत्यक्ष घटित होता है वही वास्तविक है, वही शाश्वत है। वह अपने परिवेश से ही ग्रहण करता है। "प्रगतिवादी जीवन दर्शन का मूलमंत्र है-परिवर्तन। यह परिवर्तन एक सतत् क्रिया के रूप में आ सकता है और एक आकस्मिक विस्फोट के रूप में भी।"[2]

1- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ-सन् 1951-पृ0-99-100
2- समाज और साहित्य- अंचल -प्रगतिवाद का जीवन दर्शन-पृ0- 157

प्रगतिवाद भौतिक जीवन को अपनाकरचलता है और भौतिक जीवन की सबसे प्रमुख संस्था समाज है और जो अर्थ के आधार पर टिका है। मनुष्य समाज में रहता है और सामाजिक विषमता जिसका मूल है अर्थ। से संघर्ष करता हुआ निरंतर गतिशील रहता है।

"साहित्य सामाजिक कर्म विधान का एक सक्रिय अंग है।अतएव इस समाज व्यवस्था के संरक्षण में सक्रिय योग देना चाहिए। हमारे समाज की जाग्रत शक्तियाँ वे लोग हैं,जो अब तक शोषित और दलित रहे हैं। प्रगतिवादी साहित्य उनकी सहायता करता है,उनके पक्ष में आन्दोलन करता,उनकी शक्ति को संगठित करता है,उनकी पीड़ा को मुखर करता है,और उन पर होने वाले अत्याचार का तीव्र विरोध करता है।"[1]जनता में 95प्रतिशत भाग समाज का सारा कार्य करता है,वही सभी व्यक्तियों की अन्न,वस्त्र और निवास की समस्या का समाधान करता है। और मौज उड़ाते हैं कुछ मुट्ठी भर लोग इसलिए कि जमीन,कारखानों, मशीनों के वे मालिक होते हैं। अगर सारा कार्य समाज के 95प्रतिशत लोग करते हैं तो क्यों न सारी शक्ति उन्हीं कर्मयोगियों के हाथ सौंप दी जाये?क्योंकि समाज की सम्पत्ति पर उनका अधिकारधारित हो जाय? सम्पत्ति किसी की व्यक्तिगत थाती न बनकर सामाजिक सम्पत्ति हो जाय,जिस पर मेहनतकशों का अधिकार हो न कि मुफ्तखोर,आरामतलब लोगों का जिनका काम मात्र ऐश करना है।"प्रगतिवादी जीवन दर्शन कर्म का जीवन दर्शन है और प्रगतिवादी साहित्य कर्म या संघर्ष का साहित्य है।

प्रगतिवाद का सामाजिक धरातल-

इससे अधिक प्रकृति के विरुद्ध और क्या होगा कि बच्चा बूढ़ों पर हुक्म चलाये, एक पागल ज्ञानी को राह बताये। और मुट्ठी भर लोग तो विलास मय जीवन बितायें और बाकी जनसमुदाय खाने और कपड़े के लिए तरसता रहे।"[2] यहीं से शुरू होता है प्रगतिवाद का सामाजिक द्वन्द्व ये विषमता ही संघर्ष का कारण बनी जिसमें सारा साहित्य डूब गया। मार्क्स ने कहा है कि मानव समाज का इतिहास वर्गद्वन्द्वों का इतिहास है।काल विशेष में यह संघर्ष मूलतः सामाजिक असंगतियों की उपस्थिति के कारण स्वयं एक क्रिया बन जाता है,जो

1- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- डा० नगेन्द्र-सन् 1951,पृ०-10।
2- रूसो- असमानता पर भाषण

उस समय स्थापित सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक विस्तृत अन्तर्विरोध की उपस्थिति के कारण स्वयं एक क्रिया बन जाता है जो उस समय स्थापित सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध एक विस्तृत अन्तर्विरोध के रूप में चलती है।[1]

हमारे देश में धर्म के नामपर अनेक अन्धविश्वास प्रचलित हैं जिनका फायदा उठाकर अनेक धर्म के ठेकेदार मासूम जनता का शोषण करते रहते हैं। प्रगतिवादी साहित्य समाज की इन्हीं जघन्य शोषण की प्रवृत्तियों और उसकी वास्तविकताओं को उभारता है जो विश्व मानव के प्रेम में व्याघात डालती हैं जो जाति-भेद को बढ़ावा देकर मनुष्य को मनुष्य से दूर करती हैं। "अध्यात्मवादी समाज की नयी-नयी आवश्यकताओं के अनुसार जन्म लेते रहे हैं और उच्च वर्गों ने उनका प्रयोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये किया है। वर्गों के संघर्ष में ही डूबा हुआ मनुष्य कभी शान्ति नहीं पा सका है। मनुष्य चाहता है कि वह ज्ञान प्राप्त करे और ज्ञान प्राप्त करके सुन्दर सुन्दर वस्तुओं का निर्माण करे और अपने आसपास की रहस्यमय प्रकृति पर विजय प्राप्त करके इस अनबूझ पहेली को सुलझाये किन्तु ये सब तो तब ही हो सकता है जब मनुष्य का पेट भरा हो व अपने परिवार के प्रति आश्वस्त हो। "मनुष्य के पेट की चिन्ता, जिसमें जीवन बिताने की फिक्र में ही सारा समय व्यतीत हो जाता हो, आगे वह बढ़ ही नहीं सकता अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर ही नहीं सकता। लेकिन उसके ये सपने पूर्ण हो सकते हैं यदि उसे आर्थिक राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था ऐसी मिल जाय जिसमें मनुष्य अपनी भूख से मजबूरहोकर अपनी शक्तियों का नाश न करे, तो निश्चय ही वह समानता का आनन्द प्राप्त करता हुआ, अपने अन्धविश्वासों का त्याग करते हुए, ज्ञानको प्राप्त करते हुए अपने उद्देश्यों में सफल हो सकेगा जिससे प्राणिमात्र आनन्दित होंगे और देश में खुशहाली रहेगी। "प्रत्येक देश में ईश्वर की खोज सृष्टि को समझने कीचेष्टा उस सृष्टि को समझने की चेष्टा से समाज की व्यवस्था का सामंजस्य अपने युग की व्यवस्था से उसका तादात्म्य आदि सब मिलकर धर्म बनाते हैं। धर्म का अर्थ है समाज में रहने का नियम। "[2] इस प्रकार का धर्म जो समाज में नियम से रहना सिखाता है प्रत्येक समाजके लिये अनिवार्य है किन्तु ऐसा होता कहाँ नहीं है। धर्म को शोषण का एक हथियार बना लिया गया धर्म के

- -

1- रसो- असमानता पर भाषण

2- प्रगतिशील साहित्य के मापदण्ड- डा0 रांगेय राघव-पृ0- 27

नाम पर अन्धविश्वास और पाखण्ड व्याप्त हो गये। धर्म एक जाति विशेष की थाती बन गयी उस पर एक उच्चवर्ग का एकाधिकार हो गया और इसके कारण नित्य खूनी संघर्ष होते रहे। इस पाखण्ड रूपी धर्म के प्रति प्रगतिशील साहित्य ने अपना आक्रोश व्यक्त किये जिसके कारण उसे धर्म और ईश्वर विरोधी मानागया।

प्रगति का जीवन स्रोत सदैव सामाजिक संघर्ष में रहा है। प्रगतिशील कविता में सामाजिक यथार्थ को एक विशिष्ट वैज्ञानिक और क्रान्तिकारी समाजवादी दृष्टि से ग्रहण किया गया और इसलिये इन कवियों ने हर समस्या के अंतर्गत तक प्रवेश किया इतना ही नहीं एक वर्ग-विहीन समाज व्यवस्था की स्थापना के रूप में इन समस्याओं का समाधान खोजकर एक साम्यवादी समाज की स्थापना का रास्ता भी सुझाया। समाजवादी यथार्थवाद सामाजिक विषमताओं के मूल की तह तक जाकर उसके कारण का पता लगाता है और फिर उसे समाप्त करने का प्रतिक्रियात्मक हल भीप्रस्तुत करता है, इसके लिये अपने साहित्य में वह ऐसे समाजों का चित्र उपस्थित करता है जिसमें निम्न श्रेणी के उपेक्षित लोग हों और अपने जीवन-यापन के लिये प्रस्तुत विषम परिस्थितियों से संघर्ष में सतत् क्रियाशील हों। "कवि की दृष्टि सहसा "वर्ग सभ्यता" के मंदिर के निचले तले में वातायनों पर जाती है, जो ध्यान से देखने पर किसान की दो आंखे ज्ञात हुई। "अंधकार की गुहा सरीखी उन आंखों से आंखे मिलाने का साहस कवि को न हो सका। उनमें उसे "मरघट का तम" दिखाई पड़ा। उन आंखों में उस किसान के बेदखल हुये खेतों की लहराती हरियाली दौड़ गई और फिर कारकुनों की लाठी से मारा गया जवान लड़का, बिना दवा दर्मत के स्वर्ग चली जाने वाली गृहिणी, दुधमुही बिटिया, कोतवाल द्वारा धर्षिता विधवा पतोहू, बिक गई धवरी गाय-सब कुछ साकार होउठा और इस याद में फिर कवि को दया की भूखी आंखे ऐसी लगी जैसे-"तुरत शून्य में गड़ वह चितवन तीखी नोक सदृश बन जाती।"

मानव श्रम द्वारा निर्मित सभी वस्तुओं के उपयोग और उपभोग का अवसर सभ्यता के समस्त वरदानों का सामूहिक विभाजन जिस समाज में नहीं है उसकी रक्षा की कामना कभी प्रगतिशील साहित्य नहीं करेगा। इसके विरुद्ध वह सदैव क्रान्तिकारी मनोबल का साथ देगा और वर्तमान शोषक समाज व्यवस्था के नाश के लिये कटिबद्ध प्रगति और परिवर्तन की शक्तियों का साथ देगा। प्रगतिवादियों ने अपनी अभिव्यक्ति के उपकरण

आग्रहपूर्वक साधारण स्वस्थ जन जीवन से ग्रहण करना आरम्भ किया। वह अपने काव्य चित्रों का आधार नित्य प्रति के व्यवहार को बनाता है। उसकी अलंकरण सामग्री सूक्ष्म, कोमल या चुनी हुई नहीं है, वह स्थूल और प्राकृत है। एक शब्द में उसकी कला विलास, स्वरंग और रोमांस से प्रेम नहीं करती। उसमें रीतिकाल की पालिश और छायावाद की अमूर्त मधु चर्या नहीं है। अतएव प्रगतिवादी अभिव्यक्ति खरी, कड़ी और सीधी होती है-क्योंकि वह मुख्यत: भावात्मक न होकर [illegible]त्मक है।"[1]

प्रगतिवादी कवि सौन्दर्य को मात्र अपने हृदय में न देखकर प्रत्येक व्यक्ति में देखता है और समान सामाजिक स्वास्थ्य में देखता है कवि के अहं का समाजीकरण हो जाता है, उसमें वैयक्तिकता को कोई स्थान नहीं। युग के बदलने के साथ ही आदर्श और मूल्य भी बदल जाते हैं, तभी वह विकसित होते हैं अन्यथा रूढ़ि बन जाते हैं जो नये मानदण्डों पर खरे नहीं उतरते और नवीन चेतन व्यक्तित्व को मान्य नहीं होते। डा० नगेन्द्र ने लिखा है"दृष्टिकोण बदल जाने से आदर्शों और मूल्यों का बदल जाना अनिवार्य है। आज सत्य से तात्पर्य है भौतिक वास्तविकता शिव का अर्थ है भौतिक जीवन और सुन्दर का अर्थ है स्वाभाविक एवं प्राकृत।"[2]

आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी कविता को समाज-सापेक्ष मानते हैं उन्हें भी कविता की वैयक्तिकता स्वीकार नहीं, कविता का उद्देश्य सामाजिक जीवन में व्यक्ति को उन्नतिशील बनाते हुए निरन्तर विकास का मार्ग प्रशस्त करना है, सामाजिक निष्क्रियता बाजपेयी जी को स्वीकार नहीं कवि अपने सामाजिक दायित्व से मुँह नहीं मोड़ सकता- "वह सारा साहित्य जो व्यक्तिगत चारित्रिक विशेषताओं, असाधारण परिस्थितियों एकान्तिक मनोविज्ञान और सामाजिक निष्क्रियता एवं उद्देश्य हीनता का निरूपक है, चाहे वह साहित्यिक दृष्टि से कितना ही प्रशस्त और ललित क्यों न हो, मेरी अपनी रुचि के अनुकूल नहीं----। वह परिपूर्ण कला जो अगति या शून्य का चित्रण करती है, हमें उतनी नहीं भाती, जितनी वह अपूर्ण कला जो जीवन का जागृत अलख हमारे कानों को सुनाती है।"[3] कविता के समाजवादी दृष्टिकोण को [illegible] कवियों के अतिरिक्त भारत में बहुत पहले

1- आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ- डा० नगेन्द्र, पृ०- 102

2- वही

3- [illegible] साहित्य-भूमिका-नन्द दुलारे [illegible]

से ही पोषण मिल रहा था प्रगतिवाद में ये धारा अचानक नहीं उत्पन्न हुई बल्कि बहुत पहले से ये प्रगतिवाद के लिए उर्वरक भूमि तैयार कर रही थी और भारत में तो सदियों से कविता का उद्देश्य सामाजिक जीवन का चित्रण था ।इसी परिप्रेक्ष्य में हिन्दी को प्रकाण्ड विद्वान जो कि हिन्दी साहित्य के स्तम्भ के समान थे रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, हजारी प्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र जैसे विद्वान कविता का उद्देश्य लोक जीवन का चित्रण, मानवता का जयघोष और सामाजिक विषमता का चित्रण मानते हैं। ऐसा साहित्य जो व्यक्ति को कर्मशील बनाये उसकी समस्याओं का चित्रणकरके उसका समाधान करे, नितान्त कल्पना में नहींउड़े। कवि समाज का सबसे जिम्मेदार व्यक्ति है और इस नाते वह कविता के आन्तरिक सौन्दर्य में उलझकर और पाठकों को उसमें उलझाकर अपनी रचना की सार्थकता न समझे उसके कर्तव्य की इतिवृत्ति इसी में नहीं हो जाती, उसकाकर्तव्य है जीवन के वाह्य सौन्दर्य को देखना व्यक्ति को अपने वातावरण से परिस्थितियों से सामंजस्य करने की प्रेरणा प्रदान करना। इसी परिप्रेक्ष्य में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं-"हम सारे वाह्य जगत को असुन्दर छोड़कर सौन्दर्य की सृष्टि नहीं कर सकते।सुन्दरता सामंजस्य का नाम है। जिस दुनियां में छोटाई और बड़ाई में, धनी और निर्धन में, ज्ञानी और अज्ञानी में आकाश-पाताल का अंतर हो, वह दुनिया सामंजस्यमय नहीं कही जा सकती और इसलिये वह सुन्दर भी नहीं है। इस वाह्य असुन्दरता के दुर्ग में खड़े होकर आंतरिक सौन्दर्य की उपासना नहीं हो सकती। हमें उसके वाह्य असौन्दर्य को देखना ही पड़ेगा। निरन्न, निर्वसन जनता के बीच खड़े होकर आप परियों के सौन्दर्य लोक की कल्पना नहीं कर सकते।साहित्य सुन्दर का उपासक है, इसीलिए साहित्यिक को असामंजस्य को दूर करने का प्रयत्न पहले करना होगा, अशिक्षा और कुशिक्षा से लड़ना होगा, भय और ग्लानि से लड़ना होगा।सौन्दर्य और असौन्दर्य का कोई समझौता नहीं हो सकता।"[1] द्विवेदी जी साहित्यकारों के कर्तव्य की ओर इंगित करते हुये कहते है-"दीर्घकाल से ज्ञान के आलोक से वंचित मनुष्यों को हमें ज्ञान देना है। [illegible] से गौरव से हीन इन मनुष्यों में हमें आत्ममहिमा संचार करना है। अकारण अपमानित इन मूक नर-कंकालों को हमें वाणी देनी है।रोग-शोक, अज्ञान-भूख, प्यास,

- -

1- अशोक के फूल-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- पृ0- 189

परमुखापेक्षिता और मूकता से इनका उद्धार करना है। साहित्य का यही काम है।[1] द्विवेदी जी के ये विचार प्रगतिवाद के समकक्ष ठहरते हैं निरुद्देश्य और मात्र कला प्रदर्शन की इच्छा से रचा गया साहित्य व्यर्थ है जब तक वह मानवता उन्नयन के लिये रचा हुआ एक यथार्थ साहित्य नहीं होता जो अपने युग का आइना होता है।

अपने युग के आइने को ठीक ठीक प्रदर्शित करने के लिये कवियों ने सामाजिक यथार्थ का सहारा लिया, समाज की सभी वास्तविकतायें अपने नग्न रूप में साहित्य में प्रश्रय पाने लगीं। किन्तु जो लोग समाजवादी यथार्थ को जड़ नियमों का कटघरा बनाकर कलासृजन को उसमें बंदी करना चाहते हैं, प्रगतिवादी, विचारक उनका विरोध करता है। उसके विचार से समाजवादी यथार्थ एक ऐसी शक्ति है जो कलाकार को जन जीवन के निकट लाकर उसे जीवन्त और सदा नये [illegible] से युक्त कलासृजन की प्रेरणा देती है। यथार्थ का आग्रह है कि लेखक यथार्थ का सच्चाई और ईमानदारी के साथ चित्रण करे जिन्दगी में जो असंगतियाँ अथवा अर्न्तविरोध हैं उन्हें समझे प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियों के सतत् चलने वाले संघर्ष को परखे और अपनी कृती में उसका जीवित चित्र दें। जो नया और टिकने वाला है उसका समर्थन करें जो पुराना और ढहने वाला है उसका विरोध करें। यही सच्ची समाजवादी यथार्थ दृष्टि है। यह जोला और बालजेयर आदि की यथार्थ दृष्टि से इसी कारण भिन्न है कि यह गर्हित पक्षों को ही नहीं देखती, अंधेरा और अनुतिपता ही नहीं उभरती वरन् उगती हुई जनशक्ति को भी देखती है आने वाली नयी जिन्दगी कीतस्वीर भी आकती है। प्रकृतवादी यथार्थ दृष्टि में ईमानदारी होते हुए भी पस्ती, मुर्दनी, घुटन और एकांगिता है, जबकि समाजवादी यथार्थ दृष्टि उन कारणों को भी टटोलकर सामने लाती है जिन्होंने जिन्दगी में अंधेरा, मायूसियत या कोढ़ पैदा किया है।"[2]

साहित्य को मात्र भावोच्छवास, कल्पना और रहस्य के फंदो से निकालकर उसे जीवन की नग्न वास्तविकताओं, जीवन के यथार्थ के बीच खड़ा कर प्रगतिवाद ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। प्रगतिवाद ने हिन्दी काव्य को एक जीवन्त चेतना प्रदान की है, एक नयी स्फूर्ति का संचार किया है।

1- अशोक के फूल-आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी- पृ0-175
2- नया हिन्दी काव्य-[illegible] मिश्र-पृ0- 159

सन् 1936 के लगभग देश में नवीन कार्यक्रमोंपर आधारित समाज सुधार के जितने भी प्रयत्न प्रारम्भ हुये, प्रगतिवादी कवियों ने उन्हें गंभीरतापूर्वक अभिव्यक्ति प्रदान की। नारी जाति की स्वाधीनता का समर्थन, अपृश्यता की भावना का विरोध, समाज में व्याप्त शोषण, बेईमानी , बेरोजगारी, आवास की समस्या, दहेज आदि के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित कर उन्होंने अपनी जागरूकता का प्रदर्शन किया।

आस्था, विश्वास और दृढ़ता के स्वरों की गूंज प्रगतिवादी काव्य की वह प्रवृत्ति है जो उसे एक ठोस सामाजिक रूप प्रदान करती है। यह जानते हुए भी कि वर्तमान जीवन विषमता, दुख और दैन्य से आक्रान्त है, प्रगतिवादी कवि इसी कारण विचलित नहीं होने पाता कि उसकी आस्था, नये जीवन पर उसका विश्वास और संकल्प की दृढ़ता उसे सदैव ही आश्वस्त किये रहती है। वह जीवन की कुरूपताओं से संघर्ष करने को सदैव सन्नद्ध रहता है, बल्कि कुरूपताओं और अभावों के बीच से ही उसे नयी जिन्दगी और नयी संस्कृति मुस्कराते हुए देख पड़ती है। इस आस्था, विश्वास और दृढ़ता को आधात प्रगतिवादी काव्य में देखा जा सकता है। यही उसे निराशा, घुटन एवं पराजय के गर्त में बचाये रखती है।"[1] साहित्य की प्रत्येक धारा अपने सामयिक विषयों का आइना होती है उसमें सभी सामयिक समस्याओं को स्थान मिलता है और जो साहित्य अपनी वर्तमान समस्याओं का चित्रण नहींकरता वह अनुपयोगी है, मौसमी है। "सामयिक संघर्ष में आधुनिक साहित्य जितना ही तपेगा, उतना ही निखरेगा। इस संघर्ष से दूर रहकर यदि लेखक सोने की कलम सेभी काल्पनिक सानों को गीत लिखेगा, तो उसकी कलम और साहित्य का मूल्य दो कौड़ी से ज्यादा न होगा।"[2]

वेदना से प्रेरित होकर जन साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है।इस दशा में प्राय: सिद्धांत बन जाता है कि हमारे लिये दुख और कष्टों के कारण प्रचलित नियम और प्राचीन समाजिक रूढ़ियाँ हैं फिर तो अपराधों के मनोवैज्ञानिक विवेचन के द्वारा यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न होता है कि ये सब समाज के कृत्रिम पाप हैं।x x x x xस्त्रियों के संबंध में नारीत्व की दृष्टि ही

1- नया हिन्दी काव्य-शिवकुमार मिश्र-पृ0- 17।
2- डा0 रामविलास शर्मा-भाषा-संस्कृति और साहित्य

प्रमुखहोकर, मातृत्व से उत्पन्न हुए सब संबंधों को तुच्छ कर देती है। वर्तमान युग की ऐसी प्रवृत्तिहै। जब मानसिक विश्लेषण के इस नग्न रूप में मनुष्यता पहुँच जाती है तब उन्हीं सामाजिक बन्धनों की बाधा घातक समझ पड़ती है और इन बन्धनों को कृत्रिम और अवास्तविक माना जाने लगता है।"[1]

कला और साहित्य का भविष्य तभी सुरक्षित रह सकता है जब उसमें आधुनिक जीवन का संघर्ष चित्रित हो और जिसमें पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्था को नष्टकर साम्यवा सामाजिक व्यवस्था का पक्ष लिया गया हो। और इसके लिए कला और साहित्य को एक सचेत क्रिया बनाना आवश्यक है अर्थात साहित्य की सृष्टि में द्वन्द्वमयी विचारधारा हो औ साहित्य का ताना-बाना सामाजिक यथार्थ से बुना गया हो।

एक शिक्षित युवक बेकार है, एक तरुण विधवा आजीवन अविवाहित रहने को मजबूर है, एक प्रतिभाशाली व्यक्ति सारा जीवन क्लर्की में खपा देता है और उसके ऊपर जो अफसर हैं वे निरे मूर्ख हैं। एक मजदूर दस घंटे काम करके भी अपने परिवार को नहीं पाल पाता। एक किसान धरती से सोना पैदा करके भी कर्ज से लदा है। एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से इसलिए एक सूत्र में नहीं बँध सकता कि दोनों की आर्थिक स्थिति में वैषम्य है या दोनों अलग अलग जाति के हैं। इस सामाजिक व्यवस्था में स्त्री-पुरुष संयोग में प्रेम का आधार मुख्य नहीं है और इन विषमताओं के कारण व्यक्ति का जीवन कितना असार्थक, अनुपयोगी, घुटनयुक्त और पीड़ाजनक बन जाता है। साहित्य का ये कर्तव्य होना चाहिए कि वह सोचे कि विषम परिस्थितियाँ क्यों उत्पन्न होती है, इनके उत्पन्न होने के क्या करण हैं? इन्हें किस प्रकार अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। इसे चित्रित करें और जनता को जीवन की गहराइयों तक पहुँचाये उसे व्यापक दृष्टि से सोचने की शक्ति दे, उसे इन समस्याओं का सामना करने के लिये तैयार करना चाहिए, उससे पलायन करने के लिये नहीं प्रेरितकरना चाहिए।

केवल थोड़े से वर्ग की चीज बनकर साहित्य किस प्रकार जीवन से टूट जाता है और रूढ़ियों और रीतियों के महान जालमें फँसा करता है यह विश्व साहित्य के इतिहासमें हर जगह देखा जा सकता है।[2]

1- जयशंकर प्रसाद-यथार्थवाद और छायावाद-अप्रैल 1937, हंस अंक 6
2- समाज और साहित्य अंचल-प्रगतिवाद ही क्यों-पृ0- 5

प्रगतिवाद के सामाजिक धरातल पर सभी ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। प्रगतिवाद समाज का प्रतिनिधित्व करता है ये बात सभी ने स्वीकार की है। प्रगतिवाद वर्षों से धधक रही विद्रोह की एक ज्वाला है जो उचित समय आने पर फूट पड़ी। प्रगतिवाद का सामाजिक पहलू है मनुष्य की आत्मा का चीत्कार समाज की नींव डालने में जो भूलें रह गई हैं वे नियति की अनिवार्यता नहीं वरन् दुनिया की पूँजीवादी सभ्यता के शोषण की त्रुटियाँ हैं जिनके सहारे समाज टूट-फूटकर जीर्ण और दरारों से भरे हुए एक विशाल घर की तरह ढलीचटका डिलाइड यूस बनकर खड़ा है।"[1] "जीवन तो वही है जो मानवता को उत्पीड़ित और असहाय देखकर ज्वाला मुखी की तरह धधक उठे। वर्तमान समाज की कुरूपताओं से कट कर भावी समाज की कल्पना की ओर दौड़ने वाले स्वप्नदर्शियों को यह नहीं भूलना चाहिये कि समाजों का आधार व्यक्तियों के सद्गुणों पर नहीं हुआ करता बल्कि एक प्रणाली पर होता है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता को परिमित करके दोषों का निग्रह किया जाता है।"[2]

इस प्रकार सारा समाज विषमता से भरा हुआ है चारो ओर विषमता का साम्राज्य व्याप्त है। प्रगतिवाद ने इसविषमता से मुक्ति पाने का उपाय निकाला कि समस्त शोषित और दलित वर्ग का संगठन कर ऐसी सामूहिक और व्यापक क्रान्ति का सूत्रपात किया जाय जो जीवन और समाज के प्रत्येक स्तर का स्पर्शकरती हुई सब में आमूल परिवर्तन कर दे। सारी रूढ़ियाँ और विषमतायें, सारी सड़ी गली मर्यादायें, शोषण अनाचार सब जिसकी ज्वाला में भस्मीभूत हो जायें।[3]

इसी उद्देश्य को लेकर प्रगतिवादी कलाकार आगे बढ़े और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपने साहित्य का स्वरूप भी इसीप्रकार तैयार किया और साहित्य समाजके प्रति अपने कर्तव्यको पूरा करने में जुट गया इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रगतिवादी साहित्य का स्वरूप क्या था अब हम इस पर दृष्टि डालेंगे।

- -

1- समाज और साहित्य अंचल-प्रगतिवाद एक अनुशीलन- पृ0-25

2- वही, साहित्य और क्रान्ति की परम्परा-पृ0- 117

3- नया हिन्दी काव्य-डा0 शिवकुमार मिश्र

प्रगतिवाद का स्वरूप-

राय कृष्ण दास का मत है जिसमें "सुरसरि सम सब कर हित होई" की भावना हो और जो वर्तमान के अंधकार पटल को चीरकर क्रांति दृष्टि से भविष्य का क्षेत्र देखकर उसके समुचित निर्माण में सहायक हो सके वही प्रगतिशील है।"

रायकृष्ण दास सर्वहितकारी और मंगलमय भविष्य के सन्देश से युक्त प्रेरणादायक साहित्य को प्रगतिशील मानते हैं जो जीवन का सन्देश दे वही साहित्य उपयोगी है अतः श्री राय प्रगतिवाद को व्यापक दृष्टि से देखते हैं संकुचित नहीं।"[1]

श्रीराय प्रगतिवादी साहित्य केस्वरूप का भारतीय होने पर बल देते हैं।उन्हें ऐसी कोई वस्तु स्वीकार नहीं जिससे भारतीयता नष्ट होती है। वह इसे मार्क्स के मस्तिष्क की उपज तो मानते हैं इसमें मार्क्स का योगदान स्वीकार करते हैं किन्तु उसका स्वरूप भारतीय होने पर बल देते हैं उनका विचार है-"इसका मध्यम मार्ग यह दीखता है कि प्रगतिशील साहित्य इस उद्देश्य को लेकर चले कि उसे सारे लोक में व्याप्त होना है, लोक का कल्याण करना है, मानवता को उस गर्त से निकालकर जिसमें वह नरक भोग रही है, ऐसी समतल भूमि पर ले चलना है जहाँ से वह आगे बढ़ पायेगी तो प्रगतिशील साहित्य ही सर्वश्रेष्ठ समयानुकूल वस्तु है।"[2]

श्री मंगल किशोर पाण्डेय ने जुलाई 1949 के हंसमें प्रगतिशील साहित्य की सोवियत दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-"प्रगतिशील साहित्य ही जनवादी साहित्य है, क्योंकि इसमें देश की करोड़ो शोषित जनता की आशायें और आकांक्षायें प्रतिबिम्बित होती है।यह सर्वहारा वर्ग का साहित्य है अतः इसमें नव-निर्माण की भावना का होना स्वाभाविक है। चूंकि सामंतवादी पूँजीवादी व्यवस्था को मिटाये बिना नव-निर्माण असंभव है, अतः प्रगतिशील साहित्य [illegible] शक्ति से दृढ़ता पूर्वक प्रतिक्रियावाद के गढ़ सामंतवाद की नींव में सुरंग डालकर उसे तोड़ने की कोशिश करता है। वह पूँजीवाद के सारे हथकण्डों और हरकतों का पर्दाफाश कर जनता के सामने उसका वास्तविक रूप रखता है। उसे तमाम

- -

1- हंस अक्टूबर 1947, प्रगतिशील साहित्य एक दृष्टिकोण लेख-पृ0- 45
2- वही

प्रतिक्रियावादी शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष करना होता है और वह सबकी पोल खोलकर स्पष्ट रूप से सर्वहारा के सामने रख देता है।"[1]

प्रगतिवादी काव्य की प्रवृत्तियाँ-

प्रगतिवाद के सामने जो उद्देश्य थे उनको पूरा करने के लिये उसको सिद्धान्त बनाने की आवश्यकता थी अतःसाहित्य के लिए कुछ तत्त्व मान्य किये गये और सम्पूर्ण साहित्य में इन तत्त्वों का इन मान्यताओं का स्वर गूँजने लगा। इन्हीं प्रवृत्तियों से भरे साहित्य को प्रगतिवादी साहित्य की संज्ञा दी गई।साहित्यकारों का सबसे पहला सिद्धांत था मार्क्स के सिद्धान्तों का भारत में प्रचार।

1- मार्क्सीय सिद्धान्तों का प्रचार-

रूस के समान ही भारत में भी अमीर-गरीब शासन और जनता,उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग,जमींदार एवं किसान,मिल-मालिक एवं मजदूरों आदि में संघर्ष चल रहा था।रूस की सफल क्रांति से भारतीयों में एक आशा की किरण जागी और मार्क्स के सिद्धांतों के प्रतिफलन से ही वह अपने देश की विषमता का भी अंत मानने लगे अतः मार्क्स के सिद्धांतों की काव्य में अभिव्यक्ति होने लगी और ये कवि कुछ कवि मार्क्स के सिद्धान्तों से पूर्ण रूपेण युक्त साहित्य को ही प्रगतिवादी साहित्य मानने लगे और उसका प्रचार करना ही उनका ध्येय हो गया।

2- रूस की प्रशंसा-

इस धारा के कवियों ने रूस में स्थापित साम्यवादी शासन की प्रशंसा के खूब गीत गाये हैं, वहाँ की लाल सेना को श्रद्धा के सुमन अर्पित किये हैं और रूस को विश्वत्राता माना है।कुछ कवियों ने तो रूस के गीत अत्यधिक गाये हैं और रूस को सब कुछ माना है।संपूर्ण विश्व में साम्राज्यवाद का आतंक फैला था,इस आतंक को रूस ने सर्व प्रथम खत्म किया।रूस के किसान एवं सैनिकों ने संगठित होकर [illegible] का नामोनिशान तक मिटा दिया और अब वह स्वयं

- -

1- हंस जुलाई- 1949

वहाँ शासन कर रहे हैं। रूस की समाजवादी क्रान्ति पर श्याम चरण राय ने लिखा है "इस नई शासन प्रथा में रूसमें स्वतंत्रता का राज्य है। प्रत्येक मनुष्य को स्वभाग्य निर्णय का अधिकार है। आर्थिक दशा सुधर जाने पर विस्तीर्ण भूमि, बड़ी जनसंख्या और स्वाभाविक वैचित्र्य वाला रूस देश पृथ्वी के देशों में यदि सबसे अधिक बलवान और वैभवशाली हो जाय तो आश्चर्य नहीं।"[1] कवि नरेन्द्र शर्मा ने रूस की प्रशंसा में लिखा-"चौथा खण्ड सोवियत, जिसका अलख लाल सितारा जहाँ डूबती मानवता को, मिलने लगा किनारा।[2]

सामाजिक यथार्थ का चित्रण-

हिन्दी साहित्य में आरंभ से ही सामाजिक चित्रण पर रचनायें होती आयी हैं। ये बात अलग है कि कभी इसका चित्रण मुख्य रूप से और कभी गौण रूप से। प्रत्येक रचना अपने समाज का प्रतिनिधित्व करती है बस उसका रूप बदला रहता है। जिस समय जो परिस्थितियाँ हुई साहित्य ने उसी का अनुगमन किया। प्रगतिवादी साहित्य जिस समय जन्म ले रहा था तो सामाजिक अव्यवस्था ने विकराल रूप ग्रहण कर लिया था। रूढ़ियाँ प्रगतिके मार्ग में बाधक साबित हो रही थीं। नव युवक एक नये संसार में प्रवेश कर रहा था किन्तु पुरानी परम्परायें उसके आड़े आ रही थीं। जीर्ण-शीर्ण रीतियाँ अपने रोड़े प्रगति के मार्ग पर बिछा रही थी अतः उनको काटना-छाँटनाआवश्यक था और उससे भी पहले आवश्यकता थी इन रोड़ों को पहचानने की। अतः कवियों का उद्देश्य था समाज के जन सामान्य को उन परम्पराओं और रूढ़ियों से परिचित कराने को, जो घुन बनकर उनके जीवन को खोखला किये डालती थीं। जिनका बोझ अपने ऊपर उठाये उठाये साधारण जन मानस काल की भेंट चढ़ जाता है। समाज का यथार्थवादी चित्रण ही प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति है, उसका उद्देश्य है समाज की अव्यवस्था से जन सामान्य को परिचित करवाकर उसे नष्ट करके एक नवीन और स्वस्थ समाज की रचना। पूरा प्रगतिवादी साहित्य अपने समाज का प्रतिनिधित्व करता है।

> चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए
> और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।[3]

1- सरस्वती अप्रैल 1919 का अंक

2- नरेन्द्र शर्मा- [illegible] चेतावनी। पृ0-40

3- [illegible] त्रिपाठी निराला परिमल- ग्यारहवाँ संस्करण-1969 पृ0-125

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर
धर्म, धीरज, प्राण खोकर
हो रही अनरीति बर्बर
राष्ट्र सारा देखता है
बाप बेटा बेचता है।"[1]

देश में फैली हुई भुखमरी और विदेशी शासन के शोषण से चीत्कार करती जनता का दारुण हाहाकार कवि की रचना में दृष्टिगत होता है।

राष्ट्र-प्रेम-

भारतेन्दु के समय से चले आ रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को आगे बढ़कर एक नया रूप मिला। एक तरफ गांधी जी का आन्दोलन प्रभाव डालरहा था दूसरी तरफ मार्क्सवाद के सिद्धान्तों काप्रभाव अतः एक शुद्ध राष्ट्रीय काव्यधारावह निकली जिसमें परतन्त्रता और विदेशीशोषण पर खुलकर आक्रोश व्यक्त किया गया। जनता को उत्तेजित किया गया कि वह विदेशी राज्यके प्रति विद्रोह अभिव्यक्त करे और एकजुट होकर विदेशी शासन का विरोध करे। इन कवियों की रचना देश प्रेम और उत्साह से भरी हुई थीं इनकी वाणी आग उगलती थी जैसे दिनकर, सनेही।

देश में परतन्त्रता होने से लोगों को भरपेट खाना नहीं मिलता था और उनका शोषण खूब होता था। शासन की ओर से बर्बर अत्याचार होते थे। लोगों में कोई उत्साह कोई जीवन नहीं था बस यूं ही जीवन जीते जा रहे थे कवि ने जन के इस विषाद को समझा और अपनी रचना में उसे वाणी दी।

"कंकाल,
हड्डियों के रक्तहीन मांसहीन कंकाल
मांसल बलिष्ठ नहीं भुजाएं, रक्ताभा नहीं है कपोलों पर
परतंत्र देश के युवक है।

1- केदारनाथ अग्रवाल- "बाप बेटा बेचताहै" प्रगतिशील काव्य साहित्य। 1972 पृ0-98

कहाँ है जीवन, कहाँ है चिरन्तन आत्मा?
हड्डियों का संघर्ष जीवन है
हड्डियों में बसा हुआ ताप ही
आत्मा है।[1]

समसामयिक समस्याओं का चित्रण-

डा० रामविलास शर्मा के अनुसार -"समाज के भीतर जो जीर्ण और मरणशील तत्व हैं, जो जीवित और उदीयमान तत्व हैं, इनसे बाहर सौन्दर्य की सत्ता नहीं। जो जीर्ण और मरणशील हैं, उनके लिये सुन्दरता मृत्यु में है, अन्याय और अत्याचार के जरेब को ढूँढने में है, भविष्य से तृप्त होने और धन में ही जीवन की सार्थकता करने में है, अज्ञान, अत्याचार और अन्याय की दुनिया को दफनाने में है। सुख और शांति के उज्ज्वल भविष्य की ओर बढ़ने में है। साहित्य उस मंजिल तक पहुँचने का शक्तिशाली साधन है।"[2] मार्क्सवादी दृष्टि से सामाजिक समस्याओं से तात्पर्य भौतिक परिस्थितियों और उन परिस्थितियों में उत्पन्न जन जीवन की समस्याओं से है। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त भौतिक परिस्थितियों और विचारों का संबंध नींव और उस पर खड़ी इमारत के समान मानते हैं। यदि आर्थिक और सामाजिक संबंध नींव है तो ज्ञान, विज्ञान, धर्म, साहित्य और कला इस नींव के आधार पर खड़ी इमारत के समान हैं।"[3] समसामयिक परिस्थितियों पर इन कवियों की लेखनी खुलकर चली है जैसे बंगाल के अकाल पर, उस समय की अन्य राजनैतिक, सामाजिक घटनाओं पर भी लिखा गया। केदारनाथ अग्रवाल की "बाप बेटा बेचता है। भी समसामयिक घटनाओं पर लिखी हुई रचना है। नागार्जुन और रामविलास शर्मा आदि कवियों ने वर्तमान अकाल और महामारी आदि पर मार्मिक रचनायें लिखीहैं। बंगाल का हृदयविदारक अकाल इन कवियों ने अपनी लेखनी से सचित्र उतारा है।

"ओ रे प्रेत।
कड़क कर बोले नरक के स्वामी यमराज-

1- डा० रामविलास शर्मा-हड्डियों का ताप। [illegible] प्रथम संस्करण-1943 पृ०- 69
2- लोकजीवन और साहित्य-पृ०- 15, प्रगतिवादी काव्य साहित्य से उद्धृत।
3- साहित्य धारा-पृ० - 1

सच सच बतला कैसे मरा तू?
भूख से ? अकाल से?
× × ×
सुनिये महाराज
तनिक भी पीर नहीं
दुख नहीं दुविधा नहीं
सरलतापूर्वक निकले थे प्राण-
सह न सकी आँत पेचिश का हमला।[1]

जिसे समझता था अनहोनी
वही सत्य बन व्यंग्य कर गयी
खुले आम सड़कों पर मानवता
कुत्तों की मौत मर गयी।[2]

यह प्रगतिवाद की भारतीय दृष्टि थी जिसमें समाज में घटने वाली प्रत्येक घटना का चित्रण किया गया है। कवि की श्रद्धा मानव मात्र में थी, वह मानवता का गला घुटते नहीं देख सकते थे।

साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह-

प्रगतिवादी काव्य का लक्ष्य ही था साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का अन्त करके साम्यवाद की स्थापना जिसमें मजदूरों का राज्य हो और सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार न होकर समाज का अधिकार हो। एक ऐसा समाज जिसमें सभी को अपने तरह से जीने की स्वतंत्रता हो किसी भी प्रकार का बन्धन न हो, कोई वर्ग न हो। जो जितना काम करे उतना ही उपभोग भी करे, जो काम नहीं कर सकता उसे उपभोग करने का भी कोई अधिकार नहीं। अतः समाज की रचना श्रम के आधार पर हो। अपने इन [illegible] को कवि

1- [illegible]- "युगधारा" प्रेत का बयान। पृ0-42
2- डा0 शिव मंगल सिंह सुमन- "विश्वास बढ़ता ही गया" द्वितीय संस्करण-1967 पृ0- 89-90

वाणी देते हुए कहता है-

" वस्त्र के अम्बार रचता जा रहा हूँ
पर न टुकड़ा एक तन को पा रहा हूँ
नग्न बच्चे, चौपड़ों में हाय नारी
सिसकती है, पर न कुछ कहती बिचारी
उठो विश्व के मजदूरों, आज उठा क्रांति का शंखनाद।"[1]

वह राज काज जो सधा हुआ है, इन भूखे कंगालो पर
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी है, तिल-तिल मिटने वालों पर
वे व्यापारी, वे जमींदार जो हैं लक्ष्मी के परम भक्त
वे निपट निरामिष सूदखोर, पीते मनुष्य का उष्ण रक्त।[2]

इन कवियों के स्वर साम्राज्यवाद के विरुद्ध उग्र हैं। ये उस तबके के प्रति सहानुभूति रखते हैं जिसके श्रम पर ये समाज टिका है और वह स्वयं अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति से परे है। कवि के मनमें वर्तमान व्यवस्था के प्रति आक्रोश है और विश्व भरके मजदूरों के लिये एक ललकार है।

निम्नवर्ग एवं शोषित व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति-

हिन्दी कविता में परम्परा के अनुसार नायकत्व का पद इतिहास प्रसिद्ध महापुरुषों एवं लोकविश्रुत लोगों के लिये ही सुरक्षित था किन्तु प्रगतिवाद ने इस लीक को तोड़ते हुए पहली बार सामान्य जन को, सड़क के साधारण आदमी को काव्य में प्रतिष्ठित किया। प्रगतिवाद का ध्यान सदियों से पीड़ित एवं शोषित बहु संख्यक जन साधारण की ओर गया, जो वास्तव में समाज की आत्मा है। साहित्य का संबंध यथार्थ से जुड़ गया। उसने उड़ना बन्द कर दिया, जमीन पर पाँव जमाना सीख लिया। मार्गदर्शन को तरस रहे उन कर्मयोगियों की ओर दृष्टि डाली जो दिनभर बैल की तरह जुटकर इस

1- प्रो० कृष्ण लाल हंस-"प्रगतिवादी काव्य साहित्य प्रथम संस्करण, जुलाई 1971 पृ0-122
2- भगवती चरण वर्मा हंस मासिक मई, 1949

देश को निरन्तर प्रगति की ओर ले जाते हैं, किन्तु स्वयं दुर्गति भोगते रहते हैं। बनाते तो हैं ताजमहल किन्तु स्वयं फुटपाथ पर सोते हैं या सोते हैं अपनी ही दीन अवस्था पर आँसू बहाती जीर्ण-शीर्ण खपरैली झोपड़ी में।

इस युग प्रवर्तन के प्रारम्भिक सूत्रधार बने छायावाद के वरिष्ठ कवि पन्त एवं निराला, भारतीय लेखकवर्ग में एक नया उत्साह दिखाई पड़ा। "रचनाशीलता को सामान्य जन की आशाओं-आकांक्षाओं से जोड़कर उसे सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में रेखांकित कर, सौन्दर्य और कल्पना के वायवी जगत से उतारकर युग जीवन के यथार्थ का भरा-पूरा प्रेरणास्रोत देकर उसने वह जमीन अवश्य तैयार की जिस पर महत उपलब्धियों की इमारत का निर्माण किया जा सके।[1] कवि पन्त की बदली हुई दृष्टि युगान्त में दृष्टिगोचर हुई और ग्राम्या में आकर स्पष्ट हो गयी। यद्यपि पन्त में प्रगतिशीलता महज बौद्धिक सहानुभूति के रूप में उभरी किन्तु "ग्राम्या" के कुछ चित्र निःसन्देह मार्मिक बन पड़े हैं। पन्त की तुलना में निराला प्रगतिवाद के अधिक निकट अनुभव हुए। जन जीवन के अत्यन्त सरस चित्र कवि की जन सामान्य के प्रति जुड़ी आस्था के प्रतीक हैं। निराला और पन्त प्रगतिकाम कविता की सुदृढ़ नींव का निर्माण करते हैं और उस पर नयी पीढ़ी प्रगति की इमारत तैयार करती है। "संकीर्ण व्यक्तिवादिता के स्थान पर प्रशस्त सामाजिकता, अतिशय कल्पना, रहस्य तथा अध्यात्म के स्थान पर जीवन के यथार्थ एवं समाज के सुख दुख तथा लोकजीवन के अन्यान्य पक्षों को लिये हुये"[2] इन कवियों में जीवन एवं मूल्यों के प्रति अपार आस्था थी ये एक संकल्प के साथ वर्तमान संकटों से जूझते हुए आगे बढ़े। विघटन और विषमता से भरे हुए युग में इनका एक मात्र सहारा था इनका मनोबल।

* दाने आए घर के भीतर बहुत दिनों के बाद
धुआँ उठा आँगन से ऊपर बहुत दिनों के बाद
चमक उठी घर भर की आँखें बहुत दिनों के बाद
कौए ने खुजलाई पाँखें बहुत दिनों के बाद।[3]

1- हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका -प्रभाकर श्रोत्रिय- 144-145

2- नागार्जुन- "अकाल और उसके बाद"

मजदूरों का जीवन भी क्या जीवन होता है दूसरों को सब सुख सामग्री देकर स्वयं उसके निर्माण से ही संतुष्ट होकर अभाव ग्रस्त जीवन व्यतीत करता रहता है।

" सुख खोकर इसको जीवन में, हृदय विदारक त्रास मिला
महलों को देकर इसको बस, कुटिया का आवास मिला
दैत्याकार मशीनों में इसका, अनन्त अस्तित्व छिपा
उस महान दृढ़ता में इसका ही, महान अमरत्व छिपा।[1]

परिवर्तन और क्रान्ति का आवाहन

प्रगतिवादी कला में गतानुगतिका, रूढ़ि पूजा का आदर नहीं क्योंकि जहाँ यह होगा वहाँ प्राणों का स्पन्दन, जीवनका स्फुरण और नव नव शक्तियों का उन्मेष नहीं मिलेगा। मानव जीवन स्थितिशील होकर कभी नहीं रह सका है। वह या तो आगे बढ़ेगा अन्यथा पीछे की ओर हटेगा। इसलिये परिवर्तन की अवहेलना करके स्थिरत्व की कामना करना, समाज विज्ञान की गति से अनभिज्ञता प्रकट करना है। निटशे के शब्द स्मरणीय हैं-" स्मारक से सचेत रहो ताकि उसके नीचे दब कर मर न जाओ।"[2]

समाज में ऐसी अनेक व्यवस्थायें हैं जिसमें परिवर्तन की आवश्यकता है। कुछ परम्परायें एकदम रूढ़ हो गयी हैं, जिनको आज का जाग्रत युवक स्वीकार नहीं करता, जो परम्परायें उसकी प्रगति में बाधा डालती हैं वह उन्हें उखाड़ फेंकना चाहता है, वह इतना विद्रोही बन जाता है कि प्राचीन सब कुछ नष्टकरके एक नयी व्यवस्था चाहता है। कुछ समय तो प्रगतिवादी नवीनता के प्रति इतने आग्रही हो गए कि प्राचीन सब कुछ नष्ट कर देना उनका उद्देश्य ही गया। प्राचीन का कुछ अच्छा भी उन्हें स्वीकार नहीं परिवर्तन आवश्यक तो है किन्तु विवेकपूर्ण जिसमें सब प्राचीन परम्परायें नष्ट करके उनमें जो अच्छा और उपयोगी है उसे अपनाकर या उसीमें थोड़ा परिवर्तन कर अपने अनुकूल बना लेना चाहिए। लेनिन ने भी कहा है-" जो सुन्दर है वह चाहे कितना पुरातन हो, हमें

1- श्याम बिहारी शुक्ल"तरल" मजदूर जगत-पृ0 11-12
2- समाज और साहित्य-अंचल प्रगतिवादी साहित्य और कला -पृ0- 86

ग्रहण करना चाहिये और उसमें भावी विकास में सहायता देनी चाहिये। हमेंनवीन के प्रति केवल इसलिये आत्म समर्पण नहीं करना चाहिए कि वह नवीन है। कला के क्षेत्र में यह वस्तुत: पाखण्ड ही है।"[1]

स्पष्ट है कि मार्क्सवादी भी नवीन को स्वीकार तो करते हैं किन्तु पाखण्डी की तरह नहीं जरूरी नहीं कि प्राचीन सब व्यर्थ हो और नवीन सब सार्थक इसलिये अतीत को लेते हुए वर्तमान बनाना चाहिये। मनुष्य की प्रगति के लिये राजनीतिक दल, सांस्कृतिक और साहित्यिक दल समान रूप से काम करते हैं।आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी ने लिखा है-"साधारण तथा राष्ट्रीय चेतना का अर्थ देश की बहुमुखी प्रगति के लिए प्रयत्नशील होना माना जाता है। राजनीतिक दल के लोग इसी लक्ष्य को लेकर चले हैं, किन्तु यह राष्ट्रीय चेतना का आंशिक स्वरूप है। इसके अतिरिक्त इसके अन्य रूप भी हैं। स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करना यदि राजनीतिक का एक मात्र लक्ष्य था, तो वैयक्तिक जीवन में न्याय और स्वतंत्रता की मांग करना कलाकारों और साहित्यिकों का कर्तव्य रहा है। प्राचीन इतिहास और संस्कृति के पृष्ठों को खोलकर नवीन जन समाज के सम्मुख प्रस्तुत करना एवं उच्च उज्ज्वल आदर्शों की ओर प्रत्येक का ध्यान आकर्षित करना साहित्यिकों का कार्य रहा है और उन्होंने इसकार्य को अत्यन्त सफलता से निभाया है।"[2]

शोषित युगों से अनाचार सहन करते चले आ रहे हैं। पुरानी रीतियों में अब परिवर्तन चाहते हैं वह अब शोषण सहन नहीं करना चाहते, अनीति को समाप्त करना चाहते हैं-

" युगों से हम अनय का भार ढोते आ रहे हैं
न बोली तू, मगर हम रोज मिटते जा रहे
पिलाने को कहाँ से रक्त लायें दानवों को?
नहीं क्या स्वत्व है प्रतिशोध का हम मानवों को?

1- डा0 कृष्ण लाल हँस नतिवाद। काव्य साहित्य से उद्धृत
2- साप्ताहिक हिन्दुस्तान-13 अगस्त 1961 "स्वाधीन भारत में साहित्यकार का दायित्व-पृ0- 5

जरा तू बोल तो, सारी धरा हम फूल देंगे।
कहीं कुछ पूछने बूढ़ा विधाता आज आया
कहेंगे हाँ, तुम्हारी सृष्टि को हमने मिटाया। -1

कवि के हृदय में वर्तमान विषमता के प्रति तीव्र रोष है जिसे सहन न कर सकने के कारण वह हुंकार उठता है और ईश्वर तक को चुनौती दे बैठता है। ये विधाता का कैसा रूप है? जो अपनी ही कृति की इतनी दुर्दशा होते देख रहा है छोटे बालक दूध को तरसते हुए काल के ग्रास बन जाते हैं और विधाता की मूर्ति को दूध से नहलाया जाता है। प्रगतिवाद ऐसे ईश्वर का अस्तित्वस्वीकार नहीं करता वह इन प्राचीन आस्थाओं में आमूल परिवर्तन चाहता है।

क्रान्ति का धर्म होता है शोषित व्यक्तियों को जगाना एकत्रित करना और अन्याय के प्रति करना। इसका उद्देश्य न्याय एवं सत के लिये शहीद हो जाना होता है। मनुष्यता के लिये सर्वस्व न्यौछावर करना ही क्रान्ति का सन्देश है। काण्ट के अनुसार "बताये गये भिन्न भिन्न मतों को यद्यपि धर्म एक है। काटती कुचलती वह मानव के सामूहिक कल्याण के परमधर्म की ओर आगे बढ़ती है। -2समाज सुधार का रास्ता सुधारवाद और अनुकम्पावाद नहीं वरन् संगठन के बल से समाज सत्ता बदलकर उसको बहुजन त्रिमुख करना है। -3

प्रगतिवादी कवियों का कहना है" समस्त दलित और शोषित वर्ग का संगठन कर एक ऐसी सामूहिक और व्यापक क्रान्ति का सूत्रपात किया जाय जो जीवन और समाज के प्रत्येक स्तर का स्पर्श करती हुई सब में आमूल परिवर्तन कर दे। सारी रूढ़ियां और विषमतायें, सारी सड़ी गली मर्यादायें, शोषण अनाचार सब जिसकी ज्वाला में भस्मीभूत हो जायें। -4

- -

1- दिनकर -हुंकार- पृ0-24
2- समाज और साहित्य-लेखक अंचल-साहित्य और क्रान्ति की परम्परा- पृ0- 113
3- वही, पृ0- 114
4- नया हिन्दी काव्य-डा0 [illegible] कुमार मिश्र -पृ0- 174

जब सामाजिक विषमतायें अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती हैं तब,क्रान्ति की आवश्यकता होती है। बहुत दिन बीत गये बच्चों को दूध के लिये तरसते अब नहीं देखा जाता। मनुष्य का हृदय चीत्कार कर उठता है वह हुंकार कर उठता है और अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपना हिस्सा माँगता है। वह जाग्रत हो चुका है वह अपने अधिकार को समझ चुका है। वह अपने अधिकार के लिये संगठित होकर क्रान्ति के लिये तैयार होकर पूँजीपति वर्ग को ललकारता है-

" दूध दूध फिर सदा कब्र की,आज दूध लाना ही होगा
जहाँ दूध के घड़े मिलें,उस मंजिल तक जाना ही होगा
हटो व्योम के मेघ,पंथ से स्वर्ग लूटने हम आते हैं
दूध दूध ओ वत्स तुम्हारा दूध खोजने हम जाते हैं।"[1]

धर्म एवं ईश्वर का विरोध-

"प्रगतिवादी कवि ने जहाँ भी धर्म का विरोध किया है, उसने धर्ममात्र के स्थान पर उन रूढ़ियों को ही अपने प्रहारों का लक्ष्य बनाया है,जो उसकी दृष्टि में समाज की उन्नति में बाधक हैं, नगर एवं ग्राम सभी इन रूढ़ियों से बंधे हैं, जिनके प्रति आक्रोश,उपहास,अवहेलना, विरक्ति सभी कुछ प्रगतिवादी काव्य में द्रष्टव्य है।"[2]

भारत में रीति रिवाज अत्यधिक हैं और उसे निभाना भी एक सामाजिक दायित्व है। मजदूर जिसकी आय इतनी नहीं कि वह अपनी जरूरत पूरी करने के बाद इन सब त्योहारों पर अपने से खर्च कर सके इस प्रकार उसे ऋण लेना पड़ता है।अगर वह रीति-रिवाज निभाता जरूर है क्योंकि मजदूर हमारे सामाजिक संगठन का एक महत्वपूर्ण अंग है- इस सम्बन्ध में श्रम जाँच कमेटी ने कहा है-"इस प्रकार व्ययों को अपव्यय समझने का स्थान जरूर है अगर यह हमेशा याद रखना चाहिए कि मजदूर सामाजिक संगठन का एक भाग है और इसलिए मजबूरन उसे कुछ सामाजिक रीतियों को निभाना पड़ता है चाहे वह उन्हें निभा पाने की स्थिति में भले ही न हो। इन मामलों में अक्सर व्यक्ति मजदूर

1- दिनकर-हुंकार-पृ0- 23

2- नया हिन्दी काव्य- डा0 शिवकुमार मिश्र-पृ0- 181

हो जाता है, क्योंकि भारत जैसे देश में रीति-रिवाज न केवल साधारण शासक है बल्कि क्रूर शासक है।"[1]

भारत एक धर्म प्रधान देश है, यहाँ के व्यक्ति धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। इसी धार्मिक प्रवृत्ति का फायदा उठाते हैं उच्चवर्ग के धनिक व्यक्ति ये धर्म को अपने स्वार्थ सिद्धि का अस्त्र बना लेते हैं। धर्म की आड़ में ये स्वयं महात्मा बनकर भोली भाली जनता को लूटते रहते हैं और धर्मार्थ में अपना पैसा लगाकर समाज में अपनी प्रतिष्ठा कायम करते हैं। "धर्म का अर्थ जिसको पकड़ रखा है। किसको पकड़ रखा है? सामाजिक व्यवस्था को अर्थात जिसने निगड़बन्धन में सामाजिक व्यवस्था को जकड़ दिया है वही है धर्म। सामाजिक नियम श्रृंखला और नैतिकता सब धर्म से उत्पन्न है। उपस्थित व्यवस्था में धनिक श्रेणी हीतसर्वेक्षण लाभवान है। इसी व्यवस्था को धर्म के निविड़ बन्धन में सुरक्षित रखने के लिए सर्वदा चेष्टित रहती है, इसीलिए धनिक श्रेणी धर्मगत संस्कारों को पोसती रहती है।"[2]
इस प्रकार के धनिकों के प्रति एक रोष निकला है इस काल में।

"छुरी बगल में मुँह में राम
भोले भाले भये तमाम
ठगो निकालो अपना काम
मूड़ो बन जाओ हज्जाम
डालो दाना डालो दाम
रघुपति राघव राजाराम
हिन्दू और अहले इस्लाम
करें दूर से तुम्हें सलाम
बनो महन्त लगे न छदाम
घर बन जाय चाँदी धाम
ध्वनि से गूँजे नगर तमाम
रघुपति राघव राजाराम।"[3]

1- लेबर इन्वेस्टीगेशन कमेटी - रिमा रिपोर्ट पृ0- 293
श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा से उद्धृत-पृ0- 445
2- अर्थ और परमार्थ- श्री भगवती चरण पाणिग्राही, एम0ए0हंस जुलाई 1936
3- सनेही अभिनन्दन ग्रन्थ।डा0 [illegible] मिश्र का लेख।प्रगति के अग्रदूत पृ0- 249

धर्म के इस ढकोसले और पाखण्ड से दूर प्रगतिवादी कवि स्वयं को भौतिकवादी एवं बुद्धिवादी घोषित करता है और शोषण अनाचार के इस अचूक शस्त्र का पूर्णतय: बहिष्कार करता है- "मैं बुद्धिवादी हूँ। मेरा देवता है ज्ञान और इस देवता के अलावा मुझे किसी देवता पर विश्वास नहीं।"× × ×बुद्धिवादी होने के कारण न मुझे धर्म पर विश्वास है, न उपासना पर। मैं समझता हूँ कि मनुष्य केवल बुद्धि के द्वारा पूर्णता प्राप्त करेगा।"[1]

बौद्धिकता का नारा तो बाद में आया इससे पहले तो धर्म को ज्ञान की वस्तु नहीं अन्धविश्वास कीवस्तु बना दिया गया। धर्म मनुष्य का स्वस्थ विकास का नहीं भय का साधन बना लिया गया। समाज में लोग धर्म का पालन अनिष्ट के भय से करते थे न कि श्रद्धा एवं विश्वास से।धर्म की स्थिति ठीक इस प्रकार थी जिस प्रकार "शिशु को भयभीत करने के लियेउसके माता पिता "हौआ आया,"हौआया आया, आदि कहकर आश्चर्यजनक जन्तु की ओर संकेत करते हैं, उसी प्रकार शोषक वर्ग भी अपने स्वार्थ साधन के लिये धर्म एवं ईश्वर नामक अज्ञात वस्तु की कल्पना कर उसे सजीवता देने का प्रयास करता है।"[2]

हमारे यहाँ एकविश्वास यह भी चला आ रहा है कि व्यक्ति हमने पूर्व जन्मों के कर्मों के कारण दुख या सुख भोगता है।जब गरीब व्यक्ति का शोषण किया जाता है उसे कष्ट झेलना पड़ता है तो धर्म के ठेकेदार उससे समझा देते हैं कि विधाता ने उनके भाग्य में यही लिखा था, या जैसा किया था वैसा भरो। भोले गरीब अनपढ़ मजदूर किसान इसे अपनी नियति मानकर चुपचाप सहते रहते हैं।रवीन्द्रनाथ अपनी प्रगतिशील आलोचना पुस्तक में इसे स्पष्ट करते हैं-" एक ओर दुख,शोक पीड़ा के कारणों को पूर्व जन्म के कर्मों का फल बतलाकर शोषण का विरोध करने से रोक दिया जाता रहा है और दूसरी ओर पौरुष के रूप में उसे यह शिक्षा दी जाती रही है कि व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण सामर्थ्य के साथ शास्त्र निर्देशित कर्मों का पालन करना चाहिए अर्थात शोषण की प्रक्रियामेंअपना योग देना ही शोषितों का कर्तव्य है।[3] धर्म शोषक वर्ग का यह अस्त्र है जिसके बल पर ही वे युगयुग से दलितों और पीड़ितों का शोषण करते आये हैं।

1- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत-जनेश्वर वर्मा

2- प्रगतिशील आलोचना-रवीन्द्रनाथ-पृ0- 129

3- प्रगतिशील आलोचना-रवीन्द्रनाथ-पृ0- 129-30

प्रगतिवाद किसी सिद्धान्त को परम्परा अनुमोदित होने के कारण ही उचित नहीं मान लेता। आज का प्रगतिवादी आलोचक स्पष्ट स्वरों में कहता है "जो साहित्य मनुष्य के उत्पीड़न को छिपाता है, संस्कृति की झीनी चादर बुनकर उसे टालना चाहता है, वह प्रचारक न दीखते हुए भी वास्तव में प्रतिक्रियावाद का प्रचारक होता है।"[1]

किसी सिद्धान्त पर आवश्यकता से अधिक बल प्रचार जैसा लगने लगता है। मार्क्स और एंगेल्स ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया उसमें मूल तत्व।मैटर। पर आवश्यकता से अधिक आग्रह लक्षित होता है। पर इसका भी एक कारण है एंगेल्स ने लिखा है, जिस समय हम अपने सिद्धान्तों की नींव डाल रहे थे, दर्शन के क्षेत्र में "आदर्शवाद" की ही मान्यता सर्वत्र व्याप्त थी। यद्यपि हमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का ही प्रतिपादन करना अभीलिप्त था, पर युग प्रचलित आदर्शवाद के विरोध में हमें मूलतत्व पर अधिक आग्रह करना पड़ा।[2]

श्रम की समस्या-

समाज के विकास के साथ, अर्थात उत्पादन की प्रणाली के साथ समाज में श्रम विभाजन होने लगता है। समाज की उन्नतिऔर प्रत्येक मनुष्य के पूर्ण विकास के लिए यह श्रम विभाजन अनिवार्य है। उत्पादन की वृद्धि ने वर्ग उत्पन्न किये, शासक वर्ग के ध्रुव मानव समाज की संपूर्ण चेतना केन्द्रीभूत हो गयी। कलाकार या कवि भी इसी ध्रुव पर मंडराते रहे और शासक वर्ग की तरह उन्हें भी श्रम से छुट्टी मिली। शनैः शनैः कला या कविता सामूहिक श्रम से विभिन्न, दूरस्थ होती चली गयी। कवि अकेला, निराला व्यक्ति बन गया।"[3]

श्रमिक वर्ग का दमन किया जाने लगा पूँजीपति वर्ग की ओर से किन्तु श्रमिकों की नियुक्ति करवाने वाले मध्यस्थ भी किसी से पीछे नहीं रहते। इन मध्यस्थों को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे सरदार, मिस्त्री, चौधरी, मुकद्दम, कंमनी इत्यादि। ये मध्यस्थ गावों से अपना सम्पर्क बनाये रहते थे और श्रमिकों को शहरों में कार्य करने के लिये आकर्षित

- -

1- प्रगति और परम्परा- राम विलास शर्मा
2- प्रगतिशील आलोचना-रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव- पृ0- 255
3- प्रगतिवाद -लेखक-शिवदान सिंह चौहान-पृ0-30

करते रहते थे। इन मध्यस्थों का श्रमिकों पर अत्यधिक प्रभाव रहता है ये मध्यस्थ अपना लाभ उठाने से कभी चूकते नहीं। उन्हें श्रमिकों की नियुक्ति और नियुक्ति का अधिकार रहता है, इसलिए श्रमिकों को उनसे डर रहता है, और उनको खुश करने के लिए श्रमिकों को उसे घूस देनी पड़ती है। मध्यस्थ श्रमिकों से पैसा या शराब वगैरह माँगते हैं और उन बेचारों को अपना रोजी रोटी बचाये रखने के लिये देना पड़ता है। इससे एक सामाजिक समस्या का जन्म हुआ, घूस एवं भ्रष्टाचार "मध्यस्थों के अधिकार इतने अधिक हैं कि श्रमिक को अपनी नौकरी सुरक्षित बनाये रखने के लिए मध्यस्थ को घूस देनी पड़ती है तथा कुछ दशाओं में उसे मासिक वेतन से निर्धारित अंश भी देना पड़ता है अथवा कभी कभी उसे मध्यस्थों को शराब अथवा अन्य सामयिक भेंटे प्रदान करनी पड़ती हैं।[1]

श्रमिकों की अन्य समस्याओं में एक गम्भीर समस्या थी आवास की। गन्दे छोटे, अन्धकार युक्त घरों में इनको एक जानवर की तरह समय गुजारना होता है। आवास समस्या से बीमारी और अन्य सामाजिक बुराइयों का जन्म होता है। श्रमिक वर्ग सामाजिक बुराइयों से जूझता हुआ अपने ही अभावों के घेरे में घिरा हुआ किसी तरह घुटनभरी जिन्दगी जीता जाता है उसे जैसे किसी चीज की चाह नहीं कोई आकांक्षा नहीं बस चक्र है समय का जो घूमता जाता है, घूमता जाता है। प्रगतिवादी कवि इस घुटन को देखता है और उस तड़पन का एक चित्र अपनी भावना से उतार देता है-

> " उसका कुटुम्ब था भरा पूरा आहों से हाहाकारों से
> प्राणों से लड़ लड़कर प्रतिदिन घुटघुटकर अत्याचारों से
> तैयार किया था उसने ही अपना छोटा सा एक देश
> बीबी बच्चों से छीन, बीन दाना दाना अपने में भर
> भूखे तड़पे या मरे, भरो का तो भरना है उसको घर
> है उसे चुकाना सूद, कर्ज है उसे चुकाना अपना कर
> जितना खाली उसका घर, उतना खाली उसका अन्तर।[2]

1- श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा- लेखक- के०पी० भटनागर-पृ०- 42
2- मानव-कवि- भगवती चरण वर्मा- पृ०-68

देश में बढ़ती हुई भौतिकता, दिखावा एवं फैशन भी श्रमिकों के लिये एक समस्या ही उत्पन्न करता है। सब सोचते हैं कि शौकीनों के साधनों को खरीदकर बेरोजगारों को रोजगार मिलता है किन्तु ऐसा नहीं है इससे श्रमिकों का अहित ही होता है और देश के वास्तविक विकास में भी बाधा पड़ती है। इस बात को श्री रिचर्ड बी0ग्रेग ने बड़े ही अच्छे ढंग से समझाया है-"शौकीनी की चीजें तैयार करने के लिए श्रम और पूँजी को समाज के दूसरे उपयोगी और आवश्यक कामों की ओर से हटाकर लगाना पड़ता है और यदि शौकीनी की चीजों का बनना बन्द हो जाय तो वही श्रम और पूँजी दूसरे अधिक उपयोगी कामों में लगाई जा सकती है। ऐसी चीजें तैयार करने में बहुत सा ऐसा कच्चा माल फिजूल जाता है जो दूसरे अच्छे कामोंमें लगाया जा सकता है। इससे आवश्यक वस्तुओं का मूल्य बढ़ जाता है जिससे असली मजदूरी कम हो जाती है और दरिद्रों के लिए जीवन निर्वाह का प्रयत्न तथा संघर्ष और भी विकट हो जाता है।[1]

पूँजीपति वर्ग के प्रति आक्रोश-

पूँजीपति वर्ग एक क्रान्ति लेकर आया इसने सामन्तवाद को समाप्त कर दिया और मनुष्य को मनुष्य की गुलामी से आजाद कर दिया किन्तु अपने साथ अनेक नयी समस्यायें लेकर आया। पूँजीवाद ने समाज में दो वर्गों को जन्मदे दिया।समाज का बहुसंख्यक वर्ग मजदूर बन गया। मिल मालिक आदि अल्पसंख्यक वर्ग शासक बन गया।उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिये नये-नये यन्त्रों का निर्माण हुआ,बाजारों में होड़ लग गयी,औद्योगिक प्रतियोगिता बढ़ गयी जिसके फलस्वरूप स्वार्थ में वृद्धि हुई ,धन का लोभ बढ़ा,व्यक्तिगत ईर्ष्या द्वेष बढ़ा और सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार की भावना जागी। युद्ध की विभीषिका मँडराने लगी,आर्थिक संकट बढ़ गया और अन्य समस्याओं में एक और समस्या जुड़ गयी "बेकारी" की समस्या। पूँजीवाद ने स्वतंत्रता ,समानता और भाई चारे का नारा जो पहले बुलन्द किया था,फ्रांसीसी क्रान्ति की सफलता को देखकर वापस ले लिया

1- हंस-[illegible] -1936- सरल जीवन- श्री रिचर्ड बी0 ग्रेग ।

और सामन्त वर्ग से समझौता कर लिया। शिवदान सिंह चौहान के अनुसार-"पूँजीपति वर्ग के इस प्रतिक्रियावादी विकास का कविता पर यह प्रभाव पड़ा कि उसके स्वतंत्र जीवन के भ्रम छिन्न-भिन्न हो गये और वह रोमैन्स के व्यक्तिगत संसार में अपने को सीमित कर सामाजिक वस्तुस्थिति के साथ समझौता करने लगी और विक्टोरियन काल में पूँजीवाद के ह्रास युग के शुरु होने के साथ-साथ पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली के परिणाम स्वरूप जब कविता बाजार की प्रतियोगिता की वस्तु बन गयी और उपेक्षित कवि समाज की कार्यशीलता से पीछे हटकर अपनी व्यक्तिगत दुनिया में आश्रय लेने को बाध्य हो गया तो उसके पास सिवाय इसके और कोई कार्य न रह गया कि वह अपने एकान्तिक जीवन में बैठकर कविता की वेष-भूषा संवारे और उसकी टेकनीक अधिकाधिक परिमार्जित तथा पूर्ण बनाता जाय।[1]

पूँजीवादी समाज में कविता या कला के विकास के लिए कोई महत्व नहीं रह गया था, उत्पादन के उस युग में कविता भी एक वस्तु बन गयी थी जिसको बाजार में अपना भाव लगवाना है। कवि पूँजीवादी समाज से विद्रोह कर उठता है मगर उसके विद्रोह का ढंगभी पूँजीवादी ही रहता है। वह खुलकर उसका विद्रोह नहीं कर पाता बल्कि नितान्त अन्तर्मुखी हो जाता है और अपनी स्वतंत्रता का विकास वह व्यक्तिगत शक्तियों के विकास में मानता है, सामाजिक शक्ति में नहीं। "कला, कला के लिए का नारा इसी पूँजीवादी समाज की देन है जीवन की विषमताओं को देखकर कवि ने चाहा कि कविता और जगत में कोई सम्बन्ध न रह जाय। कविता का अपना स्वतंत्र अस्तित्व हो, आधुनिक समाज में अब कविता और कला काकोई खास महत्व नहीं है, उसकी रुचि निम्नकोटि की हो गयी है। कला उददात न होकर वह भी बाजार की वस्तु बन गयी है, उसका उद्देश्य भी अब अर्थ से तौला जाने लगा, सरस्वती को भी अब लक्ष्मी से जोड़ा जाने लगा। औद्योगिक विकास से परस्पर प्रतियोगिता ने जन्म लिया और इसका प्रसार कला के क्षेत्र में भी हुआ। परस्पर होड़ होने लगी और कविता का प्रयोजन मनोरंजन का सस्ता साधन बन गया।

- -

1- प्रगतिवाद-शिवदान सिंह चौहान-कविता की आधुनिक व्याख्या शीर्षक निबन्ध पृ0- 85-86

"आदमी को आदमी न समझने से उसे पशु कोटि तक गिरा देने से जो अव्यवस्था पैदा होती है वह जीवन के सौन्दर्य का हनन कर देती है। सौन्दर्य और कला आलस्य और विलास के पर्याय नहीं वरन् जीवन के अंतरतम संबंधों से पैदा हुई योजना के लिये व्यवहृत शब्द है। इससे अन्यथा स्थिति में तो केवल अस्तित्व रहेगा जीवन नहीं। एक वर्ग को इतना आराम मिले कि वह आलसी बन जाय दूसरे वर्ग को इतना काम करना पड़े कि परिश्रम से वह टूट जाय- यह कहाँ का न्याय है? प्रगतिवाद सच्चा संस्कारी पूर्ण जीवन चाहता है- संसार को एक नये सौन्दर्य विधान के अनुसार बनाने की कल्पना वह करता है।[1]

मजदूर वर्ग का शोषण स्वदेशी पूँजीपति ही नहीं विदेशी पूँजीपति भी करते रहे। पशु की भाँति काम करने के बाद भी न मजदूरों के हाथ कुछ लगता था और न ही स्वदेशी पूँजीपति के हाथ। भारत का धन एकत्रित होकर विदेश का जा रहा था ये देखकर मन कसक उठता था कि खून पसीना बहाये कोई और मौज उड़ाये कोई जनता का जहाँ तक संबंध है वह प्रेमचन्द जी के साहित्य में भी और गांधी जी द्वारा संचालित आन्दोलनों में भी बलि का बकरा ही बनी रही। xxx अपने देश की जनता का शोषण विदेशी पूँजीपति करते रहे और इस देश की मिट्टी से बने तथा हवा पानी में पले विशुद्ध स्वदेशी तथा हाथ के कते बुने पूँजीपति केवल टापते ही रह जाय-यह कितना अन्याय है। उनके जन्मसिद्ध अधिकार पर कितनी भारी चोट पड़ रही है। भारत के पूँजीपतियों की जेब में न जाकर देश का धन जो इस तरह विदेशी पूँजीपतियों की जेब में जा रहा है इसे रोकना होगा।[2]

"पूँजीवादी उद्योगों के विकास ने जिसका अर्थ उत्पादन के साधनों पर एक छोटे से साहसी वर्ग का नियंत्रण पाया जाता है। विश्व के सम्मुख श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के बीच संघर्ष की विशाल समस्या उपस्थित कर दी है।"[3]

" राष्ट्र समुन्नत बन न सकेगा
न्यायहीन सर्जन से केवल

1- समाज और साहित्य- अंचल-प्रगतिवाद एक अनुशीलन- पृ0-38
2- मुकर्जी आर0के0 इण्डियन वर्किंग क्लास-पृ0- 372 श्रम समस्यायें एवं सामाजिक सुरक्षा से उद्धृत-पृ0- 163
3- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द भक्ति के स्वर-1पौ‍का जिन्दी है। द्वितीय संस्करण-पृ0- 98
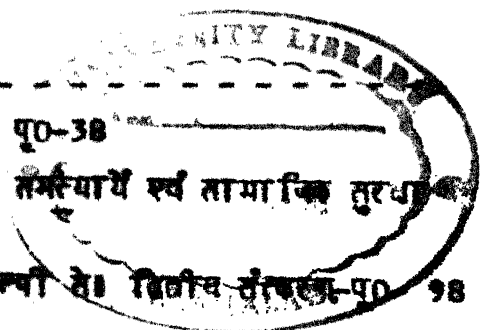
उत्पादन के साथ योजना
वितरण-समता पर भी दे बल"[1]

पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति तत्कालीन सभी प्रगतिवादी कवियों ने लेखनी चलायी है। कवि का मन पूँजीवादी व्यवस्था से खिन्न है वह समझता है कि इसमें न्याय नहीं है और वह जनता से इस बन्धन को काटदेने का संदेश देता हुआ कहता है-"

अब तक जो होता आया है,
उसमें जन सम्मान नहीं है
उसमें मानव को मानव के
सुख दुख का कुछ ध्यान नहीं है
उससे व्यक्तिवाद पनपा है
उससे पूँजीवाद हुआ है
इन्हें नष्टकर शोषित मानव
शाप काट दो जग-जीवन का।[2]

आर्थिक विषमता-

इससे अधिक प्रकृति के विरुद्ध और क्या होगा कि बच्चा बूढ़ों पर हुक्म चलाये, एक पागलखाना को राह बताये, और मुट्ठी भर लोग तो विलासमय जीवन बितायें और बाकी जन समुदाय खाने और कपड़े के लिए तरसता रहे।"[3]

पूँजीवाद ने इसी आर्थिक विषमता को जन्म दिया। जो मालिक वर्ग था उसे मेहनत से कोई सरोकार न था किन्तु धन से मात्र उन्हीं का सरोकार था। ये धनिकवर्ग पैसा कमाने के लिये हर हथकण्डे प्रयोग करते हैं इन्हें येन-केन-प्रकारेण धन कमाने से मतलब उससे किसी का क्या नुकसान हो रहा है इसकी उन्हें परवाह तक नहीं रहती। बेचारा मजदूर वर्ग दिन में दस घंटे काम करता है किन्तु पैसा मिलता है पाँच घंटे का, पाँच घंटे

1- जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द-भक्ति के स्वर ।योजना शिल्पी से। द्वितीय संस्करण-पृ0-98
2- त्रिलोचन शास्त्री- "धरती" प्रथम संस्करण-पृ0-4
3- रूसो- असमानता पर भाषण

का पैसा पूँजीपति की जेब में जाता है।

मजदूर दिनभर मेहनत करके भी अपने परिवार का पालन नहीं कर पाते और पूँजीपति आराम से ऊँघते रहते हैं तब भी तिजोरी भरे रहते हैं-

विनिमय और विनिमय के लिये चीजों का उत्पादन निजी सम्पत्ति को जन्म देता है उसी से गंभीर और गरीब का अंतर पैदा होता है। वर्ग का और एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग का शोषण दासता, नारी के ऊपर पुरुष का शासन, नगरों और गाँवों का आपसी विरोध और अन्त में शासन सत्ता का जन्म होता है। यह शासन सत्ता शोषक वर्ग का एक अस्त्र होती है जिससे वह शोषित वर्ग को निरन्तर दबाये रहता है।[1]

पूँजीवादी व्यवस्था ने प्रत्येक मानवीय रिश्ते में पैसे का मुलम्मा चढ़ा दिया। अब सब कुछ पैसे से तौला जाने लगा। व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा भी पैसे से आँकी जाने लगी किसी देश की उन्नति, प्रगति सबका आधार अर्थ हो गया। इसका सबसे बुरा असर पड़ा मध्यवर्ग एवं निम्नवर्ग को। जहाँ मध्यवर्ग समाज में अपनी प्रतिष्ठा कायम करने के लिये कुण्ठा एवं घुटन का शिकार हो गया वहाँ निम्नवर्ग निरुत्साह, जीवन की सुख-सुविधाओं से उपेक्षित पशु समान समाज से बहिष्कृत हो जीवनबिताने लगा। "सामाजिक श्रम ही उसकी स्वतंत्रता का अस्त्र है। मनुष्य की आर्थिक व्यवस्था या उत्पादन प्रणाली ही उसकी प्रगति या उन्नति की द्योतक है। जितनी ही उन्नत आर्थिक प्रणाली होगी उतनी ही हद तक मनुष्य प्रकृति से स्वतंत्र होगा। मनुष्य के इस सामाजिक विकास ने ही उसमें ज्ञान चेतना उत्पन्न की। सामाजिक चेतना मनुष्य के श्रम को संगठित और संगठित करती है। समाज ने मनुष्य की जिन अन्तर्वृत्तियों को ग्रहण किया, वे स्वतंत्र होकर समाज की ज्ञान चेतना के चिर परिवर्धित कोष में परिवेष्ठित होती गयी, अस्वीकृत पथ भ्रान्त पथिक की भाँति भटकती फिरी सामाजिक जीवन और सामाजिक अनुभव से जिनका संबंध रहता है वही अन्तर्वृत्तियाँ इस कोष में स्थान पाती हैं।"[2]

- -

1- श्री [illegible] शर्मा- भारत, आदिम साम्यवाद से दास प्रथा तक का इतिहास पृ0- 50

2- प्रगतिवाद- शिवदान सिंह चौहान-पृ0- 27-28

आर्थिक विषमताने देश की सांस्कृतिक विरासत को क्षति पहुँचायी, अनेक सामाजिक बुराइयों को भी जन्म दिया। जब पेट भरा हुआ हो तो व्यक्ति का ध्यान अन्य चीजों की ओर आकर्षित होता है। मनुष्य अपनी शक्ति का अपनी बुद्धि का प्रयोग अन्यान्य वस्तु का आविष्कार करने में लगाता है। कला एवं संस्कृति के कोष में वृद्धि करता है और स्वस्थ [illegible] परम्परा का सूत्रपात करता है। किन्तु जहाँ के औसतन जनता का अधिकांश समय रोटी की चिन्ता में व्यतीत होता हो वह अन्य चीजों के बारे में कैसे सोच सकता है -" आर्थिक शोषण से गरीबी पैदा हुई है, और इस गरीबी ने जनता को अशिक्षा, सामाजिक पिछड़ेपन, भावात्मक शून्यता और रोगों का शिकारबना दिया है। जनता का भाव जगत ऊसर बन गयाहै, एवं अर्थ अर्जुपर उसकी उच्च सुखमय जीवन की अभिलाषा पर शंकाओर सदेहों का पाला पड़ा हुआ है, उसका कल्पना जगत एक ऐसा मरुस्थल बन गया है, जहाँ मृगमरीचिका के भी [illegible]नहीं होते, उसके हृदय की आकांक्षाओं की सरिता जिसमें उज्ज्वल भविष्य का श्वेत चन्द्रमा अपना प्रतिबिम्ब डालकर उसकी लोल लहरों को अपनी ओर खींचता रहता था, अब सूख पड़ी है।"[1]

किन्तु मनुष्य के अन्तरतम में समायी यह हीनता कैसे दूर होगी? अर्थ पर सबका सामान्य अधिकार कब होगा? समाज के सभी व्यक्ति समान रुप से सुखमय जीवन कब व्यतीत कर पायेंगे?"मानव हृदय से यह आर्थिक हीनता की भावना तब तक नहीं दूर हो सकती, जब तक वर्तमान सामाजिक वैषम्य और समाज के धन पर कुछ "चुने हुओ" का आधिपत्य नष्ट नहीं होता।"[2]

परम्परा व प्राचीन संस्कृति-

नयी संस्कृति कानिर्माण [illegible]कारियों की एक [illegible] है ये नयीसंस्कृति कैसी होनी चाहिये? पन्त के अनुसार इस नयी संस्कृति में मृत आदर्शों का बन्धन न होगा, रुढ़ि और रीतियों की [illegible] न होगी, उसमें मनुष्य श्रेणी वर्गों विभाजित न होंगे और

1- प्रगतिवाद -शिवदान सिंह चौहान-भारत का नाट्यशाला- पृ0-119
2- समाज और साहित्य-अंचल प्रगतिवाद का जीवन दर्शन-पृ0- 163

न उसमें धन बल से जन-श्रम शोषण होगा। उसमें जीवन सक्रिय होगा और जीवन को उन्नत बनाने वाले सभी प्रयोजन साधन उपस्थित होंगे। ऐसी नव संस्कृति में वाणी, भाव, कर्म, मन तो संस्कृत होंगे ही जनवास, वसन और मनुष्य के शरीर भी सुन्दर होंगे।"[1]

प्रगतिवाद पहले से चली आ रही किसी भी परम्परा का पालन करना नहीं चाहता। प्राचीन संस्कृति रीति-नीति सबको वह नष्ट कर एक नयी संस्कृति का निर्माण चाहता है वैसी ही संस्कृति जिसकी कल्पना उपर पन्त जी ने की है। नायक के विषय में चली आ रही परम्परा भी इन कवियों ने तोड़ी अब तक कविता का विषय किसी राज पुरुष या महापुरुष के इर्द-गिर्द घूमता था किन्तु अब अपने अभावों से जूझता एक शून्य में पलता हुआ, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संघर्ष करता हुआ निम्नवर्ग कविताओं का विषय बना, क्योंकि यही सत्य है यही यथार्थ और सार्वजनीन एवं व्यग्राह्य है। "शोषित मानवता भी व्यक्तियों की समष्टि से निर्मित हुई है और इन व्यक्तियों के सुख, दुख, प्रेम और विरह के चित्र उच्चवर्गों के व्यक्तियों के सुख-दुख और प्रेम-विरह से कहीं अधिक तीव्र सत्य और सुन्दर होंगे, क्योंकि उनमें हमें मानवता के यथार्थ रूप का दर्शन मिलेगा, जो वैभव-विलास के क्रोड़ में पले परजीवियों की कृत्रिम स्वरचित वेदना से कदापि नहीं मिल सकता।"[2]

कोई भी नयी संस्कृति या नयी परम्परा ऐसे ही आकस्मिक उत्पन्न नहीं हो जाती। नया व्यवस्था प्राचीन व्यवस्था के विकास का फल है। यह धीरे-धीरे विकसित होती हुई आगे बढ़ती है। प्रगतिवादियों का कहना है कि "जैसे सामाजिक जीवन में कोई नवीन व्यवस्था पुरानी व्यवस्था से एकदम अलग होकर नहीं आ सकती, वैसे ही साहित्य में विकास क्रम को भंग करके शून्य में एक नयी प्रगति नहीं आरम्भ हो सकती।[3]

प्रगतिवाद में कवि का कर्तव्य-

"मानव जीवन की शाश्वत संवेदनाएं स्थिर और गतिहीन नहीं है, उनमें भी संस्कृति के अनुरूप विकास और प्रगति होना स्वाभाविक है। समाज की परिवर्तनशील स्थिति

1- प्रगतिवाद- शिवदान सिंह चौहान- सुमित्रानन्दन पंत निबन्ध-पृ0- 63
2- प्रगतिवाद-शिवदान सिंह चौहान- वही, पृ0- 70
3- डा0 रामविलास शर्मा- संस्कृति और साहित्य- पृ0- 9

में कवि की दृष्टि तो और भी अधिक तीव्र और ग्राहिका शक्ति सजग रहती है। इसलिये सच्चे कवि और साहित्यकार प्रायः प्रगतिशील ही हुआ करते हैं। प्रगतिशील सामाजिक रेखाओं, स्वरूपों और प्रवृत्तियों को शाश्वत सौन्दर्य-संवेदन का रूप देना ही उसका कार्य है।[1]

पूँजीवाद के इस युग में कवियों का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उन्हें मूक जनता को वाणी देनी है। निरक्षर जनता को मार्ग दिखाना है, अन्धेरे में भटकते मनुष्य को रोशनी की किरण दिखानी है, उन्हें उनके अधिकारों के प्रति जागृत करना है। और देश के रहनुमाओं को इन कर्मयोगियों की दीन-हीन अवस्था से अवगत कराना है। अब उन्हें व्यक्ति विशेष की समस्यायें नहीं दिखानी केवल एक के दुख-दुख की कहानी का ताना-बाना नहीं बुनना अब बारी है पूरे समाज की। अब कवि को समाज का प्रतिनिधित्व करना है और उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करनी है जिसे सब उपेक्षित कर रहे हैं जिसका काटा बुना सब पहन रहे हैं उन्हीं को धिक्कार रहे हैं। व्यक्ति उसके लिये समाज सापेक्ष होकर ही आता है। प्रगतिवादी, व्यक्ति को सामाजिक शक्तियों से ही परिचालित मानता है।"[2]

प्रगतिशील कवि का कर्तव्य है कि वह पुरानी लीक से हटकर एक नयी काव्य सर्जना करे। किन्तु आवश्यकता यही नहीं कि वह नई विचारधारा को लेकर साहित्य के बीच में उसे इस प्रकार लगा दे कि वह चार ही दिन में सूख जाय। आवश्यकता यह भी है कि वह अपनी विचार-लता को कला के संजीवन रस सिंचित करे और उसे उपवन के अन्य सुन्दर वृक्षों और बेलियों के साथ [illegible] योग्य बनाये।"[3]

बहुधा साहित्य में लेखक की स्वाधीनता का प्रश्न उठाया जाता है। जहाँ तक प्रगतिवादियों की मान्यता है वह व्यक्ति या कलाकार की स्वतंत्रता का प्रश्न पूँजीवादी व्यवस्था का परिणाम समझते है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर तो व्यक्ति अपनी अथवा कलाकार की इस स्वतंत्रता का नारा लगाकर एकान्त व्यक्तिवादी [illegible] हो उठता है दूसरी ओर इस कृत्रिम स्वतंत्रता को खोकर सर्वथा निर्लिप्त, निराश और प्रतिक्रियावादी हो जाता है।"[4]

1- नया साहित्य- नये प्रश्न-नन्द दुलारे बाजपेयी- पृ0-9

2- नया हिन्दी काव्य- डा0 शिवकुमार मिश्र

3- आधुनिक साहित्य-नन्द दुलारे बाजपेयी- पृ0-335

4- नया हिन्दी काव्य-डा0 शिव कुमार मिश्र

प्रगतिवाद का कवि अपनी वैयक्तिक पीड़ा का मान न कर सारे समाज की पीड़ा का वर्णन करता है। वह अपने दायरे से बाहर [illegible] मनुष्य मात्र के हृदय में उद्वेलित पीड़ा के समुद्र का चित्रण करता है। कवि की रचनासमाज की रचना है उसकी रचना जन प्रतिनिधित्व करती है। कवि अपने बदले हुए रुख की घोषणा करता है-

> जग की पीड़ा में पाया है, मैंने अपना अस्तित्व नया
> है उत्पीड़न की आह कहीं, है कहीं भूख का दर्द कठिन
> मैं देख रहा हूँ मौन विवश, यह जग की बर्बरता अथवा
> कायर न बनो कुछ काम करो, मैं सुनता हूँ प्राणों की रट
> मेरी मानवता बदल रही उलझन से भरी हुई करवट
> मैं जलूँ किन्तु जग को प्रकाश दें मेरे उसके अंगारे।"[1]

प्रगतिवादी साहित्य में व्यक्ति-

व्यक्तियों की वैयक्तिक स्वतंत्रता एक दूसरे से टकराती रहती है। यदि एक की स्वार्थ पूर्ति होती है तो दूसरे का उससे अहित होता है। एक व्यक्ति के लिए कोई वस्तु लाभकारी है तो, दूसरे के लिए अलाभकारी है।इसीलिए प्रगतिवाद में व्यक्ति की स्वतंत्रता के स्थान पर समाज के हित पर अधिक ध्यान दियागया है। जॉन स्टुअर्ट मिल के विचार "एक व्यक्ति की नाक की सीमा वहीं तक है, जहाँ कि दूसरे व्यक्ति की नाक शुरू होती है।"[2]

प्रगतिवाद में व्यक्ति विशेष का कोई महत्व नहीं वह एक सामाजिक प्राणी है और उसका सुख-दुख समाज का सुख-दुख है। "प्रगतिवादी साहित्य का व्यक्ति ऐसा होगा जो समाज की गति का सक्रिय अनुभव करता हो, समाज के उत्पादन के साधनों में होने वाले परिवर्तनों के अनुरूप समाज के अन्य अंगों में जो संघर्ष और तनाव का अनुभव करता है, क्योंकि समाज की प्रेरणा सामाजिक कार्य और समाज की गति है, व्यक्ति नहीं। अतः प्रगतिवाद सामाजिक परिवर्तन के विभिन्न अंगों की विभिन्न, परस्पर विरोधी अवस्थाओं का समाज के संगठन और उसकी विशृंखलता का और पुरातन और नूतन के संघर्ष की अभिव्यंजना करेगा।"[3]

1- भगवतीचरण वर्मा- मानव-पृ0- 46-47
2- मार्क्सवाद-यशपाल- पृ0-91-92
3- प्रगतिवाद- शिवदान सिंह चौहान

प्रगतिवाद में सौन्दर्य भावना-

"सामाजिक संबन्ध ही कला में सौन्दर्य का गुण प्रदान करते हैं। × × × इन सम्बन्धों में एक आन्तरिक संघर्ष और आन्तरिक विरोध है, जिन्हें कला के अन्दर शान्त किया जाता है।"[1]

दुनिया में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसमें सौन्दर्य की अनुभूति न हो। किन्तु साहित्यकार में सौन्दर्य की अनुभूति अधिक जागृत एवं सक्रिय होती है क्योंकि उसे रचना करनी होती है, उसे मनुष्यता का निर्माण करना होता है। प्रकृति निरीक्षण और अपनी अनुभूति की तीक्ष्णता की बदौलत उसके सौन्दर्य बोध में इतनी तीव्रता आ जाती है, कि जो कुछ भी असुन्दर है, अभद्र है, मनुष्यता से रहित है, वह उसके लिये असह्य हो जाता है।"[2]

प्रगतिवाद में सौन्दर्य की आम दृष्टि बदली। अब सौन्दर्य कोमल [illegible] दृश्यों में ही नहीं, भूखे, कातर निगाहों से देखते बालकों में देखा जाने लगा। खेतों, खलिहानों जौं और चने के लहलहाते खेतों में देखा जाने लगा। मिट्टी में खेलते बच्चे अब कवि के [illegible] का केन्द्र बने, कारण था युग की माँग और समाज का बदलता हुआ रूप। "प्रगतिवाद के अनुसार साहित्य चिर परिवर्तित समाज व्यवस्था का अंग है और साहित्य का सौन्दर्य मूल्य इसी में निहित है कि किसी विशेष प्रकार के कार्य के लिए वह सामाजिक शक्ति का संगठन करता हैं।"[3]

किसी भी रचना का सौन्दर्य इसी में निहित है कि इसका स्थायित्व कितना है। किसी रचना ने [illegible]भावनाओं पर कितना प्रभाव डाला? उसने समाज की परिस्थितियों का कितना प्रतिबिम्बन किया? यह रचना की सौन्दर्यात्मक अनुभूति को दर्शाता है। "साहित्य या कला कोई कृति अपने समय की सामाजिक वास्तविकता का निष्क्रिय प्रतिबिम्ब मात्र ही नहीं होती जिस प्रकार आइने में पड़ा प्रतिबिम्ब होता है, बल्कि वह समाज या मनुष्य के अहंभाव चेतना का परिवर्तित परिस्थितियों में भिन्न भिन्न प्रभाव डालकर परिष्कार भी करती रहती है, अर्थात उसे बदलती रहती है। इसी कारण उस रचना का सौन्दर्य या मूल्य सामाजिक परिस्थितियों की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है।"[4]

1- प्रगतिवाद- शिवदान सिंह चौहान- पृ0- 3
2- साहित्य का उद्देश्य- प्रेमचन्द- हंस- जुलाई- 1936
3- [illegible]वाद- [illegible] चौहान- पृ0-4
4- वही, पृ0-5

प्रगतिवाद ने सौन्दर्य को नये दृष्टिकोण से देखा उसने सौन्दर्य को जन जीवन में खोजा। सौन्दर्य का संबंध हमारे हृदय के आवेगों और मानसिक चेतना से होता है, जो कि सामाजिक सम्बन्धों से जुड़ा होता है। "नए समाज में पलने वाला अथवा उसके साथ चलने का प्रयासकरने वाला नए उठते हुए समाज में सौन्दर्य देखेगा, वह संघर्षों से भागकर किसी अतीत लोक या कल्पना लोक के निष्क्रिय सौन्दर्य में मुँह नहीं छिपाएगा। प्रसिद्ध मार्क्सवादी रूसी दार्शनिक एन0जी0 चरनीशेवस्की के शब्दों में -"मनुष्य को जीवन सबसे प्याराहै इसीलिए सौन्दर्य की यह परिभाषा अत्यंत संतोष मूलक मालूम पड़ती है-सौन्दर्य जीवन है।"[1]

> कवि लिखने बैठा, नव बाला, जिसकी आँखों में भोलापन
> जिसके उभरे वक्ष स्थल में, अज्ञात प्रेम का नव स्पन्दन
> कवि सहसा सिहरा काँप उठा, सुन भूखे बच्चों का रोदन
> पत्नी की पथराई आँखों में, केन्द्रित था जग का क्रन्दन
> गन्दे से टूटे कमरे में, होता अभाव का नर्तन
> कवि खड़ा हो गया पागल सा, उसे डर में थी कौन अगन?"[2]

प्रगतिवाद ने प्रकृति के क्षेत्र में भी जीवन उत्कर्ष दर्शन किये और उसे भी जन संकुल के रूप में देखा। उसके काव्य का सौन्दर्य गाँव-खेत, खलिहानों ने बढ़ाया। प्रगतिवाद किसी काल्पनिक प्राकृतिक सौन्दर्य में नहीं भटकता बल्कि वह अपने आस-पास जीवन से ही अपने समाज के हर्ष-विषाद से ही काव्य का सौन्दर्य गढ़ता है।

प्रगतिवाद में प्रेम भावना-

प्रेम मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है। प्रेम इतना व्यापक है कि ये पशु-पक्षी सब में पाया जाता है। प्रेम की प्रवृत्ति मनुष्य में प्रारम्भ से रही है। प्रेम के इस विभिन्न पहलुओं पर समय समय पर कवियों ने प्रकाश डाला है। प्रेम का चित्रण हुआ साहित्य की प्रत्येक धारा में भिन्न भिन्न रूप में। रीतिकाल में प्रेम का चित्रण अपने चरम पर पहुँच गया था और

1- हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास- सम्पादक डा0 हरवंश लाल शर्मा-सहायक सं0- डा0 कैलाशचन्द्र भाटिया।

2- [illegible] चरण वर्मा- मानव-पृ0- 34-35

नितान्त वायवी एवं मांसल हो गया था। छायावाद में कुछ बदलाव आया और स्वस्थ एवं मर्यादित प्रेम की परम्परा चली जिसका विकास हुआ आकर प्रगतिवाद में। प्रगतिवाद वैयक्तिक एवं वर्गी प्रेम का विरोधी है वह प्रेम जो कर्मक्षेत्र से दूर ले जाता है और व्यक्ति के चरित्र को संकुचित कर देता है प्रगतिवाद को स्वीकार नहीं। ऐसा स्वस्थ रोमान्स जो कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने कोप्रेरणा देता है और व्यक्तिवाद की परिधि से निकालकर उसे यथार्थ और जनसम्पर्क मय बनाता है।

प्रगतिवादी कवि प्रेम के यथार्थ और सामाजिक रूप को सदा चित्रित करता रहा। यहाँ प्रेम स्वस्थ रूप में जीवन का अनिवार्य विषयबन कर आया है। प्रगतिवादी प्रेम चित्रण में सहज जीवन की सरलता भौतिक जीवन दर्शन का प्रभाव और संघर्षशील जीवन के यथार्थ की स्वीकृति है इसमें कोमलता है परन्तु एकांगी जीवन को भावगत तृप्ति नहीं है।

प्रगतिवाद का प्रेम वासनामय प्रेम नहीं है वह शुद्ध सामाजिक प्रेम है। जो जीवन की समस्याओं से संघर्ष करने की प्रेरणा देता है, कर्मयोगी बनाता है। नैराश्य, कुण्ठा एवं अतृप्ति की भावना का इस प्रेम में कोई स्थान नहीं। यों भी प्रगतिवाद उस काल की रचना है जबव्यक्ति अपनी दैनिक समस्याओं से जूझता हुआ पेट की रोटी की चिन्ता में इधर-उधर भटकता फिरता था। देश गुलाम था चारों तरफ से अत्याचार का बोलबाला था ऐसे में युवावस्था के मीठे स्वप्न देखने एवं सपनों के हिंडोले में बैठकर ऊँची ऊँची पैंगे मारने की किसे फुर्सत थी? इसलिये प्रगतिवाद में वैयक्तिक प्रेम चित्रण का अभाव है। यहाँ वह स्वस्थ [illegible] धारा के रूप में प्रवाहित हुआ है।

"प्रेम के बिना जीवन कहाँ? मनुष्य अपनी मजबूरियों में भी प्रेम करता है। प्रगतिवादियों ने प्रेम कीसंवेदना को परिवार और समाज की अनेक बेबसियों के बीच उभारा, अर्थात प्रेम अपने परिवेश और संदर्भ से जुड़कर उभरा इसलिये अधिक जीवंत मालूम पड़ा।[1]

1- हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास- सम्पादक डा० हरवंश लाल शर्मा- सहायक सम्पादक-डा० कैलाश चन्द्र भाटिया- पृ०- 133

प्रगतिवादी काव्यका उद्देश्य-

मनुष्य के हृदय में नाना इच्छायें होती हैं, हृदय में भावों का सागर हिलोरे लेता है। वह सर्वत्र सुख पाना चाहता है किन्तु समाज की विषमतायें उसकी कोमल भावनाओं को सहन नहीं करती समाज के कठोर कटु संघर्ष के आगे उसे अपनी भावनाओं का दमन करना पड़ता है फलतः अन्तर्जगत और बाह्यजगत में द्वन्द्व आरंभ हो जाता है-"और कविता, जो भावों को संगठन या उन्हें तरतीब देती है, नवीन अन्तर्प्रेरणाओं द्वारा भाव जगत की सीमा विस्तृत करती जाती है। वह जीवन श्रम या संघर्ष को भावों के रस से सींचकर मधुर बनाती जाती है। कविता का यही उद्देश्य रहा है। वह सामाजिक जीवन और सामाजिक श्रम के साथ मनुष्य का "मानवोलमाव" उत्पन्न करती है।"[1]

दार्शनिक डेकार्टे ने कहा है, "हर चीज को जाँच करो। हर चीज को सत्य की एक मात्र सच्ची कसौटी, अनुभव पर कसो। सदैव यह जानने के लिए तैयार रहो कि नया अनुभव पुराने अनुभव से जाने हुए सत्य को कभी भी काट सकता है।"[2]

"कविता को आधुनिक वास्तविकता के प्रति एक सचेत, प्रगतिशील दृष्टिकोण व्यक्त करना चाहिए, ऐसा करके हीवह एक वर्गहीन, समाज के निर्माण के लिए मनुष्यों के भाव जगत का संगठन कर सकती है और पुनः समस्तमानव जाति की स्वतंत्रता प्राप्ति का अस्त्र बन सकती है।[3]

आज कला को किसान मजदूर और निम्न मध्यवर्ग से संबंधित रहना चाहिये क्योंकि इनकी संख्या ही सबसे ज्यादा है और यही वास्तविक रूप से समाज का विकास करके उसका नवनिर्माण करते हैं इसके विपरीत अभिजातवर्ग, उपजीवीवर्ग, पूँजीपति वर्ग समाज का विकास न करके उसे और पीछे ढकेल देते हैं शिवदान सिंह चौहान का मत है-"यदि कला शोषित वर्गों से अर्थात् जनता से प्राण संबंधित हो गयी तो समझना चाहिए कि वह इतिहास के साथ कदम मिलाकर चलने लगेगीऔर समाज की प्रगति में सक्रिय सचेत रूप से सहायक होगी।

1- प्रगतिवाद-शिवदान सिंह चौहान- छायावादी कवितामें असन्तोष की भावना से उद्धृत। पृ0-28

2- प्रगतिवाद-शिवदान सिंह चौहान-पृ0- 83-84

3- वही, पृ0- 105

इसी कारण टिकाऊ भी होगी। x x x x x अतः कला को जनता की आध्यात्मिक आवश्यकताओं का निरूपण कर उसके भाव जगत के धरातल को ऊँचा उठाने का प्रयत्न करना होगा, ताकि जनता में नव जीवन अथवा नये समाज का निर्माण करने की कल्पना स्पष्ट हो जाय। आज उसका यही सबसे बड़ा ऐतिहासिक लक्ष्य है।"[1]

साहित्य मानव की आवश्यकताओं का अध्ययन और उनकी पूर्ति का सांस्कृतिक साधन है।"[2] जिस प्रकार जीवन को कायम रखने के लिए जीवन का प्रसार आवश्यक है उसी प्रकार साहित्य की शक्तियों को आध्यात्मिक निष्क्रियता की रीतियों से मुक्त करने के लिए उसे वर्गहीन समाज व्यवस्था की सृष्टि बनना होगा।[3]

प्रगतिवाद इतिहास और तर्क, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान पर आधारित है। उसमें केवल [illegible] और संस्कार ही नहीं है, वह सत्य को एक सामाजिक शक्ति मानता है। उसे ईश्वरीय वस्तु बताकर मनुष्य के वश से बाहर नहीं ठहराता। वह परिवर्तन को स्वीकार करता है, समय के अनुसार सामाजिक व्यवस्था में बदलाव करने का मानवीय अधिकार उसे स्वीकृत है। और इस परिवर्तन के लिये वह मनुष्य को भावना को उकसाता है और उसे रास्ता भी दिखाता है। "प्रगतिवाद द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर विरोध और संघर्ष के परिणामस्वरूप होने वाली प्रगति को ही जीवन का आधार मानता है-इसी कारण प्रगतिवाद का विरोध हर प्रचलित परम्पराओं व रूढ़ियों से है। जिस प्रकार समाजवाद का अर्थ है मनुष्य के जीवन का सामाजिक या सामूहिक तरीका, वैसे ही प्रगतिवाद का अर्थ है साहित्य का समाजीकरण या साहित्य को केवल व्यक्ति के सुख-दुख जन्म-मरण, आशा, [illegible] और उल्लास-वेदना की अभिव्यक्ति का साधन न बनाकर समाज की पीड़ा, ग्लानि, उतार-चढ़ाव, हर्ष-उद्वेग, उमंग और कुतूहल को वाणी देना।"[4]

प्रगतिवाद पर आक्षेप है कि वह कल्पना का विरोधी है? यह सत्य तो है किन्तु पूर्णतयः नहीं, प्रगतिवाद मात्र कोरी कल्पना का विरोधी है। वह कल्पना के पंख लगाकर स्वप्न लोक में विचरण करना पसन्द नहीं करता। प्रगतिवादी कवि कल्पना का

- - - - - - - - - - - - - - - - - - - -

1- [illegible]वाद-शिवदान सिंह चौहान- भारत की जनवादी संस्कृति-निबंध -पृ0- 118-119
2- समाज और साहित्य-आमुख- अंक
3- समाज और साहित्य-आमुख-पृ0-2
4- समाज और [illegible] अंक-प्रगतिवाद ही क्यों? पृ0- 2

सहारा तो लेता है किन्तु उसकी कल्पना का आधार वास्तविकता होता है, वह यथार्थवादी है, वह अपने आस-पास के वातावरण से ही भाव ग्रहण करता है।प्रगतिवाद का उद्देश्य समाज का विकास है।

कलाकार अपनी कल्पना से सौन्दर्य की सृष्टि करके परिस्थिति को विकास के उपयोगी बनाता है। प्रगतिवाद के अंदर वह सौन्दर्य की भावना व्यापक हो जाती है-उसकी परिधि किसी विशेष श्रेणी तक ही सीमित नहीं होती। तभी ऐसा लगने लगता है जैसे जन जन के जीवन में व्याप्त कुरूपता, कुरुचि, नंगापन और अभाव हमारे अपने ही हैं और हम क्यों ऐसी व्यवस्था की जड़ें खोदने के लिये कटिबद्ध नहीं होते जिसमें हजारों आदमी कुछ चुने हुओं की गुलामी करते हैं।क्यों न ऐसे नये और अभ्युदयशील विधान की सृष्टि की जाय जो सौन्दर्य सुरुचि, आत्मसम्मान और मनुष्यता का पोषक है। कर्म का यह सन्देश, जोश की यह पुकार प्रगतिवाद के भीतर से आती है। उसी के अन्दर से अशान्त यौवन की वह उन्मादना फूटती है जिसमें तपकर मानव, जाति के ऊपर जाति का, श्रेणी के ऊपर श्रेणी का और व्यक्ति के ऊपर व्यक्ति का अत्याचार, परम्परा और कर्मफल, भाग्यदोष और दैवी अनुशासन आदि भित्ति हीन युक्तियाँ उपस्थित करके स्वीकार न करेगा, बस विद्रोह की आग लगायेगा।"[1]

छायावादी कविता में प्राकृतिक सौन्दर्य और रहस्यवाद पर कवितायें लिखी जा रही थीं। कवि भावनामय कल्पनाओं में डूबा सतरंगे सपनों में रमा हुआ था। किन्तु ये परिस्थितियों के अनुकूल नहीं था, अब जन सामान्य को नेतृत्व की आवश्यकता थी।अब कल्पनाओं और भावनाओं की आवश्यकता नहीं थी, जनता इस रहस्यवादी आवरण से लगभग ऊब चुकी थी और इन सब विषयों पर छायावाद में इतना ज्यादा लिखा जा चुका था कि अब कुछ नया शेष नहीं रह गया था। अत: परिस्थितियों को देखते हुए, समय की माँग को स्वीकार करते हुए कुछ प्रगतिशील कलाकारों ने कविता के उद्देश्य की घोषणा की-"आज जो हमारे आगे समस्या है, जो हमारे नेत्रों के आगे घूम रहा है वह है दारिद्र्य, भूख तथा राष्ट्रीय अपमानता यह आधुनिक सामाजिक वास्तविकता है।देव कथा तथा पौराणिक उपाख्यान, रहस्यवाद एवं स्वप्न जिनमें हम शरण लेने का प्रयत्न करते हैं हमारे किसी उपयोग

1- समाज और साहित्य- प्रगतिवाद ही क्यों? पृ0- 2

न होंगे और न हैं। हम बचनानहीं चाहते परन्तु वास्तविकता का सामना करने का साहस चाहते हैं। शून्यता नहीं किन्तु क्रियाशीलता रहस्यमय स्वप्नमें मग्न पड़े रहने से हम कीचड़ से नहीं निकल सकते। हमको कटिबद्ध होकर अन्धकार तथा प्रतिक्रिया के विरुद्ध युद्ध करने के लिये आगे आना होगा।"[1]

"अब तक हमारा साहित्य व्यक्तिगत ,काल्पनिक, अवास्तविक, रहस्यमय तथा विवेकहीन रहा है। अब तोअवस्था ऐसी है कि निपट वास्तविकता आवश्यक है जो समस्याओं का मुँह दर मुँह सामना करे, ऐसा साहित्य चाहिए जो अत्यन्त उग्र हो, जो बिना किसी सजावट तथा रीति नियम की अनावश्यक हठपर अवस्थित हो।इसके अतिरिक्त उसे उत्कृष्ट वस्तु की वास्तविकता पर अधिक जोर देना चाहिए। बहुग्राही तथा सर्वसाधारण एक वर्ग का न होकर वर्ग वैशिष्ट्य का विरोधी होना चाहिए और जीवन के सत्य दशा तथा वास्तविकता पर दृढ़ होना चाहिए।"[2]

प्रगतिवादी कला जनता के मनोबल के नीचे स्तर को उपरउठाती है। देश जीवन की संयुक्त और संगठित शक्ति को जाग्रत करती है। नाउम्मीदी या असहायता के भाव से पैदा होने वाली साहस हीनता, निराशा, निष्क्रियता के लिये उसमें स्थान नहीं।मुर्दा अवसाद और तज्जनित गतिरोध का खात्मा करना उसका लक्ष्य है।"[3]

प्रगतिवाद की मान्यतायें-

प्रगतिवाद समष्टि के सुख दुख को लेकर आगे बढ़ रहा है और अपने मार्ग के अवरोधक रोड़ों को दूर करता हुआ निरंतर विकासमानहो रहा है। उसका उद्देश्य मुट्ठी भर स्वार्थ लोलुप लोगों की चाटुकारिता और मनोरंजन करनानहीं है।"प्रगतिवाद मनुष्य के मन में भावी समाज-व्यवस्था को न्याय एवं साम्य के आधार पर प्रतिष्ठित करने के लिये कल्पना को वास्तव रूप प्रदान करने की प्रेरणा देता है।"[4]

प्रगतिवाद की मान्यता है कि कलाकोई स्वतंत्र तत्व नहीं है जो अपने ही उपर जिन्दा रह सके बल्कि वह ~~[illegible]~~ मनुष्य के उद्योग का नतीजा हैऔर उसके जीवन और

- -

1- कला का एक प्रगतिशील विवेचन-श्री अहमद अली हंस-दिसम्बर 1936-पृ0- 76-77
2- कला का एक प्रगतिशील विवेचन-श्री अहमद अली हंस-दिसम्बर -1936 -पृ0- 76-77
3- समाज और साहित्य-अंचल- पृ0-85
4- समाज और साहित्य- प्रगतिवादही क्यों? पृ0-6

वातावरण से सम्बन्धित है। ऐतिहासिक प्रगति का एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मनुष्य का विकास समाज की दिशा में होता हैऔर समाज का इतिहास की दिशा में।"[1] प्रगतिवाद की मान्यता है कि रचना हमारे दैनिक कार्यों एवं हमारे विचारों की प्रति मूर्ति हो। प्रगतिवाद कर्मशील व्यक्तियों के लिये लिखता है निकम्मे और कायर लोगों के लिये नहीं। रोमा रोला के शब्दों में हम उनसभी श्रेणियों, वर्गों और जातियों के साथ-साथ चल रहे हैं जो सीमान्त मानव जाति के प्रगति प्रवाह के लिये जीवन मुक्ति के लिये मार्ग की सृष्टि कर रही है।"[2]

प्रगतिवाद पूर्णतय: जन सामान्य से जुड़कर आया उसनेजीवन को आगे बढ़ाने काकार्य किया। मुफलसी और शोषण में पिसती जनता को क्रान्ति का सबक सिखाया। प्रगतिवादी की दृष्टि में साहित्य जीवन को गढ़ने-दूसरे के जीवन को समझने, व्यक्ति, व्यक्ति, वर्ग वर्ग के सम्बन्धों का सच्चा अर्थ ढूंढ़ निकालने, इतिहास, समाज विज्ञान और राजनीति के अन्तरंग में छिपी शक्तियों को उभारने, मूल्यों में परिवर्तन करने और कल्याणकारी प्रेम सृष्टि के विश्वव्यापी आविर्भाव ।सामाजिक, आर्थिक समानता सौहृय औरसुख की भूमि पर। का सबसे बड़ा साधन है। पृथ्वी का खून चूसने वाली व्यवस्था आखिर कब तक चलेगी?[3]

प्रगतिशील कविता जन जागृति की ... है औरकरवट लेते हुए जमाने की तस्वीर है। जीवन के सुषुप्त पौरुष और पुरुषत्व को जाग्रत करने का स्फूर्ति उच्चार है। जिनका इतना अधिक शारीरिक, मानसिक और दिमागी शोषण हुआ है कि जो स्वयं क्षय के कीटाणु बन गये हैं- जिनकी जिन्दगी और मौत में कोई अंतर नहीं है, उन्हें वह संसार के सब प्रतिगामी कार्यकलापों के प्रति द्रोह करने की दीक्षा देती है।"[4]

हमारे साहित्य का यह नारा कला, जीवन के लिये सर्वत: सत्य है। कला जीवन से जुड़कर ही उत्कर्ष को पहुँचती है वह कला, कला नहीं जो सार्वजनीन एवं सार्वभौतिक न हो। प्रगतिवादकी यही सबसे बड़ी अच्छाई थी कि वह जनता का साहित्य था। महलों से निकलकर साहित्य कुटियों में प्रवेश कर रहा था। कृषक पायल की तान में थिरकने वाला, धूल भरे जूड़े

- -

1- समाज और साहित्य-पृ0- 9 प्रगतिवाद ही क्यों?
2- समाज और साहित्य-प्रगतिवाद एक अनुशीलन- पृ0-22
3- समाज और साहित्य- प्रगतिवाद एक अनुशीलन- अंचल- पृ0-38
4- समाज और साहित्य- नई हिन्दी कविता की सामाजिक पृष्ठभूमि-पृ0- 5।

और सर पर बोझा उठाये यौवना की ओर झांक रहा था। हिमालय की चोटियों में, कश्मीर की वादियों में पुलकित होने वाला मनुष्य गेहूँ से लहलहाते खेत और सीस पर मुरैठा बाँधे चने के छिमने पेड़ को देख रहा था। अंचल कहते हैं "जन जीवन की अमर-प्रेरणा अनन्त अनुभूति और दिव्य संदेशों का स्रोत है।" उससे दूर रहकर साहित्य और साहित्यकार दोनों जीवन हीन हो जायेंगे। जन जीवन का यही सम्पर्क कलाकार को गलत दिशा में जाने से रोकेगा---। जन जीवन के संघर्षों और उतार-चढ़ाव से अछूता रहना वाला साहित्य जीवन की [illegible] की ऐतिहासिक प्रगति से दूर रहेगा। साहित्य को शाश्वत वस्तु कहकर राजनीति, सम[illegible]र युग की परिस्थितियों से दूर रखने की चेष्टा टुकड़े बाजी है अर्थात टुकड़ों को लेकर उसे पूर्ण समझ लेना है और इन सबके सूत्र जन जीवन तक पहुँचने से इन्कार करना है।"[1]

हाइने के शब्दों में प्रत्येक प्रगतिवादी साहित्यकार " सोलडर इन द लिबरेशन वार आफ ह्यूमूनिटि" या मानवता के महान स्वाधीनता संग्राम का सिपाही होता है।"[2]

विज्ञान के नये नये अविष्कारों ने बुद्धिवादको जन्म दिया और बुद्धिवाद ने भौतिकवाद को आज मानव जीवन के समस्त मूल्य भौतिकवादी पृष्ठभूमि में तर्क की कसौटी पर कसे जाते हैं। आज उन्हीं विचार धाराओं को [illegible]त्साहपूर्वक अपनाया जाता है।जो भौतिक सुख समृद्धि को अपना लक्ष्य बनाती है और चूँकि मार्क्सवाद का दर्शन भी इसी भाव को प्रश्रय देता है, इसलिये आज इसदर्शन का अत्यधिकप्रसार हो रहा है। इस दर्शन का उत्साहपूर्वक स्वागत कर रहे हैं। [illegible] का प्रभाव प्रगतिवाद पर अत्यधिक है।अतः इसलिए [illegible]गतिवादमें भी हमें [illegible]द्धिवादिता एवं भौतिकवादिता के स्पष्ट दर्शन होते हैं। प्रगतिवाद संसार से शोषण एवं अत्याचार समाप्त करके सबके लिये समान भौतिक साधन एवं सुख-[illegible]विधायें सुलभ कराना चाहता है। [illegible]गतिवादी प्रत्येक विचारको तर्क की और बुद्धि की कसौटी पर कसने के पश्चात ही स्वीकार करता है। वह किसी अन्धविश्वास को अपनाना नहीं चाहता।

"नव चेतना और नव जागरण का सहज परिणाम था युग युग की भारतीय जड़ता में मानसिक क्रान्ति का आविर्भाव। शताब्दियों से अतीत की ओर आँख मूँदे हुए

- -

1- समाज औ[illegible]-त्व-साहित्य और क्रान्ति की परम्परा -पृ0- 121

2- समाज और [illegible]हित्य- प्रगतिवाद का जीवन-दर्शन-अंचल- पृ0- 164

निद्रामग्न समाज में एक जागृति, एक उत्थान दिखाई दिया और उसे अपने अतीत के निरीक्षण परीक्षण की दृष्टि मिली। पुरातन श्रद्धा और विश्वास के स्थान पर तर्क और विवेक प्रतिष्ठित हुआ, अन्धविश्वास और जड़ रूढ़ि पर विज्ञान ने विजय पाई। स्थिरता और गतानुगति ने गति और प्रगति को आत्मसमर्पण किया एवं दासता और बन्धन में स्वतंत्रता और मुक्ति की भावना का अभिनन्दन हुआ।"[1]

लेखक यदि कलाकार है तो उसके प्रयत्न की सार्थकता समाज के दूसरे श्रमियों की भाँति कुछ उपयोगिता की सृष्टि करने में ही है। विकास द्वारा समाज को सामर्थ्य और पूर्णता की ओर ले जाने में ही श्रमी की सामाजिक उपयोगिता है।[2]

"राहुल जी का कथन-" प्रगतिवाद कोई कष्ट या संकीर्ण सम्प्रदाय नहीं है। प्रगतिवादका काम है प्रगति के रास्ते को खोलना, उसके पथ को प्रशस्त करना। प्रगतिवाद कलाकार की स्वतंत्रता नहीं, परतंत्रता का शत्रु है। प्रगति जिसके रोम रोम में भीज गई है, प्रगति ही जिसकीप्रकृति बन गई है, वह स्वयं सीमाओं का निर्धारण कर सकता है। उसकी सीमा अगर कोई है तो यही कि लेखक और कलाकार की कृतियाँ [illegible] शक्तियों की सहायक न बनें। प्रगतिवादकला की अवहेलना नहीं करता। यह तो कला औरउच्च [illegible] के निर्माण में बाधकरूढ़ियों को हटाकर सुविधा प्रदान करता है। यह रूढ़िवाद और कूपमंडूकता का विरोधी है।"[3]

1- हिन्दी कविता में [illegible]- प्रो0 सुधीन्द्र- पृ0-10

2- आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य-डा0 हरदयाल -पृ0-68

3- [illegible] साहित्य और राष्ट्रीय नवनिर्माण-हंस-अक्तूबर -1947 अंक-1लेखकमहापंडित राहुल सांकृत्यायन।

तृतीय-अध्याय

प्रगतिवाद का सामाजिक धरातल

प्रगतिवाद का सामाजिक धरातल

"कवि की दृष्टि सहसा "वर्ग सभ्यता" के मंदिर के निचले तलेमें वातायनों पर जाती है, जो ध्यान से देखने पर किसान की दो आँखें ज्ञात हुईं। अंधकार की गुहा सरीखी उन आँखों से आँख मिलाने का साहस कवि को न हो सका। उसमें उसे "मरघट का तम दिखाई पड़ा। उन आँखों में उस किसान के बेदखल हुये खेतों की लहराती हरियाली दौड़ गई और फिर कारकुनों की लाठी से मारा गया जवान लड़का, बिना दवा दरमत के स्वर्ग चली जाने वाली गृहणी, दुधमुँही बिटिया, कोतवाल द्वारा धर्षिता विधवा पतोहू, कुर्क हुई धवरी गाय सब कुछ साकार हो उठा, और इस याद में फिर कवि को दया की भूखी आँखें ऐसी लगीं जैसे-"तुरत शून्य में गड़ वह चितवन तीखी नोक सदृश बन जाती।"

प्रगतिवादमें समाज का यथार्थ पक्ष चित्रित किया जाने लगा। जो जीवन में नित्य प्रति घटित होता था, जाने कुछ व्यक्ति के ठहरे जीवन रूपी सागर को उद्वेलित कर देता था उसी का चित्रण प्रगतिवादियों का ध्येय बना। यानि कविता व्यक्ति के आस पास मँडराने लगी। जो लोग समाजवादी यथार्थ को जड़ नियमों का कटघरा बनाकर कला सृजन को उसमें बंदी करना चाहते हैं, प्रगतिवादी विचारक उनका विरोध करता है। उसके विचार से समाजवादी यथार्थ एक ऐसी शक्ति है जो कलाकार को जन जीवन के निकट लाकर उसे जीवन्त और सदा नये विचारों से युक्त कलासृजन की प्रेरणा देती है। यथार्थ का आग्रह है कि लेखक यथार्थ का सच्चाई और ईमानदारी के साथ चित्रण करे। जिन्दगी में जो असंगतियाँ अथवा अंतर्विरोध हैं उन्हें समझे। प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियों के सतत चलने वाले संघर्ष को परखे और अपनी कृति में उसका जीवित चित्र दे। जो नया और टिकने वाला है उसका समर्थन करे जो पुराना और ढहने वाला है उसका विरोध करे। यही सच्ची समाजवादी यथार्थ दृष्टि है। यह जोला और फ्लाबेयर आदि की यथार्थ दृष्टि से इसी कारण भिन्न है कि यह गर्हित पक्षों को ही नहीं देखती, अँधेरा और मायूसियत ही नहीं

उभारती वरन् उगती हुई जनशक्ति को भी देखती है, आने वाली नयी जिन्दगी की तसवीर भी आँकती है। प्रकृतवादी यथार्थ दृष्टि में ईमानदारी होते हुये भी पस्ती, मुर्दनी-घुटन और एकांगिता का है, जबकि समाजवादी यथार्थ दृष्टि उन कारणों को भी टटोलकर सामने लाती है, जिन्होंने जिन्दगी में अंधेरा, मायूसियत या कोढ़ पैदा किया है।"[1]

साहित्य को मात्र भावोच्छ्वास और कल्पना के लोक से [illegible] उसे जीवन की कटु वास्तविकताओं, जीवन के यथार्थ के बीच प्रतिष्ठित कर वस्तुतः प्रगतिवाद ने एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। उसने हिन्दी काव्य को एक जीवन्त चेतना प्रदान की है, जिसका निषेध नहीं किया जा सकता।"[2]

सन् 1936 का समय स[illegible] कार्यक्रमों का रहा। कुछ विचारक समाज की कुरीतियों की ओर आकर्षित हुये और उसमें सुधार के लिये प्रयत्न हो गये, प्रगतिवादी कवियों ने उसे भी [illegible] अभिव्यक्ति दी है। नारी जाति की स्व[illegible] का समर्थन, अस्पृश्यता की भावना का विरोध, समाज में व्याप्त शोषण, बेईमानी आदि के प्रति अपनी घृणा प्रदर्शित कर उन्होंने अपनी जागरूक दृष्टि को प्रभावित किया है।

आस्था, विश्वास और दृढ़ता के स्वरों की गूँज प्रगतिवादी काव्य की वह प्रवृत्ति है, जो उसे एक ठोस सामाजिक रूप प्रदान करती है। यह जानते हुए भी कि वर्तमान जीवन विषमता दुख और दैन्य से आक्रान्त है, प्रगतिवादी कवि इसी कारण विचलित नहीं होने पाता कि उसकी आस्था, नये जीवन पर उसका विश्वास और संकल्प की दृढ़ता उसे सदैव ही आश्वस्त किये रहती है। वह जीवन की कुरुपताओं से संघर्ष करने को सदैव सन्नद्ध रहता है, बल्कि कुरुपताओं और अभावों के बीच से ही, उसे नयी जिन्दगी और नयी संस्कृति मुस्कराते हुए देख पड़ती है। इस आस्था, विश्वास और दृढ़ता को आद्यंत प्रगतिवादी काव्य में देखा जा सकता है। यही उसे निराशा, घुटन एवं पराजय के गर्त में गिरने से बचाये रखती है।"[3]

1- नया हिन्दी काव्य-शिव कुमार मिश्र-पृ0- 159
2- आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ-डा0 नगेन्द्र- पृ0- 109
3- नया हिन्दी काव्य-डा0 शिवकुमार मिश्र-पृ0- 171

"अपने को बड़ा और ऊँचा कहलाने की अहंकार जन्य आकांक्षा व्यक्तिमात्र में होती है, कारण पाकर जाग्रत होती अथवा सुप्त रहती है। नीचे को ऊँचा, छोटे को बड़ा और गरीब को धनी होने का अवकाश या सामाजिक संक्रमण की सुविधा जिस समाज में अधिक रहेगी उस समाज में असन्तोष की मात्रा कम होगी।"[1] किन्तु जिस समाज में व्यक्ति के इस स्वभावगत अहंकार की तुष्टि नहीं होती वहाँ विद्रोह का फूटना स्वाभाविक है। इस प्रकार व्यक्तियों में एक कुण्ठा एवं वेदना का जन्म हो जाता है और उनमें मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाता है। जन्म और कर्म दोनों से हीन वर्ग को जब आर्थिक दृष्टि से हीन पद प्राप्त होता है तो उसके हृदय में अन्याय की भावना अधिक तीव्र हो उठती है।"[2]

वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव ग्रस्त जीवन तक पहुँचने का प्रयत्न करता है प्रगतिवादी साहित्य। इस दशा में प्राय: सिद्धांत बन जाता है कि हमारे लिये दुख और कष्टों के कारण प्रचलित नियम और प्राचीन सामाजिक रुढ़ियाँ हैं फिर तो व्यक्तियों के मनोवैज्ञानिक विवेचन के द्वारा यह भी सिद्ध करने का प्रयत्न होता है कि ये सब समाज के कृत्रिम पाप है। x x x x x स्त्रियों के संबंध में नारीत्व की दृष्टि ही प्रमुख होकर मातृत्व से उत्पन्न हुए सब संबंधों को तुच्छकर देती है। वर्तमान युग की ऐसी प्रवृत्ति है। जब मानसिक विश्लेषण के इस नग्न रुप में मनुष्यता पहुँच जाती है तब उन्हीं सामाजिक बन्धनों की बाधा घातक समझ पड़ती है और उन बंधनों को कृत्रिम और अवास्तविक माना जाने लगता है।"[3]

प्रगतिवाद का सामाजिक धरातल कुछ नया था और कुछ बदले हुये रुप को लेकर आया था। वास्तव में तो ये प्राचीन सामाजिक परम्परा का विकास ही किन्तु परिस्थितियों के अनुसार कुछ बदले हुये रुप में आया। और क्यों रुप को बदले? साहित्य को होना ही ऐसा चाहिए कि वह अपने चारों तरफ की आवाज को सुने और सब मार्गों में सच्ची कला तो वही है जो जीवन के संघर्ष में साथ निभाती हुई पूँजीवादी समाज को

1- संसार की समाज क्रान्ति और हिन्दुस्तान- जी0एस0 केर-पृ0- 223
2- संसार की सामाजिक क्रान्ति और हिन्दुस्तान-के0पी0 केर-पृ0- 223
3- जयशंकर प्रसाद- यथार्थवाद और छायावाद अप्रैल 1937 हंस अंक-6

नष्टकर समाजवादी समाज के निर्माण की पथ पर हो।" और ऐसा तभी संभव है जबकि कला और साहित्य के निर्माण को एक सचेत किया बना दिया जाय अर्थात् जब कला और साहित्य की सृष्टि के पीछे एक जीवन व्यापी द्वन्द्व मूलक विचारधारा हो और उनका रूप विधान सामाजिक यथार्थवाद के कलात्मक तत्व से निरूपित हो।"[1]

एक तो भारत में अंग्रेजी शासन ने और दूसरे पूँजीवादी व्यवस्था ने, भारत के सामाजिक ढाँचे को सर्वतः हिलाकर रख दिया अनेक समस्याओं ने इन परिस्थितियों के कारण ही जन्म लिया अन्यथा भारत का सामाजिक नियम बहुत सोच समझकर, सबका हित सोचकर बनाया गया था। समय के साथ और बदलती हुई परिस्थितियों के कारण इनमें विकृतियाँ आती गयीं, जो मनुष्य को स्वयं की देन थी। धर्म के क्षेत्र में तानाशाही, अन्धविश्वास पाखण्ड आदि मनुष्य की अपनी स्वार्थ वृत्ति की देन थे। स्त्री जाति पहले पूर्णतः स्वतंत्र थी किन्तु पुरुष प्रधान समाज बाद में अहिस्ता-अहिस्ता उसकी बेड़ियाँ जकड़ता गया किन्तु मुसलमानों के आतंक ने और स्त्री जाति के साथ दुर्व्यवहार ने इस बन्धनों को अत्यन्त जटिल कर दिया। जाति-पाँति के बन्धन भी उसी काल में ज्यादा कड़े हुए। और रही सही कसर पूँजीवादी व्यवस्था ने पूरी कर दी। बेकारी की समस्या दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, श्रम समस्या आर्थिक समस्या, आवास समस्या और अनैतिकता की समस्या। सारा समाज एक द्वन्द्व के जालमें फंस गया लोगों में विद्रोह की भावना घर कर गई सर्वतः रोष का कुहासा छा गया। "एक शिक्षित युवक बेकार है, एक तरुण विधवा आजीवन अविवाहित रहने को मजबूर है, एक प्रतिभाशाली व्यक्ति सारा जीवन क्लर्की में खपा देता है और उसके ऊपर जो अफसर है वे निरे मूर्ख हैं। एक मजदूर दस घंटे काम करके भी अपने परिवार को नहीं पाल पाता, एक किसान धरती से सोना पैदा करके भीखमें से मदा ह, एक प्रेमी अपनी प्रेमिका से इसलिए एक सूत्र में नहीं बंध सकता कि दोनों कि आर्थिक स्थति में वैषम्य है या दोनों अलग-अलग जाति के हैं औरइस समाज व्यवस्था में स्त्री पुरुष संयोग में प्रेम का आधार मुख्य नहीं है और इन विषमताओं के कारण व्यक्तियों का जीवन कितना असार्थक, अन्यायी, कठोर और [illegible] बन जाता है।"[2] साहित्य का उद्देश्य होना चाहिए कि

1- प्रगतिवाद- शिवदान सिंह चौहान-क्या साहित्य की समस्यायें -पृ0- 152
2- वही, पृ0- 152-153

परिस्थितियाँ क्यों उत्पन्न होती है? इनके उत्पन्न होने के कारण क्या है? इन्हें किस प्रकार अपने अनुकूल बनाया जा सकता है? इन समस्याओं का सामना कैसे किया जा सकता है? इसे विश्लेषित करे और जनता को जीवन की गहराइयों तक पहुँचाये उसे व्यापक दृष्टि से सोचने की शक्ति दे वह उसे इन समस्याओं का सामना करने के लिए तैयार करना चाहिए उससे पलायन करनानहीं। केवल थोड़े से वर्ग की चीज बनकर साहित्य किस प्रकार जीवन से टूट जाता है और रूढ़ियों और रीतियों के गहन जाल में घुटा करता है, यह विश्व साहित्य के इतिहास में हर जगह देखा जा सकता है।"[1]

प्रगतिवाद में जिस समाज का चित्रण किया गया है, उस समाज में वर्तमान व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना है और नवीन नीति निर्माण की ललक है। वर्तमान समाज उस अवस्था तक पहुँच गयथा कि "जो कुछ हो रहा है वह सब ठीक है, हमें उससे क्या करना है -" यह भाव जाता रहा और उसकी जगह "इन सब उलझनों में से हम किस तरह अपना रास्तानिकाले"[2] जैसी प्रवृत्ति युवकों के मन में उत्पन्न हुई।

किन्तु एक प्रश्न है कि जनता के मन में विद्रोह का जन्म कैसे हुआ? और यह क्रान्ति की भावना एक क्षेत्र से उठकरसर्वत्र व्याप्त हो गई। समाज में सर्वतः विद्रोह की भावना जागृत हो गयी इसका भी कारण था, क्रान्ति कासिद्धान्त समाज, धर्म और नीति में प्रविष्ट हो गया। यदि विद्रोह की मनोवृत्ति एक बार उत्पन्न हो जाती है तो फिर वह एक क्षेत्र में सीमित न रहकर, अन्य क्षेत्रों में भी व्याप्त जाती है। यह आवश्यक नहीं कि जो व्यवस्था पहले से स्थापित है, वह ही सर्वश्रेष्ठ है, उससे अच्छी व्यवस्था भी हो सकती है, किन्तु ये काम करना किसको है? जनता ही को न। पुरानी मर्यादा के प्रति लोगों के मन में शंका उत्पन्न हो जाती है और वह उसे नष्ट कर देते हैं और जब तक नयी का निर्माण न हो जाय तब तक जो बीच का समय होता है उसमें अराजकता और अव्यवस्था की स्थिति रहती है। हमारे देश में धार्मिक, सामाजिक और नैतिक तीनों क्षेत्रों में प्राचीन परम्पराओं का कोई मूल्य नहीं रह गया था किन्तु नये मानदण्डों कानिर्माण होना अभी बाकी था। "पुरानी समाज व्यवस्था, पुराने धर्म विचार और पुराने नीति बन्धनों के विषय

- -

1- समाज और साहित्य- प्रगतिवाद ही क्यों?- अंचल
2- संसार की [illegible] क्रान्ति और हिन्दुस्तान -बी०एस० केर-पृ०- 264

में मन में शंका वृत्ति उत्पन्न हो गयी। श्रद्धा का नाश होते ही बन्धन शिथिल पड़ गये, नये सामाजिक तथा नैतिक विचारों का प्रयोग होने लगा। इन सबका प्रभाव युवकों के मन पर हुआ और उसकी पहले की निश्चित दिशा नहीं रह गई। बड़ों को जिन प्रश्नों का उत्तर न मालूम हों उनके विषय में युवकों के मन में भी अनिश्चय रहना स्वाभाविक ही है।"[1]

आर्थिक संकट से इस परिस्थिति को और जोर मिला। विद्यार्थी वर्ग इस आर्थिक वैषम्य से ज्यादा असन्तुष्ट दिखाई दिया क्यों कि उसके आनन्दमय स्वप्न मिट्टी में मिल गये उन्हें भयंकर आर्थिक तंगी का सामना करना पड़ा । पढ़ने-लिखने के बाद उनके लिये कोई व्यवसाय सुलभ न रह गया था अतः उन्हें बेकारी की समस्या का सामना करना पड़ता था। इससे इन युवकों के मन मेंयह बात उठने लगी कि समाज में आर्थिक नीति में अवश्य कहीं कुछ त्रुटि है अतः इस गलत आर्थिक ढाँचे को जड़मूल से उखाड़ फेंकना चाहिये और एक नयी समाज व्यवस्था का निर्माण करना चाहिये जिसमें सभी के लिये [illegible] उपलब्ध हो। युवकों के मन को यह बात कचोटने लगी कि सशक्त, बुद्धिमान, शिक्षित युवकों को भी जिस समाज में पेट भर अन्न के लिये मारे-मारे फिरना पड़े अवश्य ही ऐसे समाज में कुछ त्रुटि अवश्य है। समाज केइस दोष को दूर करने के लिये पूँजीवादी एवं नफाखोरी व्यवस्था पर नियंत्रण किया जाना आवश्यक है। जब तक ये नियंत्रण नहीं होगा समाज से आर्थिक वैषम्य, बेकारी, अनैतिकता, भ्रष्टाचार, घूसखोरी , हिंसा आदि कभी खत्म नहीं होगी।

युवकों में आर्थिक वैषम्य के प्रति विद्रोह के साथ-साथ, समाज के धार्मिक और नैतिक बन्धनों के प्रति भी विरोध कीप्रवृत्ति दिखाई दी। "इसका कारण यह था कि उच्च शिक्षा के कारण जिस बुद्धिवाद की वृद्धि हुई, रूढ़ धर्म और नीति उसका सन्तोष न करा सकी। इससे विद्यार्थी वर्ग में एक समय व्यक्ति स्वातंत्र्य की हवा बही। परंतु अर्थ-संकट ने उन्हें बता दिया कि इस स्व[illegible] का परिणाम समाज के लिए कैसा होता है।"[2]

- -

1- संसार की सामाजिक क्रांति और हिन्दुस्तान- बी०एस० केर, पृ०- 264-265
2- वही, पृ०- 268

आज का युवक सार्वजनिक जीवन के प्रति निरुत्साही एवं उदासीन हो गया है, वह सोचता है कि समाज की अव्यवस्था के प्रति हम चाहें कितना यत्न करें, होगा कुछ नहीं, फिर हम व्यर्थ में उस रास्ते पर क्यों जाय यह भावना युवकों के मन में घर कर गई।

ये तो थी युवकों की समस्या किन्तु समाज की एक मात्र यही समस्या नहीं था और भी अनेक समस्या थीं उनमें से एक काफी बड़ी स्त्री समस्या थी। "स्त्री जीवन पर विचार करते समय अनेक आर्थिक, सामाजिक बातों का विचार करना पड़ता है। स्त्रियाँ नौकरी करें या नहीं, विवाह किस उम्र में करें, घर के काम-काज करें या नहीं, शिक्षा लड़कों के साथ प्राप्त करे या अलग से इत्यादि प्रश्नों को अलग-अलग हल करना संभव नहीं। हमारे समाज का आर्थिक संघटन किस प्रकार का होना चाहिये, कैसा है और होगा, उपर्युक्त प्रश्न को इसी दृष्टि से हल करना चाहिये। स्त्रियाँ, वैवाहिक जीवन, नीति और समाज का आर्थिक संघटन ये बातें इसप्रकार अन्योन्याश्रित है कि इन सब पर प्रत्येक समाज को समष्टिगत दृष्टि से विचारकर अपनी समस्याओं को हल करना चाहिये।"[1] प्रगतिवाद समाज के इन सब पहलुओं पर विचार करता हुआ आगे बढ़ता है, वह समाज में व्याप्त सारे संघर्षों को अपने में समेटता हुआ उसे सही रास्ता दिखाता है। "प्रगतिवाद का सामाजिक पहलू है मनुष्य की आत्मा का चीत्कार, समाज की नींव डालने में जो भूलें रह गई हैं वे नियति की अनिवार्यता नहीं वरन् दुनिया की पूँजीवादी सभ्यता के शोषण की त्रुटियाँ हैं जिनके सहारे समाज टूट फूट कर जीर्ण और दरारों से भरे हुए एक विशाल घर की तरह इलियट का डिकेड हाउस बनकर खड़ा है।"[2]

"वर्तमान समाज की कुरूपताओं से कट कर भावी समाज की कल्पना की ओर दौड़ने वाले स्वप्न दर्शियों को यह नहीं भूलना चाहिये कि समाजों का आधार व्यक्तियों के सद्गुणों पर नहीं हुआ करता बल्कि एक प्रणाली पर होता है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की स्वतंत्रता को परिमित करके दोषों का निग्रह किया जाता है।"[3]

- -

1- संसार की सामाजिक क्रांति और हिन्दुस्तान- के०एस० बेर-पृ०- 245
2- समाज और साहित्य-प्रगतिवाद एक अनुशीलन- अंचल-पृ०- 25
3- समाज और साहित्य-साहित्य और क्रान्ति की परम्परा-अंचल- पृ०- 117

हमारे समाज में जो ... व्याप्त है उसे राह दिखानी है प्रगतिवादी साहित्य को वह एक ऐसे समाज की रचना का संदेश देता है जिसमें आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार समाज की व्यवस्थाको बदल देना चाहिए या सामाजिक सिद्धांतों के अनुसार आर्थिक परिस्थिति कानिर्माण किया जाना चाहिये। "परिस्थिति के अनुसार अपने को बदलने की अपेक्षा अपनी योजना के अनुसार परिस्थिति को बदलने का यत्न किया जाना चाहिये।"[1] आज यह प्रश्न हमारे समाज के सामने उपस्थित है। प्रगतिवाद भविष्य के प्रति आशावान होता हुआ, मानव जीवन के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता है। वह मानव के उज्ज्वल भविष्य की कामनाकरता है-"जीवन कोई धुंधली और छोटी मोमबत्ती के समान नहींजीवन तो उस सुन्दर टार्च की तरह है जिसे मानव को विश्व के उन विशिष्ट क्षणों में पकड़कर अखण्ड प्रकाश के रुप में जलाकर देखना होगा ताकि मानवता की वर्तमान पीढ़ी के साथ-साथ भावी सन्तति भी जीवन का आलोक देखसके।"[2]

1936 से पहले के काव्य में प्रगतिवादी -काव्य की ध्वनि-

जिस समय देश में अन्य कवि वर्तमान अव्यवस्था को देखकर विषाद से ग्रस्त होते हुए भी मौन थे, वर्तमान यथार्थ से मुँह मोड़ रहे थे, निराशा के अंधकार में डूबे हुए थे, उस समयश्री गया प्रसाद शुक्ल "सनेही" जी ने आगे बढ़कर जन सामान्य में आत्मविश्वास जगाया और वर्षों से शोषित भारतीय जनता में जो निराशा में डूबी हीन भावना से ग्रस्त थी स्वाभिमान का संचार किया और पूँजीवाद के विनाश के लिये और समाजवाद के निर्माण के लिये जन सामान्य को क्रान्ति का सन्देश दिया।

आरम्भिक युग की आदि समष्टिवादी स्थिति का उल्लेख कवि करता है कि उस समयकोईभेद नहीं था और सामाजिक व्यवस्था में समानता का भाव था-

" मुँह एक हो और दूसरा शेर नहीं था
एक बाज हो और अनेक बटेर नहीं था,

1- संसार का सामाजिक क्रांति और हिन्दुस्तान- के0एस0 बेर-पृ0- 246
2- शॉ के शब्द

एक जबर हो और दूसरा जेर नहीं था

आए दिन यह मचा हुआ अंधेर नहीं था।

सब को सम संसार में सब सुख, सकल सुपास थे, प्रभु उनमें कुछ थे नहीं और नहीं कुछ दास थे।"[1]

समाज में व्याप्त वर्ग विषमता के प्रति कवि का आक्रोश फूट पड़ा और कवि पूँजीवादी व्यवस्था के नाश की कामना करने लगा जो स्वयं तो राज करता है और अपने अधीन लोगों को भूखों मारता है-

" कुछ भूखों मर रहे सहातन शीर्ण हुआ है

कुछ इतना खा गए कि घोर अजीर्ण हुआ है

कैसा यह वैषम्य भाव अवतीर्ण हुआ है।

कुछ मधु पीकर मस्त हो, आँसू पीकर कुछ रहे

कुछ लूटे संसार सुख, मरते जीकर कुछ रहे।

पूँजीवादी समाज व्यवस्था के दो ही अभिशाप हैं-भोग और पीड़ा शोषक के व्यापक चक्र में सामान्य जीवन पीड़ा का भोग बनता है और वैभव के स्वामी भोग की पंकिल वृत्ति में ही शांति का अनुभव करते हैं। दोनों स्थितियाँ जीवन का विनाश करती हैं।[2]

सनेही जी पूर्णतः मार्क्सवादी कलाकार नहीं थे, उन्हें उसका अनीश्वरवादी सिद्धांत मान्य नहीं था। वह मार्क्सवाद के राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तों के समर्थक थे। अतः सनेही जी के अपनी रचनाओं में सामाजिक व्यवस्था को एक जागरूक और चेतन अभिव्यक्ति प्रदान की है। सनेही जी से प्रेरणा प्राप्त करके, हितैषी, बन्धु आदि प्रमुख कवि इस ओर आकर्षित हुए और ऐसे कवियों की संख्या बढ़ने लगी जिनमें मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रति अटूट आस्था थी और जो पूर्णतः मार्क्सवाद पर विश्वास करते थे। इनमें सर्वप्रमुख थे डा० [illegible] शर्मा। इनके अतिरिक्त सनेही मण्डल के कवियों में सामाजिक चेतना तो थी और वह मार्क्सवाद के समर्थक भी थे किन्तु वे पूर्णतः मार्क्सवादी नहीं थे।

1- साम्यवाद शीर्षक-कविता "प्रताप" 12 अप्रैल सन् 1920 पृ0-8 हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना से उद्धृत।

2- छायावादोत्तर हिन्दी कविता- डा0 रमाकान्त शर्मा-पृ0- 117

डॉ० रामविलासशर्मा-

डा० रामविलास शर्मा ऐसे पृथमकवि हैं, जिन्होंने स्वयं को पूर्णत: मार्क्सवादी कलाकार घोषित कर दिया और उनमें मार्क्सवादी स्वर स्पष्टत: सुनायी देने लगे। शर्मा जी ने मार्क्स के सिद्धान्त का गहन अध्ययनकरने के बाद उसे अपने दर्शन में आत्मसात किया था। रूपतरंग ।1929। की रचना इसका उदाहरण है।

जगदम्बा प्रसाद मिश्र "हितैषी"-

हितैषी जी सनेही से प्रेरणा प्राप्त कर सामाजिक विषमताओर वर्ग-संघर्ष के प्रति उन्मुख हुए और इसी सन्दर्भ में उन्होंने सन् 1923 में "मजदूर"शीर्षक कविता लिखी। इस कविता में उन्होंने मजदूरों की दयनीय स्थिति का वर्णन करते हुए उनके सामाजिक महत्व पर प्रकाश डाला।

राधावल्लभ पाण्डेय "बन्धु"

बन्धु जी भी सनेही मण्डल के कवि हैं इनकी रचनायें सुकवि में निकलती रही हैं। बन्धु जी पूँजीवादी शोषण से उत्पन्न हुई आर्थिक विषमता को दूर करने के लिएक्रांति को आवश्यक मानते हैं। कवि ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं, जिसमें अन्याय और अनीति समाप्त होकर सभी वर्ग सुख और शान्ति से जीवन व्यतीत करें।

दुर्गादत्त त्रिपाठी-

त्रिपाठी जी भी साम्यवादी धारा से प्रभावित थे और इनकी भी फुट-पुट कवितायें देश के वर्ग-संघर्ष को अभिव्यक्त करती हैं। इनकीरचनाएं "मनोरमा"में प्रकाशित हुई हैं, जो क्रान्ति की पक्षधर हैं और देश में साम्यवाद का सपना साकार करना चाहती हैं।

शिव [illegible]री दीक्षित"मयंक"

मयंक जी राष्ट्रवादी कलाकार थे इनमें गुलामी शासन के प्रति आक्रोश था और देश-प्रेम से ओत-प्रोत रचनायें लिखना, इनका उद्देश्य था इसी परिप्रेक्ष्य में साम्यवाद

की ओर भी आकर्षित हुए। इनकी रचनायें "प्रताप" में और झाँसी से निकले हुए "क्रांतिकारी" पत्र में प्रकाशित होतीथीं। ये बड़े ही ओजस्वी और क्रान्ति के घोर समर्थक थे।

श्याम बिहारी शुक्ल "तरल"

तरल जी मात्र बौद्धिक सहानुभूति के सहारे ही मजदूरों के लिये काव्य नहीं लिखते थे, बल्कि कानपुर में मजदूर कार्यकर्ता भी रहे और मजदूरों के संघर्षों को झेलते हुए अपनी कविता का विकास किया है इसी कारण अपनी रचना "मजदूर जगत" में मजदूरों को अपनी रचना भेंट करते हुए कहा है-" उस महान शक्तिशाली ,क्रान्तिकारी मजदूर को, जो अपनी प्रबल शक्तियों को भूलकर आज असमर्थ सा होकर,अभिमानी धनिकों की ठोकर खा रहा है, अपनीयह तुच्छ भेंट समर्पित करता हूँ।

रामधारी सिंह दिनकर-

रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में कृषक वर्ग की करुण व्यथा का चित्रण है। भारत का अन्न निर्माता स्वयं एक एक दाने को तरसता है। कितनी विडम्बना है कवि की आत्मा इस विषम घूँट को पी नहीं पायी और चीत्कार कर उठी-हुँकार में।

" दीन दलितों के क्रन्दन बीच
आज बयाकुल गये भगवान।"[1]

दिनकर के काव्य में सर्वत्र क्रान्ति के उग्र स्वर सुनायी पड़ते हैं। एक पराधीन और प्रताड़ित देश में युवक कवियों का विद्रोह करना ही स्वाभाविक है।कवि ने समाज में व्याप्त कुरुतियों पर कड़े आक्षेप किये है।दिनकर मार्क्सवादी तो नहीं है किन्तु उनके विद्रोही स्वरूप में समाज की अव्यवस्था के प्रति असन्तोष की भावना सर्वत्र दृष्टिगत होती है जो प्रगतिवादियों के सामाजिक द्वन्द्व से मिलती-जुलती है।

आज की पूँजीवादी व्यवस्था में आम व्यक्ति का रहना कितना मुश्किल होता है। एक वर्ग,धर्म और विकास के साधनों को अपने जीवन का आधार बनाकर चलता है और

1- रामधारी सिंह दिनकर- रसवन्ती

निर्धन वर्ग अथक परिश्रम के बादभी अपने जीवन की आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाता। इसी वैषम्य को दिनकर जी रेणुका में व्यक्त करते हैं-

> " विद्युत की इस चकाचौंध में
> देख दीन की लौ रोती है
> अरी हृदय को थाम महल के
> लिए झोपड़ी बलि होती है।"[1]

जीवन की विषमताओं में उलझकर मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता। दिन रात रोटी की तलाश में भटकता मनुष्य अपनी किसी और आवश्यकता की ओर ध्यान ही नहीं दे पाता है।कवि ने जीवन की इस विडम्बना को अनुभव किया-

> " सुख में जीभ, शक्ति भुज में जीवन में सुख का नामनहीं
> वसन कहाँ सूखी रोटीभी, मिलती दोनों शाम नहीं।"

श्री रामाराम शुक्ल-

शुक्ल जी ने विधवा नारी की कारुण्य दशा का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है, जिसे समाज बेसहारा छोड़ देता है, उसे न जीने देता है और न मरने ही देता है-

"क्यों वह उजड़ रही है? इस पुष्प वाटिका का माली कहाँ गया है?"

मिलिन्द जी ने लिखा है-" मेरी आस्था है कि अबयुग बदल गया है और पुराने जमाने के घिसे-पिटाए काव्योपकरणों की सीमा में कविता को कैद नहीं रखा जा सकता।" "भक्तों ने भगवानकी, चारणोंने सत्ताधारियों की चाटुकारों ने वैभवशालियों की, प्रेमियों ने प्रेमिकाओं की, साधकों ने अलौकिक रहस्यों की तथा विलासियों ने नारी के बाह्य सौंदर्य की उपासना बहुत की। अब समय आ गया है कि नये युग का कवि जन देवता की मानवता की भी उपासना करे, उसके बहु पीड़ित,दलित,शोषित तथा उपेक्षित अंग की भी।"[2]

1- रेणुका- दिनकर-पृ0- 3।

2- सियाराम शरण गुप्त- झाँकी

समाज के दलित और पीड़ित जन समूह को इस काल के कवियों ने सजल आँखों से देखा है। जहाँ भारतेन्दुकाल के कवि समाज की व्यथा से मात्र कराह कर रह गये थे वहाँ द्विवेदी काल के कवियों ने उसे कारण सहित वाणी भी प्रदान की है। द्विवेदीकाल के कवि मैथलीशरण गुप्त की रचनाओं में शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश को वाणी मिली है। गुप्त जी ने समाज के सबसे अधिक शोषित किसान वर्ग के लिये एक अलग से "किसान"नामक लघु काव्य लिखा है, जिसमें पूँजीपति के चंगुल में फंसे किसानकी करुण कथा है जो महाजन और जमींदार के स्वार्थ अग्नि में स्वाहा हो जाता है किन्तु स्वार्थ अग्नि है कि कम होने का नाम ही नहीं लेती, वह किसान कीपीढ़ी दर पीढ़ी आहुति लेती जाती है-

"बनता है दिन-रात हमारा रुधिर पसीना
जाता है सर्वस्व सूद में फिर भी छीना
हा हा खाना और सर्वदा आँसू पीना
नहीं चाहिए नाथ! हमें अब ऐसा जीना।"[1]

1936 से पहले के काव्य में भी प्रगतिवाद के स्वर व्यक्त होने लगे थे। बस अन्तर मात्र इतना था कि इस समय तक कवियों की दृष्टि शोषित व्यक्तियों की ओर गयी थी, शोषितों की दीन-हीन दशा का वर्णन मात्र कवियों का ध्येय था। किन्तु वे शोषण क्यों है? उसका कारण और समाधान, इसकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया। इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी कवियों के लिये। एक माहौल तैयार करने में इन कवियों ने सहायता दी।

सिर पर लदा घास का बोझा तन पर नहीं एक भी सूत
हाय!हाय!कम्पित होता है जाड़े से भारत का पूत
छोटे-छोटे बच्चे घर पर देख रहे हैं उसकी बाट
किन्तु शोक वह दुखिया मोटा बिक न हुई है उसकी बाट।[2]

वे खेती जिसका है किसी अन्न को उपजाता है वह स्वयं भूखा है।जो महल का निर्माण करता है उसके स्वयं के सर छिपाने को भी जगह नहीं है-

---

1- मैथिलीशरण गुप्त- भारतीय कृषक- सरस्वती मई-1916
2- केशव प्रसाद- सरस्वती फरवरी- 1915

समाज के दलित और पीड़ित जन समूह को इस काल के कवियों ने सजल आँखों से देखा है। जहाँ भारतेन्दुकाल के कवि समाज की व्यथा से मात्र कराह कर रह गये थे वहाँ द्विवेदी काल के कवियों ने उसे कारण सहित वाणी भी प्रदान की है। द्विवेदीकाल के कवि मैथलीशरण गुप्त की रचनाओं में शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश को वाणी मिली है। गुप्त जी ने समाज के सबसे अधिक शोषित किसान वर्ग के लिये एक अलग से "किसान"नामक लघु काव्य लिखा है, जिसमें पूँजीपति के चंगुल में फँसे किसानकी करुण कथा है जो महाजन और जमींदार के स्वार्थ अग्नि में स्वाहा हो जाता है किन्तु स्वार्थ अग्नि है कि कम होने का नाम ही नहीं लेती, वह किसान कीपीढ़ी दर पीढ़ी आहुति लेती जाती है-

" बनता है दिन-रात हमारा रुधिर पसीना
जाता है सर्वस्व सूद में फिर भी छीना
हा हा खाना और सर्वदा आँसू पीना
नहीं चाहिए नाथ! हमें अब ऐसा जीना।"[1]

1936 से पहले के काव्य में भी प्रगतिवाद के स्वर व्यक्त होने लगे थे। अन्तर मात्र इतना था कि इस समय तक कवियों की दृष्टि शोषित व्यक्तियों की ओर गयी थी, किसानों की दीन-हीन दशा का वर्णन मात्र कवियों का ध्येय था। किन्तु ये शोषक क्यों है? इसकाकारण और समाधान, इसकी ओर किसी का भी ध्यान नहीं गया। इसके अतिरिक्त प्रगतिवादी कवियों के लिये।एक माहौल तैयार करने में इन कवियों ने सहायता दी।

" सिर पर लदा घास का बोझा तन पर नहीं एक भी सूत
हाय!हाय!कम्पित होता है जाड़े से भारत का पूत
छोटे-छोटे बच्चे घर पर देख रहे हैं उसकी बाट
किन्तु आज वह दुखिया लौटा विकल हुई है उसकी बाट।[2]

ये खेती जिसका है जिसी अन्न को पकाता है वह स्वयं भूखा है।जो महल का निर्माण करता है उसके स्वयं के सर छिपाने को भी जगह नहीं है-

---

1- मैथिलीशरण गुप्त- सरस्वती पुस्तक- [illegible] मई-1916
2- केशव प्रसादमिश्र- सरस्वती फरवरी- 1915

" जिस खेती से मनुज मात्र अब भी जीते हैं
उसके कर्त्ता हमीं यहाँ आँसू पीते हैं।
भरकर सबके उदर आप रहते रीते हैं
मरते हैं निरुपाय हाय! शुभ दिन बीते हैं।"[1]

किसान के मन में एक शिकायत है एक विद्रोह है कि वह कितनी मेहनत करता है ग्रीष्म, शीत, वर्षा किसी की भी परवाह किये बगैर वह श्रम करता रहता है परन्तु उसका फल उसे नहीं मिलता। सामाजिक व्यवस्था कुछ ऐसी है कि मध्यवर्ग आदमी अपने स्वार्थवश गरीबों को अपना मोहरा बनाकर अपना उल्लू सीधा कर लेते हैं-

" कड़ी धूप में तीक्ष्ण ताप से तनु है जलता
पानी बनकर नित्य हमारा रुधिर निकलता।
तदपि हमारे लिए यहाँ शुभ फल कब फलता?
रहता सदा अभाव, नहीं कुछ भी वश चलता।"[2]

किसान और मजदूर के बच्चे शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकते। उनके पास इतना पैसा और इतनी निश्चिन्तता कहा? कि वह अपने बच्चे को स्कूल भेजकर स्वयं कमाये खाये। यहाँ तो इस बात की बाट जोहते रहते हैं कि कब उनका बच्चा पाँव से चलना सीखे और काम पर जाने लगे। जिस समय अमीरों के बच्चे खिलौने से खेलते हैं दूध, मलाई खाकर पालना झूलते हैं उस समय इन गरीब मजदूर, किसान के बच्चे झुलसती धूप में खेतों पर अपने नन्हें-मुन्ने हाथ पैरों से ज्यादा नहीं कुछ तो छोटा-मोटा सामान ही उठाकर अपने माँ-बाप को देते हैं। थोड़े बड़े होते हैं तो बाल श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं उनको शिक्षा आदि से कोई सरोकार नहीं-

"शिक्षा को हम और हमें शिक्षा रोती है,
पूरी बस वह घास खोदने में होती है।
कहीं यहाँ विज्ञान, रसायन भी सोती है
क्षुधा हमारे लिए एक दाना मोती है।"[3]

- -

1- किसान-मैथिली शरण गुप्त-पृ0-3
2- किसान- वही, पृ0-4
3- वही, पृ0-5

आज का भौतिक युग धन की पूजा करता है और संसार में धन ही सब कुछ है मनुष्य की कीमत कुछ भी नहीं। सारा ताना-बाना धन के चारों तरफ घूमता है। मनुष्य ने ही धन का निर्माण किया किन्तु आज धन मनुष्य मात्र पर राज कर रहा है।धन कमाने की होड़ में मनुष्य हर सम्भव कार्य करते हैं एक दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं, मनुष्य-मनुष्य का खून बहाने में नहीं हिचकता, केवल इसी धन के कारण। धनी बनने का सपना आज सभी मनुष्य के अन्दर रग-रग में समा गया है और वह पागल के समान उस ओर भागा जा रहा है-

" धन को ममता मिली हमीं से और हमीं उस पर भूले
अपने से भी बढ़कर उसकी चिन्ता में पड़कर भूले
अपने ऊपर आप चढ़ाया हमने क्या पागलपन है
सब तो पशु-पक्षी ही अच्छे, जिन्हें न धन का बन्धन है।[1]

घूस लेना आज के समाज की बहुत बड़ी कुरीति बन गयी है। छोटे-छोटे पद के लोगों से लेकर बड़े तबके के आफीसर तक घूस लेने से बाज नहीं आते। पुलिस क्षेत्र में घूस का साम्राज्य है, इन पुलिस वालों की जेब भरकर उन्हीं का नाक के नीचे लोग भ्रष्टाचार, चोरी-डाके सब करते रहते हैं और पुलिस वाले उनके खिलाफ कुछ नहीं करते। गुप्तजी ने किसान नामक कविता में दिखाया है कि युवक द्वारा लूटमार करने पर उसे घूस लेकर छोड़ दिया गया, पुलिस ने उसके खिलाफ कोई कार्यवाही नहीं की-

" अब तक कोई नहीं जानता, आया हूँ मैं आप
मान रहे तो जान-सोच लो, तुम हो उसके बाप"
तो क्या करूँ" पिता ने पूछा उग्र भाव को त्याग,
तब शुभचिन्तक जमादार ने दिखलाया अनुराग
था सारांश एक गिन्नी से चल सकता है काम
पर गिन्नी कैसी होती है, सुना आज ही नाम।"[2]

1- किसान, मैथिलीशरण गुप्त-पृ0- 10
2- वही, पृ0-15

गरीबों का शोषण करने में कोई पीछे नहीं रहता, मानो सबमें होड़ लगती हो कि कौन कितना हजम कर सकता है। [illegible] ,पटवारी सब किसान को चूसने में लगे रहते हैं। किसान की जमीन हथिया ली गई, उसके पास जमीन नहीं है, जमींदार उस पर खेती करने के लिये ज्यादा पैसे माँगता है, किसी तरह पटवारी को 2/-रुपये देकर बात पचीस में पटाई गई तो जमींदार ने भोले, अनपढ़ किसान से लिखा पढ़ी करवाई और साथ में चेतावनी भी दे दी कि वह इस बात का जिम्मेदार नहीं है कि फसल बिगड़े या सूखा आदि पड़े वह तो अपने पैसे लेकर रहेगा-

"हुक्म हुआ फिर "मगर कबूलत होगी फिर बेकार
इन्दुलत सब नाम का रक्का लिखा गया लाचार
फिर भी वह "बेकार कबूलत" रही उन्हीं के पास
उतने में उतने ही मिलकर पूरे हुए पचास।"[1]

चारों तरफ से शोषित युवक आक्रोश से भर उठा। आज का युवक जागृत हो चुका है उसके मन में एक द्वन्द्व चल रहा है। जब किसान का युवक सब तरफ से चूस लिया जाता है, फसल सूखे के कारण ठीक नहीं होती, महाजन ,पटवारी, जमींदार सब पैसे माँगने आते हैं जब नहीं मिल पाता तो पुलिस केस कर देते हैं युवक का सारा सामान कुर्क हो जाता है अब उसके मन में उबल रहा लावा फूट पड़ता है। यह अव्यवस्था ही है जो युवकों को अपराध की ओर प्रवृत्त कर देती है। मनुष्य अपने पेट को भरने के लिये अनैतिक कृत्य करने लगते हैं जो समाज को दूषित करते हैं और एक आवारा बन जाते हैं, युवक की दृष्टि में वे सब लुटेरे हैं चोर-डाकू हैं जो पचास के पचास लेते हैं, जिनका सूद कभीखत्म ही नहीं होता, जो घूस लेते हैं-

"आप लुटेरे ,और बताते हैं हमें
लुटवाते हैं आप, सताते हैं हमें।
× × ×
जमादार वह कहाँ? आप पकड़े मुझे
आगे आकर यहाँ आज जकड़े मुझे
× × ×

1- किसान-मैथिलीशरण गुप्त- पृ0-17

यदि मैं डाकू बनूँ, मुझे क्या दोष है?
दोषी है तो पुलिस, उसी पर रोष है। "[1]

गुप्त जी ने "किसान" में लोगों द्वारा छल-कपट से भोले, निरीह किसानों को विदेश में मजदूरी कराने के लिये ले जाने की बात भी उठायी है। बेचारे गरीब निराश किसान को सब्ज बाग दिखलाकर विदेश में मजदूरी करवाने वाले और उनका शोषण करने वालों की दुनिया में कोई कमी नहीं है। सब्ज बाग के बहलावे में आये किसान का रंगीन दुनिया के बजाय क्या मिला देखिये-

" हम कुली थे और काले, गगन से मानों गिरे
पशु समान जहाज में थोड़ी जगहमें थे घिरे।
भंगियों का काम भी परवश हमें करना पड़ा
और कुत्तों की तरह पापी उदर भरना पड़ा। "[2]

प्रवासी मजदूरों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण गुप्त जी ने किया है। अधिकारी इन मजदूरों के साथ पशुवत व्यवहार करते हैं। उनके सामने ही उनकी ललनाओं की इज्जत उतारी जाती है। मजदूरों को पेट भर कर भोजन नहीं दिया जाता पर काम दूना लिया जाता है, चाहे हाथों में छाले पड़ जायें अथवा बीमार पड़ जायें उनसे चाबुक मार-मारकर काम लिया जाता है, इन मजदूरों की नवयौवनाओं को सबके सामने अपमानित किया जाता है-

" देखो, दूर खेत में है वह कौन दुखिनी नारी
पड़ी पापियों के पाले है वह अबला बेचारी
देखो, कौन दौड़कर सहसा कूद पड़ी वह जल में
पाप कर्म से पिण्ड छुड़ा कर डूबी आप अतल में।[3]

"किसान " में यों तो कवि ने एक भारतीय किसान की दीन-हीन दशा का चित्र खींचा है किन्तु यह प्रगतिवादियों से भिन्न प्रकार का चित्र था। इसमें किसान चुपचाप सारा अत्याचार सहता जाता है वह उसे अपना भाग्य मान लेता है, कभी कभी निराश होकर ईश्वर की ओर

1- किसान-मैथिलीशरण गुप्त- पृ0-28
2- वही, पृ0-35
3- वही, पृ0-38

ताकने लगता है, वह सोचता है इस दुख से त्राण वह ईश्वर ही दिलायेगा। कभी क्षणिक आवेश में वह विद्रोही होता भी है तो उसकीपत्नी उसे दबा देती है, वैसे वह नारी शक्तिवान है मात्र अबला नहीं अपने पति को हिम्मत बंधाती है और अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई अन्त में प्राण त्यागती है। आत्म समर्पण नहीं करती। कुल मिलाकर एक उपेक्षित पात्र को वाणी मिली है और प्रगतिवाद के लिये भूमि तैयार की गईहै। "किसान"तो गुप्त जी की प्रतिष्ठ रचना थी। किन्तु इसके अतिरिक्त "सुकवि" में छिटपुट रचनायें निकलती रहीं। जिनमें प्रगतिवाद के आंशिक तत्व मौहजूद थे। ये कवि वर्तमान सामाजिक अव्यवस्था के प्रति असन्तुष्ट थे और उसके प्रति अपना विरोध प्रकट करने लगे थे, इन कवियों का ध्यान कविता की साज सज्जा से हटकर दीन-दुखियों और उनकी अनगिनत समस्याओं की ओर गया, उसमें में से एक समस्या थी अशिक्षा की। गरीबों में शिक्षा का अभाव था, ये इतने गरीबथे कि अपने बच्चों के लिये दो समय का अन्न तक तो जुटा नहीं पाते थे शिक्षा तो बहुत दूर की बात थी। सुकवि में कवि चम्पक जी की कविता दीन पुकार इसी भाव को व्यक्त करती है-

" भोजन भीएक बार तो भी भर पेट नहीं
कितने ही व्रत रह काटता हूँ दिन तीस
कैसे पढ़ सके चार अक्षर हमारे बाल
पोथियाँ कहाँ से पावें, लावें कहाँ कहाँ से फीस।[1]

वर्तमान की शिक्षा कितनी बे-सिरपैर की है, जो युवकों काहित तो कम करती है मात्र एक बोझ बनकर रह गई है। शिक्षा व्यवस्था अंग्रेजों ने अपने मतलब की बनायी थी उनको इस बात से कोई सरोकार न था कि इस शिक्षाप्रणाली से युवकों को कोई लाभ होगा कि नहीं, वह वास्तव में शिक्षित होंगे भी कि नहीं उन्हें तो अपना शासन चलाने के लिये कुछ बाबू चाहिये थे इसी के आधार पर शिक्षा प्रणाली बनायी गई थी। इस शिक्षा के प्रति असन्तोष की भावना व्यक्त की है, श्री हरिदीन त्रिपाठी ने सुकवि में-

- -

1- सुकवि- 1932 अगस्त- कवि चम्पक

आजकल शिक्षा के अगार बेशुमार खुले
शिक्षा एक ही प्रकार होती नारि नर को।
कठिन परिश्रम से स्वास्थ्य की समाप्ति होती
सरफे में सम्पत्ति समाप्त होती घर की।
स्थानवृत्ति जो मिली तो बन बैठे बीबी-बाबू।
न मिली तो खाक छानते हैं दर दर की।
"दीन" किसी कला में प्रवीन हो हुए ही नहीं
बातें कुछ सीख ली हैं इधर-उधर की।"[1]

आधुनिक शिक्षा प्रणाली की अव्यवस्था पर श्री दामोदर सहाय सिंह जी कवि किंकर के विचार-

" परीक्षा प्रणाली जो है आजकल
यह कर देती लड़को को बिल्कुल अकल
परिश्रम बहुत काम होता है थोड़ा
है विद्यार्थी ट्राम गाड़ी का घोड़ा
किये पास बी०ए० या एम०ए० सही
पैरनमें है चलने की ताकत नहीं
अहा! जिन्दे ही मुर्दे कैसे हैं ये
सदा रोगों के घर बने से हैं ये।[2]

सुकवि के माध्यम से कवियों ने सामाजिक विषमता के प्रति भी आवाज उठानी शुरू कर दी थी-

" मजदूर गरीब धनी बस मालिक नीति यही पुतलीघर की
यह कर्म करे दिनरात कड़ा वह सैर करे नित मोटर की
चिन्ता नहीं माया का अंश इसे जो उपार्जित है इसके कर की
जब सेठ समाज मिटे तो कटे विपदा बिन वस्त्र रुपया घर की।"[3]

- -

1- श्री हरिदीन [illegible]- मुसाफिर खाना, सुलतानपुर-सुकवि अगस्त-1932
2- श्री दामोदर सहाय सिंह जी कविकिंकर-अक्टूबर 1929-सुकवि से।
3- श्री बालमुकुन्द प्रसाद सी०डी०सी०टी० असिस्टेंट मास्टर [illegible] सुकवि अगस्त 1929

तत्कालीन समाज अनेक समस्याओं से घिरा हुआ था। एक तो समाज को अपनी कुछ रुढ़ियाँ और कुरीतियाँ थीं जिससे मनुष्य त्रस्त था, दूसरी तरफ अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ के लिये कुछ समस्याओं को बीज बो दिये इसी में एक था अपनी पश्चिमी सभ्यताऔर शिक्षा को भारतीयों पर लादना । पश्चिमी सभ्यता का प्रलोभन भारतीय युवकों को अपनी ओर आकर्षित करने लगा, जिसमें एक अजीब स्थितिपैदा हो गई। ये युवक अपनी संस्कृति से मुँह मोड़ कर उससे भी वंचित हुये और पश्चिमी सभ्यताको भी पूरी तरह आत्मसात न कर सके किन्तु युवकों को अपनी संस्कृति की उपेक्षा करके पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगना भारतीय स्वीकार न कर सके-पाश्चिमी सभ्यता के प्रति खीझ व्यक्त की है शान्ति भिक्षु शर्मा "त्रिशूली" ने-

" दाढ़ी की न लाज इसने है स्वप्न में भी रखी
करके सफाया ली है, मूंछे एक एक बीन
छूटी भी न औरतें अछूती इससे हैं एव
बाल कतराने लगी सूरत बनी नवीन।[1]

तत्कालीन समाज की एक बहुत बड़ी समस्या थी अछूत की समस्या। सारे समाज में इस समस्या से कटुता और वैमनस्य का वातावरण बना हुआ था। अछूत वर्ग एक द्वन्द्व में अपना जीवन व्यतीत कर रहा था- इसके प्रति भी कवियों ने अपना विरोध स्पष्ट किया- अछूतों की समस्या पर श्री कविमल की कविता ।929 अगस्त के सुकवि से-

" मुझे अपनाना है तो आना मेरे घर क्योंकि
मेरे संग खाये हुए छूत माने जाते हैं
दूसरों की सेवा करते हैं तो इन्हीं का धर्म
धरम को छोड़ तुम भृत्य बन जाते हो
पुनर-विवाह करते हो तो न दोष तुम
छिप छिपकर भ्रूण हत्या करवाते हो

।- शान्ति भिक्षु शर्मा "त्रिशूली" सुकवि- ।929

लहसुन पियाज मांस खाते मद पीते यह
"कविमन" जिओ। इन्हें तुम भी तो खाते हो
कौन सी पवित्रता की तुम में परी है छाप
घृणा मान इनसे न देह भी छुवाते हो।।"[1]

समाज की एक और समस्या, धर्म की आड़ में ठगी, जाल साजी। भोले मानवों को धर्म का भय दिखलाकर कुछ ढोंगी-पाखण्डी अपनी तिजोरी भरते हैं, इस पर भी आद्यानाथ शुक्ल "अविनाश की कविता-

" साधुओं के वेश में अनेक लोग घूमते हैं
अच्छी प्रभुताई दिखलाइ देत इनमें
भोले-भाले कृषकों को घूम के सुनावें यह हो
राम-कुटिया बनानी है विपिन में
सारी चतुराई मुझसे न है बताई जाती सबसे
प्रसिद्ध "अविनाश" यही जिनमें।
काशी और प्रयाग के बहाने धूर्त पाँच-पाँच
रुपया कमाते एक दिन में।[2]

हमारे समाज में एक तरफ जहाँ अथाह धन का अम्बार लगा है वहीं भिखारियों की भी कमी नहीं। कहीं बड़े-बड़े महल खड़े हैं और कहीं फुटपाथों परसर्दी से ठिठुरते पशुवतमनुष्य। समाज की इस विषमता पर कवि चुप न साध सके समाज में व्याप्त भिक्षावृत्ति से कवि का मन आन्दोलित हो उठा और उसकी पीड़ा का मार्मिक चित्रण कर उठा। भिखारी का एक मार्मिक चित्र जो कवि सन्त प्रसादवर्मा ने खींचा है वह सहसा निराला के भिखारी की याद दिलाता है। कवि सन्त प्रसाद का चित्रण देखिये-

" वह भिक्षुक पथ पर आता
चिथड़ों में बदन छिपाये

- -

1- सुकवि- 1919 अगस्त
2- वही, सितम्बर

नंगे पावों मग चलकर
हो पीड़ित क्षुधा ज्वाल से
भ्रमता वह द्वार-द्वार पर
दारिद्र्य मूर्ति साव्याकुल
कांधों पर झोली डाले।
सन्तोष-श्वास लेता वह
दो टुकड़ों की भिक्षा ले
वह नर-कंकाल विकल सा
कुछ करुण स्वरों में गाता।"[1]

बेरोजगारी की समस्या ने युवकों के मन को कितना कुण्ठित किया है, समाज का कितना अहित किया है? ये बात शायद किसी से छिपी नहीं है। ये एक ऐसा अभिशाप है जो भारतीय समाज को ग्रस रहा है। समस्त सामाजिक अपराध इसी की देन हैं। पढ़-लिखकर भी कुछ करन पाने की खीझ युवकों को विद्रोही बना देती है, और यह विद्रोह अलग-अलग ढंग से प्रकट होता है कभी डकैती के रूप में कभी हिंसा के रूप में। बेरोजगारी पर कण्ठमणि शास्त्री विशारद ने एक कविता सुकवि में लिखी-

" बीस वर्ष माथा मार मैट्रिक किया था पास,
पूंछ के बिना था कुछ किस्मत जगी नहीं
बी०ए० पास होते पास बीबी जी पधार आईं
बच्चे पाँच होने में वे बिल्कुल ठगी नहीं।
फेल पास होते अन्त लीडर बना था किन्तु
निर्धनता एक इंच पास से डगी नहीं,
हाथ पैर जोड़ा, जोड़ा बीस बूट तोड़ा, थोड़ा
धरम भी न छोड़ा पर सर्विस लगी नहीं।"[2]

1- सुकवि- नवम्बर 1929
2- कण्ठ मणि [illegible]-विशारद" सुकवि सितम्बर 1929

जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया वैसे वैसे काव्य में प्रगतिवाद के स्वर तीव्र होते गये। काव्य में वर्ग विषमता, पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश, दलित किसान मजदूरों के प्रति सहानुभूति और स्त्रियों की जागृति का स्वर सर्वतः गूँजने लगे। जीवन की विषमता पर "सुकवि" की एक रचना दृष्टव्य है-

" बीतती गरीबों पर आपदाएँ कौन कौन उनको खबर क्या जो सो रहे महलमें,
किसकी कमाई रोजखा रहे मजे के साथ
किसकी बदौलत है साहबी असल में
कुछ भी सहानुभूति करते न भूलकर उनसे
अमीर लोग धन के अमल में
शक्ति का असीम ज्ञान हो गया उन्हें जो कहीं
नशा होगा हिरन तमाम एक पल में। "[1]

देश में फैली अदृश्य की भावना ने हरिजनों का जीना दुसवार कर रखा था। सवर्ण हरिजनों पर बहुत अत्याचार करते थे। हरिजनों के मन में कितनी पीड़ा है सवर्णों के इस अत्याचार से, इसे व्यक्त किया है मणिराम कंचन ने-

" पशु भी जाकर तालाबों में पी सकते जो नीर
वहीं हमारे छुये छूत हैं ऐसाअधम शरीर?
देख रहो हो क्या न आप यह व्यापक अत्याचार?
क्यों अरण्य रोदन समान होती फिर दीन पुकार।[2]

जहाँ एक ओर हरिजनों की आन्तरिक पीड़ा का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर इस काल में पूँजीपतियों के प्रति आक्रोश भी व्यक्त किया गया-

" विश्व व्यापी व्यवसाय, व्यवसाय हैं विरक्त
ऐंठना रकम धन्धा अपना है उठ भोर
लूट लूट जगत का धन भरते हैं घर
जीवन गरीबों का बनाते हैं नरक घोर

1- श्रीबाबूलन प्रसाद सी०डी०सी०टी०-बलरामपुर -सुकवि जनवरी-1933
2- मणिराम कंचन-सुकवि- फरवरी 1933

बड़े-बड़े फर्मखुले यद्यपि हमारे नाम
किन्तु हम सा न दुनिया में कोई काम चोर
तीन काम अपने हैं मुफ्त खोरों को खिलाना
मुफ्त खानाऔर पैदा कर देना मुफ्त खोर।"[1]

एक ओर ये बड़े-बड़े व्यवसायी मुफ्तखोरा हैं तो दूसरी ओर मजदूर स्वयं इन मुफ्तखोरों के आराम का समान तैयार करके स्वयं इन सुख सुविधाओं से कितने दूर हैं-

" ओ मजदूर!
ओ मजदूर!
तू सब चीजों का कर्ता है, तू सब चीजों से है दूर!
ओ मजदूर!"[2]

चारों तरफ पैसों का ही बोलबाला हो गया, समस्त सामाजिक व्यवस्था का आधार अर्थ हो गया। इसलिये पूँजीपति समाज के ठेकेदार हो गये और मजदूर किसान इन सबसे दूर हो गये-

" देखो जिधर उधर ही दौलत ही के चोंचले हैं
आराम और खुशी से गरदूरहैं, तो हम हैं।
दुनिया के काम सारे बे-खौफ चल रहे हैं
खतरे की हर जगह पर मामूर हैं तो हम हैं
सरमायादार जाने किस जोन में है भूले
यह सोचते नहीं हैं-"मजदूर है तो हम है।[3]

शोषितों की शृंखला में एक बड़ी स्त्री जाति की भीथी। पुरुष प्रधान समाज में नारी जातिपर तरह तरह के बन्धन थे, जो कि पुरुष जाति द्वारा अपने स्वार्थ सिद्धि एवं सुख के लिये बनाये थे। पुरुष को परमेश्वर और स्त्री को दासी समान समझना समाज का परमधर्म था। किन्तु अब समय बदल रहा था शिक्षा के प्रसार से और पश्चिमी लहर से स्त्री जागृत हो रही थी, उसे अपने अधिकारों का ज्ञान तो हो ही गया था और वह पुरुष

1- कवि विरक्त- सुकवि फरवरी- 1933
2- श्री त्रिलोकी-सुकवि- नवम्बर 1933
3- श्री त्रिशूल- सुकवि अप्रैल- 1934

जाति को चुनौती भी देना सीख रहीथी। ऐसी भावना व्यक्त की है सुकवि में कवि वचनेश ने-

" बात कहते ही लात मार करते हो चुप,
एक तो चपालित से काहे चकराते हो?
जन्म भर कैद ही में इज्जत हमारी है तो
सरकारी कैद क्यों अनीति बतलाते हो?
दासी बना रक्खा सैसे दास क्यों रहो न बने
लेने को स्वतंत्रता क्यों अधम मचाते हो?
"बचनेश" हम को सिखाते पिया पातिव्रत
आप अब पातिव्रत क्यों नहीं निभाते हो?"[1]

स्त्री जाति के शोषण में दहेज की समस्या ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया था। दहेज की समस्या आग की तरह फैल कर न जाने कितनी कलियों को अपनी आगोश में समेटचुकी थी- कवि रूपनारायण अग्निहोत्री ने लिखा-

" प्रभु ! नाकन में दम आय गयो
बर ढूँढत ढूँढत है पग दूखे।
कम वारि हजार ते माँगे को ऊ ना
सुनावत द्वार पै बैन हैं रूखे।[2]

कन्याओं का घर में होना माँ-बाप का सर दर्द बन गया, अब पिता अपनी पुत्री को ब्याहने के लिये चिन्तित रहने लगे, दहेज की प्रथा ने स्त्री जाति को अपने माता-पिता पर एक बोझ बना कर रख दिया। लड़की की शादी आराम से होने का मतलब था कि उसका घर रुपयों पैसों से भरा हो-

" ब्याही जायें कन्यायें, जब घर हो रुपये पैसे।
कुप्रथा जहाँ हो ऐसी, वह जाति बढ़ेगी कैसे?"[3]

1- कवि बचनेश- 1933 अप्रैल सुकवि से
2- कवि रूपनारायण अग्निहोत्री-दहेज समस्या- 1933 अगस्त सुकवि
3- श्री केशवर [illegible]-"विनीत बाल" सुकवि- 1934

वक्त तेजी से बदल रहा था, शिक्षा के प्रसार ने और सामाजिक आन्दोलनोंने स्त्री जाति को जाग्रत करना आरंभ किया। गांधी जी ने स्त्री जाति को चहारदीवारी से निकालकर ड्योढ़ी पर ला खड़ा किया उसे स्वतंत्रता की लड़ाई में बराबर से उतरने के लिये ललकारा। स्त्री बाहर आयी बाहर के वातावरण में उसने चैन की सांस ली और सोंचना शुरू किया कि वो कितनी मूर्ख थी अभी तक वो पुरुषों के बहकावे में आकरपशुवत जीवन व्यतीत कर रही थी, वह पुरुष से किसीप्रकार कुछ कम नहीं, फिर क्यों ऐसा दासीवत जीवन व्यतीत करती है वह? अत: समानाधिकार की बात चल निकली-

" घर ही में रहूँ बन्द सहूँ मैं अनेक दुख
फिर भी कहो न सदा फैशन बनाइये
पीड़ा सहूँ प्रसव की क्रीड़ा करे आप सदा
कैसी हैविषमता ये ध्यान में सो लाइये
नारी औ नरन केर होमे अधिकार एक
उन्नति का युग है विचार खेत बाइये
लड़े हो न डंडे फिरो मौज के बजाते, खाना
रोज मैं पकाती आज आप ही पकाइये। "[1]

ये जाग्रति मात्र स्त्री जाति में ही नहीं अपितु किसानों एवं मजदूरों में आने लगी थी एक आक्रोश इस बुभुक्षित वर्ग में पल रहा था किसी भी समय ये प्रकटहो सकताथा और क्रान्ति ला सकता था-

" कम न दिखादे जिसे अबला विचारा कहीं
लेने बदला न लगे घोर अपमान का
कुण्ठित हो फेंक दे कहीं न हलमूठ अभी
रोक दे प्रवाह न अखिल अन्न दान का।
मौन हो सकल शील मन्द करदे न कहीं।
बन्द कर दे न यान विश्व के विधान का

- -

1- श्री ब्रज किशोर अवस्थी किशोर- सुकवि 1935

सावधान! सोच लो किसान-करुणा न कहीं
खोल दे त्रिलोचन त्रिशूली भगवान का।"[1]

मजदूर के मन में पल रहा विद्रोह आग की उगलने वाला है इस प्रकार की चेतावनी दी-सुकवि 1935 फरवरी में श्री सुकवि अशोक ने जो कि स्वर्ण-पदक से पुरस्कृत कविता है-

" त्यागी को मजदूर बता तुम दूर-सदा कर देते हो
नीचापन क्या चूस-चूस कर नहीं और को लेते हो
हुत हो चुका आज जगेगी, बेजबान की आह से
आग, उसी में निठुर जलेगा, मरता जगत कराह से।"[2]

बस यही उग्र स्वर मजदूरों के मार्ग दर्शक बनें और प्रगतिवाद इसी पृष्ठभूमि पर आगे चलने लगा। संपूर्ण साहित्य में मार्क्स से प्रभावित साहित्य जिसे प्रगतिवाद का नाम दिया गया, की दुन्दुभी बज उठी, और साहित्य की समस्त विधायें, इसी प्रकार के साहित्य से फलने फूलने लगीं।

===

1- त्रिशूली- सुकवि जुलाई 1936
2- अशोक- सुकवि फरवरी 1935

चतुर्थ-अध्याय

हिन्दी काव्य साहित्य में सामाजिक द्वन्द्व

1936 से 1942 तक के साहित्य में सामाजिक द्वन्द्व

संसार के मेहनत करने वालों, जागो तुम जिन्दगी के मालिक हो। सब लोग तुम्हारी मेहनत केवल पर जीते हैं। तुमसे मेहनत कराने के लिए ही उन्होंने तुम्हारे एक दूसरे के कन्धे मिला रखे हैं। लेकिन उन्होंने तुम्हें बाँध रखा है, तुम्हारी आत्मा को कुचल डाला है। अपने दिल और दिमाग को मिलाकर एक मजबूत ताकत बनो।"[1] मैक्सिम गोर्की के ये शब्द कवियों के प्रेरणा स्रोत बने और हिन्दी कवियों ने भी इसी से प्रभावित हो क्रान्तिकारी गीत गाने प्रारम्भ कर दिये।सदियों से सोयी जनता को जगाने लगे,उन्हें उनके अधिकार याद दिलाने लगे-

जवानों उट्ठो कर दो क्रान्ति।
कहाँ पतझड़ के बिना बसन्त। क्रान्ति के बिना कहाँ है शान्ति
रूढ़ियों के बन्धन में बँधा
पड़ा सड़ता है सुप्त समाज
जगत में जीना दूभर हुआ
कहाँ है तख्त,कहाँ का ताज
× × ×
भाग्य ने छीन लिया है भाग
विभाजित बन्धु बन्धु हो गये
एक ने हरण किया सर्वस्व
स्वत्व हैं औरों के खो गये।[2]

1- विश्वमित्र से "प्रगतिशील साहित्य की ओर" लेखक श्री सत्येन्द्र
2- कुसुम- जवानों उट्ठो लेखक-श्री त्रिशूल

मजदूरवर्ग का अभ्युदय-

"तुम समाज की विभूतियों को पैदा करने वाली महान शक्ति हो, तुम इसलिये दुखी हो कि तुम्हारे जीवन को आगे बढ़ने का अवसरनहीं, क्योंकि तुम्हारी मेहनत का फल तुम्हारे जीवन की रक्षा और पूर्ति में न लगकर समाज की एक बहुत छोटी सी श्रेणी के हाथ चला जाता है, जो उसे नष्ट करती है। समाज को जीवन रक्षा और जीवन निर्वाह के सब साधन इसी एक छोटी सी श्रेणी के हाथ में है। यह श्रेणी इन साधनों को संपूर्ण जनता की जरूरतों को पूरा करने के लिये उपयोग में न लाकर केवल अपने ही मुनाफे के लिये व्यवहार में लाती है और केवल उतनी हीपैदावार करती है, जितनी पैदावार करने से इस श्रेणी का स्वार्थ सिद्ध होता है। यही कारण है कि इतने बड़े-बड़े साधन समाज के हाथ में मौजूद होते हुए भी, अधिकांश जनता भूखी मरती है और नंगी रहती हैं।"[1]

पूँजीपतियों के इसी स्वार्थ लोलुप स्वभाव के कारण समाज दो वर्गों में बंट गया, पूँजीपतिवर्ग, मजदूर वर्ग। एक वर्ग शोषक बना तो दूसरा शोषित पूँजीपति वह कहलाया जिसके पास उत्पादन के साधन थे और मजदूर वर्ग वो बना जो अपने श्रम से उत्पादन करता था। एक वर्ग सम्पूर्ण ऐश्वर्य-आराम सम्पन्न समस्त समाज का प्रतिनिधि था और दूसरादीन-हीन, समाज से अलग, अपने जीवन को बोझ के समान ढो रहा था।

" चाँदी के टुकड़ों को लेने। प्रतिदिन पिसकर, भूखों मरकर
भैंसा गाड़ी पर लदा हुआ। जा रहाचला मानव जर्जर
है उसे चुकाना सूद, कर्ज। है उसे चुकाना अपना कर
जितना खाली है उसका [illegible]। उतना खाली उसका अन्तर।

नीचे जलने वाली पृथ्वी। ऊपर जलने वाला अम्बर
औ कठिन भूख की जलन लिए। नर बैठा है बनकर पत्थर।
पीछे है पशुता का खंडहर। दानवता का सामने नगर।
मानव का कृश कंकाल लिए।"[2]

1- विप्लव-मार्क्स का कथन
2- भगवतीचरण वर्मा- मानव-पृ0- 70

प्रगतिवादी कवियों ने इस शोषित वर्ग की दीन -हीन दशा का चित्रण करना प्रारम्भ कर दिया, अभी तक जिस साहित्य की शोभा, महल और रजवाड़े बढ़ाते थे, तरह-तरह के स्वप्निल वातावरण और मधुर प्रकृति के चित्र खींचे जाते थे अब उसी साहित्य ने झोपड़-झुग्गी और अन्धेरी, गन्दी गलियों की ओर झाँकना शुरू कर दिया था। अब साहित्य किसी सुकुमार, नवयौवना का नख-शिख वर्णन करने में अपनी इति श्री नहीं समझता, अब उसकी निगाहें टिकती हैं जाकर रंगहीन, उदास, शान्त किन्तु कर्मठ, मजदूर, किसान एवं मजदूरिन स्त्रियों की ओर जो तरह-तरह के आभूषण नहीं फटे-पुराने कपड़े, धूल भरा जूड़ा बाँधे, मिट्टी ढोती हैं।

" वह उजड़ा-सा था एक गाँव।
उस कठिन कँटीली पगडंडी। पर रहे विवश से थे घसीट
जिन निर्बल, सूखे, फटे पाँव। निष्प्राण लौटने वाले वे
कुछ थके हुए मरियल किसान।[1]

ये चित्र खींचा गया है उन किसानों का जो हताश-निराश सब कुछ लुटाकर लौट रहे थे। दिन रात पशु के समान मेहनत कर के जो धान काटा था उसे औने-पौने बेंचकर वापस आ रहे थे, किन्तु ऐसा उन्हें करना क्यों पड़ा, क्योंकि-

" क्या नहीं सुना तुमने अब तक। हैं मोल ले रहे [illegible]
पौने दामों पर सकल धान। इस तरह हो रहा है वसूल।
इस साल बाँधा डयोढ़ा लगान। इसलिये, क्योंकि है मोल लिया।
राजा साहब ने वायुयान। "[2]

इतना पीड़ित, इतना शोषित होने के बाद भी, जीवन से हार नहीं मानी, मानों सब कुछ सह कर जीवन संग्राम में रत रहना ही इनका ध्येय हो। स्वाभिमान इनमें कूट-कूट कर भरा है-

" क्या हार में क्या जीत में। किंचित नहीं भयभीत मैं।
संघर्ष पथ पर जो मिले यह भी सही, वह भी सही।
वरदान माँगूँगा नहीं।
यह हार एक विराम है। जीवन महा संग्राम है।

1- राजा साहब का वायुयान- मानव-पृ0- 76
2- वही, पृ0-76

तिल तिल मिटूँगा पर दया की भीख मैं लूँगा नहीं।
वरदान मागूँगा नहीं।[1]

दलितों के प्रति सहानुभूति एवं पूँजीवाद-के प्रतिआक्रोश-

कवियों ने काव्य के श्रृंगारिक वर्णन एवं राज-महलों के विलास वैभव के वर्णन को तिलांजलि देकर झोपड़ियों की ओर झाकना आरम्भ किया। कवियों ने खुले रूप से घोषणा कर दी-

जगा मृत्तिका दी करूँगी महल छोड़ तृण कुटी-प्रवेश
तुम गाँवों के बनो भिखारी, मैं भिखारिनी का लूँ वेश।"[2]

दलितों के प्रति सहानुभूति प्रगतिवादी कवियों का प्रतिपाद्य विषय बन गया था। कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से शोषित वर्ग की समस्याओं का चित्रण करते थे और उनका जन साधारण में प्रचार करते थे। इसका लाभ ये हुआ कि शोषित वर्ग की दीन दशा की जानकारी समस्त लोगों तक पहुँची एवं कुछ लोग इसमें सुधार के लिये जागरूक हुये। स्वयं मजदूरों एवं किसानों में भी जागृति का संचार हुआ और उनको सही मार्गदर्शन मिलने लगा। हताश निराश मजदूरों में साहित्य ने नयी स्फूर्ति का संचार किया उन्हें अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष के लिये प्रेरित किया-

तुमने सुख से मुख मोड़ा है। खेलों से नाता जोड़ा है
तुमको दुनिया में डर किसका। जब हँसिया और हथौड़ा है।
तुम अपनी हड्डी से नवयुग की नई इमारत गढ़े चलो
मजदूर किसानों बढ़े चलो
तुम गरजो आज प्रलय होगी। शोषक वर्गों की क्षय होगी
दुनिया के कोने कोने से। मजलूमों की जय-जय होगी
अत्याचारी की छाती पर तुम चढ़े चलो तुम चढ़े चलो
मजदूर किसानों बढ़े चलो।"[3]

1- शिवमंगल सिंह सुमन-जीवन केगान-पृ0- 34
2- हुंकार- दिनकर- पृ0-31
3- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 114-115

किसानों की दीन दशा पर हिन्दी साहित्य में खूब आँसू बहाये गये। प्रेमचन्द ने किसानों के पीड़ामय जीवन की अनुपम झाँकी अपने उपन्यासों में दिखायी, गद्य में तो ऐसी रचनाओं की भरमार थी किन्तु पद्य में भी किसान और मजदूरों की निरीहता और विवशता के सुन्दर चित्र खींचे गये। पत्र-पत्रिकाओं में कवियों ने इस विषय में लिखना प्रारंभ किया। एक ओर हंस प्रगतिवाद को आगे बढ़ा रहा था तो सुकवि, विश्वमित्र एवं विप्लव भी इस प्रकार की रचनाओं को बढ़ावा दे रहे थे। किसान स्वयं कितना भी अभाव ग्रस्त रहे मगर दूसरों के लिये अपने तन-मन से जुटा रहता है कितना संयमी है वह, दूसरों के लिये अन्न उपजाता रहता है मगर अपने लिये भूखमरी, लाचारी के सिवा और कुछ नहीं कर पाता। किसान की असहाय अवस्था का वर्णन श्री मुंशी गुरु सहाय "विरल" के शब्दों में-

" सूखा तन किन्तु हरे भरे रखता है खेत
शक्ति हीन किन्तु रत्नभूमि से निकालता
खाली पेट किन्तु पेट भरता महाजनों के
महादीन किन्तु दीन बालकों को पालता
पतिहीन किन्तु पति भूपति की रखता है
किस जीव में है यह जीवन न डालता
देवोपम जिसके "विरल" है विचित्र कार्य
खाये जारही है उसे काल की करालता। "[1]

मार्क्स परेशान थे कि ये विचित्र बात है कि जो जिस चीज का निर्माण करे वह स्वयं उसके उपभोग से वंचित रहे आखिर ये कैसी व्यवस्था है कि कर्मकरे कोई और फल मिले किसी को मगर पूँजीवादी व्यवस्था में ऐसा कुछ ही होता था, बहुसंख्यक वर्ग जिसके सहारे सारा समाज चलता है वही उपेक्षित है -

" दबे कंधे। पिचके से गाल
अरे। जर्जर तन क्या? कंकाल
क्या तुम्हीं मानव की प्रतिमूर्ति?
कृषक हो, सकल समस्या पूर्ति ।

1- श्री मुंशी गुरुसहाय विरल-सुकवि-सं0 सनेही- अक्टूबर 194।

तुम्हीं से जिसके बल पर आज
ध्वंस के साधन "औ" सुख साज
सभी अवलम्बित है गय बाजि
राज औं ताज-समस्त समाज
मगर।तुम पर ढकने को लाज
एक चिथड़ा न मुयस्सर आज
दबे कंधे पिचके से गाल।"1

कवियों को निम्न वर्ग की पीड़ा का अनुभव होने लगा था इस वर्ग की विवशता और निरीहता से व्याकुल कवि हृदय की झलक निम्न छन्द में मिल जाती है-

शिशु मचलेंगे दूध देख, जननी उनको बहलायेगी
मैं फाडूंगी हृदय, लाज से आँख नहीं रो पायेगी।
इतने पर भी धनपतियों की उमर होगी मार
तब मैं बरसूँगी बन बेबस के आँसू सुकुमार
फटेगा भू का हृदय कठोर।
चलो कवि वन फूलों की ओर।"2

इस प्रकार के शोषण और अत्याचार को देखकर तत्कालीन कवियों का प्रयत्न था समाज के शोषितों में वर्ग चैतन्य उत्पन्न करना और उनमें पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह की भावना जगाना, जिसमें ये कवि कुछ हद तक सफल हो रहे थे। शोषित वर्ग-वर्ग भावना से भलीभाँति परिचित हो गया था और वह पूँजीपतियों के खिलाफ विद्रोह करना चाहता था। पूँजीपतियों और श्रमजीवियों के मध्य जो संघर्ष आरंभ हुआ वह श्रमजीवियों का पूँजीपतियों के प्रति ईर्ष्या के कारण नहीं था, बल्कि ये झगड़ा था "हैव्स और हैव्स नाटस का।श्रमजीवी अपने ऊपर लागू किये गये सभी बन्धनों को तोड़कर मुक्त होना चाहते हैं और इस मार्ग में जो बाधायें [illegible] है उसका वो विरोध करते हैं भले ही अपने उद्देश्य कोपाने के लिये उन्हें हिंसा करनी पड़े।

1- कृष्ण चन्द्र शर्मा "चन्द्र" किसान- हंस जून- 1939
2- दिनकर- हुँकार- पृ0-34

प्रगतिवादी कवियों ने किसानों और मजदूरों के प्रति जहाँ सहानुभूति प्रदर्शित की वहीं उनकी समस्याओं के लिये पूँजीपतियों कोदोषी ठहराया। मजदूरों कीमुख्य समस्यायें जो थीं उनमें से ऐकथी भूमि पर पूँजीपतियों का अधिकार और उत्पत्ति के साधनों पर कुछ आदमियों की मिल्कियत।

पूँजीपतियों की स्वार्थ लोलुपता पर कवियों ने कटाक्ष किया है, उन्हें समाज या देश की प्रगति से कुछ लेना-देनानहीं है, उन्हें बस अपनी तिजोरी भरने से मतलब। जब ये किसी वस्तु का उत्पादन करते हैं तो व्यवहार के बजाय मुनाफे के उद्देश्य से उत्पादित की गई वस्तुओं का परिणाम ये होता है कि बाजार में जिस वस्तु की माँग ज्यादा होती है सब उसी वस्तु के उत्पादन में लग जाते हैं, समाज में उसवस्तु की कितनी आवश्यकता है अथवा क्या व्यवहारिकता है इसकी किसी को परवाह नहीं रहती। वस्तु के ज्यादा उत्पादन से उसकी माँग घट जाती है और कीमत गिर जाती है फलतः धन और श्रम दोनों की ही हानि होती है। दूसरी तरफ समाज में आवश्यक वस्तुओं की माँग होती है किन्तु उनका उत्पादन कम होता है फलतः उसकी कीमते बढ़ा दी जाती हैं और गरीब समाज दोहरी चक्की के पाट में पिसता है।

शिवमंगल सिंह सुमन जैसे कवियों ने मजदूरों की इस अवस्था के लिये पूँजीपतियों को जिम्मेदार ठहराया है और उन पर [illegible]ष प्रकट किया है-

> किसी दैव का प्रकोप यह। या अजगरने चूस लियाहै
> या मानव की दानवताने। इसका जीवन लूट लिया है
> यह [illegible] समाज के जुल्मों का कंकाल पड़ा है।[1]

पूँजीपतियों के बड़े बड़े महल तमाम मजदूरों की आहों से बने है न जाने कितने कराहों के ऊपर ये आलीशान इमारते खड़ी होती हैं। गरीब मजदूर कितना संतोषी है कि उसे उसके श्रम के बराबर भी हिस्सा नहीं मिलना लेकिन अपनी लगन और मेहनत से वह अपने मालिक की रूचि के अनुसार कार्य करता है। मजदूरों और किसानों का हक मारकर ही तो ये धन इकट्ठा करते हैं और उसीसे अपने वैभव और विलास की सामग्री एकत्रित करते हैं। कवि का आक्रोश फूटा है ऐसे पूँजीपतियों के प्रति-

---

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान- पृ0-119

आहें उठीं दीन कृषकों की मजदूरों की तड़प पुकारे
अरी! गरीबों के लोहू पर। खड़ी हुई तेरी दीवारें। "[1]

यहाँ कवि इस स्वार्थी वर्ग को अजगर कह रहा है, ये पूँजीपति अजगर के समान भोले भाले मनुष्यों का रक्त चूस लेते हैं। अजगर की एक और विशेषता है वह मेहनत नहीं करता एक जगह बैठा-बैठा ही भोजन प्राप्त कर लेता है साँस से खींचकर, पूँजीपति भी मेहनत नहीं करता एक बार पूँजी लगाकर बैठ जाता है और फिर दूसरों के श्रम पर जीवन भर मौज उड़ाता है अतः यह कहावत भी मशहूर है "अजगर करे न चाकरी"।इनकी इस आदत ने श्रमिक वर्ग के जीवन में निराशा ही निराशा भर दी है, श्रमिक जहाँ अपना जीवन यापन करते हैं वहाँ जीवन की चहल-पहल नहीं अकाल मृत्यु का ताण्डव होता है। पंत ने जीवन की इस क्रूरता को नजदीक सेदेखा था और ग्राम्या में इस दुख दैन्य जीवन का मार्मिक चित्रण किया गया है-

" यहाँ धरा का मुख कुरूप है
कुत्सित गर्हित जन का जीवन
सुंदरता का मूल्य वहाँ क्या
जहाँ उदर है क्षुब्ध, नग्न तन?

जहाँदैन्य जर्जर असंख्य जन
पशु जघन्य क्षण करते यापन
कीड़ों से रेंगते मनुज शिशु
जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन। "[2]

कवि दिनकर ने भी पूँजीपति वर्ग को खूब फटकारें बतायी हैं अपनी रचनाओं में। पूँजीपति एक ऐसा वर्ग है जो साँप के समान सर्प फैलाये गरीब वर्ग का खून चूस रहा है उसके दाँत इतने जहरीले हैं कि जिस पर लग जाते हैं वह मिट्टी में मिल जाता है। ये वर्ग मजदूरों, किसानों के मुँह से कौर छीन रहा है उनके श्रम का शोषण करने में जुटा है-

- -

1- हुँकार-दिनकर- पृ0-47
2- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या "ग्राम कवि-पृ0- 13

हाय! छिनी भूखों की रोटी
छिना नग्न का अर्द्ध वसन है
मजदूरों के कौर छिने हैं
जिन पर उनका लगा दसन है।"[1]

विषमता-

उत्पत्ति पर कुछ लोगों की मिल्कियत ने देश में सर्वत्र विषमता का वातावरण बना दिया था। एक वर्ग जो अल्पसंख्यक था वह अथाह धन-ऐश्वर्य का जीवन व्यतीत कर रहा था और दूसरा वर्ग बहुसंख्यक दिन भरकड़ी मेहनत के बाद भी पेट भर अन्न भी नहीं जुटा पड़ता था-

" तार है लगाता पथ रेल का बनाता यह
बाँधता है बाँध और खोदता नहर है
मिल है चलाता मेहनत से मजूर बन
रहता "विनोद"अड़ा आठो ही पहर है
मजे मारते हैं मिल-मालिक हैं मालदार
कर्जदार कृषक कराहता,कहर है
बाट देखता है बड़े दिन से बिचारा बैठा
आती कब तक यहाँ क्रांति की लहर है।"[2]

हमारे देश कीसबसे बड़ी विषमता यही है कि जो जितना मेहनत करता है वह उतना ही भूखों मरता है और जो जितना आराम करता है उतना ही ऐश्वर्य और वैभव लूटताहै। किसान कड़ी मेहनत के बाद अन्न पैदा करते हैं मगर अपने लिये नहीं दूसरे स्वार्थी लालची साहूकारों के लिये।इसी प्रकार कि विषमता जिसमें किसान की असहाय अवस्था का वर्णन है चित्र प्रस्तुत किया है यशपाल जैन ने जो कि हंस पत्रिका से उद्धृत है शीर्षक है"किसान"-

" नहीं है मुट्ठी भर भी नाज
भूख से पीड़ित है घर बार
दीन,भूखा किसान असहाय
देखता औरों का सुख आज

- -

1- 1- हुंकार- दिनकर- पृ0-47
2- श्री पं0 लक्ष्मी नारायण गौड़"बिनोद" सुकवि-अगस्त 1939

किया था पैदा जिसने नाज। वही हा!काड़ी को मुहताज।*[1]

इस विषमता से छुटकारा केवल क्रांति ही दिला सकती है ऐसा विश्वास है प्रगतिवादी कवियों का। इसलिये मेहनत करके भी कुछ न पाने पर मजदूर को क्रांति का इंतजार है जो पूंजीवादियों के विरुद्ध छेड़ी जायेगी। धीरे-धीरे सर्वहारावर्ग को भी अपनी स्थिति का ज्ञान होने लगा था और उसका विद्रोह फूटना आरम्भ हो गया-

" इन श्रीमानों ने हमें मिटाकर
अपने को आबाद किया
दाने-दाने को दीन किया
बरबाद किया! बरबाद किया
तुम न्यायी! दण्ड विधान करो
है क्षमा दान की चाह नहीं।*[2]

कितनी विडम्बना की बात है कि एक ओर जहाँ विशाल सभी साधनों से सम्पन्न नगर हैं, उस पर खूबसूरत सी सड़क है, चारों तरफ हरियाली प्रकृति लहलहा रही है और दूसरी तरफ इस जीवन की खूबसूरत हलचल को देखकर पीड़ित मानव अपने बौनेपन में अपने अभाव में मानों जमीन से लगा जा रहा हो -

" इस विशाल सम्पन्न नगर के
हँसने वाले राजमार्ग पर
आज सुबह मैंने देखी थी
एक विकृत सी लाश पड़ी।
× × ×
क्षुब्ध और पीड़ित मानवता
अपने ही उस उजड़े पन की
घोर यातनामय लज्जा में
जाती थी चुपचाप गड़ी।*[3]

1- यशपाल जैन-हंस- "किसान।
2- श्री पं० मन्नूलाल शर्मा "शील" -मजदूर की झोपड़ी-सुकवि सितम्बर 1940
3- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 59

एक ओर मोटे तोंदियल सेठ हैं उनके पास सौस-सौस मिले हैं, गगनचुम्बी भवन है और दूसरी तरफ मजदूर बेचारे जिनके पास सर छिपाने को भी जगहनहीं है। इन सेठों के महलों ने जाने कितने झोपड़े उजाड़े होंगे-

" तुम क्या जानो सेठ हमारे
रामचन्द्र की सौस मिले हैं।
कितने ही मजदूरों का वे
करते हैं पालन पोषन !
बीच नगर में वह दानव सा
खड़ा हुआ जो फाड़ रहा है
नभ की छाती, वह अठमहला
उनका ही ऐश्वर्य-सदन !

और ये लखपति धूर्त अन्दर से इतने पापी गरीबों का खून चूसने वाले बाहर से धर्मात्मा और दानी बनते हैं। समाज में अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिये ये मंदिर और धर्मशालाओं का निर्माण करवाते हैं, अनाथालयों और स्कूलों को चन्दा देते हैं और उसके बदले में दूसरों को मानो खरीद सा लेते हैं। ये लखपति जिसकी मेहनत का खाते हैं उसी को आँख दिखाते हैं। अपने वैभव की शान उन गरीबों को दिखाते हैं जिनके पास तन ढकने के लिये चिथड़ा भी नहीं-

" चिथड़ों में सिकुड़े जाते हैं। लाजनहीं जो ढक पाते हैं
में निर्लज्ज दिखाता उनको। निज वैभव की शान।"[1]

इस विषम परिस्थितियों से छुटकारा पाने का एक ही रास्ता था वह था सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन उत्पत्ति के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का आधिपत्य, "उत्पत्ति के तरीके से उत्पन्न परिस्थिति द्वारा प्राप्त साधनों का इस्तेमाल करके ही समाज को उन्नति के पथ पर आगे बढ़ाया जा सकता है। यही मार्क्सवाद का विशेष संवाद है।"[2]

1- शिव मंगल सिंह सुमन, जीवन के गान-पृ0- 127

2- विप्लव- मार्च 1940

पूँजीवाद ने घोर विषमता का वातावरण पूरे देश में फैला रखा था, इस विषमता से छुटकारा पाना और समता का वातावरण बनाना जिसमें सभी को समान रूप से अधिकार प्राप्त हो ऐसा सभी प्रगतिवादियों का सन्देश था। किन्तु ऐसी व्यवस्था जिसकी जड़े मजबूती से जम गयी हों और सम्पूर्ण विश्व में विकसित भी हो गयी हों उसे समूलनष्ट करने के लिये अदम्य साहस एवं एक जुट क्रान्ति की आवश्यकता है-

" विषमता फैली ऐसी घोर
बीज ऐसे विषमय बो गये
गये कुछ मौज उड़ाकर स्वर्ग
और कुछ जीने को रो गये।

क्रांति की घर घर मची पुकार
जमाना बदला बदलो यार।
न बैठे सोचो यह बेकार
कि "आयेगा कोई अवतार।"[1]

"कवि पंत ने संध्या के बाद" कविता में गांव के संध्या के समय का बड़ा मार्मिक चित्र खींचा है। गाँव का सन्नाटा, वहाँ की निराशा, अवसाद का और एक उबाऊ जिन्दगी का जहाँ का क्रम एक सा है, किसी भी चीज का मानों किसी को इंतजार ही नहीं। एक मशीनी यन्त्र की भाँति दिन भर का कालक्रम घूमता रहता है। कवि ने एक दीपक जो कि टीन की डिब्बी से बना है, उसे प्रतीक मानकर गाँव के निवासियों के मन की व्यथा को प्रकट किया है। जिस प्रकार टिन की ढबरी धुँआ ज्यादा करती है और उजाला कम उसी प्रकार ग्राम निवासियों के जीवन में दुख अधिक है और सुख कम, दीपक की भाँति आँख के सामने निराशा का एक जाला सा बुन जाता है। एक परचून की दुकान के लाला की मन की भावनायें बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से व्यक्त की गई हैं। वह आर्थिक रूप से टूटा हुआ है, सन्नाटे में बैठा सपने सा देखता है कि वह भी शहरी बनियों की भाँति हो जाये और महाजन बन जाय। वही पन्सारी एक दम से साम्यवाद की बात सोचता है कि कर्म और गुण के समान जो व्यक्ति जिस प्रकार के कर्म करे और वो जितना कठोरश्रम करे, उसको उतना

1- श्री पं० लक्ष्मीनारायण-सुकवि-अगस्त 1939 गौड़ विनोद

हो पारिश्रमिक भी मिले, मगर होता ऐसे है कि जो जितना कठोर श्रम करता है, उसको उतना कम मिलता है और जो अराम तलब कुर्सी पर बैठते हैं उनको ज्यादा मिलता है। एंगेल्स ने भी कहा-श्रम के अनुसार पूँजी का वितरण होना चाहिये।"

" मिलकर जन निर्माण करे जग
मिलकर भोग करे जीवन का
जन विमुक्त हो जन शोषण से
हो समाज अधिकारी धन का?

समता के वातावरण से जीवन के अनिवार्य साधन सभी मनुष्यों के लिये उपलब्ध होंगे और अपने व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करते हुए मानव मात्र सुख से अपना जीवन व्यतीत करेगा-

" दरिद्रता पापों की जननी
मिटें जनों के पाप, ताप, भय
सुन्दर हों अधिवास, वसन तन
पशु पर फिर मानव की हो जय
व्यक्ति नहीं, जग की परिपाटी
दोषी जन के दुख क्लेश की,
जन का श्रम जन में बंट जाए
प्रजा सुखी हो देश देश की।"[1]

मगर बनिया तो ये सब स्वप्न देख रहा था, वास्तविकता तो कुछ और ही है। अच्छे विचार रखने के बाद भी बनिया कितना मजबूर है, अपनी छोटी छोटी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिये उसे भी छोटे छोटे गलत कर्म करने पड़ते हैं, हालाँकि उससे भी उसकी हालत सुधरती नहीं-

" टूट गया वह स्वप्न वणिक का
आई जब बुढ़िया बेचारी
आध पाव आटा लेने-
लो लाला ने फिर डंडी मारी

1- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या-संध्या के बाद-पृ0- 67

चीख उठा घुघ्घु डालों में
लोगों ने पट दिये द्वार पर
निगल रहा बस्ती को धीरे
गाढ़ अलस निद्रा का अजगर।[1]

आज जिस पर सारे समाज को जीवित रखने का भार है, जिसके हाथ में सारी शक्ति है वही भूखों मर रहा है, जो स्वयं अन्न पैदा करता है उसे ही अपना पेट भरने का अधिकार नहीं कितने आश्चर्य की बात है-

" जिनके हाथों में हल बक्खर
जिनके हाथों में धन है
जिनके हाथों में हंसिया है
ये भूखे हैं निर्धन हैं।"[2]

ये समाज की सबसे बड़ी विषमता है कि जो पूंजी लगा देता है वह बैठा बैठा अपनी पूंजी से लखपति करोड़पति बन जाता है और जो मेहनत करके उसे लखपति बनाता है वह अपनी आवश्यक जरूरतें भी पूरी नहीं कर पाता। साहबों के वहां कुत्ते पलते हैं वह मांस मछली खाते हैं बिना दूध रोटी के उनका पेट नहीं भरता किन्तु वह इन्सान जो मेहनत करता है कुत्तों से भी बदतर है। सेठसाहूकारों के गोदाम अन्न से भरे रहते हैं वह बाजार में भाव बढ़ने का इंतजार करते हैं विदेशों को अन्न निर्यात करते हैं किन्तु अपने ही देश के लोग भूखों मरते हैं-

" क्यों एक न कुछ भी करके नित बैठे-बैठे खाता
क्यों एक सदाश्रम करके भर पेट न भोजन पाता
उस ओर किसी के कुत्ते क्यों दूध जलेबी खाते
इस ओर किसी के बच्चे क्यों रोटी को रिरियाते
अरबों मन अन्न यहां है फिर क्यों कुछ दुनिया भूखी
मिलती न यहां क्यों सबको रोटी भी रूखी सूखी।"[3]

1- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या "संध्या के बाद" पृ0-67
2- नवीन- विशाल भारत- "कर्त्तव्य को हां।"
3- करुण- समता

समाज का एक वर्ग ऐसा है जो हिप्पो कुटेली में लगा हुआ है , जिनके कपड़े भी विदेशों में धुलने जाते हैं जिनके घर पूर्णतः वातानुकूलित हैं, जिनके पास कारें हैं उनकी शान-ओ-शौकत बढ़ाने के लिये कुत्ते हैं वह भी शान से मेमसाहब की गोदी में बैठकर मोटर से सैर करते हैं बिस्कुट खाते हैं किन्तु दूसरी ओर समाज की बहुसंख्यक जनता एक-एक लंगोटी को तरसती है जिसके बच्चे साहबों के कुत्तों से भी बदतर भाग्य लेकर जन्मते हैं और बिना रोटी और दवा के गिड़ गिड़ा कर भगवान को प्यारे हो जाते हैं। देश एक ही है, समाज एक ही है मगर सुविधायें अलग-अलग हैं/निम्नवर्ग मजे काट रहा है और बहुसंख्यक वर्ग अपनी कंगाली का बोझ अपने ऊपर उठाये घिसट घिसट कर अपना जीवनकाटता रहता है-

• ये सपूत भारत माता के छप्पन विधिजो भोग लगाते
ये सपूत भारत माता के परिस में कपड़े धुलवाते
ये सपूत भारत माता के तापनियन्त्रित हैं जिनके घर
जिनके कुत्ते बिस्कुट खाते चलते मोटर या विमान पर
ये भी लाल इसी भारत के जिन्हें न मिलती महुआ रोटी
ये भी लाल इसी भारत के जिन्हें न मिलती फटी लंगोटी
ये भी लाल इसी भारत के जिन्हें न मिलती टूटी कुटिया
शाप बने आते हैं बेटे, आफत बन जाती है बिटिया
भादों में ले एक, चुकाते जो अगहन में डेढ़ रुपैया
हैजा-चेचक में भी जिनकी डाक्टर काली शीतला मैया।[1]

उधर गाँवों में हालत ये है जमींदारों पटवारियों, महाजनों आदि का दमन चक्र किसानों पर जमकर चलता रहता है। जमींदार हर तरह से भोले भाले किसानों को फँसाकर उनकी जायदाद पहले हड़पते हैं और फिर उनसे बेकारी करवाते हैं चौगुने सूद पर उनको रुपया देते हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी उनसे ब्याज वसूलते रहते हैं और मोटी मोटी तोंदे लिये गद्दी पर बैठे ऊँघा करते हैं-

---

1- विजयेन्द्र- नारायणदास

"जमींदारों के पेट भरते नहीं है
वे खाते हैं इतना अफरते नहीं हैं
किसानों पै क्या जुल्म करते नहीं है?
अभागे हैं हम हाय मरते नहीं हैं
जिलेदार जो भर हमें लूटते हैं
न पटवारियों से भी हम छूटते हैं।"[1]

जमींदारों का हाल ये है कि ये करते धरते कुछ नहीं बस हरामखोरी करते हैं और जनता पर जुल्म करते हैं और पैसा इतना इकट्ठा कर लेते हैं कि पुश्त दर पुश्त बैठकर खाते हैं। खुराक इतनी ज्यादा होती है कि खूब तर माल हजम कर जाते हैं और कुछ होता भी नहीं इनका हाजमा भी बड़ा दुरुस्त होता है-

"सत्ता के टुकड़ों के गुलाम माँ की छाती पर व्यर्थ भार
ये तायददार मूँछों वाले हैं कहलाते जमीदार
अब भी तो वही ठाठ इनके पीढ़ी दर पीढ़ी चलते हैं
जग जठरानल में जलता है, पर ये प्यालों पर पलते हैं।"[2]

जैसे जैसे आधुनिकता बढ़ रही है वैभव और ऐश्वर्य को बढ़ावा मिल रहा है नयी-नयी वस्तुओं का अविष्कार हो रहा है, गगनचुम्बी हवेलियाँ बनायी जा रही हैं मगर ये सब किसके दम पर होता है एक इन्सान के पास इतना धन कहाँ से आता है कि वह हर सुख-सुविधा जुटा लेता है जाहिर है कि महल जब खड़ा होता है तो उसकी नींव हजारों गरीबों की झोपड़ियों की कब्र पर तैयार होती है उसमें लाखों गरीब बच्चों के आँसू होते हैं लाखों मजदूर स्त्रियों की आहें होती हैं और लाखो मजदूरों का पसीना होताहै-

"विद्युत की इस चकाचौंध में
देख दीन की माँ रोती है
अरी हृदय को थाम महल के
लिए झोपड़ी बलि होती है।"[3]

1- सनेही - करुणा कादम्बिनी- सनेही-पृ0-60
2- पंवार जागीरदार- क्रांति किरण
3- दिनकर-रेणुका- पृ0-3।

<u>वर्ग संघर्ष-</u>

पूँजीवादी व्यवस्था अब उस मुकाम पर पहुँच चुकी थी जहाँ उसका नाश निश्चित हो गया था, कोई भी व्यवस्था जब अपनी सीमा पार कर लेती है तब उसका नाश निकट आ जाता है। पूँजीवाद ने अपने नाश के बीज स्वयं ही बो दिये थे, अब मजदूर वर्ग संगठित होकर धन सत्ताधारियों के प्रति विद्रोह करने लगे थे अब उनमें वर्ग चेतना जाग उठी थी और समाज में वर्ग-संघर्ष प्रारम्भ हो गया जिसको प्रगतिवादी कवियों ने प्रश्रय दिया-

" यह महल हवाई वैभव के
क्षण भर में चकनाचूर करो
जिसमें मैं भूला फिरता था
मुझसे वे सपने दूर करो
मेरी आहों के कैनों में
मानवता का क्रन्दन भर दो
मेरे स्वर में जीवन भर दो।"[1]

अब अत्याचार की हद हो चुकी थी, जुल्म सहते सहते सदियाँ बीत गयी थी, अब मजदूर वर्ग जागृत हो गया था और उनमें वर्ग संघर्ष की भावना पनपने लगी-

" ढके हुये चीथड़ों से तन को सहा किये जुल्म ये बराबर
मगर कहाँ तक सहेंगे आखिर भड़क उठी आग वाके ओवर"[2]

कवि इन मजदूरों में पनपी विद्रोह की भावना को आगे बढ़ाता है, वह उसको आगे बढ़ने को कहता है इसी में उसकी प्रगति है एक बार आगे बढ़कर पीछे हटना कायरता है-

" मैं इस प्रगति पथ पर खड़ा। तूफान में जब जा पड़ा
तब झाड़ियों की आड़ में मैं क्यों रुकूँ, मैं क्यों रुकूँ?
मैं क्यों रुकूँ, मैं क्यों रुकूँ?"[3]

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 102
2- पं0 माधव शुक्ल- जागृत भारत-पृ0- 51
3- [illegible] सिंह सुमन-जीवन के गान

वैसे प्रगतिवादी आतंकवाद के बजाय अपनी रचनाओं में आर्थिक, राजनैतिक प्रश्नों को अधिक महत्व देते थे-

अमन रहेगी कब तक कायम चार सेर आटा खाकर
काले की तकलीफ कहाँ तक सहें हिन्दवासी घर-घर
तिस पर राजनैतिकों यामें दबे हुवों के दिल पर भार
फिर एक अदना कनिस्टबल भी गुनता हमको ताबेदार
"माधव" भड़का उठा करती है टक्कर आम महीनों की।।
शान्ति नहीं अब। "[1]

गांधीवादी विचारधारा का भी प्रगतिवादी साहित्य में विरोध पाया जाता है। गांधी जी के अहिंसा एवं सत्याग्रह का प्रगतिवादियों ने खण्डन किया है। वहमजदूर जो युगों युगों से भूखा है, वह अब इस बात के लिये तैयार है कि उसे कुछ भी करना पड़े मगर वह अब जुल्म नहीं सहेगा, वह क्रांति के बल पर समस्त समाज के बदल देना चाहता है उसे इस बात का इंतजार नहीं है कि पूँजीपतियों का हृदय परिवर्तन हो और उनको अत्याचारों से मुक्ति मिले-

" रक्तहीन विवर्ण रूखा। गाल पिचके अधर सूखा
युग युगों का आज भूखा। देख लेना उलट देगा वह समस्त समाज
सुन रहे हो क्रान्ति की आवाज ?"[2]

मानव-मानव के भेद को मिटाने के लिये एवं देशहित में सामाजिक कर्तव्य पालन में की गयी हिंसा, हिंसा नहीं अहिंसा है। प्रगतिवादी वर्ग संघर्ष में सर्वहारा वर्ग की विजय पर विश्वास रखते हैं। इस विजय में प्रेम की अपेक्षा घृणा की क्षमता पर अधिक विश्वास प्रकट किया गया है। शोषित वर्ग में अब अपने शोषकों के प्रति घृणा एवं आक्रोश के सिवा और कुछ नहीं है, उनकी छोटी सी दुनिया तो राख हो ही चुकी है मगर महलोंमें आराम से रहने वालों को भी ये चैन से बैठने नहीं देंगे-

---

1- पं0 माधव शुक्ल-जाग्रत भारत-पृ0- 52
2- [illegible] सिंहसुमन- जीवन के गान

* लगी है अब आग झोपड़ों में मुताहिबो! अपने घर संभालो
तुम्हारी भी खैर अब नहीं है महल दुमहलों के रहने वालो।[1]

आर्थिक आधार पर समाज की संरचना-

हम इस बात पर ध्यान नहीं देते कि आज पूंजीवादी समाज की आत्मघातक व्यवस्था के कारण मनुष्य और मनुष्य के बीच के सारे कोमल संबंध नष्ट हो चुके हैं। दिखावे के लिए मनुष्य का संबंध धन और बाजार से है, मनुष्य से नहीं है अर्थात् मनुष्य स्वतंत्र है, किन्तु है वह परतंत्र। अप्रत्यक्ष रूप से पूंजीपति और मजदूर, शोषक और शोषित के रूप में यह संबंध जिस प्रकार कायम है, उसकी विकराल क्रूरता को छिपाने के लिए ही धन और बाजार माध्यम बनाये गये हैं।[2]

* हमने धन की दानवता से
देखा पीड़ित उन लोगों को
वासना और तृष्णा से इस
उनकी आत्मा के रोगों को
उनके कलुषित उद्गारों को
उनके उन कलुषित भोगों को।"[3]

"वास्तव में पूंजीवादी मनुष्य और मनुष्य के बीच नंगे स्वार्थ और नगद नारायण के संबंधों के अतिरिक्त कोई और संबंध बाकी नहीं रहने देना चाहता।"[4]

प्रगतिवाद समाज की सारी व्यवस्थाओं के पीछे अर्थ को मानता है, अर्थ से सारे क्षेत्र प्रभावित होते हैं और पूंजीवाद ने अर्थ की महत्ता को पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है "वास्तव में आर्थिक आधार पर ही तो समाज का निर्माण होता है, देश की राजनीति बनती है और संस्कृति का अभ्युदय होता है। जब जैसीअर्थ नीति होती है, वैसी ही समाजनीति होती हैऔर वैसी ही संस्कृति और सभ्यता होती है।"[5]

1- पं० माधव शुक्ल- जाग्रत भारत-पृ०-50
2-शिवमंगल सिंह सुमन-जीवन के गान-पृ०-द
3- भगवतीचरण वर्मा-ट्राम- पृ०-74
4- हिन्दी की प्रगतिशील कविता सेरणजीत-पृ०- 253 से उद्धृत
5- केदारनाथ अग्रवाल- युग की गंगा-पृ०-1

पूँजीवाद के विकास ने मनुष्य को दो भागों में बाँट दिया अमीर और गरीब जिसके पास पूँजी थी वह मालिक बना और जो गरीब था जिसके पास श्रम था वह नौकर बना और एक खाई सी दोनों के बीच पनप गई, भारत में जब तक पूँजीवाद का विकास नहीं हुआ था तब तक मालिक और नौकर में इतनी दूरी नहीं थी कहीं न कहीं एक इन्सानियत की स्निग्धता जुड़ी थी किन्तु कम्पनी और फैक्ट्री के आगमन से उसके शेयर होल्डर और प्रबन्धक और मिल मालिकों में कोई नजदीकी संबंध नहीं होता। मिलों में होता क्या है जिसके पास पूँजी है वह उसे दुगुनी करने के लिये कारोबार में लगा देता है, परन्तु उसके पास इतनी फुर्सत नहीं कि वह अकेले सारा काम संभाल सके इसके लिये वह कम्पनी की देख भाल के लिये पूरी प्रबन्धक कमेटी बनाता है उसमें अन्य अमीर भी शेयर होल्डर होते हैं अतः सब आपस में अपना मुनाफा कमाने में जुटे रहते हैं। अपने यहाँ काम करने वालों से इनका सीधा संबंध नहीं जुड़ पाता ये केवल महीने में एक बार इकट्ठे होकर बोर्ड की मीटिंग करते हैं आदेश पास करते हैं, मुनाफे का जायजा लेते हैं और किसी भी तरह इसे और बढ़ाने की बात करते हैं बस चले जाते हैं- ऐसे ही विचार कॉडवेल के हैं-

"एक मालिक और उसके गुलाम के बीच का संबंध एक राजा और उसकी प्रजा का संबंध, अपनी संपूर्ण क्रूरता और शोषकता के बावजूद मनुष्य और मनुष्य का संबंध है और इसीलिए उसमें हमें स्निग्धता के स्पर्श यहाँ वहाँ मिलते हैं। पर किसी कम्पनी के शेयर होल्डर और उसकी फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर, ब्रिटिश चाय पीने वाले और भारत में उसकी पत्तियाँ तोड़ने वाले मजदूर के बीच के संबंधों में स्निग्धता की आशा कैसे की जा सकती है।"[1]

बढ़ती हुई धन की महत्ता ने जहाँ समाज के सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया वहीं मानव स्वभावमें भी परिवर्तन आया, उसकी विचारधारा प्रभावित हुई और जो मनुष्य पहले इन्सानियत की दुहाई देता था, प्रेम का दम्भ भरता था अब प्रेम को भी अर्थ की तुला पर तौलने लगा "बुर्जुवा समाज संबंधों की विद्रूपताओं ने प्रेम को भी अप्रभावित नहीं छोड़ा है। आज वह एक स्वार्थपूर्ण और ईर्ष्या से भरा व्यापारबन गया है। वह आर्थिक हवाओं में एक पत्ते की तरह उड़ता है। शादी अधिकाधिक मंहगी होती जा रही हैं, बच्चे भी मंहगे पड़ने

1- कॉडवेल- हिन्दी की मार्क्सवादी कविता-डा० रणजीत- पृ०- 253

लगे हैं। धीरे-धीरे बुर्जुवा प्रेम सभी प्रकार के उत्तरदायित्वों से मुक्त मनोवृत्ति के द्वारा किये हुए संभोग का रूप लेता जा रहा है।"[1]

समाज मेंअसन्तोष की भावना-

समाज में पुराने रीति रिवाजों के प्रति तीव्र असन्तोष की भावनाने जन्म ले लिया था। आज के बदलते युग में प्राचीन रीतियाँ-कुरीतियाँ बन गयी थीं। गरीबकिसान-मजदूर पेट पालने में असमर्थ हैं किन्तु अपने रीति-रिवाजों का पालन करने के लिये वे सब कुछ करने को तैयार हो जाते हैं, महाजन से कर्ज लेते हैं, अपनी सम्पत्ति गिरवीं रखते हैं किन्तु अपनी रूढ़ियाँ नहीं त्यागते-

" रीत बदल है रहीं हारों में
घर फूकते दीवाली से
फाग खून की, है गुलाल भी
लाल लहू की लाली से।"[2]

"प्राचीनता के नाम पर हर चीज की पूजा करने से समस्या हल नहीं होती। यह आत्मछल हमें पतन के जिस गढ्ढे में गिरा चुका है, उसकी गहराई अथाह है।"[3]मनुष्य में शिक्षा का अभाव ही उसे रूढ़िग्रस्त बना देता है, उसे अच्छे-बुरे की कुछ पहचान नहीं रह जाती है-लेनिन के कथनानुसार"शिक्षा के अभाव में मनुष्य न अपने को समझ सकता है, न समाज को, न प्रकृति को।"

प्रगतिवादी कवियों ने जहाँ मजदूरों के शोषण की बात कही, वहीं समाज में व्याप्त कुरूतियों एवं रूढ़ियों पर भी कटाक्ष किये हैं। भारतीय समाज अपने पुराने रीति-रिवाजों से इतना चिपका हुआ था कि बदलते हुये युग से उसका सामंजस्य स्थापित नहीं हो पारहा था। वह समाज में होने वाली प्रगति में कदम से कदम मिलाकर चल नहीं पा रहा था। अतः प्रगतिवादी कवियों का कर्तव्य बन गया कि वह समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित करे-

- -

1- कॉडवेल-हिन्दी की मार्क्सवादी कविता-डा० रणजीत- पृ०- 253
2- नरेन्द्र शर्मा-मिट्टी और फूल- पृ०-106
3- विश्वमित्र- 1934 सोवियत संघ की सामाजिक व्यवस्था-"सर्वहारा"।

मेरी वाणी में अभिशापित
मानवता की चीख भरी है
मेरी झोली में नवयुग के
संदेशों की भीख भरी है
नवयुग का निर्माण हो रहा
आओ हाथ बटाओ
चाहे मुझको मत अपनाओ।"[1]

आज एक युग की संस्कृति जीर्ण-शीर्ण होनऽप्राय हो रही है किन्तु उसके प्रति अभी हमारा मोह बाकी है और यह मोह हमें आगत युग की नवोन्मेषी संस्कृति को अपनी भावचेतना में ग्रहण करने से विमुख कर रहा है। इस नूतन संस्कृति में पुरातन अपने अभिनव रूप में जीवित ही रहेगा किन्तु हमारा मोह उसके जर्जर कंकाल को ही सुरक्षित रखना चाहता है। यही कारण है कि हम नूतन के आमंत्रण को ठुकराते हैं। पुरानी रुढ़ियों, रीति रिवाजों तथा विचारों के खंडहरों के नीचे खड़े हो अश्रु बहा रहे हैं और उस नवीन स्नेहयुक्त समतापूर्ण जीवन की ओर दृष्टिपात करने से जी चुराते हैं, जिसका निर्माण आज की मानवता अपने रक्त मांस की बलि देकर कर रही है, और इस संघर्ष का कहीं अंत होता नहीं दिखाई देता।"[2]

" चाहे न पूर्णता मैं पाऊँ
चलते ही चलते मिट जाऊँ
पत्थर पर दूँ पदचिह्न बना
मुझ में है इतना भरा जोश
क्यों दूँ किस्मत को भला दोष?"[3]

समाज में व्याप्त रूढ़ियों के प्रति विद्रोह प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य है, और आवश्यकता इस बात की है कि वह प्रत्येक व्यक्ति को जाग्रत करे। प्राचीनता के प्रति निरर्थक व्यामोह को त्यागकर, नव निर्माण की आकांक्षा प्रत्येक व्यक्ति में भर दे। आवश्यक

- -

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 97
2- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- ज,
3- वही, पृ0-79

नहीं कि विद्रोह करते ही सफलता मिल जाये कुछ व्यक्तियों को नींव का पत्थर भी बनना पड़ता है। समाज किसी भी नीति या नयी व्यवस्था को एक दम से ही आत्मसात नहीं करता इसका प्रभाव बहुत धीरे-धीरे पड़ता है। प्रगतिवादी कवियों ने समाज की कुरीतियों से त्रस्त मानव के मन में इसके प्रति क्रांति की भावना भरने का कार्य किया-

" यदि निपट निरीहों का संबल
बनने की तुझमें शक्ति न थी
यदि मानव बन मानवता के
हित मिटने की अनुरक्ति न थी
क्यों आह कर उठा था उस दिन
क्यों बिखर पड़े थे कुछ जलकण
फिर व्यर्थ मिला ही क्यों जीवन?"[1]

सुमन जी ने अन्य कवियों का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि वह धर्म एवं समाज के ठेकेदारों से अभिशप्त जनता को जागृत करें, व्यर्थ के रूढ़िबन्धनों से स्वयं को मुक्त करे। कवि ने बड़ा सुन्दर उदाहरण दिया कवि बाल्मीकि का, जो पत्थर के समान कठोर दिल होते हुए भी प्राणी के दुख से विह्वल हो गये थे। आज के कवियों को क्या हो गया है जो समस्त मानव को पीड़ित देखकर भी नहीं पिघलता-

" निश्वासों की तापों से यदि
शोषक हिमदुर्ग गला न सका
उर उच्छ्वासों की लपटों से
सोने के महल जला न सका
क्यों भाव प्रबल, क्यों स्वर मधमय
किस काम हमारा यह गायन
फिर व्यर्थ मिला ही क्यों जीवन?।"[2]

भारत का निम्नवर्ग अशिक्षित है उसे इस बात से कोई सरोकार नहीं कि निम्न रिवाज उसके लिये हितकारी है अथवा अहितकारी वह धर्म एवं ईश्वर से डरता है। स्वार्थी एवं लालची धर्म

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 95
2- वही, पृ0-95

के ठेकेदार धर्म का हौवा इनके आगे खड़ा कर देते हैं और भोले ग्रामीण अपनी मर्यादा के लिये, अपनी बिरादरी में लाज रखने के लिये अपने आपको मिटा तक देते हैं-

अन्यायियों के दुर्ग गढ़
ढह जाय, मिट्टी में सने
विश्वास का सम्बल पकड़
मानव कभी मानव बने
नवक्रांति के पथ पर सदा
मेरी प्रगति स्वच्छन्द हो
यह गति न मेरी बन्द हो।"[1]

प्राचीन संस्कृति, रूढ़ियाँ, नीतियाँ उस समय के लिये उचित थीं, क्योंकि उसी के अनुसार समाज की संरचना भी हुई थी किन्तु आज सब कुछ बदल गया है, पहले वर्ण मनुष्य के गुण के अनुसार होते थे किन्तु धीरे-धीरे वह कुत्सित रूप धारण करते हुए अब जातिगत हो गये गुणों से उसको कोई सरोकार नहीं इसलिये वर्ण विभाजन पहले के लिये ठीक था किन्तु आज के लिये ये निरर्थक है और साम्प्रदायिकता का कारण बन गये हैं। पहले समस्त जीवन के उपाय मनुष्य द्वारा सम्पन्न होते थे आज उनकी जगह यंत्रों ने ले ली है अतः जो नियम मनुष्य पर लागू थे वही यंत्रों पर कैसे सही बैठ सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सामाजिक संरचना के अनुसार बदलते हुए युग के साथ प्राचीन रूढ़ियों रीति-रिवाजों में भी परिवर्तन कर लेना चाहिये अन्यथा यह रीति रिवाज बेड़ियों का काम करते हैं-

गत सक्रिय गुण बन बन रूढ़ि रीति के जाल गहन
कृषि प्रमुख देश के लिए हो गए जड़ बंधन
जन नहीं, यंत्र जीवनोपाय के अब वाहन
संस्कृति के केन्द्र न वर्ग अधिक, जन साधारण
उच्छिष्ट युगों का आज सनातनवत प्रचलित
बन गईं चिरंतन रीति नीतियाँ-स्थितियाँ मृत

- -

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 43

गत संस्कृतियाँ थीं विकसित वर्ग व्यक्ति आश्रित
तब वर्ग व्यक्ति गुण, जन समूह गुण अब विकसित।"[1]

समाज के वे बगुला भगत जो ऊपर से तो महापण्डित बने रहते हैं किन्तु अन्दर से बिल्कुल धूर्त होते हैं। ये बाहर से तो ऐसा आचरण करते हैं कि मानो इनसे पवित्र कोई है ही नहीं ये धरती पर देवता बनकर अवतरित हुए हैं किन्तु वास्तव में ये है क्या? ये भोली भाली जनता को चूसने के लिये उसे ठगने के लिये ही पैदा होते हैं। न जाने कितने कितने विधि -विधान बतलाकर ये ग्रामीण अशिक्षित जनता को गुमराह करते हैं। ऐसे धूर्त पण्डित किस तरह के होते हैं इसका वर्णन पंत जी ने "ग्राम्या" में बड़े ही अच्छे ढंग से किया है-

" दे देवभाव के प्रेमी, पशुओं से कुत्सित
नैतिकता के पोषक, मनुष्यता से वंचित
बहु नारी सेवी, पतिव्रता ध्येयी निज हित
वैधव्य विधायक, बहु[illegible]वादी निश्चित।
सामाजिक जीवन के अयोग्य, ममता प्रधान
संघर्षण विमुख, अटल उनको विधि का विधान
जग से अलिप्त वे, पुनर्जन्म का उन्हें ध्यान
मानव स्वभाव से द्रोही, श्वानों के समान।"[2]

भारत की अधिकतम जनसंख्या गाँव में निवास करती है और गाँव में रहने वाले व्यक्ति शिक्षा से दूर नगर के तड़क-भड़क जीवन से दूर होने के कारण नितान्त भोले भाले एवं निरीह होते हैं, इनका मन कोमल होता है निःस्वार्थ निष्कपट, संयमी, संतोषी इनकी इस भावना का फायदा उठाकर कुछ लालची एवं स्वार्थी धर्म के ठेकेदार जटिल रुढ़ियों में इनको उलझा देते हैं। ग्रामीण जनता धर्म के डर से घिसी पिटी मान्यताएँ

1- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या, ग्राम देवता-पृ0- 59
2- वही, पृ0-61

का पालन करती जाती है, इन्हीं रूढ़ियों में बंधे रहने के कारण गाँवविकास नहीं कर पाता, कवि पन्त कहते हैं-

" जीवन प्रिय हो, सहनशील, सहृदय हो, कोमल मन हो
ग्राम तुम्हारा वास रूढ़ियों का गढ़ है चिर जर्जर
उच्च वंश मर्यादा केवल स्वर्ण रत्न प्रभ पिंजर
जीर्ण परिस्थितियाँ ये तुममें आज हो रहीं बिम्बित
सीमित होती जाती हो तुम अपने ही में अवसित
तुम्हें तुम्हारा मधुर शील कर रहा अनजान पराजित
वृद्ध हो रही हो तुम प्रतिदिन नहीं हो रहीं विकसित "[1]

प्राचीन सभ्यता अब सूखे हुए उस पत्ते के समान हो गयी है जो झड़ जाना चाहती है, किन्तु अपने ही अस्तित्व से एक नयी सभ्यता रूपी पत्ते को जन्म देकर जो नवीन पराग और फल-फूल से सुसज्जित होगा। कवि अभी प्राचीनता के प्रति विद्रोह का आवाहन करता है सब कुछ बदल देना चाहता है-

" सभ्यता सनातन की जरा-जीर्ण
शुष्क पत्र के समान
झरकर फिर नूतनत्व
पाने को खड़ी है आज
रौरव के महामृत्यु-समता-भय द्वार पर।।
नियम यही-ऐसा ही
देखता है सारा देश
उत्सुकता से तुम्हारी राह।
ओरे वीर, ओरे धीर।
तुम्हारे पुंजीभूत रोष गात से
लो बुझा,

- -

1- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या- कला के प्रति-पृ0- 8।

प्रदीप पूँजीवाद का
संचित हो समग्र जाति
पूर्वीय सीमा पर दिगन्त की
लक्ष लक्ष प्राणों का एक ध्वनि
अब उठो, गाओ और
मृत्यु कण्ठ से उल्लासमय
साम्यमान। "[1]

प्रगतिवादी काव्य में ईश्वर के प्रति अविश्वास व्यक्त किया गया है। धर्म और भाग्यवाद का हौवा व्यक्ति कीप्रगति में बाधक हैं।ईश्वर के ऊपर निर्भर रहने से व्यक्ति अकर्मण्य हो जाता है। दलित वर्ग अपने ऊपर हुये अत्याचारों के लिये एवं अपनी दीन अवस्था के लिये अपने कर्मों को दोषी ठहराता है और कुछ दिन बाद ईश्वर उसको सुख देंगे या पापी को अत्याचारी को दण्ड देंगे ऐसे अन्धविश्वास से ग्रसित रहते हैं , स्वयं कोई हल नहीं खोजते। प्रगतिवादियों को ऐसी व्यवस्था पूँजीपतियों द्वारा बनायी हुई प्रतीत होती है अत: वह ईश्वर,धर्म और कर्मकाण्डों का विरोध करते हैं-

ईश्वर?-
ईश्वर कहाँ? कहीं नहीं
पत्थर की पूजा कर
पत्थर ही बना है नर नृशंस
ओट में खुदा की चोट
करता शैतान वह
दिग्विमूढ़ यात्री सा
युगों से
खोया मनुष्य अपने
अतीत की छाया में श्रान्त-क्लान्त। "[2]

- -

1- आरसी प्रसाद सिंह-"रक्तपर्व" हंस जनवरी- 1938
2- वही

आज की सामाजिक व्यवस्थाकुछ ऐसी हो गई है कि व्यक्ति किसी एक तरफ सोच नहीं पाता, उसका दिमाग कभी स्थायी नहीं रहता, एक अजीब से कशम कश में जीवन बिता रहा है, वह समझ नहीं पाता कि कौन सा रास्ता सही है और कौन सा गलत कभी धर्म के ठेकेदार स्वार्थी उसे अपने चंगुल में फसाने का षड्यंत्र रचते हैं और कभी विज्ञान का मायाजाल मनुष्य को आकर्षित करता है। आज की शिक्षा व्यवस्था भी मनुष्य का सही मार्गदर्शन नहीं कर पाती। शिक्षा ऐसी दी जाती है जिसे पढ़कर कुछ सरकारी कामकाज चलाने वाले बाबू बनाये जा सके उसका संबंध ज्ञान से नहीं रहता। त्रिशूल जी ने सुकवि में इस तरह की स्थिति का वर्णन किया है-

> "कभी धर्म ने तुझे अन्ध-जन्मान्ध बनाया
> और कभी विज्ञान तुझे बहलाने आया
> शिक्षा ने है कभी कुपथ तुझको दिखलाया
> मोह कभी लेगई सभ्यता की है माया।"[1]

हमारे देश में ये बड़ी खराब रीति है कि मृत्यु के पश्चात शव का खूब श्रृंगार किया जाता है, उसके बाद उसके दाह संस्कार में खूब धनखर्च किया जाता है, किन्तु वही जब जीवित रहता है तो एक एक अन्न के दाने को तरसकर मर जाता है यानि हमारे यहाँजीवित सत्य को नहीं मृत सत्य को पूजा जाता है। हम मुर्दे को सजा सकते हैं, उसके नाम पर हम दावतें दे सकते हैं किन्तु भूखेव्यक्ति को जो जीवित है भोजन नहीं दे सकते। ऐसी व्यवस्था और संस्कार के प्रति कवि पंत का भावुक हृदय खीझ उठा और व्यथित मन से उन्होंने लिखा-

> "हाय! मृत्यु काऐसा अमर, अपार्थिव पूजन?
> जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन
> संग सौध में हो श्रृंगार मरण का शोभन
> नग्न, क्षुधातुर, वासविहीन रहें जीवित जन?।"[2]

1- त्रिशूल- सुकवि, सितम्बर सन् 1937
2- सुमित्रानन्दन पंत- युगपथ-(युगान्त) पृ0- 49

कवि पंत ने आगे भी इसी प्रकार की अरुचि दिखायी है। मरने वाले व्यक्ति के प्रति लोगों का आदर उमड़ पड़ता है, उसके नामपर एक से सुन्दर यादगार चीजें बनवाई जाती हैं भले ही जीवित रहने पर वह व्यक्ति अपनी निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये भी तरस गया हो। कवि का मन ताजमहल के देखकर रो उठा है बादशाह ने अपनी बेगम को प्यार की निशानी दी ताज बनवाकर, मगर ये ताज कितनों की आहें एवं आसू अपने आप में संजोये हुये है-

" मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति
आत्मा का अपमान, प्रेत औ छाया से रति!
प्रेम अर्चना यही करें हम मरण को वरण
स्थापित कर कंकाल, भरें जीवन का प्रांगण?
शव को दें हम रूप रंग आदर मानव का
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दे शव का
गतयुग के मृत आदर्शों के ताज मनोहर
मानव के मोहांध हृदय में किए हुए घर
भूल गए हम जीवन का संदेश अनश्वर
मृतकों के हैंमृतक, जीवितों का है ईश्वर।"[1]

मार्क्सवाद धर्मान्धता में अविश्वास प्रकट करता है, उसे वो कोई बात पसन्द नहीं जिसमें मनुष्य का शोषण किया जाता हो। "मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार परम्परिक "धर्म" मानव को एक अफीमी नशेमें मदहोश बनाकर निष्क्रिय और भाग्यवादी बना देते हैं। यह धर्म शोषण के अस्त्र के रूप में काम करता है। इस तरह के धर्म का विरोध करना प्रगतिवादियों का प्रधान कर्तव्य बन जाता है। श्रमजीवियों के लिये ये धर्म किसी काम का नहीं बल्कि उन्हें परेशान ही करता है। अब समय आ गया है ऐसे रुढ़िवादी बन्धनों को उतार फैंकने के लिये नवयुवक उबल पड़ा है, वो पुरानी सृष्टि को ही मिटा देना चाहता है, इस क्रांति में उसे ईश्वर की भी चिंता नहीं वो ईश्वर को भी चुनौती

- -

1- सुमित्रानन्दन पंत-युगपथ-युगान्त- "ताज" पृ0-49

देता है-

" कहीं कुछ पूछने बूढ़ा विधाता आज आया
कहेंगे, हाँ तुम्हारी सृष्टि को हमने मिटाया।"
× × × ×
नये युग की भवानी, आ गई बेला प्रलय की
दिगम्बरि! बोल अम्बर में किरण का तार खोल।"
देवता दिखा दर्पण अदृष्ट का तुम्हें क्रान्त
कर दें जीवन को और अधिक दुस्सह:अशांति।[1]

सामाजिक द्वन्द्व में विविध आयाम गरीबी-

पूँजीवादी व्यवस्था ने देश को घोर आर्थिक संकट में डाल दिया था।समाज की समस्त पूंजी मुट्ठी भर लोगों के हाथों में सिमट कर जा रही थी और समाज का बहुसंख्यक वर्ग गरीबी की लपेट में आ गया था। जहाँ कभी अन्न के भण्डार भरे रहते थे वहाँ चूल्हे से धुआँ उठना बन्द हो गया।चारों तरफ गरीबी का साम्राज्य छा गया, भारत के आदर्श गाँव अब श्मशान से सूने और कुत्सित दृष्टिगत होते हैं। पंत ने गाँव का एक दयनीय कुत्सित किन्तु यथार्थ चित्र खींचा है जहाँ अन्न देवता निवास करते हैं वहाँ का वातावरण कैसा है-

" यहाँ नहीं है चहल पहल वैभव विस्मित जीवन की
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले वन की
आता मौन प्रभात अकेला, संध्या भरी उदासी
यहाँ घूमती दोपहरी में स्वप्नों की छाया सी।"[2]

इस गाँव में रहने वाले व्यक्ति पशुवत अपना जीवन व्यतीत करते हैं। इन व्यक्तियों को न शिक्षा से मतलबहै न सभ्यता संस्कृति से न अन्य किसी कलाकौशल से ये तो पेट कीरोटी जुटाने में इतने व्यस्त हैं कि और किसी चीज के बारे में सोच भी नहीं

1- हुंकार-दिनकर- पृ0-29
2- [illegible]न पंत-ग्राम्या-ग्रामचित्र-पृ0- 16

सकते मगर कैसी विडम्बना है जिसके लिये पूरा जीवन गवाँ देते हैं वो भी नहीं जुटा पाते। इतना तो पशु-पक्षी भी कर लेते हैं तो क्या ये मनु के वंशज पशु से भी गये बीते हैं? इन भूखे नंगों को देखकर यहीसवाल सबके सामने घूमता है-

" यहाँ खर्व नर।बंदर।रहते युग युग से अभिशापित
अन्न वस्त्र पीड़ित असभ्य, निर्बुद्धि पंक में पालित
यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित
यह भारतका ग्राम, सभ्यता संस्कृति से निर्वासित
झाड़ फूँस के विवर, यही क्या जीवन शिल्पी के घर
कीड़ों से रेंगते कौन ये?बुद्धि प्राण नारी नर
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग में
गृह गृह में है कलह, खेत में कलह, कलह है मग में। "[1]

पंत ने शहर से दूर गाँवके जीवन को नजदीक से देखा है और वहाँ के जीवन की विषमता का वर्णन बखूबी किया है-

" ये जीवित हैं या जीवन्मृत।
या किसी काल विष से मूर्छित
ये मनुजाकृति मार्मिक अगणित
स्थावर, विषण्ण, जड़वत, स्तंभित। "[2]

भारत की तीस करोड़ जनता वस्त्र-विहीन आधा पेट भोजन से सन्तुष्ट, असभ्य, गँवार शिक्षा से दूर निर्धनता में अपना जीवन व्यतीत करती है, भारत की तीन तिहाई जनता ऐसा ही नारकीय जीवनव्यतीत करती है और मुट्ठी भर लोगों द्वारा प्रताड़ित की जाती है-

" तीस कोटि संतान नग्न तन
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन

- -

1- सुमित्रानन्दन पंत-ग्राम्या-ग्राम चित्र-पृ0- 16
2- वही, कठपुतले-पृ0- 23

मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन
नत मस्तक। "1

भारत केमजदूर वर्ग जो दूसरों के लिये तो महलों का निर्माण करते हैं मगर स्वयं कैसे रहते हैं-

" उस ओर क्षितिज के कुछ आगे
कुछ पाँच कोस की दूरी पर
भू की छाती पर फोड़ों से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर
मैं कहता हूँ खंडहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम
जिसमें भर देती निज धुँधलापन
असफलता की सुबह-शाम
पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ
नारियाँ जन रहीं हैं गुलाम,
पैदा होना, फिर मर जाना
बस यह लोगों का एक काम।[2]

किसान जो अन्न उपजाता है मगर दूसरों के लिये अपने लिये नहीं, उसके स्वयं के बच्चे अन्न के दाने को तरसकर मर जाते हैं और उनके घर का अन्न वहाँ चला जाता हैजहाँ पहले से ही अन्न के ढेर लगे हैं। कुछ लोग है जहाँ बच्चे पैदा होते हैं तो खुशियाँ मनती हैं किन्तु इन मजदूरों के बच्चे जीवन पर एक व्यंग्य बनकर पैदा होते हैं जिन्हें जीवन का कोई सुख नहीं मिलता माँ-बाप का वह स्नेह दुलार भी नहीं मिल पाता जिसकी उन्हें जरूरत होती है क्योंकि माँ-बाप अपने अभावों से इतने चिड़चिड़े हो जाते हैं बच्चों की पालन-पोषण न कर पाने के कारण इतने खोखले हो जाते हैं कि अपने बच्चों को ही कोसने लगते हैं-

- -

1- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या-भारतमाता-पृ0- 48
2- भगवतीचरण वर्मा- मानव-पृ0- 66-67

उसके वे बच्चे तीन, जिन्हें
माँ-बाप का मिला प्यार न था
जो थे जीवन के व्यंग्य, किन्तु
मरने का भी अधिकार न था
वे क्षुधा-ग्रस्त बिलबिला रहे
मानो वे मोरी के कीड़े
वे निपट घिनौने, [illegible]
बाने कुरूप टेढ़े-मेढ़े
उसका कुटुम्ब था भरा-पुरा
आहों से हाहाकारों से।
फाकों से लड़लड़कर प्रतिदिन
घुट घुट कर अत्याचारों से
तैयार किया था उसने ही
अपना छोटा सा एक खेत।"[1]

गरीब का इससे भीषण दृश्य और कोई नहीं हो सकता जब व्यक्ति अपनी भूख मिटाने के लिये कूड़े के ढेर से अन्न बीनकर खाये और बगल में कुत्ता भी कूड़ा खंटोल रहा हो मनुष्य और पशु में कुछ अन्तर नहीं रह जाता, ऐसे जीवन को देखकर निराशा होती है, ऐसी भी जिन्दगी क्या इससे तो मर जाना बेहतर है मगर वो भी नहीं होने पाता और मनुष्य जीवन एक द्वन्द्व में फँसा यूँ ही घसिट घसिट कर अपना जीवन व्यतीत करता जाता है-

2 हन्त भूख मानव बैठा
गोबर से दाने बीन रहा है
और झपट कुत्ते के मुँह से
जूठी रोटी छीन रहा है।
साँस न बाहर भीतर जाती

- -

1- भगवती चरण वर्मा- मानव-पृ0- 68

और कलेजा मुँह को आता
हाय नहीं यह देखा जाता।"

देख रहे आँखों के आगे
कितने जर्जर पीड़ित ऐसे
भूख प्यास से अब माँगते
जो विष खाने को ही पैसे
और नहीं वह भी मिलता है
मानव चीख चीख चिल्लाता
हाय नहीं यह देखा जाता।"[1]

समाज की सबसे बड़ी विडम्बना ये है कि जो धनवान है वही सब कुछ है किन्तु धनवान वह बनता कैसे है, दूसरों का हक छीनकर और उसी धन से दूसरों पर रौब जमाकर वहसमाज में भगवान की तरह पूजा जाता है। समाज के बड़े-बड़े सेठ आदि दान चन्दा वगैरहदेकर अपनी जय-जय कार करवाते हैं-

भाग्य लूटने वाले को
वह धर्मवान भगवान बनाता
जीवन हाय हराम कर दि T,
उसकी जयजयकार मनाता
जिसने सब कुछ छीन लिया
उसको ही वह दाता बतलाता।
हाय नहीं यह देखा जाता।

कवि अपनी खीझ उस शोषित व्यक्ति पर व्यक्त करते हैं जो निरीह और दीन-हीन बनकर गिड़गिड़ाता है अपने ही शोषक के सामने। जिसके कारण वह भिखारी से बदतर जीवन व्यतीत कर रहा है उसी के आगे घुटने टेकता है एक-एक पैसे की भीख माँगता है। क्यों नहीं विद्रोह कर उठता क्यों अपनी ही मेहनत का धन लेने में भी

- -

1- शिव मंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 106-107

गिड़गिड़ाता , हाथ फैलाता है ये तो उसका अधिकार जितनी उसने मेहनत की है उतना उसका हिस्सा पानातो उसका हक है फिर क्यों दीन बनकर हाथ फैलाता है-

निर्मम शोषक के ही सन्मुख
अपने हाथ पसारा करता
शेष न जिसमें दया हया कुछ
उससे रो रो आहें भरता
बलि बकरे सा क्रूर कसाई को
अपने न पहचान पाता
हाय नहीं यह देखा जाता।"[1]

कुछ आदिवासी जो गरीबी की रेखा से नीचे अपना जीवन व्यतीत करते हैं उनकी गरीबी और दरिद्रता का वर्णन करते नहीं बनता। कुछ लोगों को तो भूख से हताश हो होकर अपने बच्चे तक बेचने पड़ते है।भूख कोपीड़ा कोई नहीं बर्दाश्त कर सकता अपने कलेजे के टुकड़े को भी आदमी बेचने पर विवश हो जाता है रोटी कोभूख इसे कहते हैं, अपने बच्चों के हाथ से रोटी तक छीन कर खा जाता है मनुष्य। इस भीषणता तक समाज को पूँजीवादी व्यवस्था ने पहुँचा दिया है- कवि शिवमंगल सिंह जी सुमन ने अपने "जीवन के गान" में गरीबी के कुछ ऐसे हीभीषण दृश्यों को उजागर किया है-

जिसके बच्चे दूध-दूध रट
बारी बारी स्वर्ग सिधारे
फटे चीथड़ों में लिपटी
बैठीजिसकी रानी अनमारे
छाती पर पत्थर धर पापी
पेट लिये जब मिल को जाता
हाय नहीं यह देखा जाता।

उससे भी भीषण जब मानव
व्याकुल भूख भूख चिल्लाता

1- शिव मंगल सिंह सुमन-"जीवन के गान"-पृ0- 106-107

अपने ही बच्चे की रोटी छीन
उदर की ज्वाल बुझाता
बच्चा केवल रोता रोता भूख तड़प तड़प मर जाता
हाय नहीं यह देखा जाता।"[1]

अपनी गरीबी और भुखमरी की मार से खोखला मनुष्य दुबला-पतला हड्डी का ढाँचा बन जाता है और भूख से पीड़ित कचरे के डब्बे से अन्न के दाने बीन-बीनकर खाताहै तो उसमें और पशु में कोई अंतर नहीं रह जाता। उसे सभी लोग झिड़कते हैं उसे समाज पर कलंक समझते है समाज में उसका कोई स्थान नहीं किन्तु उसकी यह दशा आज क्यों है?इसका जिम्मेदार कौन है? इस बात से किसीको कोई सरोकारनहीं समाज के कर्णधारों की भी इसके प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं किन्तुआखिर ये लोग कहाँ जाय क्या करें घोर अपमान का जीवन व्यतीत करते करते एक दिन कुत्ते के समान सड़क के किसी किनारे पर मर जाते हैं और समाज का बोझ हल्का कर जाते हैं-

" अपने ही भाई जिसको नित
थू थू कह कर दूर हटाते
नर पशु जिसे समझ कुत्ते भी
भोंक भोंक कर दूर भगाते
तिरस्कार अपमान घृणा सब सह
वह फिर भी जीता जाता
हाय नहीं यह देखा जाता।"[2]

भारत कृषि प्रधान देश है यहाँ केवल मजदूरों की दशा ही शोचनीय नहीं है, बल्कि किसानों की समस्या भी उतनी ही विकराल है।ये किसान साल भर मेहनत करते हैं खेतों में अपना खून-पसीना बहाते हैं अंत में उनके हाथ क्या लगता है भूख, तिरस्कार, अपमान और आँसू-

" खेतों के ये बन्धु वर्ष भर क्या जानें,कैसे जीते है?
जुबाँबन्द,बहती न आँख,गम खा,शायद आँसू पीते हैं?।"

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 108
2- वही, पृ0-109

पर शिशु का क्या हाल, सीख पाया न अभी जो आँसू पीना?
चूस-चूस सूखा स्तन माँ का सो जाता रो विलप नगीना।[1]

दिनकर मूलतः राष्ट्रीय काव्यधारा के क्रांतिकारी कवि हैं। विद्रोह और क्रांति इनकी रचनाओं में कूट-कूट कर भरी है। कविने कहीं भीशोषकों से कोई समझौता नहीं किया वह मूलतः परिवर्तन में विश्वासकरता है और एक नयी मूलतः व्यवास्था और सम व्यवस्था की कामना करता है। कवि का मन हाहाकार कर उठता है जब वह छोटे-छोटे बच्चों को दूध के लिये तरसते देखता है। बड़े ही सुन्दर और मार्मिक ढंग सेकवि ने इस करूण दृश्य को खींचा है, जह अबोध शिशु दूध के लिये सारी रात परेशान रहता है मगर हताश और अपनी मजबूरी में फँसे माँ-बाप के पास कोई रास्ता नहीं कि वह अपने बच्चे की छोटी किन्तु बुनियादी मांग को पूरा कर सकें-

" कब्र कब्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती है
"दूध दूध" की कदम कदम पर सारी रात सदा होती है।

कवि का ईश्वर पर से विश्वास हटगया है सका मन ये मानने को तैयार नहीं कि भगवान आकर इन बच्चों की मांग को पूरा करेंगे। बच्चे किससे अपनी आवश्यकता के लिये रोने जाँय कौन है जो उनको इस भयावह स्थिति से छुटकारा दिलायेगा-

" दूध-दूध" ओ वत्स! मंदिरों मेंबहरे पाषाण यहाँ हैं
दूध दूध। "तारे बोलो इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं?[2]

दिनकर की अनेक ऐसी रचनाएँ है जिन पर मार्क्सवाद की घनी छाया विद्यमान है परन्तु उपर्युक्त व्याख्या के प्रकाश में उन्हें मार्क्सवादी कवि की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती, उनकी गति साहित्याकाश में भटकने वाले एक लक्ष्यहीन ग्रह के समान है जो अनेक दिशाओं में भटकता हुआ कभी-कभी मार्क्सवाद के पास भी आ पहुँचता है और उसकी प्रशस्ति के दो चार गीत गाकर फिर किसी दिशा में भटक जाता है। अतः मार्क्सवादी विचारों से प्रभावित उनकी रचनायें क्षणिक-आवेश में लिखी गई प्रतीत होती है, जिसमें विचारवाद संबंधी संतुलन और स्थायित्व का अभाव है।[3]

1- दिनकर- हुंकार- पृ0-22
2- वही, पृ0-22
3- हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना-जनेश्वर वर्मा- पृ0- 324

सन् 1936 से मार्क्सवाद का जो एक वेग चला उसमें सभी कवि सकीचपेट में आये प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनकी रचनायें मार्क्सवाद से प्रभावित हुए बिना न रह सकीं। पत्र-पत्रिकाओं में इस प्रकार की रचनाओं का बोलबाला हो गया जो भूख और लाचारी से भरती आम जनता का चित्रण कर रही हो, इसी श्रृंखला में आरसी प्रसाद सिंह की कई रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं जिनमें शोषित जनता के प्रति सहानुभूति एवं शोषकों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया गया है। एक तरफ ऊँचे ऊँचे आकाश को छूते भवन हैं तो दूसरी ओर झोपड़ी है जिसमें भूख, दरिद्र, गन्दगी और घोर अंधकार में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं-

"गिरता है मणिमय प्रसादन-निकर
अम्बर, चि चुम्बी, मनोमुग्धकारी,
दीन हीन रंकों की
भिक्षा अधीर, क्षुधा आतुर दरिद्रों की
विविध दुख तिमिर सघन
पर्ण की कुटीरों पर।"[1]

यों हिन्दुस्तान ही में ही नहीं दुनिया में जहाँ भी मनुष्य जन्मा वहाँ यह प्रयत्न होता रहा कि आदमी भौतिक यातना, भूख, गरीबी और गैर बराबरी के कारण पैदा होने वाले उत्पीड़न से मुक्त हो, लेकिन इन उत्तम विचारों से प्रेरित होने के उपरान्त भी वह दुनिया को तब्दील करने वाले दर्शन, आदर्श, कार्ययोजना और विधि का निर्धारण नहीं कर सका और इसलिए वैयक्तिक छटपटाहट के उपरांत भी वह व्यापक स्तर पर मनुष्य की आर्थिक लाचारी आत्मा का विघटन, अनिश्चित और अनैतिक विकल्पों का चुनाव देखता रहा। वह इन परिस्थितियों में संसार को सुन्दर बनाने के लिए "नैतिक आदर्शों तथा सामंजस्य की भावना"[2] पर जोर देता रहा। मार्क्सवाद किसीभी प्रकार के सामंजस्य विकल्प या समझौते को तैयार ही नहीं था वह सब कुछ समाप्त करे नये सिरे से समाज की व्यवस्था

- -

1- आरसी प्रसाद सिंह- रक्त पर्व- हंस जनवरी 1938

2- लेनिन और भारतीय साहित्य से उद्धृत-पृ0-39-40, अशोक मेहता-लोकतांत्रिक समाजवाद-अ0भा0पत्रिका संघ प्रकाशन, काशी, 59, पृ0- 21

करना चाहता था जिसमें सत्ता श्रमिक वर्ग के हाथ में रहे क्योंकि वर्तमान व्यवस्था में उनको वो सुविधा नहीं जिसमें वह अपनी आवश्यकताओं को भी पूरा कर सकें। मनुष्य की अनिवार्य और बड़ी आवश्यकता "रोटी" यह वर्ग उसे भी ठीक से नहीं जुटा पाता। किन्तु उसको जुटाने के लिए वह मेहनत सबसे ज्यादा करता है-किन्तु जीवन कैसा व्यतीत करता है-

" मनुजों का पददलित समाज
पापों का सम्बल लाद
स्कन्धों पर निराधार
मूलहीन पादप सा
भर रहा अन्नहीन, वस्त्रहीन
धन, जन परिवार हीन
व्याकुल समुदाय हाय
शत शत कंकालों का प्रेत सम।[1]

इसी प्रकार की गरीबी और दरिद्रता का वर्णन कवि रामेश्वर शुक्ल "अंचल" ने किया है जिसमें मजदूर की एक अन्धी लड़की की विवशता का चित्रण है। वह अन्धी लड़की अपने घर की मजबूरी और विवशता देख रही है किन्तु कुछ कर नहीं सकती वह हताश होकर बैठ जाती है, मानो उसके वश में कुछभी नहीं है, वह बिल्कुल बेबस है, जिन्दगी में कोई रस नहीं सब एक नियति चक्र के समान चलता जाता है-

" दृष्टि हीन दुर्गन्धि भरी वह
भूख गन्दगी नग्न गरीबी में
कहीं नहीं मेहनत मजदूरी भी कर सकती
अन्धकार में पड़ी कब्र सी आँखें
बासी रोटी बासी पानी
बीत रही घुँआ घुँआ जिन्दगानी

- -

1- आरसी प्रसाद सिंह-रक्तपर्व-हंस जनवरी 1938

सन्ध्या को माँ-बाप मिलों से आते
जर्जर थकित अंगुलियाँ लेकर ।"[1]

भारत में जब प्रगतिवाद का प्रसार प्रारंभ हुआ तो अनेक कवियों ने इससे प्रभावित हो स्फुट कवितायें रचीं जो कि तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में छपने लगीं। कुछ कवि इन्हीं पत्रिकाओं के माध्यम से आगे बढ़ते हुए प्रसिद्ध प्रगतिवादी कवि बने किन्तु कुछ कवि ज्यादा प्रसिद्ध तो नहीं हो पाये न ही शुद्ध मार्क्सवादी बन पाये किन्तु युग की माँग और समय के प्रभाव से उनकी कुछ रचनाये बहुत सुन्दर बन पड़ी हैं जो उस समय की गरीबी, बेबसी का मार्मिक चित्र खींचते हैं, ऐसा ही एक चित्र खींचा है कवि कृष्णचन्द्र शर्मा "चन्द्र" ने हंस पत्रिका में-

" शिशिर आया, बीती बरसात
कटेगी क्यूँ जाड़े की रात ?
× × × ×
बढ़ाये दाँत, फुलाये पेट
रहा यह तेरा ही शिशु लेट
अधिक दिन का था जो बीमार
दवा ही होती इसको यार
शेष है क्या तुझमें भी प्यार?
दूध दे देता अरे गँवार
देखे कैसे पिचके से गाल
है रो उठा! बोल, कुछ बोल!
बहाकर ये मोती अनमोल
बावले मन का भरम न खोल
ठहर तो! हो मत डाँवाडोल
भूख में तब हो गये निढाल
एक शिशु भी न सका तू पाल?

1- रामेश्वर प्रसाद शुक्ल "अंचल- वह मजूर की अंधी लड़की-हंस जून-1939

खेत में खपकर ओ नादान
बढ़ाकर औरों का सम्मान
आहुती देकर मान औ प्रान
भूल मत रे! अपनी पहिचान
दबे कंधे पिचके से गाल।"[1]

आज देश के किसी भी कोने में निकल जाइये भीख माँगने वालों की कमी नहीं। सब तरह से सम्पन्न शहर में इन भिखमंगों की तैदाद और भी ज्यादा है। बड़े बड़े महानगर एक तरफ बड़ी-बड़ी इमारतों और खूब सूरत से मार्केट काम्पलेक्सों से सुशोभित हो रहे हैं। वहीं शहर से अलग समाज से कटे हुए, ये लोग झोपड़ पट्टियों में रहते हैं और वह भी इतनी गंदी जगह जहाँ एक सभ्य इन्सान को पैर रखना भी गंवारा न होगा, ये लोग कैसे रहते हैं इसका एक सजीव चित्र उतारा है, नरक विधान में-

" घर कहने के पहले गर तुम
हिम्मत करके वहाँ पधारो
उनमें मेहनत कश के बच्चों
को पड़ता है दिन भर रहना
गन्दगी बदबू में पलते हैं
दुनिया के नागरिक सलोने
चिथड़ों में लिपटे, बढ़ते हैं
मानवता के मुंह धोने।"[2]

आज स्टेशन चले जाइये भिखमंगों की लाइन लगी है क्या मंदिर में क्या तीर्थ स्थानों में क्या रेलों बसों में क्या सड़कों पर हर तरफ भीख माँगते लोगों की कमी नहीं। इसके लिये जिम्मेदार कौन है हमारी सामाजिक व्यवस्था जो कि नितान्त अवैज्ञानिक है समय के तकाजे को बिना समझे प्राचीन रूढ़ियों का बोझ ढोती जा रही है और उसके भार के तले पिस रही है मासूम जनता जो अपने अधिकारों के लिये स्वयं भी लड़ना नहीं चाहती और न उसे समझने

- -

1- कृष्णचन्द्र शर्मा "चन्द्र" किसान-हंस जून 1939
2- प्रलयंकर- नरक विधान, 21वीं कविता।

को कोशिश करती है वह तो उसे नियति का फल समझ कर भोगती जाती है। कवि पंत ने एक भिखमंगे का वर्णन किया है। दुखों और दरिद्रता के कारण उस भिखमंगे के अन्दर का मनुष्य मर गया है वह जानवर की भाँति क्षुधा तृप्ति से ही सन्तुष्ट होने वाला जानवर बन जाता है। मनुष्य के ऐसे नारकीय जीवन को देखकर कवि पंत का कोमल हृदय विह्वल हो उठा और कल्पना के पंख लगाकर स्वप्न के आकाश में उड़ने वाला कवि कंकड़ीले-पथरीले रास्तों पर चलकर झोपड़ों में झाँकने को मजबूर हो गया मानों किसी ने उसे नींद से चौंका दिया हो-

" भूखा है। पैसे पा, कुछ गुनगुना
खड़ा हो जाता वह धर
पिछले पैरों के बल उठ
जैसे कोंचिक रहा जानवर
काली नारकीय छाया निज
छोड़ गया वह मेरे भीतर
पैशाचिक सा कुछ दुखों से
अनुज गया शायद उसमें मर।"[1]

गरीबी और भुखमरी में पलने वालों का तो जीवन की सबसे अच्छी अवस्था बचपन वो भी ऐसे ही गुजर जाती है, मानो इस दुनिया में पैदा होना ही उनका सबसे बड़ा गुनाह बन गया। सुख दुख क्या होता है, इन्हें नहीं पता, जीवन के क्या रंग हैं इन्हें इससे भी कोई मतलब नहीं-

" कर्दम में पोषित जनमजात
जीवन ऐश्वर्य न इन्हें ज्ञात
ये सुखी या दुखी? पशुओं-से
जो सोते जगते साँझ-प्रात।।"[2]

तत्कालीन कवियों ने उस समय पड़े अकाल की भयानकता का मार्मिक वर्णन किया है अकाल में सैकड़ों लोग काल की भेंट चढ़ गये थे। हर तरफ मौत का ताण्डव हो रहा था।

1- सुमित्रानन्दन पंत-ग्राम्या- वह बुड्ढा- पृ0-30
2- वही, गाँव के लड़के-पृ0- 28

अकाल से पीड़ित गाँव में चतुर्दिक भाव। हाहाकार व्याप्त था। समस्त परिवार छिन्न भिन्न हो गये थे सैकड़ों स्त्रियां विधवा हो गईं, सैकड़ों वृद्धों का एक मात्र सहारा उनसे दूर जा चुका था, सैकड़ों के घर में अंधियारा हो गया था और अनेक दुधमुँहे बच्चे अपने माँ-बाप से बिछड़ कर एक एकदाने को तरस रहे थे। इस अकाल से त्रस्त हितैषी जी ने सन् 1926 में कलकत्ता कवि सम्मेलन में कुछ अश्रु बहाये थे जो उनके वैकाली काव्य संग्रह में संकलित हैं-

" यह बच्चा दुध मुहाँ मातु-पितु हीन बिचारा
अति मलीन, तन छीन फिर रहा दर-दर मारा
अब न सहारा कहीं है न रखवाला कोई
मर भी जाये, नहीं पूछने वाला कोई। "[1]

छोटे-छोटे बालकों का रोटी के लिये ये हाहाकार कितना हृदयविदारक है-

" रोटी दो भुखो लगी"
करता यही पुकार है
इस नन्हें से प्राण का
कैसाहाहाकार है। "[2]

ऐसे दुर्दिन के समय में कुछ राजनीतिज्ञों की बन आती है वह इस समय का लाभ उठाकर अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं। सियारामशरण गुप्त जी ने कुछ ऐसे ही भाव व्यक्त किये हैं-

" राजनीतिकों के कोश में ज्वार उमड़कर आए
खुले कृपणों के वीरों ने हाथ अनन्त बढ़ाए
सबके मुँह में पानी है जब तृषित दृगों से कैसे
ताक रहा भूखा दरिद्र वह मेरे वे दो पैसे। "[3]

- -

1- हितैषी- वैकाली- पृ0-98
2- वही
3- सियाराम शरण गुप्त- दैनिकी भूमिका से-पृ0- 3

नारी जीवन के द्वन्द्व का चित्रण-

" तुम भी रणचंडी बन जाओ
मैं क्रान्ति कुमारी का अनुचर
हो ध्वंस प्रलय का राग प्रबल
दो मंत्र फूंक ऐसे सत्वर
इतिहासों के भी पन्नों में
हो जाय अगर यह कुरबानी
मेरा पथ मत रोको रानी!"[1]

आज का युग नारी से इसी की आशा रखता है अतः धीरे-धीरे नारी के प्रति लोगों का नजरिया बदला। और युगों-युगों से प्रताड़ित घर की चहारदीवारी में घुटती सामाजिक बन्धनों के बोझ से दबी नारी की स्वतंत्रता का बिगुल बजाया प्रगतिवादी कवियों ने। प्रगतिवादी काव्य की नारी प्रणयिनी मात्र नहीं है, वरन् वह समाज को बदलने की भावना लिए पुरुष की सहयोगिनी बनकर कर्म मार्ग पर अवतरित होती है। वह मात्र प्रेम का राग अलापने वाली कोयल न होकर देश और समाज के प्रति कर्त्तव्यनिष्ठ होकर प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होती है। अब नारी सुकुमार भावुक एवं कामुक न होकर कर्मठ है। प्रगतिवादी काव्य में नारी पुरुष को मात्र प्रेरणा देने वाली ही नहीं चित्रित की गयी वरन् कर्म क्षेत्र में वह पुरुष की सहयोगिनी है और समस्त कार्यों में पुरुष के समान कार्य करती है। समाज में नारियों का एक विशिष्ट दायरा बन चुका था, समाज में उनकी सीमायें निश्चित थी, यह स्थिति स्त्रियों की प्रगति में बाधक बनती थी, किन्तु स्त्रियों ने इस स्थिति से संघर्ष किया, उसका विरोध किया और यही विद्रोह एवं संघर्ष प्रगतिवादी काव्य का विषय बना।

नारी के मात्र सौन्दर्य वर्णन एवं उसके प्रणयिनी रूप के चित्रण पर प्रगतिवादियों ने असन्तोष प्रकट किया है, स्वयं पंत जो कभी नारी की कोमलता और सुन्दरता का वर्णन करते नहीं थकते थे युग की यथार्थता को समझते हुये नारी के प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं-

---

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 84

हाय मानवी रही न नारी लज्जा से अव गुण्ठित
वह नर की लालस प्रतिमा, शोभा सज्जा से निर्मित
युग युग की वंदिनी, देह की कारा में निज सीमित
वह अदृश्य, अस्पृश्य विश्व को, गृह पशु सी ही जीवित।"[1]

"नारी की कहानी भी ठीक वही है जो प्रकृति की। हर डामर नारी की सामाजिक हैसियत के संबंध में एक शब्द भी नहीं कहते। वे नारी की बुबुआ और दुखद स्थिति के सम्बन्ध में वही पुरानी और लचर दलीलें देते हैं। नारी को उसके कर्तव्य भावना से गदगद हो जाने की सलाह देते हुए वे उपदेश देते हैं कि नारी के जीवन का चरम उद्देश्य है विवाह ।पति सेवा। और बाल बच्चों का पोषण । उनके अनुसार नारी की गौरवपूर्ण विशेषता यह है कि वह आठ बरस की आयु तक बच्चों का प्रजनन और पोषण।नर्सिंग। कर सकती है।"[2]

"यद्यपि नारी हमारे देश में, पुरुष की बराबरी का सामाजिक हक हासिल कर चुकी है और समाज की विविध प्रवृत्तियों में उसने अपनी रचनात्मक शक्ति और क्षमता का प्रदर्शन आरंभ कर दिया है, किन्तु साहित्य के क्षेत्र में उसका स्थान अभी भी ऊपरी और औपचारिक बना हुआ है, पुरुष अभी भी अपनी इस पारम्परिक धारणा से मुक्त नहीं हो पाया है कि नारी उसके घर और बच्चों की देखभाल करने के लिये ही बनाई गई है या फिर उसके मनोविनोद की वह वस्तु है। आज जरूरत है कि साहित्यकार इतिहास के इस प्राचीन कर्ज को चुकाए, जिसके कारण दुनिया की आधी आबादी गुलामी में जकड़ी हुई थी। साहित्यकार को नारी की सर्जनात्मक शक्ति और उसकी रचनात्मक मनोवृत्ति का सही परिचय देकर, उसके व्यक्तित्व की सम्मानपूर्ण प्रतिष्ठा करनी चाहिये, और उसके सम्बन्ध में "मुर्गीखाने" वाले प्राचीन रवैये को समूल नष्ट करना चाहिये।"[3]

प्राचीन काल में नारी को जो स्वतंत्रतायें प्राप्त थीं वह धीरे-धीरे समाप्त हो गई और एक समय ऐसा आया जब नारी सामाजिक बन्धनों की जंजीरों में जकड़ गयी, कुछ

1- सुमित्रानन्दन पंत-"ग्राम्या"-नारी-पृ0-85
2- लिटरेचर एण्ड आर्ट, हिन्दी की मार्क्सवादी कविता ले0डा0 सम्पत ठाकुर-पृ0-91-92
3- हिन्दी की मार्क्सवादी कविता- सम्पत ठाकुर ।

पुरुषों के स्वार्थ के कारण कुछ सामाजिक परिस्थितियों के कारण और कुछ नारी स्वयं अपने कारण इस दयनीय स्थिति को प्राप्त हुई। नारी स्वभाव से कोमल एवं भावुक होती है इसका फायदा उठाया- पुरुष वर्ग ने क्योंकि वह कर्मठ, महत्वाकांक्षी एवं कठोर होता है उसने नारी को धीरे-धीरे अपने अधीन करना आरंभ किया और नारी भी बिना कोई काम किये आराम की जिन्दगी बिताने में ज्यादा सुख समझने लगी अतः वह पुरुषके अधीन बनती गयी और एक संकुचित दायरे में सिमटती गयी ऐका ऐसा आया कि अन्य सम्पत्तियों की तरह स्त्री भीपुरुष जाति की सम्पत्ति मानी जाने लगी।चूँकि समाज का सर्वे-सर्वा पुरुष था वही समाज के नियम बनाता था वहीनियम बिगाड़ता था अतः समाज के सारे अधिकार उसने हासिल कर लिये और नारी पर उसका आधिपत्य बना रहे इसलिये तरह-तरह के नियम स्त्री जाति पर लाद दिये, किन्तु ये सब अचानक नहीं हुआ धीरे-धीरे हुआ और इसमें पुरुष जाति ने मेहनत भी खूब की। नारी की इस बिगड़ी स्थिति में जहाँ पुरुष वर्गका हाथ था वहीं परिस्थितियों और स्वयंनारी ने भी हाथ बटाया विदेशी आक्रमणों ने नारी को घर में कैद करने पर मजबूर किया और नारी ने उसे चुपचाप स्वीकार भी कर लिया उसका कोई विरोध नहीं किया फलतः नारी पर शोषण और अत्याचार का दमन चक्र चलने लगा।किन्तु जिस प्रकार समाज में शोषित मजदूरों एवं किसानों के प्रति जागरूकता जागी और प्रगतिवाद ने क्रांति का शंख फूँका तो उसमेंनारी के शोषण की ओर भीध्यान दिया गया और समाज में उसकी उपयोगिता पुरुष के समान देखकर उसे अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट कियागया। आधुनिक नारी ने अपनी करुण स्थिति को समझा उसके प्रति क्षोभ प्रकट किया और धीरे-धीरे उनमें जागरूकता का संचार हुआ। गांधी जी आदि देशभक्तों के प्रयास से नारी घर की चारदीवारी से चौखट के बाहर निकली और इस सचल और निरन्तर परिवर्तनीय संसार को देखकर हतप्रभ रह गयी कि अब तक जहाँथा वहीं रह गयी और सारा संसार यहाँ तक कि पशु-पक्षी ,प्रकृति सभी गतिमान है सब आगे बढ़ रहे हैं कोई ठहरानहीं सभी में चंचलता है, गति है आगे बढ़ने की लालसा है, उसे अपने आप पर क्षोभ हुआ और वह भी आगे बढ़ने को लालायित हो गयी। प्रगतिवाद में नारी के इसीजागृत रूप कापोषण है और वर्तमान सामाजिक व्यवस्था के प्रति नारी संघर्ष करते हुये चित्रित की गई है,प्रगतिवादी साहित्य नारी के इसी संघर्ष का चित्रण करता है।

ग्राम्या में कवि पंत ने नारी के उसी रूप की कल्पना की है जो पुरूष के समान ही कड़ी मेहनत करती है दुनियाँ की लाज-औ -लज्जा से दूर, ऐश्वर्य एवं वैभव से कटी मजदूरी करती है, धूप और पानी की उसे कोई चिन्ता नहीं बस दिनभर मजदूरी करके अपने पति के साथ किसी तरह अपना परिवार चलाना ही उसका जीवन है। इस तरह प्रगतिवाद की नारी पुरूष की वास्तव में सहयोगिनी एवं अर्द्धांगिनी बनती है। वह पुरूष के सुख-दुख में बराबर हिस्सा लेती है, पंत ने एक मजदूरिन का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है-

" सर से आँचल खिसका है, धूल भरा जूड़ा
अधखुला वक्ष-ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा
हँसती, बतलाती सहोदरा सी जनजन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से।"[1]

प्रगतिवाद में नारी के इसी रूप का वर्णन किया गया है। और नारी के प्रति यही भावना का संचार प्रगतिवाद में हुआ। इस प्रकार बदलती विचारधारा में नारी वर्तमान व्यवस्था के प्रति क्षुब्ध रहने लगी और पुरानी जंजीरों को तोड़कर नयी व्यवस्था के प्रति संघर्ष करने लगी। वर्तमान समाज में नारी की स्थिति अत्यन्त पीड़ादायक थी उसे समाज में कोई अधिकार प्राप्त न था अतः प्रगतिवाद कीनारी अपना एक अलग अस्तित्व बनाने में जुट गयी इसी द्वन्द्व में फँसी भारतीय नारी का चित्रण प्रगतिवादी साहित्य में हुआ है।

प्रगतिवाद में नारी के मात्र प्रणीयनी रूप का चित्रण नहीं हुआ है। जैसा कि छायावाद , रीतिकाल आदि में हुआ करता था। प्रगतिवाद में नारी वीरांगना भी है, कर्मयोगिनी भी है, समाज सेविका भी है। किन्तु इतने के बाद भी नारी की स्थिति का चित्रण कुछ कवियों ने कुण्ठा से भरा हुआ किया है। "जहाँ नारी केप्रणयिनी रूप के प्रति असन्तोष की भावना है वहीं कुछ कवियों की रचनाओं में कुंठित वासना भी उभरकर आयी है, वह नारी के प्रति अपनी श्रृंगारिक दृष्टि को भुला नहीं पाये हैं जैसे की अंचल ने "किरणबेला" में अपनी क्रांतिकारीनायिका में उन्मत सौन्दर्य देखा है-"मौन विवसनोचली

1- सुमित्रानन्दन पंत-ग्राम्या-मजदूरिन के प्रति-पृ0- 84

-------।"[1] अंचल ने नारी व पुरुष के उक्त रूप में चित्रण के पक्ष में कहा जाता है कि उन्होंने नारी व पुरुष की जिस पिपासा का वर्णन किया है वह इसलिये कि हमें ज्ञात हो सके कि पूंजीवादी युग में पुरुष व नारी की वासना का रूप कितना उच्छृंखल हो जाता है। पर इसके अतिरिक्त अंचल के काव्य में नारी का कोई अन्य रूप उभरकर नहीं आता। "किरण बेला", "करील लाल चूनर" में कविने समाजवादी भावना कापोषण किया है। इन काव्य रचनाओं में नारी का शोषित रूप प्रकट हुआ है पर शोषण के बीच पली मजदूरिन व भिखारिन के मातृरूप के प्रति घृणा व नारी सौन्दर्य के प्रति अनजानी लालसा ही व्यक्त हुई है। डा० शैल कुमारी के शब्दों में "अंचल ने नारी के साथ अनियंत्रित निर्बंध और उद्दाम यौन संबंध का आदर्श रखा है। वह कवि के किसी अन्य कार्य में सहयोग देती नहीं दीखती। नारी योनि मात्र है। वह पुरुष वासना की उत्तेजना और वासना की पूर्ति का साधन है। स्वयं में भी वह वासना पूर्ण है। उसका कोई सामाजिक व्यक्तित्व नहीं है।"[2]

समाज में नारी की जो सबसे बड़ी दुर्गति के रूप थे उनमें से एक था वेश्या का और दूसरा था विधवा का रूप। समाज में कुष्ठरोगियों, अपंगों, भिखारियों सबके लिये व्यवस्था की गई है किन्तु वेश्या एक ऐसी निकृष्ट जीव है जिसके लिये पूरे समाज में कोई स्थान नहीं। समाज के दरवाजे पतित से पतित व्यक्ति के लिये भी खुले रहते हैं किन्तु उसके लिये समाज का कोई दरवाजानहीं खुला रहता। वेश्या की इस स्थिति के लिये जिम्मेदार है पुरुष समाज जो उसे इस हद तक गिरा देता है, पुरुष की वासनामय प्रवृत्ति और स्त्री की आर्थिक पराधीनता ही इसका कारण बनी। समाज में स्त्री जाति की शिक्षा का कोई प्रबंध नहीं था और न ही कोई पढ़ाना चाहता था। पैतृक सम्पत्ति में भी स्त्री का कोई हिस्सा नहीं होता था अतः वह पूर्णरूपेण पुरुष पर आश्रित रहती थी और विवाह के बाद यदि पति अच्छा न हुआ या उसकी मृत्यु हो गयी तो फिर नारी के पास कोठे पर जाने के अलावा और कोई रास्तानहीं होता था और कुछ स्वार्थी, कामी पुरुष इसी मौके की ताक में घूमते रहते थे। "इन स्त्रियों ने जिन्हें शक्ति समाज पतित केनाम से सम्बोधित करता आ रहा है, पुरुष की वासना की वेदी पर कैसा घोरतम बलिदान दिया

- -

1- अंचल-किरणबेला

2- आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव-डा० हरिकृष्ण पुरोहित-पृ०- 309

है x x x । पुरुष की बर्बरता रक्त लोलुपता पर बलि होने वाले युद्धवीरों के चाहे स्मारक बन जावें, पुरुष की अधिकार भावना को अक्षुण्ण रखने के लिये प्रज्जवलित चिता पर क्षण भर में जल मिटने वाली नारियों के नाम चाहे इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित रह सके परन्तु पुरुष की कभी न बुझने वाली वासनाग्नि में हंसते हँसते अपने जीवन को तिल तिल जलाने वाली इन रमणियों को मनुष्य जाति ने कभी दो आँसू पाने का अधिकारी भी नहीं समझा।"[1]

"हमने स्त्री के चारों ओर विलासिता और प्रलोभनों के जाल बिछाकर उसे साधना के शिखर तक पहुँचने का आदेश दिया है। उस पर यदि कभी वह अपने पथ पर क्षणभर रूककर उन प्रलोभनों की ओर देख भी लेती है तो हम उसे शव के समान, माँसभक्षी जन्तुओं के सम्मुख फेंक देते हैं जहाँ से वह मृत्यु के उपरान्त ही छुटकारा पा सकती है।"[2]

विधवा नारी का समाज के प्रति द्वन्द्व-

भारतीय समाजमेंसबसे ज्यादा शोषित रूप नारी का वैधव्य है। समाज में नारी का विधवा होना सबसे बड़ा कलंक माना जाता है, उसके अपने मानसिक क्लेश से किसी को कोई सरोकार नहीं लोग उसे हिकारत की दृष्टि से देखते हैं, मानो उसे विधवा बनने का शौक हो। समाज में विधवा की स्थिति अत्यन्त भयावह है, पति के मरने के बाद उसका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता, समाज उससे घृणा करता है। सबसे बुरी दशा उस नवयौवना की होती है जो कली बनने से पहले ही विधवा हो जाती है, उसके जीवन में बसन्त आने से पहले ही पतझड़ आ जाता है, उसके मन की उमगें-तरगें तो वही रहती हैं किन्तु वह तो विधवा उसको किसी भी तरह की खुशी की बातें सोचने का भी अधिकार नहीं। विधवा होते ही स्त्री पत्थर की मूर्ति समझ ली जाती है और वह एक जिन्दा लाश की तरह अपना जीवन व्यतीत करती जाती है।

" जो सहती नित हाय! एक विधवा यहाँ
ऐसी पीड़ित अन्य, भला होगी कहाँ?"[3]

1-आधुनिक हिन्दी साहित्य की विचारधारा पर पा
1- महादेवी वर्मा का "चाँद" पत्र में प्रकाशित जीवन का व्यवसाय नामक लेख हंस पत्रिका से उद्धृत।
2- वही,
3- राजाराम शुक्ल-विधवा

पति की मृत्यु के पश्चात विधवा नारी के ससुराल वाले भीउसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं क्यों कि समझते हैं कि उसकी बहु मनहूस है जो उसके लड़के को खा गई और उसे निराश्रित छोड़ देते हैं।मायके वाले इस पूर्वाग्रह से ग्रसित रहते हैं कि घर से बेटी की डोली जाती है और वहीं से उसकी अर्थी निकलती है मायके के लिये वो परायी है, कन्या को तो पहले से ही परायाधन समझा जाता है और कन्यादान करना बड़ा पुण्य समझा जाता है अतः विधवा होने के बाद बेचारी स्त्री दोनों घरों से ठुकरा दी जाती हैं, वह विधवा हो गई तो इसके लिये वे लोग क्या करें ये तो उसका भाग्य था और दूसरी शादी की बात तो क्या उसको सोचना भी भयंकर अपराध माना जाता है।अतः समाज के धूर्त्त, विधवा स्त्री को निराश्रित मानकर कुत्तों की तरह टूट पड़ते हैं और उसे अपनी इज्जत बचाकर रखना दुष्कर हो जाता है, नारी अनाथ हो जाती है/चारों तरफ से उस पर मुसीबतों के पहाड़ टूट पड़ते हैं ऐसे में व्याकुल हो वह अपने पति को पुकार उठती है, उससे ये दारूण्य दुख सहन नहीं होता-

"क्लेशों का कानन अपार है
खल बटमारों का प्रहार है
जिधर देखती हूँ जीवन धन!
हाय उधर ही अन्धकार है
जीवन ही हो रहा भार है,
इस प्रकार जीवन असार है
जीवन के जीवन, मन के मन
तनु-तन्त्री के तार, कहाँ हो?
मेरे प्राण धार! कहाँ हो?।"[1]

पति के बिना स्त्री का जीवा दूभर हो जाता है पहले तो फिर भी ये था कि पति के मरते ही पत्नी को सती हो जाना पड़ता था किन्तु सती प्रथा बंद होने के बाद तो ऐसा हुआ कि विधवा न जीने दिया जाता है न मरने दिये जाता है-

1- राजाराम शुक्ल-विधवा-पृ0- 32

घर में विधवा रही पतोहू
लक्ष्मी थी यद्यपि पति घातिन
पकड़ मँगाया था कोतवाल ने
डूब कुएँ में मरी एक दिन
खैर पैर की जूती जोरू
न सहीएक दूसरी आती
पर जवान लड़के की सुध कर
साँप लोटते, कटतो छाती। "[1]

निराला ने बड़े ही मार्मिक किन्तु सुन्दर शब्दों में बड़े ही सम्मान ,आदर और भावुकता से विधवा नारी के शान्त, उदास, एकाकी, अवलम्बनहीन, दिशाहीन, भावनाहीन पाषाण जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है, बहुत सुन्दर भाव हैं, प्रकृति से जोड़कर नारी हृदय को झाँकी खींची है-

" वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप शिखा-सी शान्त भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छटी लता सीदीन
दलित भारत की ही विधवा है। "
"रोती है अस्फुट स्वर में
दुख सुनता है आकाश धीर
निश्चल समीर
सरिता की वे लहरें भी ठहर-ठहरकर
कौन उसको धीरज दे सके
दुख का भार कौन ले सके?
यह दुख वह जिसका नहीं कुछ छोर है
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है। "[2]

1- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या-वेणा रवे-पृ0-25
2- निराला

भारतीय विधवा का यही असली रूप है पति की मृत्यु के बाद से उसे भावना शून्य एवं पाषाण की समझ लिया जाता है, समाज से उसका बहिष्कार हो जाता है। दुख भोगना ही उसका भाग्य बन जाता है, मानों उसकी खुशियाँ मात्र एक पुरुष से बंधी थी कि उसके मृत्यु को प्राप्त होते ही वह सुख समाप्त हो जाते हैं। स्त्री का अपना कोई अस्तित्व नहीं उसे जीवन का कोई हक नहीं विधवा होना उसका अभिशाप बन जाता है, उसका दुख दर्द पूछने वाला कोई नहीं वह अकेली है।

सारे सौन्दर्य प्रसाधन, बनाव श्रृंगार सब पति के साथ रहते हैं और उसकी मृत्यु के पश्चात स्त्री को सब कुछ त्यागना पड़ता है। स्त्रियों का गहने एवं बनाव श्रृंगार के प्रति लगाव स्वाभाविक है किन्तु ये जानते हुए भी पति के बाद स्त्री को गहने पहनना सजना संवरना वर्जित हो जाता है ये तो घोर अन्याय है। विधवा के वस्त्र रहन-सहन सब कुछ तो बदल जाता है-

हाथों के अनमोल चूड़ियाँ हैं नहीं
दिखते नहीं सुहाग चिह्न कुछ भी कहीं
× × × ×
हैं न सजे सुख साज, न कोई रंग है
और न यहाँ उमंग-तरंग है।
× × ×
सूखे हैं युग ओष्ठ, नहीं रुधि पान की
बदल गयी वह बान मन्द मुस्कान की
× × × ×
गूँथ चुके बहुबार, जिन्हें प्राणेश हैं
बिखर रहे अति व्यस्त आज वे केश हैं।
बने हुए अब भार, बढ़ाते क्लेश है
सन्यासिनी समान, बनाते वेश हैं।"[1]

1- राजाराम शुक्ल-विधवा-पृ0- 37

हमारे समाज में विधवा स्त्री की सबसे ज्यादा दुर्गति वहाँ से शुरू होती है जहाँ छोटी उम्र में ही कोई स्त्री विधवा हो जाती है। उसके आगेउसका पूरा जीवन होता है, ससुराल और मायके से ठुकरायी हुई स्त्री के पास अपना जीवन निर्वाह करना बड़ा कठिन होता है और उस पर इस समाज में घूमते धूर्तों एवं ठगों से अपने को बचाकर रखना और भी दुष्कर। एक तो वह अपने दुख से टूटी होती है ऊपर से इस पापी संसार में उसे लूटने वालों की कमी नहीं, वही समाज के ठेकेदार उसे इज्जत से जीने नहीं देते और फिर वही समाज वाले उसे कलंकिनी और कुलटा न जाने क्या क्या बनाते हैं। और इस समय स्त्री में शिक्षा, आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास की कमी थी वह विद्रोह करना नहीं जानती थी धीरे-धीरे ये जागरूकता स्त्री जाति में पनपी-

> नीच अवसर ताकते हैं, घूमते ठग चोर हैं
> दुष्ट फिर फिर घूमते हैं और पापी घोर हैं
> ध्यान में बगुला भगत हैं, सर्प भक्षी मोर हैं
> है कठिन इनसे उबरना, क्योंकि ये सब ओर है
> देखो ये व्यभिचारियों की है अभी कैसी अड़ी
> नाथ मेरी हो रही है जाँच क्यों ऐसी कड़ी। "[1]

कवि ने "ध्यान में बगुलाभगत हैं, सर्वभक्षीमोर हैं" में समाज के उन धूर्तों का चिट्ठा खोलकर रखा है जो देखने में तो मोर के समान सीधे, भोले और धर्मात्मा लगते हैं किन्तु होते हैं शोषण करने वाले, उपमा दी है मोर के सर्प भक्षण से मोर को देखकर कोई ये नहीं कह सकता कि वह सर्प को खा जाता है उसीप्रकार समाज में कुछ व्यभिचारी लोग हैं जो दिन भर दान धर्म करते है ऊपर से बगुलाभगत लगते हैं किन्तु अन्दर से घोरपापी होते हैं और निकृष्ट कर्मों में लीन रहते हैं।

इस प्रकार समाज में विधवा की स्थिति अत्यन्त दयनीय है किन्तु वह दिन दूर नहीं जब ये सब समाप्त हो जायेगा स्त्री जाति में जागरूकता फैल रही है प्रगतिवादी कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्रीयों को उनके अधिकार के प्रति जगाने लगे हैं और शिक्षा

1- राजाराम शुक्ल-विधवा-पृ0- 5।

के प्रसार से भी कुछ स्थिति बदलने लगी अतः कविने ये आशा व्यक्त की है कि एक दिन ऐसा आयेगा जब विधवा को हीन दृष्टि से न देखकर बल्कि उसके सामने श्रद्धा से सिर झुकाया जायेगा क्योंकि वह तो साध्वी है "इष्टदेव के मंदिर की पूजा है।"

> बूढ़ हुए हैं, किन्तु ब्याह की जिन्हें चाह है
> मनमानी तियवरें, धर्म की खुली राह है
> बढ़ी विषय-वासना, कहीं तक नहीं थाह है
> परकीया सुन्दरी, देखकर जिन्हें डाह है
> विधवे! तेरे सामने, उनके सिर झुक जायेंगे
> क्या उत्तर देंगे तुझे, स्वयं शब्द रुक जायेंगे।"[1]

इस प्रकार कवि एक ऐसे समाज की कल्पना करता है, जहाँ नारी अपमानित नहीं की जायेगी और उसे समाज में पुरुष के समान अधिकार प्राप्त होंगे। शिक्षाकेप्रसार से एवं आजादी की लड़ाई में स्त्रियों के बाहर निकलकर जन संपर्क में आने से कुछ जागृति फैली। भारत में अंग्रेजी शासन के साथ-साथ अंग्रेजी पढ़ाई का प्रसार हुआ।पाश्चात्य संस्कृति रहन -सहन एवं वेश-भूषा का भारत में प्रसार आरंभ हुआ नव-युवक एवं नव युवतियाँ इस नयी संस्कृति के प्रति आकर्षित हुये और अपने देश की सभ्यताको हीन समझने लगे वह लोग पूरी तरह से आधुनिक रंग ढंग में रंग गये।

नारी के प्रति अपने विचार श्रीमती महादेवी वर्मा ने दिसम्बर के "चाँद" में "अपनी बात" शीर्षक स्तंभ में दिये हैं। जिसमें श्रीमती वर्मा ने आधुनिकनारी की स्थिति पर दृष्टि डाली है उनके विचार है कि स्त्री में ममता, करुणा, प्रेम आदि स्वाभाविक गुण हैं जो उसे प्रकृति की तरफ से मातृत्व के लिये मिले हैं उसने अपने इन गुणों से समाज को आगे बढ़ाया है पुरुष को ऊँचा उठाया है किन्तु आज नारी इसी कोअपनी त्रुटि स्वीकार करते हुये उसे त्याग देनाचाहती है। आज स्त्री पुरुष से मात्र अपनी तुलना करके अपनी स्थिति का जायजा ले रही है जबकि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शारीरिकविकास के विचार

- -

1- राजाराम शुक्ल -विधवा-पृ0- 63

से और सामाजिकजीवन की व्यवस्था से स्त्री और पुरूष में विशेष अंतर रहा है। स्त्री ने निश्चय कर लिया कि अपनी भावुकता, कोमलता और गृहबन्धन की प्रवृत्ति को तोड़ देगी जिसके कारण पुरूष उसे रमणी, भार्या और अबला समझता है। किन्तु आधुनिक स्त्री क्या वास्तव में अपने इन गुणों का त्याग कर पायी है "स्त्री का रमणीत्व नाश नहीं हो सका चाहें उसे गरिमा देने वाले गुणों का नाश हो गया हो।" आधुनिकस्त्री में पुरूष को उन्मत्त कर देने वाली रूप की इच्छा नहीं मिटी। वह विभिन्न प्रसाधनों से स्वयं को सजाती है। अपने अंग सौष्ठव की रक्षार्थ वह प्रत्येक कठिन से कठिन कार्य करने के लिये प्रस्तुत है।

आधुनिक नारी का रूप जो भारतीय समाज के अनुरूप नहीं है पंत जी ने इस पाश्चात्य रंग में रंगी नारी का चित्रण किया है-

" मार्जारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्म समर्पण।
तुम्हें सुहाता रंग प्रणय, धन पद मद, आत्म प्रदर्शन
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।"[1]

प्रेम के प्रति समाज का नकारात्मक रूख-

आधुनिक शिक्षा और संस्कृति के प्रसार से एवं स्त्री के कदम बाहर निकलने से एक परिवर्तन आया। स्त्री-पुरूष एक दूसरे के सम्पर्क में आने लगे और इस हालत में एक दूसरे के प्रति आकर्षण स्वाभाविक है। और आधुनिक शिक्षा इसे गलत भी नहीं समझती और प्रगतिवाद में प्रेम को खुलेआम स्वीकार किया गया है। विवाह को एक बन्धन माना है इस क्षेत्र में भी वह स्वतंत्रता के अपेक्षा रखते हैं प्रगतिवाद किसी भी प्रकार का बन्धन स्वीकार नहीं करता विवाह का भी नहीं। भारतीय समाज खुले प्रेम को स्वीकार नहीं करता उसकी दृष्टि में ये अपराध है, अनैतिकता है स्त्री का पर-पुरूष की ओर नजर उठाकर भी नहीं देखना चाहिये अतः इस द्वन्द्व में फंसी समाज से जूझती स्त्रियों और पुरूषों के प्रेम का वर्णन प्रगतिवाद में कई स्थानों पर प्राप्त होता है कवि शिवमंगल सिंह सुमन ने अपनी रचना "जीवन के गान" में समाज के इसकठोर नियम पर प्रहार किया है जहाँ आपस में प्रेम करना वर्जित है-

1- सुमित्रानन्दन पंत- आधुनिका-ग्राम्या- पृ0-83

हाय सामाजिक विषमता ही बनी है आज बाधक
हन्त क्या मिल भी न पाते विश्व में दो प्रात साधक
और फिर मचलता हृदय में क्यों विकट उत्पात
आज आधीरात।"[1]

कितने आश्चर्य की बात है? कि घृणा करना, हिंसा करना ये तो अपराध है समाज इसको रोके तो समझ में आता है किन्तु प्रेम जो ईश्वर का दूसरा नाम है जो प्रकृति की प्राणी मात्र को अनुपम भेंट है जिसके द्वारा पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है समाज को उसी पर एतराज है क्यों? यहाँ एक ओर हिंसा और घृणा करना आसान है किन्तु प्रेम करना आसान नहीं है अतः कवि ऐसे विषम समाज में क्रान्ति मचादेना चाहता है और सारी सड़ी-गली अव्यवस्थाओं को मिटाकर नये सिरे से ऐसे समाज की रचना करना चाहता है जहाँ मनुष्य स्वतंत्र हो पूर्ण रूप से स्वतंत्र। समाज मनुष्य के लिये है उसे आराम से जीवन बिताने देने के लिये है न कि मनुष्य समाजके लिये जो अपनी सारी इच्छायें अभिलाषायें समाप्त कर दे मात्र झूठे आडम्बरों में। प्रगतिवाद तो स्वतंत्र प्रेम का हिमायती है वह विवाह के बन्धन को पूर्णतः ठुकराता है-

ठहर जाओ ध्वंस कर लूँ मैं विषम संसार पहले
और मानव मात्र को उपलब्ध कर दूँ प्यार पहले
कर्म पथ पर तुम न डालो अब अधिक व्याघात
आज आधीरात।
क्रान्ति की आवाज सुनकर अब न मेरे प्राण चौंको
फिर नये सिरे-से बसाने दो जगत मत आज रोको
प्रतिक्रिया है यह उसी की जो सहे आघात
आज आधीरात।"[2]

कवि एक अतृप्त इच्छा कावर्णन करता है प्रगतिवाद में कहीं-कहीं अतृप्त वासना एवं कुण्ठा का भी वर्णन है-"

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0-6।
2- वही, पृ0-6।

"चाहें पुन: न मिलने पाए
एक बार जो भर जाए
पर वह भी दुर्लभ है जग में यही मुझे रह रहकर खलता
मेरे प्राणों की व्याकुलता।"[1]

इस समाज में गरीब को दो समय की रोटी जुटाने से ही फुर्सत नहीं है, न ही पेट की भूख मिटती है और न ही मन की। मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक दोनों तृप्ति चाहता है किन्तु समाज ऐसी विषम परिस्थितियों से गुजर रहा है कि न तो शारीरिक भूख मिट पाती है और न ही मानसिक-

" यहाँ मानसिक भूख जगी है
वहाँ पेट में आग लगी है
जग का यह वैषम्य देखकर, मेरा सारा खून उबलता
मेरे प्राणों की व्याकुलता।"[2]

संसार मेंदुर अपनी रोजी रोटी की फिक्र में सारी उम्र गंवा देते हैं वह क्या जाने प्रेम क्या होता है? यौवन की उमंग क्या होती है? स्वप्न क्या होते हैं? उन्हें तो यथार्थ की कंकरीली पथरीली रास्तों से जीवन के सत्यों का मुकाबला करते है उन्हें किसी भी तरह अपना जीवन यापन करना है, वह सुबह से लेकर शाम तक कड़ी धूप में जलकर मेहनत मजदूरी करते हैं-

" मधुबाला का प्यार उन्हें क्या?
स्वप्नों का संसार उन्हें क्या?
फिर अभावमय जिनका जीवन
जलता हुआ श्मशान।"[3]

प्रगतिशील प्रणय वर्णन की एक बड़ी विशेषता यह है कि वह एकान्तिक नहीं सामाजिक संदर्भों से युक्त प्रेम है। प्रगतिवादी काव्य अन्य सामाजिक सत्यों के साथ जुड़कर चलते हैं और जीवन की विभीषिकाओं से संघर्ष करते हुए अवतरित होते हैं। प्रेम को प्रगतिशील कवियों ने सामाजिक-आर्थिक परिवेश में देखा है। प्रगतिशील कवि प्रेम के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण

1- शिवमंगल सिंह सुमन-जीवन के गान-पृ0- 63
2- वही, पृ0-63
3-

रखते हैं वह रूमानी कवियों की भाँति प्रेम की गालियाँ नहीं देते और न ही प्रेम में असफल होकर आत्महत्या की बात सोचते हैं।

देश में अशिक्षा का वातावरण-

देश की तिहाई प्रतिशत जनता आज तक शिक्षा से दूर है, गाँव की जनता तो नितान्त अशिक्षित है पिछड़ेपन का यह एक मुख्य कारण है-ज्ञान "मानसिक संस्कृति" को गढ़ते हैं किन्तु ज्ञान के सभी साधन केवल अवकाशभोगी कुछ उच्चवर्ग तक ही सीमित रह जाते हैं क्योंकि उनके पास इसके लिये समय भी है और धन भी किन्तु देश की बहुसंख्यक जनता जिसके हाथ में प्रगति की बागडोर रहती है नितान्त अनपढ़ और मानसिक दृष्टि से पिछड़ा रहता है। कला और साहित्य भी अवकाशभोगियों की सम्पत्ति बन जाती है सामान्य वर्ग से उसका कोई भी सरोकार नहीं रहता। गाँव के कुछ बच्चे प्राइमरी स्तर की एकदम सस्ती स्तर की किताबों तक अगर पहुँच जाते हैं तो अपने को धन्य मानते हैं उनके पास मानसिक विकास का कोई भी साधन उपलब्ध नहीं होता जैसे-स्कूल-कालेज, रेडियो, समाचार पत्र साहित्य कला आदि।

मुसलमानों के राज्य तक गाँव शहरों से कटे रहते थे उनके किसी बात से मतलब न था शिक्षा की भी कोई व्यवस्था न की गई थी किन्तु अंग्रेजों के आने से और उसके बाद कुछ राजनैतिक उथल-पुथल से और गांधी जी के आन्दोलन से कुछ प्रचार और संगठन से सामान्य जनता में भी चेतना की एक लहर दौड़ रही थी, उसमें भी अपनी अज्ञानता पर क्षोभ होने लगा था, उसकी आत्मा विद्रोह कर उठती ह मगर शिक्षित न होने से उनके वास्तविक जीवन में और विचारों में संगति नहीं बैठ पाती, उसमें तारतम्य स्थापित नहीं हो पाता अत:उसकी कड़िया बिखरने लगती है।

शिक्षा के अभाव के कारण साधारण जनता आधुनिक सभ्यता को गलत समझती है प्राचीन रस्म-ओ-रिवाज खत्म कर दिये, इसीलिये जीवन में इतनी विषमता है उसके मन में यह धारणा घर कर जाती है और उस पर ब्राह्मणों के द्वारा बताये गये धर्म और ईश्वर के डरावने रूप अंधियों आदि की भविष्य वाणियाँ, तन्त्र-मंत्र , भूत प्रेत आदि का भयावह रूप जनता के जीवन को विच्छिन्न कर देता है, वह परम्परावादी एवं रूढ़ हो जाता है वह एक दायरे में सीमित हो जाते हैं उससे बाहर निकलना उनके वश की बात नहीं और उनकी प्रगति

की सभी धारायें अवरुद्ध हो जाती है और उनकी इस अज्ञानता का लाभ उठाते हैं कुछ लोग जो धर्म का ढकोसला गढ़ कर निरीह जनता को बैल की तरह जोतते हैं।

इसके अतिरिक्त जो शिक्षित हैं वह अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के अनुसार शिक्षित है जिनका उद्देश्य शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिये और नौकरशाही के लिये क्लर्कों की आवश्यकता थी और इसीउद्देश्य को लेकर एक सुनियोजित ढंग से भारतीयक्लर्कों की एक विराट सेना तैयार की जाने लगी।" पाश्चात्य ढंग की शिक्षा व्यवस्था ने जहाँ भारतीयों को देश-विदेश की साहित्यिक, सांस्कृतिक व अन्य प्रकार की गतिविधियों से परिचित किया, उनमें नई चेतना जगाई, वहाँ उनमें से अधिकांश को ब्रिटेन का मानसिक गुलाम भी बना दिया। अंग्रेजी सभ्यता और आचार-विचारों के अंधे आकर्षण में वे भारतीयता के अपने संस्कारों को भूल से गये अथवा वे उन्हें हीन प्रतीत होने लगे।"[1]

" शिक्षा है भिक्षा मंगवाती, शस्त्र बिहीन कियो री
धन जन बल मरजाद नसायो, आहत हिन्दी मधोरी
भरी लन्दन की तोरी।"[2]

अंग्रेजी शिक्षा से क्लर्कों का प्रादुर्भाव हुआ और शिक्षित होने के कारण मजदूरी वह कर नहीं सकते अतः निम्नवर्ग में तो ये आते नहीं और धन पास में न होने से उच्चवर्ग में इनकी गिनती नहीं होती अतः इस प्रकार का पढ़ालिखा क्लर्क तबका मध्यवर्ग में आने लगा। किन्तु इन मध्यवर्गीय क्लर्कों का जीवन बड़ा ही उबाऊ और घुटनपूर्ण होता है। ढेर सारी फाइलों के बीच इनका व्यक्तित्व दब कर रह जाता है। इनको वेतन भी इतना नहीं मिलता कि ये अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें और पूरा दिन नीरस काम में उलझे रहना पड़ता है, इसी तरह से एक युवक क्लर्क के घुटन का चित्र खींचा है नरेन्द्र शर्मा ने "मिट्टी के फूल" में-

" एकाकी हूँ, मेहनत कश हूँ
और किराए का-है घर।
साँझ हो गई घर में बैठा
दिन भर का ऊबा-ऊबा

- -

1- मिस्र-कानवेल मोडर्नाइजेशन-इण्डिया ए कान्फ्लिक्ट आफ कल्चर-पृ0 59-60
2- नया हिन्दी काव्य डा0 शिवकुमार मिश्र-पृ0 33 से उद्धृत।
2- पं0-माधव शुक्ल- जाग्रत भारत-पृ0- 66

एक जँभाई ले अँगड़ा कर
सुख सपनों में जा डूबा ।"[1]

इस प्रकार शिक्षित युवक भी समाज में घुटते है और समाज से संघर्ष करते करते अपना जीवन समाप्त करदेते है और जो निरक्षर हैं या अशिक्षित है वह अपनी अज्ञानता के कारण शोषित होते रहते हैं गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहते हैं। देश की जो दयनीय अवस्था है और देश जो प्रगति के मार्ग पर अग्रसित नहीं है उसका एक महान कारण है देश में शिक्षा का अभाव।

बेरोजगारी की समस्या-

दिन पर दिन बढ़ती जनसंख्या और उसके बाद अनुपयोगी, किताबी नितान्त दिशा हीन शिक्षा का परिणाम यह है कि बेरोजगारी की काली छाया पूरे देश पर मंडराने लगी है और पूरा युवावर्ग इसकी आगोश में समाता जा रहा है। बच्चों की शिक्षा पर माँ-बाप अपने जीवन की सारी कमाई खर्च कर देते हैं यहाँ तक की ॠण भी लेते हैं, इस आशा से कि उनका बच्चा अच्छी शिक्षा प्राप्त करके खूब ऊँचे पद पर कार्य करेगा, अफसर बनेगा सारी दुनिया उसके आगे पीछे घूमेगी उनका जीवन सुख चैन से व्यतीत होगा मगर जब आज के युवक शिक्षा प्राप्त करके बाहर निकलते हैं तो उनके पास डिग्री के छोटे से कागज के सिवा और कुछ नहीं होता। नौकरी की जगह मिलती हैं ठोकरें। नौकरी न मिलने पर घरवालों के सपने चूर होते हैं अत: वह भी अपना गुस्सा चिड़चिड़ाहट अपने बेरोजगार बच्चे पर उतारते हैं। वह नव युवक जो अपने कालेज समय में तरह तरह के रंगीले सपनों में खोया रहता है बाहर निकलते ही उसे निराशा का सामना करना पड़ता है, उसे लखपतियों के यहाँ ठोकरें खानी पड़ती हैं किन्तु कुछ हाथ नहीं लगता। अत: दूसरा कोई कहाँ तक साथ ये घरवाला किराये के पैसे न मिलने पर अपने घर से भी निकाल देता है अत: रहा सहा ये सहारा भी खत्म हो गया अब तो सिर छिपाने को छत भी नहीं बची-

" उन लखपतियों के दरदर की
तुमने ठोकर खाई दिन भर

- -

1- नरेन्द्र शर्मा- मिट्टी और फूल

काम ढूँढ़ते रहे, मिला है
नहीं आज तुम को भोजन।
थके हुए हो, घरवाले ने
पान किराया तुमको कम दे
के बाहर कर दिया, नहीं है
सोने तक का भी साधन।"[1]

बेरोजगारी का एक कारण भगवतीचरण वर्मा पूँजीवादी स्वार्थपरक व्यवस्था को भी मानते हैं जब फैक्ट्री घाटे पर आ जाये तो ये काम करने वालों को बड़े पैमाने पर छटनी कर देते हैं, वेतन में भी कमी कर देते हैं। स्वयं का लाखों का मुनाफा देखते हैं और जिसके कारण ये मुनाफा संभव हुआ उसको एक क्षण में नौकरी से बाहर कर देते हैं। उन्होंने ठेका थोड़े ही लिया है जब काम होगा तब देंगे अभी तो उनको घाटा हुआ है उसको पूरा करना उनका सबसे बड़ा ध्येय है चाहें वो उसे नौकरों के वेतन से काटें, चाहें माल की शुद्धतामें कटौती करें येन-केन प्रकारेण उनको अपनी तिजोरी भरने से मतलब, इसी प्रकार के सेठ और बेरोजगार व्यक्ति का चित्रण किया है-

हाँ तुम हो बेकार आजकल
जिक्र किया था मैंने उनसे
पर उनको दुख है कि इस समय
वे कर सकते नहीं मदद
दस प्रतिशत का उन्हें मुनाफा
होते जिसके सा० लाख थे
तीस लाख इस वर्षरह गया
घाटे की होती है हद।
कितने नौकर गये निकाले
कितनों की तनखवाह घटी हैं
इस प्रकार पूरी करनी है
उनको उस घाटे की मद।[2]

1- भगवती चरण वर्मा- मानव-पृ0- 63
2- वही, पृ0-62

देश का नव युवक सिर छिपाने के स्थान और भोजन की तलाश में दर-बदर भटक रहा है और दूसरी तरफ अमीर सेठ का मोटर हार्न बजाकर जिनर पर चलने के लिये बुला रहा है कितनी विषमता है कवि भगवती चरण वर्मा ने बहुत सुन्दर तरह से एक बेरोजगार युवक और एक सेठ के वैभव का वर्णन किया है। यह सेठ का वैभव और उत्सव ही तो है जिसने कितने ही नौजवानों को बेरोजगारी पर ला खड़ा किया और आशाओं, सपनों में तैरने वाला यौवन जीवन की अतृप्त आशाओं और आकांक्षाओं के समुद्र में डूबने-उतराने लगा जिसका कोई ओर छोर नहीं, जिसका कोई छोर नहीं, जिसका कोई किनारा नहीं।

नैतिक मूल्यों के अधःपतन से उत्पन्न संकट मानव मूल्यों का ह्रास -

राजा साहब के पास वायुयान है किन्तु यह वायुयान राजा साहब ने गरीब किसानों का पेट काट कर खरीदा है, उनका खून चूसा है, उन पर ड्योढ़ा लगान लगाकर उनकी पूरे वर्ष की मेहनत और खून पसीने की कमाई खेतों पर से उठवा ली गई और बेचारा गरीब किसान जैसा पहले था वैसा ही फिर पशु समान पिसने के लिये तैयार हो जाता है क्योंकि इसके सिवाय दूसरा कोई चारा नहीं क्योंकि मानवता समाप्त हो गई। नैतिक मूल्यों का पतन हो गया-

" यह क्या? नयनों के आगे क्यों
वे नाच उठे मरियल किसान?
जिनको पशुओं की सी मेहनत
बन जाया करती है लगान
वे रोएं, अथवा चिल्लाएं
उनको भूखों मरना होगा।
उनको तिल तिल मिटना होगा
वे निर्बल हैं, अति निर्बल हैं
हैं राजा साहब शक्तिवान ।

राजा साहब कोई ऐसे वैसे आदमी नहीं है सारे नेताओं पर उनकेअहसान हैं, अफसर आदि भी उनके वहाँ रोज के पलने वाले हैं क्योंकि नेता और अफसरों को आर्थिक

संरक्षण राजा साहब प्राप्त है और राज साहब को राजनैतिक संरक्षण नेताओं और अफसरों से प्राप्त है-

> नेता हैं सब एहसान मन्द
> अफसर हैं उनसे दबे हुए
> जितने प्रताप से भारा हुआ
> राजा साहब का वायुयान ।"[1]

राजनीतिज्ञों के पास पैसा होता है और शक्ति भी। बड़े-बड़े लोगों पर उनका बड़ा दबाव रहता है। इसी पैसे में पलता है अपराध, भ्रष्टाचार, गुण्डागर्दी इन सब अराजकतत्वों को राजनैतिक संरक्षण प्राप्त रहता है जिसके कारण इन्हें किसी प्रकार का डर नहीं रहता और इन्हीं अराजकतत्वों के सहारे बड़े बड़े नेता काम करते हैं, कुर्सी बचाये रखते हैं। ये गुण्डे समाज के लिये नासूर बन जाते हैं ईमानदार, कर्मशील व्यक्ति इनके द्वारा त्रस्त किया जाता रहता है और उनका कुछ भी नहीं बिगड़ता-

> राजा साहब के पैसों से
> पलते हैं कितने ही नेता
> पलते हैं कितने कवि लेखक
> पलते हैं कितने ही गुण्डे।"[2]

आधुनिक समाज मेंएक अन्य प्रवृत्ति भी है जो अत्यधिक पायी जाती है वह है चापलूसी और एक नया किन्तु अत्यंत प्रचलित हो गया आधुनिक शब्द चमचागीरी। यह चमचागीरी राजनीति का आवश्यक अंग बन गया है। बड़े मिनिस्टरों की चमचागीरी छोटे सूबेदार वगैरह करते हैं और मिनिस्टर आदि अपने से ऊपर के लोगों की खुशामद करते हैं इस प्रकार ये सिलसिला चलता रहता है और अंग्रेजों के समय से आरंभ हुआ यह सिलसिला आज तक चला आ रहा है। इस खुशामद में अपने साहबके बच्चे खिलाना, उनके कुत्ते खिलाना मेमसाहब को हर सहूलियत का ख्याल रखना तक शामिल रहता है। इस खुशामद पर कवि

- -

1- भगवती चरण वर्मा- मानव-पृ0- 81
2- वही, पृ0-80

भगवतीचरण वर्मा जी ने अपनी कृति मानव में लिखा है- राजा साहब ने वायुयान खरीदा तो उन्हें भी मिनिस्टरों के बंगलों पर उनके बच्चों को वायुयान पर घुमाने पहुँच गये-

जैसे छोटा सा क्लर्क एक
साहब जी बड़ी खुशामद में
जाता है उनके बंगले पर
साहब के छोटे बच्चों को
खिलाकर अपने कंधों पर
हैकभीघुमाता, बहलाता
फिर कभी खिलौना ले देने
ले जाया करताहै बाजार।
बस उसी तरह राजा साहब
उन बड़ेमिनिस्टर के बंगले पर
ले करके अपनी मोटर
दौड़े, फिर उनके बच्चों को
ले गए घुमाने आसमान।"[1]

ये बड़े-बड़े सेठ, राजा महाराजा, नेताकुछ काम काज नहीं करते मगर सारे वैभव और ऐश्वर्य के साथ आराम से अपना जीवन व्यतीत करते हैं कवि ने इस विषमता का चित्रण किया है-

"मैं सोच रहा राजा साहब
करते हैं कोई काम नहीं
फिर भी उनको जो प्राप्त न हो
जग में ऐसा आराम नहीं।
इतनों को पाल रहे हैं वे
पर वे खुद कैसे पलते हैं?

- -

1- भगवती चरण वर्मा- मानव-पृ0-79

जग रेंग रहा है पृथ्वी पर
वे आसमान पर चलते हैं।"[1]

नेताओं और सेठों का जो हाल है सो है किन्तु समाज का बौद्धिक पक्ष इससे कुछ अलग नहीं, वह कहता कुछ है मगर करता कुछ है। कुछ पूंजीवादी व्यवस्था के पक्षधर कवि पूंजीवाद की मानसिकता से ग्रसित रहते हैं वह अपनी रचनाओं में तो बातें करते हैं सत्य और सुन्दर की किन्तु जीता जागता सत्य उसे स्वीकार नहीं वह उससे आँख चुराता है। प्रेम पर बड़े-बड़े भाषण झाड़े जाते हैं किन्तु इतने पाषाण होते हैं कि समाज की ठोकरों से विच्छिन्न मानव के लिये उसके मन में लेशमात्र भी सहानुभूति नहीं। एक भिखारी के दरवाजे पर आ जाने पर कवि जी ने क्या प्रतिक्रिया व्यक्त की भगवती चरण वर्मा जी ने "कवि जी का कितना विशद ज्ञान" शीर्षक कविता में दिया है-

" किसने घुस आने इसे दिया?"
कवि जी ने नौकर को डाँटा
"इसको निकाल बाहर जल्दी
देकर कुछ थोड़ा सा आँटा।"
मैंने फिर देखा नौकर ने
उसकी झोली में अन्न दिया
औ चिलवे में सूखे गालों पर
दिया एक पूरा चाँटा ।
रोता गालों को सहलाता
वह दीन भिखारी चला गया
कवि जी ने भर एक साँस
फिर छेड़ा एक प्रसंग नया।"[2]

1- भगवतीचरण वर्मा- मानव-पृ0- 80
2- वही, पृ0-83-84

मानव मूल्यों के ह्रास और बढ़ते हुए व्यक्तिवाद पर कवि पन्त ने भी ग्राम्या में लिखा है। समाज के धूर्त, पाखण्डी किस प्रकार से अपने बड़े बड़े महल खड़े करते हैं, पाप-पूछ और गरीबों के खून पसीने पर ऐश के सामान एकत्रित करते हैं ऐश्वर्य-वैभव भोग और विलास आज के आधुनिक समाज के आदर्श है और आराधना अर्चन आज धन की होती है धन ही सब कुछ बन चुका है और यहाँ मानवता या इन्सानियत नाम की कोई चीज नहीं सब कुछ अपने व्यक्तित्व में केन्द्रित हो गया, आज सब कुछ "मैं" है "हम" नहीं या तुम नहीं-

> ये श्रीमानों के भवन आज साकेत धाम
> संयम तप के आदर्श बन गए भोग काम
> आराधित सत्यवहाँ, पूजित धन वंशनाम
> यह विकसित व्यक्तिवाद कीसंस्कृति! राम राम।"[1]

जो चोर और गिरहकट हैं वह साहूकार बने घूमते हैं समाज में बगुलाभगत बनकर बैठते हैं और अपने ऐश्वर्य के दम पर सबको दबा कर रखते हैं, गरीबों का रक्त चूसकर अपने आराम का सारा सामान जुटाते हैं, जमींदारों और महाजनों में मानों मानव हृदय ह ही नहीं वह नितान्त पाषाण होते हैं जिन्हें मात्र धन से मोह होता है यहाँ तक की अपने परिवार के प्रतिभी इनका रवैया धन से जुड़ा होता है- कवि ने कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं प्रस्तुत छन्द में-

> साहूकारों का भेस धरे
> हैं जहाँ चोर "औ" गिरहकट
> है अभिशापों से घिरा जहाँ
> पशुता का कलुषित ठाट-बाट।
> उसमें चाँदी के टुकड़ों के बदले
> में लुटता है अनाज
> उन चाँदी के ही टुकड़ों से
> तो चलता है सब राज काज ।

1- सुमित्रानन्दन पंत- ग्राम्या- ग्राम देवता- पृ0-58

वह राज काज जो सधा हुआ
है उन भूखे कंकालों पर
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी
है तिल तिल मिटने वालों पर
वे व्यापारी, वे जमींदार
वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त
वे निपट निरामिष सूद खोर
पीते मनुष्य का उष्ण रक्त।"[1]

मनुष्य में मानवता के गुण जैसे प्रेम, सत्य, करुणा, संतोष, संयम आदि खत्म हो चुके हैं वह परस्पर राग द्वेष, स्वार्थ सिद्धि में हर तरह का क्षुद्र व्यवहार करने में पारंगत अपनी तृष्णा में लिप्त रहते हैं। अन्ध विश्वास में डूबे हुए धर्म की आड़ में दुष्कर्म करते हुए वे जीवन व्यतीत करते जा रहे हैं-

है वही क्षुद्र चेतना, व्यक्तिगत राग द्वेष
लघु स्वार्थ वही, अधिकार सत्य तृष्णा अशेष
आदर्श, अंध विश्वास वही हो सभ्य वेश
संचालित करते जीवन जन का क्षुधा काम।"[2]

ज्यों-ज्यों देश का औद्योगीकरण होता गया वैसे-वैसे भौतिकवादिता बढ़ने लगी चारों तरफ मिलों का जाल बिछ गया और समाजका मशीनीकरण हो गया अब सारा काम मशीनों से होने लगा सब तरफ तरक्की की होड़ हो गयी किन्तु इस होड़ में शांति कहीं खो गई आज सब कुछ पाकर भी आत्म सन्तोष नहीं होता है मन को किसी चीज की कमी खटकती रहती है ऐसा लगता है जैसे कहीं कुछ खो गया है इस भौतिकवादिता की दौड़ में मानवता कहीं पीछे छूट गयी है, कवि के मन में भी यही पीड़ा है आज जीवन कितना अशांत है, क्यों? कवि ये प्रश्न पूछ रहा है-

---

1- भगवती चरण वर्मा- मानव-पृ0- 69
2- सुमित्रानन्दन पंत-ग्राम्या-भारत ग्राम-पृ0- 91

सेवक हैं विद्युत वाष्प शक्ति धन बल
फिर क्यों जग में उत्पीड़न? जीवन यों नितांत अशांत?
मानव ने पाई देश काल पर जय निश्चय
मानव के पास नहीं मानव का आज हृदय।"[1]

आधुनिक युग विज्ञान का युग है सब लोग विज्ञान के ज्ञानको ओर भाग रहे हैं प्रत्येक वस्तु का वैज्ञानिक अध्ययन हो रहा है। इस ज्ञान से मानव ने बहुत प्रगति की है उसने बहुत से भौतिक साधन एकत्रित कर लिये हैं किन्तु मानव भावना में प्रगति न होकर अवनति ही हुई है, मनुष्य की कोमल इन्द्रियाँ समाप्त हो गई हैं और उसमें कठोरता आ गई है क्योंकि आधुनिक भौतिक प्रगति की परत दर परत मनुष्य के हृदय पर चढ़ चुकी है अतः तृष्णा और महात्वाकांक्षा का मोटा परदा मानव हृदय पर पड़ चुका है जिसके भीतर से झाँकने पर और कुछ भी दृष्टिगत नहीं होता-

चर्चित उसका विज्ञान ज्ञान,वह नहीं पचित
भौतिक मद से मानव आत्मा हो गई विजित
है श्लाघ्य मनुज का भौतिक संचय का प्रयास
मानवी भावना का क्या पर उसमें विकास।"[2]

कवि का कोमल हृदय मानव मूल्यों के ह्रास से क्षुब्ध है।समाज की ऐसी व्यवस्था हो गयी हैं जहाँ मानव को मानव रूप में न देखकर वर्गभेद और जातिभेद की दृष्टि से देखा जाता है।अमीर वर्ग निर्धन वर्ग के साथ बुरा व्यवहार करता है उसे हीन दृष्टि से देखता है।ऊँचे कुल का व्यक्ति दूसरे कुल के व्यक्ति को अधर्मी-पापी समझता है। हर तरफ संघर्ष है सारासमाज वर्ग संघर्ष से आतंकित है-

हाय यहाँ मानव मानव में
समता का व्यवहार नहीं है
हाहाकारों की दुनिया है
स्वप्नों का संसार नहीं है
इसीलिए अपने स्वप्नों को मुट्ठी में मलता जाता हूँ
मैं पथ पर चलता जाता हूँ।"[3]

1-सुमित्रानन्दन पंत-ग्राम्या-बापू- पृ0-95
2-वही
3- शिवमंगल सिंह सुमन-जीवन के गान- पृ0-21

इस प्रकार भौतिकवाद में मानव मूल्यों का ह्रास हुआ, नैतिकता का पतन हुआ अतः घृणा, द्वेष, हिंसा का वातावरण तैयार है, मनुष्य मनुष्य का खून बहाने को तत्पर हो गया। आधुनिक हथियारों की होड़ लग गई नये-नये आटम बम बनाये जाने लगे जिसमें मानव अस्तित्व खतरे में पड़ गया और चर्तुदिक भय का वातावरण व्याप्त हो गया।

सामाजिक संरचना की त्रुटियां-

आज का वातावरण हिंसा एवं घृणा से भरा पड़ा है सारा समाज एक भय के वातावरणमें सांस ले रहा है हर तरफ हिंसा का विकराल ताण्डव हो रहा है मानवता खतरे में है। महाशक्तियां अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिये आपस में होड़ लगाते हैं।कुछ चन्द लोग अपने स्वार्थ के लिये मानवता के नाश का सामान एकत्रित कर रहे हैं जिससे सम्पूर्ण मानव अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। हर पल मानव संत्रस्त एवं भयावह जीवन व्यतीत कर रहा है, उसके मन में एक उथल-पुथल है, एक घुटन व्याप्त है-

इन महादेशों की दुनिया में
है एक अजब सी चहल पहल।
मेरीदुनिया कितनी उजड़ी
है उसमें कितनी उथल-पुथल।
निज हुंकारों में नाश लिए
वे टैंक और मशीन गनें।
छाती में घुस जाने वाली
पैनी चमकीली, संगीनें।
देवता रच व "डिक्टेटर
लोहू से जिन के हाथ सने।
नभ से बम बरसाने वाले
घातक विध्वंसक वायुयान।
वे गैस और कीटाणु जो कि
दे रहे विश्व को मृत्युदान।"[1]

1- भगवती चरण वर्मा- मानव-पृ0- 50-51

इन युद्धों का परिणाम ये होता है लाखों औरतें विधवा हो जाती हैं, बच्चे अनाथ हो जाते हैं और वृद्ध माता-पिता बेसहारा होकर भटकते फिरते हैं और यहीं से सामाजिक अव्यवस्था शुरू हो जाती है। विधवा या तो वेश्या बन जाती हैं या घुटघुट कर आत्महत्या कर लेती हैं। अनाथ बच्चे समाज में स्वार्थी-लालचियों के फन्दे में फँसकर फूल बनने से पहले ही मुरझाकर देश के लिये काँटा बन जाते हैं। उनसे अनेकों सामाजिक अपराध करवाये जाते हैं। इस विनाश लीला को देखकर पूछना आवश्यक है कि फिर किस लिये भविष्य की योजनायें, मनुष्य का भविष्य तो अन्धकार में डूबा है हर आने वाला नव वर्ष एक नयी समस्या लेकर आता है-

दुख से पीड़ित मानव को भी
क्याकभी मिलेगी शान्ति हर्ष?
तुम किस भविष्य को लाए हो
निज धुंधलेपन में नए वर्ष ।"[1]

आज ऐसा समय आ गया है जब मनुष्य मनुष्य को धोखा देता है इतना स्वार्थी है कि जरा जरा से स्वार्थ के कारण मनुष्य मनुष्य का खून बहा रहा है और तो और भाई-भाई का, बेटा बाप का बाप बेटे का खून बहाने में कोई झिझक नहीं रखता चारों तरफ हिंसा का नंगा नाच हो रहा है। किसी को किसी के सुख-दुख से मतलब नहीसब अपने में मग्न है-

देख देख सिर चकराता है
मानव को मानव खाता है
फिर भी आज लिये बैठे कुछ
अपना अलग सुरा ही प्याला
चारों ओर जल रही ज्वाला।"[2]

समाज की व्यवस्था इतनी विषम हैं कि जहाँ सर्वहारा वर्ग को ये अधिकार नहीं है कि वह अपना व्यापार बढ़ा सके उसे तो केवल मजदूरी करना है महाजनों से कर्ज लेना है और चौगुनी दर पर पुश्त दर पुश्त उसे चुकाना है-

---

1- भगवतीचरण वर्मा- मानव-पृ0-51
2- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान -पृ0- 92

जहाँ न शक्ति हाथ में अपने बनिज व्यापार बढ़ाना
जहाँ अधिकार रहेगा हमको केवल कर्ज चुकाना ।"[1]

कोल्हू के बैल की तरह पिसना है किन्तु विरोध नहीं करना है अगर समाज के आकाओं से उनकी बनाई व्यवस्था पर जरा भी नानुकुर की तो वह उन्हें सिर उठाने से पहले ही कुचल देंगे, क्योंकि सारी शक्तिउनके ही हाथ में है, धन भी उनके ही पास है और वर्चस्व भी धन का ही है-

"भूखों मरना किन्तु स्वास्थ्य के लिये प्रबन्ध कराना
जो प्रस्ताव विरोध किया तो उल्टो मुँह की खाना।"[2]

"इस समय हमारी सामाजिक दशा उन पथिकों की भाँति बहुत शोचनीय है जो पावस की मेघाच्छन्न अँधेरी रात में पथभ्रष्ट हो गये हैं।"[3]

इस संघर्षमय जीवन के बाद भी मनुष्य जीवन का सबसे बड़ा आश्रय विश्वास और साहस आज भी जिन्दा है वह इस जर्जर समाज से लड़ना चाहता है और उसे सहारा दिया प्रगतिवाद ने संघर्षमय जीवन में एक नवीन स्फूर्ति का संचार करताहै और सब कुछ परिवर्तित कर एक नवीन समाज की रचना करने का स्वप्न सर्वहारा वर्ग में जाग्रत करता है-

निर्बलों का नाद देखो
हिल उठे प्रसाद देखो
रूढ़ि ग्रस्त समाज जर्जर
चल रही अंत श्वासा
आज कवि कैसी निराशा?।"[4]

अतः इस प्रकार सम्पूर्ण प्रगतिवादी काव्य सामाजिक द्वन्द्व का चित्रण करता है समाज के हर क्षेत्र में द्वन्द्व है कहीं वर्ग संघर्ष के रूप में कहीं वर्गभेद के रूप में कहीं मजदूर वर्ग बुर्जुआ वर्ग से संघर्ष कर रहा है कहीं नारी समाज के रूढ़िग्रस्त बन्धनों से संघर्ष कर रही है कहीं प्राचीन अन्धविश्वासों में डूबा धर्माडम्बरों में अपना जीवन खत्म करने वाला गाँव संघर्ष करता हुआ और कहीं बेरोजगारी, पराधीनता, निरक्षरता से जूझता युवावर्ग, प्राचीन संस्कृति

- -

1-2- माधव शुक्ल- जाग्रत भारत-पृ0- 8।
3- राजाराम शुक्ल-विधवा-भूमिका से
4- शिवमंगलसिंह सुमन-जीवन के गान-पृ0- 88

और सभ्यता एवं आधुनिक रंगमें स्वयं को न ढाल पाने का । बुर्जुग वर्ग सभी संघर्ष करते एवं द्वन्द्व में डूबते-उतराते रहते हैं यही जीवन है, ये आज भी यूँ ही चलता जा रहा है मगर इससे उपर उठने की आंकाक्षा आज भी है-

मनमानी सहना हमें नहीं
पशुबन कर रहना हमें नहीं
विधि के मत्थे पर भाग्य पटक
इस नियति नटी की उलझन में
विद्रोह करो, विद्रोह करो
विप्लव गायन गाना होगा
सुख-स्वर्ग यहाँ लाना होगा
अपने ही पौरुष के बल पर
जर्जर जीवन के क्रंदन से
विद्राह करो, विद्रोह करो।"[1]

<u>कुकुरमुत्ता-</u>

प्रायः निराला की हर रचना में उपेक्षित एवं सामान्य व्यक्ति के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की जाती है। कुकुरमुत्ता भी इसी सामान्य की प्रतिष्ठा का काव्य है। गुलाब एवं कुकुरमुत्ता के प्रतीक के माध्यमों से कवि ने आभिजात्य वर्ग एवं सामान्य वर्ग का चित्रण किया है। आभिजात्य वर्ग का यह स्वभाव होता है कि उसका व्यवहार ठण्डा होता है उसका व्यक्तित्व अहमी एवं अनुत्तेजित होता है, किन्तु उसी जगह सामान्य व्यक्ति ठेठ, देशी अकड़ और बड़बोले होते हैं किन्तु साथ ही सामान्य व्यक्ति निश्छल, अकृत्रिम और आत्मविश्वासी होता है, ये बातें मनोवैज्ञानिक होती हैं और दोनों ही प्रकार के वर्गों के व्यक्तियों में पाये जाते है और निराला ने उसे बखूबी चित्रित किया है। कुकुरमुत्ता स्वयं उगता है बढ़ता है उसे बढ़ाने में किसी को मेहनत नहीं करनी पड़ती है यह स्वयं अपना

1- शिवमंगल सिंह सुमन- जीवन के गान-पृ0- 111

जीवन जीता है दूसरों से कुछ नहीं लेता बल्कि दूसरों को कुछ दिया ही करता है जिस प्रकार भारत का सामान्य वर्ग स्वयं अपना जीवन संवारता है किसी से कुछ लेता नहीं बल्कि दूसरों को देता ही है-

देखो मुझको, मैं बढ़ा
डेढ़ बालिश्त और ऊँचे पर चढ़ा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने का चुगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता।

अभिजात्य वर्ग जो कि गुलाब का प्रतीक है वह तो नकली जीवन व्यतीत करता है उसका ऐश्वर्य वैभव सब कृत्रिम है, क्षणिक है वह किसी भी क्षण समाप्त हो सकता है किन्तु जो स्वयं अपने आपको बनाता है मेहनत करके संघर्ष करता है अपना जीवन व्यतीत करता है वह मात्र अपना हित नहीं देखता वह दूसरों के लिये भी कुछ करता है-

तू है नकली मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा मैं हूँ कौलिक
तू रंगा और मैं धुला
पानी तू मैं बुलबुला
तू ने दुनिया को बिगाड़ा
मैंने गिरते से उभाड़ा
तूने रोटी छीन ली जनखा बनाकर
एक की दी तीन मैंने गुन सुनाकर।"[1]

सामान्य वर्ग जिस माहौल में रहता है वह इतना गन्दा है कि वहाँ जाना तो दूर उसकी कल्पना तक करना अभिजात्य वर्ग को गंवारा नहीं होगा। गन्दी गन्दी झोपड़ पट्टियों के किनारे पानी सड़ा करता है और उसमें कीड़े बिलबिलाते रहते हैं, वहाँ की वायु भी बदबू

1- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला- कुकुरमुत्ता- पृ0-40-41

से भरी है चारों तरफ गन्दगी का ही साम्राज्य है और इसी में भारत का भविष्य किल-कारियाँ भार कर अपना जीवन आगे बढ़ाता रहता है भाव्वोंउसे अपने जीवन से कोई शिकायत नहीं-

" बाग के बाहर पड़े थे झोपड़े
दूर से जो दिख रहे थे अधगड़े
जगह गन्दी, रुका सड़ता हुआ पानी
मोरियों में, जिन्दगी की लन्तरानी
बिलबिलाते कीड़े, बिखरी हड्डियां
सेलरों की, परों की थीं गड्डियां
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे
धूप खाते हुए कण्डे
हवा बदबू से मिली
हर तरह की बासीली पड़ गई।"

निराला का कुकुरमुत्ता भारतीय समाज के उस सामान्य व्यक्ति की कहानी कहता है जो अपने ऊपर सारे अत्याचार और क्रूरता को सहकर भी प्रतिशोध हीन है वह क्रांतिकारी नहीं बन पाता। भारतीय समाज व्यवस्था में व्यक्ति बहुत संकोचशील है वह अपने अधिकारों के प्रति आवाज उठाने में भी संकोच करता है, जो जैसे हो रहा है वह उसको वैसे ही चलने देता है विद्रोह करना उसके स्वभाव में नहीं है। किन्तु कुकुरमुत्ता यह स्पष्ट करता है कि सामान्य आदमी कितना उपयोगी है सर्वत्र उसी की आवश्यकता पड़ती है, सारे समाज का ढाँचा उसी के अस्तित्व पर खड़ा है, उसमें कितना उत्साह कितना आत्मविश्वास है वह कितने अहं एवं कठोर शब्दों में गुलाब के अस्तित्व को ललकारता है जो मात्र प्रदर्शन और बाहरी दिखावे भर का है, आभिजात्यवर्ग समाज में प्रतिष्ठित होने केलिये न जाने किस किस को बर्बाद करते हैं, अपना महल बनाने के लिये सैकड़ों झोपड़ियाँ कुचली जाती हैंअपने घर में रोशनी करने के लिये लाखों दिये बुझा देते हैंगरीबों का खूनचूस कर ऐश्वर्य और वैभव की दुनियाँआबाद की जाती है किन्तुसामान्य व्यक्ति पेट भरने से लेकर हर आवश्यक वस्तु तक के लिये उपयोगी है-

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगो आब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतराता है कैपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाड़ा-धाम
हाथ जिसके तू लगा।"[1]

कुकुरमुत्ता अपनी महत्ता एवं मूल्यवत्ता सिद्ध करता है। कविने काव्य का अन्त भी भारतीय जन समाज के सत्य से की है कि "सामान्य को पैदानहीं किया जा सकता नवाब द्वारा जब कुकुरमुत्ते की माँग की जाती है तबउनको यही जवाब मिलता है।सन् 1936 से 47 तक का युग वह युग था, जिसमें भारतीय जनता का उद्देश्य स्वराज्य प्राप्ति का था और मुख्यतः जनता इसी के लिये संघर्ष कर रही थी।" इसीलिये इस युग की प्रगतिशील कविता का मूल स्वर राष्ट्रीय और साम्राज्यवादी विरोधी है। यही कारण है कि इस युग में हिन्दी कविता की राष्ट्रीय धारा और प्रगतिशील धारा एक दूसरे के पर्याप्त निकट रही।राष्ट्रीय धारा के अनेक कवियों ने प्रगतिशील कविताएं लिखीं और प्रगतिशील कवियों की कविताएं राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत रही।"[2]

यह युग प्रगतिशील कविता का पहलायुग था, इसलिए इस युग की कविता में बहुत सी ऐसी प्रवृत्तियाँ भी विद्यमान हैं, जिनका प्रगतिशील आन्दोलन से कोई अनिवार्य संबंध नहीं है, और जिन्हें बाद की प्रगतिशील कविता ने स्वीकारनहीं किया।ऐसी प्रवृत्तियों में विध्वंसवाद और अराजकतावाद, कुत्सित यथार्थवाद और यौनवाद प्रमुख हैं।क्योंकि इस युग के अधिकतर प्रगतिशील कवि मध्यम वर्ग से आये हुए भावुक कवि थे, इसलिए एक ओर तो उन्होंने क्रान्ति की "विप्लवगा" और "दिगम्बरि" के रूप में कल्पना की तथा भविष्य की किसी निश्चित धारणा के बिना ही उथल-पुथल मचाने की कोशिश की, तो दूसरी ओर फ्रायड

1- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला-कुकुरमुत्ता
2- डा0 रणजीत-हिन्दीकी प्रगतिशील कविता-पृ0- 150

के प्रभाव में जन-स्वाधीनता के साथ-साथ कभी-कभार यौन स्वाधीनता की कुण्ठा धारणा को भी वाणी दी। चिन्तन की दृष्टि से इस युग की अधिकांश कविता-पंत जी की कविताओं को छोड़कर अधिक परिपक्व नहीं दिखाई देती। हाँ विविधता अवश्य इस युग की कविता में पर्याप्त है।[1]

= ===

1- डा० रणजीत सिंह-हिन्दी की प्रगतिशील कविता- पृ०-150-51

पाँचवा-अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य में सामाजिक द्वन्द्व

उपन्यासों में प्रगतिवादी विचारधारा

प्रेमचन्द के हिन्दी साहित्य में आगमन से पूर्व हिन्दी उपन्यास अपने शैशव काल में था। उपन्यास के क्षेत्र में भिन्न-भिन्न प्रकार के अभ्यास हो रहे थे। यद्यपि पारिवारिक और सामाजिक विषयों पर रचनाएँ लिखी जाने लगी थी, किन्तु न तो अभी हमारे उपन्यासों में उपन्यास कला का विकास हुआ था, न सामाजिक समस्याओं को गहराई से पकड़ने की क्षमता ही लेखकों में दिखाई देती थी, और न जीवन की व्यापक नाना-विध समस्याओं पर उनकी दृष्टि जाती थी। वास्तव में प्रेमचन्द पूर्व के उपन्यास मुख्यतः दो उद्देश्यों से लिखे जाते थे-एक कोरे मनोरंजन के लिए, दूसरे सुधार और उपदेश की खातिर। तिलस्मी-ऐय्यारी, जासूसी, हास्य और प्रेम प्रधान उपन्यासों में पहली वृत्ति है। तो पौराणिक धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक उपदेश-प्रधान उपन्यासों में दूसरी।"[1]

प्रारम्भ में उपन्यास उपदेश देने के लिये, नैतिक शिक्षा के लिये और मनोरंजन के लिये ही लिखे जाते थे उसमें घटना का आधिक्य रहता था जिसमें चरित्र दब जाता था उसका अनुकूल विकास नहीं हो पाता था। इन उपन्यासों में कथा संगठन की शिथिलता, कथोपकथन की स्वाभाविकता भी कम मात्रा में होती थी वह केवल पाठक में कौतूहल और रोचकता का संचार करती थी। तिलस्मी उपन्यासों में अविश्वसनीय घटनाओं और अस्वाभाविक घटनाओं की भरमार रहती थी। एक काल्पनिक जगत में उड़ाना पाठक को एक स्वप्न में विचरण कराना इनका उद्देश्य था।

1- उपदेश प्रधान उपन्यास-

प्रेमचन्द से पूर्व केउपन्यासों में उपदेश प्रधान उपन्यासों की बहुलता है ये उपन्यास भारतेन्दुकालीन उपन्यासकारों ने लिखें। इसमें जीवनके सभी पहलुओं पर विचार नहीं किया गया और न ही समाज के यथार्थ चित्रों को उभारकर उनकी समस्याओं का चित्रण करके उसके निदान के उपाय दिये गये है बस जीवन की समस्याओं का केवल सतही

1- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष- गोदान-डा० कृष्ण देव झारी- पृ0-21

तौर पर निर्देशन रहता था। उपदेश और नैतिकता के बोझ में दबा उसी को अपना उद्देश्य मानते हुये ये लिखते थे और बड़े ही नाटकीय ढंग से ये पापी और बुरे लोगों की दुर्गति और श्रेष्ठ और संतजनों की सत्गति दिखाते हुये उपन्यासों का सुखान्त कर देते थे। नीति-धर्म, पाप-पुण्य और सदाचार सम्बन्धी विचार भी इन लेखकों के परम्परागत ही थे उनको बदलने की उनकी बुराइयाँ दिखाकर नये विचार दिखाने की इन लेखकों में कमी थी।

2- मनोरंजन प्रधान-

कुछ उपन्यास केवल हँसी-मजाक, हास्य-व्यंग्य और पाठकों के मनोरंजन के उद्देश्य से लिखे गये। गोबर गणेश संहिता। गोपाल राम गहमरी। शैतान मण्डली। बेचन शर्मा उग्र। तथा "ठलुआ क्लब" । गुलाबराय। आदि हास्यउपन्यास हैं। उपन्यास की कला का इन उपन्यासों में भी सर्वतः निर्वाह नहीं किया गया। इन उपन्यासों में हल्के-फुल्के संवाद और पात्रों द्वारा विचित्र कार्य करवा कर पात्रों को हसाने की और उनका मनोरंजन करने की चेष्टा की जाती थी। कला का इन उपन्यासों में अभाव रहता था।

3- अनूदित उपन्यास-

कुछ दिनों बाद अनूदित उपन्यासों का चलन भी प्रारम्भ हो गया। किसी दूसरी भाषा में लिखे उपन्यास का दूसरी भाषा में अनुवाद किया जाने लगा। "जैसे, अंग्रेजी से "लन्दन रहस्य, आदि तथा उर्दू-फारसी से "तिलस्मेहोशरुबा" "ठग वृतान्त माला" "पुलिस वृतान्त माला" आदि का अनुवाद हुआ। किन्तु शनैः शनैः बंगला, अंग्रेजी और मराठी के श्रेष्ठ उपन्यासों के अनुवाद निकलने लगे। हिन्दी में बंकिम, रविबाबू, शरत, राखालदास बैनर्जी आदि बंगला लेखकों के उपन्यासों, जैसे श्रेष्ठ मौलिक उपन्यासों का अभाव खलने लगा।" ¹

4- प्रेम प्रधान उपन्यास-

तिलस्मी और घटना प्रधान आदि उपन्यासों में भी यद्यपि प्रेम प्रसंग होते थे परन्तु उनका पूर्ण विकास न हो पाता था उनका गौण रूप ही होता था मात्र कथा

- -

1- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष-"गोदान" डा० कृष्ण देव झारी- पृ०- 20

को आगे बढ़ाने में वह सहायक होते थे परन्तु आगे प्रेम-प्रधान उपन्यासों का चित्रण प्रारम्भ हो गया, जिसमें किशोरी लाल गोस्वामी प्रमुख हैं। किशोरी लाल, गोस्वामी की मुख्य रचनायें, "तारा-"कुसुमकुमारी, अँगूठी का नगीना", लखनऊ की कब्र"रजिया बेगम, "आदि दर्जनों उपन्यास जो सन् 1889 से 1918 तक लिखे गये।

"जिस सुधारवादी उपदेशात्मक प्रवृत्ति को अपना कर भारतेन्दु युग के लेखकों ने उपन्यास रचना की थी, उसका विकास द्विवेदी काल में प्रेमचन्द के आगमन से पूर्व हो रहा था। प्रेमचन्द इसी मार्ग में साहित्य क्षेत्र में आये। उन्होंने इस सुधारवादी सामाजिक प्रवृत्ति को और भी सुन्दर कलात्मक प्रौढ़ता प्रदान की। प्रेमचन्द पूर्व सुधारवादी उपन्यासों की धारा कई रूपों में प्रचलित हो चुकी थी। कुछ उपन्यास केवल पारिवारिक आदर्श और शिक्षा से संबंधित लिखे गये जैसे -गोपालराम गहमरी के "बड़ा भाई, "सास-पतोहू।सन् 1889ई0। आदर्श दम्पति ।1904ई0। हिन्दू गृहस्थ"।लज्जाराम मेहता।।"[2]

1900 के बाद से उपन्यासों में कुछ सामाजिकता के भी दर्शन होने लगे थे। समाज में फैली कुरुतियों का चित्रण जैसे विधवा विवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह, बहुल विवाह, नारी उत्थान, छुआ-छूत, अन्धविश्वास आदि पर लेखनी चली।

5- <u>सामाजिक उपन्यास</u>-

प्रेमचन्द केपूर्व के सामाजिक उपन्यासों में पारिवारिक समस्यायें, सामाजिक विकृतियाँ, कुरुतियाँ, अत्याचारों और रूढ़ परम्पराओं का चित्रण तो हुआमगर उनकी धारणायें परम्परागत थीं बधी बधाई थी। समाज के साथ संघर्ष और विद्रोह की स्थिति तक ये लोग न जा सके। समाज में व्याप्त कुरुतियों को तो इन्होंने समझा मगर उसको व्यक्तिगत धरातल पर नहीं उतारा और न ही उन कुरीतियों को समाप्त करने का कोई सन्देश दिया और न समाज की व्यापक समस्याओं पर प्रभाव डाल पाये।सम्पूर्ण दृश्य न दिखाकर मात्र एक झाँकी सी प्रस्तुत कर पाये ये लोग सामाजिक जीवन की।

1- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष- "गोदान" डा0 कृष्ण देव शर्मा- पृ0-20

किन्तु प्रेमचन्द के आगमन से उपन्यास क्षेत्र में एक नया मोड़ आया प्रेमचन्द ने जीवन की विविध समस्याओं का अध्ययन किया और उसका स्वाभाविक एवं सजीव चित्रण अपने उपन्यासों में किया। प्रेमचन्द, प्रसाद आदि ने सामाजिक, धार्मिक और परम्परागत रूढ़ियों का खोखलापन दिखाकर उस पर आघात तो किया मगर सिर्फ मर्म पर चोट करके ही रह गये, नये मूल्यों और नई नैतिकता के मार्ग नहीं खोल पाये। इस कमी को पूरा किया आगे आने वाले लेखकों ने।

प्रेमचन्द युग-

"प्रेमचन्द और उनकी परम्परा के लेखकों ने सामाजिक यथार्थ के परिवेश में आदर्शपरक दृष्टि का विकास किया था। उपयोगितावाद और सुधारवाद की प्रधानता के कारण उनमें सूक्ष्म आदर्शों का पुट है और उनकी दृष्टि लक्ष्यवादी और आदर्शवादी है--- परन्तु इस युग के लेखकों की रचनाओं में यथार्थ आदर्श पर हावी हो गया और उन्होंने निम्नवर्ग और मध्यवर्ग के दलित वंचित व्यक्तियों वर्गों और समूहों को अपना विषय बनाया और समाज की अदालत के सामने उनकी हिमायत और वकालत की। इन उपन्यासकारों ने सामाजिक विधि निषेधों कुरीतियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध आवाज उठाई। आश्रम और सदन खुलवा कर समस्याओं का समाधान उन्होंने नहीं किया उनका काम केवल प्रश्न उठाना और उसको खोजकर स्पष्ट करना था, काल्पनिक निराकरण खोजने अथवा हल देने के स्थान पर प्रश्न को जोर से उठाकर उसके समाधान अथवा उलझाव की संभावनाओं की ओर इंगित कर देना ही इनका कर्तव्य कर्म रहा। इस प्रकार युग की राजनीतिक चेतना सामाजिक यथार्थ की ओर उन्मुख हुई। इन सभी लेखकों ने यथार्थोन्मुखी सामाजिक दृष्टि के बदलते हुए संदर्भों में अपने अपने ढंग से आगे बढ़ाया और आदर्श की कलई धोकर कड़वी, बदसूरत सच्चाइयों को उभारा। उनकी दृष्टि प्रेमचन्द से भिन्न है, उसका एक नया बौद्धिक आधार है जो व्यापकता में प्रेमचन्द से कम है, गहराई और प्रभावात्मकता में अधिक। वह वर्णनात्मक सर्वेक्षण न होकर तर्क और समस्याओं पर आधृत है।"[1]

- -

1- हिन्दी साहित्य-तृतीय खण्ड, भारतीय हिन्दी परिषद्-प्रयाग 1969 ई0

प्रेमचन्द्रोत्तर काल के लेखकों ने अपने उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियों का चित्रण किया और उनके विरुद्ध विद्रोह की भावना को जगाया। व्यक्ति को सामाजिक बन्धनों से स्वतंत्र होने की प्रेरणा दी। जीवन के मूल्यों की स्थापना समाज की परिस्थितियों की बजाय व्यक्ति की परिस्थितियों के आधार पर करने का प्रयास किया। समाज व्यक्ति के लिये बनाया जाता है कि वह सुख पूर्वक अपना जीवन बिता सके न कि व्यक्ति समाज की परम्पराओं को पालने और उसकी कुरीतियों और मर्यादाओं में अपना दम तोड़ दे। जो परम्परायें व्यक्ति को दुख देती हैं मनुष्य जिनका पालन करने में असमर्थ है उसे जबरदस्ती क्यों उस पर लादा जाये प्रेमचन्द्रोत्तर काल के उपन्यासों में इसी प्रकार की सामाजिक चेतना का चित्रण हुआ।

मार्क्सवादी विचारधारा के आगमन ने हिन्दी साहित्य को एक नया मोड़ दे दिया। उसका दर्शन आर्थिक विषमता, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, बुर्जुआ वर्ग के प्रति क्षोभ, जीवन के नये मूल्यों स्थापना, ईश्वर केप्रति अनास्था की भावना एवं व्यक्ति की सम्पूर्ण स्वतंत्रता एवं समता का नारा लेकर आया जिसने हिन्दी साहित्य में एक क्रान्ति मचा दी उसने सभी पुरानी परम्पराओं को ध्वस्त कर एक नये नैतिक मूल्य की स्थापना की जिसमें सभी समान हों सबको श्रम का उचित फल मिले। सामाजिक कुरीतियाँ धर्म की आड़ में होने वाला शोषण, दाने-दाने को तरसती चीत्कार करती जनता का सजीव चित्रण होने लगा और इसके मूल्य में था अर्थ की विषमता। इस पर प्रेमचन्द ने लिखा है- "समाज में आ गए सभी बुरे विचार, भाव और कृत्य दौलत की देन है, पैसे के प्रसाद हैं। महाजनी सभ्यता ने इसकी सृष्टि की है। वही इनको पालती है, और वे ही यह भीचाहती है कि जो दलित, पीड़ित और विजित है, वे इसे ईश्वरीय विधान समझकर अपनी स्थिति पर संतुष्ट रहे। उनकी ओर से तनिक भी विरोध विद्रोह का भावदिखाया गया तो सिर कुचलने के लिये पुलिस है, अदालत है, काला पानी हैं। आप शराब पीकर उसके नशे से नहीं बच सकते। आग लगाकर चाहें कि लपटें न उठें, असंभव है। पैसा अपने साथ वह सारी बुराइयाँ लाता है जिन्होंने दुनिया को नरक बना दिया है। इस पैसे को मिटा दीजिये, सारी बुराइयाँ अपने आप मिट जायेंगी।[1]

1- "प्रभात" ग्वालियर- पृ0-8

प्रेमचन्द समझते थे कि इस युग की महाजनी सभ्यताको समाप्त करने वाली विचारधारा साम्यवाद है-" इस सभ्यता को समाप्त करने वाली सभ्यता जिसका उदय सुदूर पश्चिम में हो चुका है और जो यहाँ भी बढ़ी आ रही है। जिसमें श्रम का महत्व होगा। इसने महाजनवाद या पूँजीवाद की जड़ खोदकर रख दी है। जो दूसरों की मेहनत या बाप-दादा के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है वह पतितम प्राणी है।"[1]

"अपनी पराधीनता के खिलाफ आवाज उठाती भारतीय जनता, पूँजीवाद सामन्तवाद से टक्कर लेते किसान-मजदूर, युग तथा समाज की कुण्ठाओं के दुर्वाह बोझ में दबता-सिसकता मध्यवर्गीय जीवन सामंती पूँजीवादी मनोवृत्ति की शिकार भारतीय नारी, वर्णाश्रम धर्म की अतिशयताओं से कराहते औरउसे विच्छिन्न कर देने के लिये आतुर अछूत सब अपने संघर्ष तथा अपनी आशा-आकांक्षाओं को लिये हुये इनकी कृतियों द्वारा सामने आये हैं। वर्ग-विषमता की इतनी हृदयद्रावक, साफ तथा सच्ची तस्वीरें इनके उपन्यासों में उतरी हैं। शहरों तथा ग्रामों की समाज व्यवस्था में घुटता जन सामान्य का जीवन साम्राज्यवाद, पूँजीवाद तथा सामंतवाद के तिहरे शोषण के परिवेश में इतना मूर्त्त हुआ है कि ये उपन्यास अपने समय औरसमाज के सच्चे प्रतिनिधि बन गये हैं।"[2]

"कला शास्त्रियों के बनाये सिद्धान्तों से जैसे उन्हें कोई मतलब नहीं है।पाठकों के मनोरंजन करने का उनका सस्ता उद्देश्य नहीं है। उनकी कला का उद्देश्य मनोरहस्य और वाह्य सामाजिक और आर्थिक संघर्षों के अतलमें बहने वाले स्रोतों को समझना है-जिस तरह वह स्वयं मनुष्यों को देखते और समझते हैं। वे आशावादी हैं-मनुष्य के भविष्य में उन्हें अटल विश्वास है। मानव समाज में व्याप्त द्वेष, विरोध वैमनस्य, गरीबी, बेकारी, शोषण, प्रपंच और छलना का रहस्य वे झलकाना चाहते हैं।" समाज और साहित्य-अंचल-प्रेमचन्द-पृ -95। केवल विध्वंस की भावना से उत्तेजित होकर ही उन्होंने सदियों पुरानी रुढ़ियों को ध्वस्त ध्वस्त नहीं किया। इन आदमखोर इमारतों को केवल सस्ती, लेखकोचित उच्छृंखलता के कारण ही

1- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष-"गोदान" डा0 कृष्ण देव झारी-पृ0- 15-16
2- डा0 शिवकुमार मिश्र-प्रगतिवाद-पृ0- 76

उन्होंने नहीं कहा था। उनका विश्वास था कि जन मानव, सामाजिक मानव और सामूहिक मानव से बढ़कर महान, सशक्त और पवित्र और कुछ नहीं है।"[1]

"वस्तुतः साहित्य जीवन का श्रृंगार नहीं भाष्य है। सामाजिक आश्रम विरोधों और असंगतियों की द्वन्द्वात्मक जटिलता, कटुता पंकिलता, समन्वय, संघर्ष विघर्ष के बीच, भ्रमात्मक विश्वासों और अन्ध श्रद्धाओं, पथरूढ़, जीवन धाराओं और चेतना बोधों से होकर साहित्य समाज को आत्मदर्शन और आत्मपरिष्करण का सन्देश देता है।"[2]

दुख दरिद्रता, ईर्ष्या, द्वेष आदि का कारण प्रेमचन्द जी ने दूषित समाज के संगठन को माना था। समाज का संगठन इतना दूषित है कि मनुष्य में इस तरह के कुत्सित मनोविकार जन्म लेते हैं और सारा देश नरक के समान यन्त्रणा भोगरहा है।

"प्रेमचन्द का साहित्य एक क्रांतिकारी ढंग पर राजनैतिक और सामाजिक उथल-पुथल मचवाने के बजाय सामाजिक और मानवीय सेवा पर ही अधिक जोर देता है।"[3]

"हमारी धारणा है कि भारत के नये साहित्य को हमारे वर्तमान के मौलिक तथ्यों का समन्वय करना चाहिये, और वह है, हमारी रोटी का, हमारी दरिद्रता का हमारी सामाजिक अवनति का और हमारी राजनैतिक पराधीनता का प्रश्न। तभी हम इन समस्याओं को समझ सकेंगे और तभी हममें क्रियात्मक शक्ति आएगी। वह सब कुछ, जो हमें निष्क्रियता, अकर्मण्यता और अन्ध विश्वास की ओर ले जाता है, हेय है, वह सब कुछ जो हममें समीक्षा की मनोवृत्ति लाता है जो हमें प्रियतम रूढ़ियों को भी बुद्धि की कसौटी पर कसने के लिएप्रोत्साहित करता है जो हमें कर्मण्य बनाता है और हममें संगठन की शक्ति लाता है, उसी को हम प्रगतिशील समझते हैं।[4]

प्रेमचन्द के समाजवादी दर्शन का मुख्य आधार शोषण का विरोध और समानता का समर्थन है। उन्होंने इसी आधार को स्पष्ट करते हुएमहाजनी सभ्यता नामक

1- समाज और साहित्य-अंचल- प्रेमचन्द-पृ0-96
2- वही, पृ0-99
3- वही, पृ0-101
4- श्री अमृतराय-कलम का सिपाही-प्रेमचन्द- परि0-35, पृ0- 609

निबन्ध में लिखा है -"प्रत्येक व्यक्ति जो अपने शरीर और दिमाग से मेहनत करके कुछ पैदा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सदस्य हो सकता है और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप दादों के जोड़े हुए धन पर रईस बना फिरता है वह पतितम प्राणी है। उसे राज्य प्रबन्ध में रायदेने का हक नहीं है और वह नागरिकता के अधिकारों का भी पात्र नहीं है।[1]

प्रेमचन्द ने कथा साहित्य को प्राकृत लोक से उतार कर उसे यथार्थ की ठोस जमीन पर खड़ा किया तथा जीवन की उग्र समस्याओं का वास्तविक समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने युग कीसमस्याओं, संघर्षों, शोषण, दोहन और महानताओं का चित्रण तो किया ही है, साथ ही आदर्श समाज के चित्र भी उपस्थित किये हैं।[2]

1934 में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना ने समाजवादी विचारों को संगठित रूप देने का प्रयास प्रारम्भ किया----1936 में लखनऊ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का जो अधिवेशन हुआ उसमें समाजवादी विचारकों का बहुमत था।"[3]

फैजपुर अधिवेशन में समाजवादी विचारधारा ने जनता में एक नये उत्साह की सृष्टि की। किसानों और श्रमिकों के संगठन अस्तित्व में आये और उन्होंने आन्दोलन का मार्ग अपनाया।[4]

प्रसिद्ध साम्यवादी लेखक श्री ए0आर0 देसाई ने इस संबंध में लिखा है। "जब तत्कालीन भारतीय समाज के दूसरे वर्ग भारत को स्वतंत्र करने की कामना कर रहे थे, भारतीय श्रमिक स्वतंत्र समाजवादी भारत का स्वप्न देख रहे थे।[5]

भारतीय साहित्य सदैव विदेशी प्रभाव के साथ-साथ भारतीय परम्पराओं से भी प्रभावित होतारहा है। परिवर्तन अवश्यम्भावी है साहित्य में सदैव परिवर्तन होता

- -

1- प्रेमचन्द स्मृति संग्रह-पृ0- 262-262

2- हिन्दी कथा साहित्य पर सोवियत क्रांति काप्रभाव-डा0 पुरुषोत्तम बाजपेयी-पृ0-160

3- वही, पृ0- 162

4- वही,

5- डा0 केसरी नारायण शुक्ल-नागरी प्रचारणी सभा-हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास चतुर्दश भाग-पृ0- 78

रहा है ये परिवर्तन पुरानी परम्पराओं एवं रूढ़ियों के प्रति विद्रोह में और पुरानी परम्पराओं को नये रूप में प्रस्तुत करने में होता है और यह स्वर साहित्य की सभी विधाओं में सुनायी पड़ता है और उपन्यास अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होने से उसमें सबसे पहले प्रगतिशीलता के स्वर सुनायी पड़े।

प्रेमचन्द के पश्चात शोषण के प्रति विद्रोह और समाजवादी स्वर कौशिक, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल आदि में दिखलायी पड़ते हैं।

प्रेमचन्दकेयुग के पश्चात व्यक्ति की समस्यायें सर्वाधिक का रूप धारण करके आईं। 1936 के पश्चात प्रगतिवादी कलाकारों ने व्यक्ति की समस्या को विभिन्न आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से देखा और उनकी मानसिक कुण्ठाओं उनकी विकृतियों उनके संघर्ष आदि का चित्रण किया।

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द के बाद यशपाल का प्रमुख स्थान है, यशपाल मार्क्सवादी कलाकार हैं उनकी रचनाओं में वर्ग संघर्ष, रूढ़िगत परम्परायें, रूढ़िगत समाजव्यवस्था, समाजवादी विसंगतियाँ तथा समझौतावादी दृष्टिकोणों पर तीखा प्रहार किया गया है।[1]

यशपाल की रचनाएं दादा कामरेड, देश द्रोही जिसका प्रकाशन क्रमशः 1941, 1943 ई० में हुआ। दादा कामरेड में यशपाल के वैवाहिकजीवन पर उद्गार प्रकट हुये हैं जिसमें नारी की वास्तविक स्वतंत्रता की बात कही गई है और उसकी समस्याओं नारी की रूढ़िवादी वैवाहिक परम्परा के प्रति विद्रोहात्मक दृष्टि का चित्रण है नारी उस विवाह परम्परा को तोड़ देना चाहती है जिसमें उसको केवल गुलाम बनकर रहना है और घुटना है। इसके साथ ही बुर्जुआ वर्ग के प्रति विद्रोह की भावना, पूँजीपतियों से विद्रोह, गांधीवादी विचारधारा का खंडन और कांग्रेस के प्रति अनास्था व्यक्त की गई है। सर्वहारा वर्ग से संगठित होकर क्रांति का आवाहन कराया गया है। इस प्रकार दादा कामरेड पूर्णतया मार्क्सवादी विचारों पर रचित

- -

1- हिन्दी कथा साहित्य पर सोवियत क्रांति का प्रभाव, ले० पुरुषोत्तम बाजपेयी-पृ०-17।

एक प्रगतिशीलरचना है जिसमें सभी रूढ़ियों और परम्पराओं को तोड़कर एक नवीन बिल्कुल स्वतंत्र जीवन का आह्वाहन किया गया है एवं बुर्जुआवर्ग के प्रति रोष व्यक्त हुआ है।

स्वतन्त्रता से पूर्व का कथा साहित्य सार्थक एवं जो उद्देश्य था उसमें जीवन की विभिन्न झाँकी प्रस्तुत है इस युग के कथा साहित्यमें शोषक एवं दोहन के विरुद्ध जन-जागरण की भावना का चित्रण है। भारत के निम्नवर्ग एवं जो बहुसंख्यक हैं मजदूर एवं किसान उन्होंने किस भाँति संगठित होकर शोषण के विरुद्ध आवाज उठायी और पूँजीपातियों की नींद हराम कर दी।

प्रेमचन्द युग-

श्रमिक वर्ग किसान वर्ग से ही निकला था खेती पर जीवन न चलने से वह नगरों की ओर आता था और कल कारखानों में काम करता था वहाँ इस वर्ग के सम्मुख नई समस्यायें उत्पन्न होती थीं।

अनेक नई समस्याओं से संघर्ष करने में जहाँ उसका दृष्टिकोण व्यक्तिवादी न होकर समष्टिवादी बनने का उपक्रम करता था, वहीं वह नागरिक जीवन की कृत्रिमता से बोझिल तथा यथार्थता से कटकर जीवन जीने का प्रयास भी करता था। वह परम्परा का विरोधकरता था,परन्तु झूठी शान के लिये बाह्य-चमक-दमक के प्रति आकर्षित होता था। यही अन्तर्विरोध उसके जीवन का बोझ बन कर उसे परिस्थितियों से समझौता करने के लिये विवश करता था। प्रेमचन्द ने इस मनोव्यथा को अपने कथा साहित्य में सजीवता के साथ चित्रित किया है।[1]

साम्यवादी साधारणतः यह प्रश्न करते हैंकि वह कौन सा दानव है जो मनुष्य को अशिक्षित रखता है, उसे बिना चिकित्सा के मृत्यु का वरण करने के लिये विवश करता है, मनुष्य सम्मानपूर्वक परिश्रम कर उसका प्रतिफल चाहता है परन्तु उसके परिश्रम का मूल्य वह स्वयं न निर्धारित कर उसके शोषक निर्धारित करते हैं। वह कौन नियामक है,जो गरीब

- -

1- हिन्दी कथा साहित्य पर सोवियत क्रांति काप्रभाव-डा0 पुरुषोत्तम बाजपेयी-पृ0-190-91।

और अमीर की खाई को नहीं पटने देता है तथा मनुष्य की क्षमता को समाज की गतिशीलता के लिये नहीं प्रयुक्त होने देता। इन प्रश्नों के उत्तर में वे कहते हैं कि पूँजीवादी दानव शोषक और शोषितों की स्थिति को स्वीकार कर उसके बीच के अन्तर को शोषक और शोषितों की स्थिति को स्वीकार कर उसके बीच के अन्तर को विस्तृत करने में अपना तात्कालिक कल्याण भी देखता है अतः समाज मेंपिछड़े वर्ग का अस्तित्व उसके हित में रहता है। स्वाभाविक है कि शोषित एवं समाज में पिछड़े वर्ग की सहानुभूति मेंही लोग आगे आयेंगे जो समाज में अन्याय और अत्याचार का प्रतिरोध कर एक ऐसे समाज के निर्माण हेतु कार्य करेंगे जिसमें मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण समाप्त हो।

यही शोषण की रीति यही आर्थिक विषमता इस युग के कथा साहित्य में व्यक्त हुई है। जब तक सबको इतना वेतन नहीं मिलेगा कि वह चैन से अपना जीवन निर्वाह कर ले तब तक रिश्वत, भ्रष्टाचार आदि बन्द न होगा। यह कहाँ का न्याय है कि एक सा परिश्रम करने वाले बल्कि ये कहा जाय कि मजदूर आदि से कमपरिश्रम करने वाले पाँच सौ लें और मजदूर किसान जो ज्यादा परिश्रम करते हैं पचास भी एहसान से दस गालियाँ सुनाकर दिये जायें जैसे कि वह रुपये देकर एहसान कर रहा है।

प्रेमचन्द युग के साहित्यकारों की कृतियों में इसी आर्थिक विषमता किसान, मजदूर, खेतिहरों का शोषण, नारियों का शोषण और समाज के ठेकेदारों का अपनी सुविधा के लिये रचे गये आडम्बरों, रूढ़ियों का चित्रण और उसका खुलकर विरोध हुआ है।

समाज में नारी की स्थिति मजदूरों और किसानों से कम हेय नहीं। विधवानारी समाज में सबसे ज्यादा गिरी हुई समझी जातीहै एक कुत्ते को पाला जा सकता है मगर विधवा स्त्री का कोई स्थान नहीं उसे पति के मरते ही यातो खुद मर जाना चाहिये या पत्थर की मूर्ति बन जाना चाहिये। जिसके दिल में कोई इच्छायें आकाक्षायें नहीं रह जाती अगर वह स्त्री की तरह जीना चाहती है तो समाज उसे कलंकित मानता है उसे न मरने का

अधिकार है न जीने का क्योंकि सती प्रथा तो समाज सुधारकों के प्रयास से खत्म हो गई थी मरने पर रोक लगा दी गई और समाज के ठेकेदारों ने उसे जीने का अधिकार भी नहीं दिया घुट-घुट कर मरने परमजबूर कर दिया-

नारी जीवन में द्वन्द्व-

समाज में सामान्य नारी की स्थिति भी बड़ी हेय है वहपूर्णतः पुरुष पर निर्भर करतीहै। उसे अपनी इच्छा के मुताबिक वर चुनने का अधिकार नहीं माता-पिता के आगे उसे झुकना पड़ता है। पुरुष की दृष्टि में वह एक भोग्या है। खाने और कपड़े पर खरीदी हुई एक वस्तु है। नारी का कर्तव्यहै कि वह अपनी इच्छाओं अपनी स्वतंत्रता का गला घोंटकर त्याग की मूर्ति बन जाये और पुरुष के इशारे पर नाचे उसे गाय की तरह एक खूंटे में बांध दिया जाता है और ये रूढ़िवादी पुरुष उस पर अपनी इच्छाओं का बोझ लादते हैं उसे अपनी दासी समझते है स्त्री केवल घर की चहारदीवारी में बन्द होकर बच्चे जनने की मशीन है उसकीशोभा घर में ही है वह बाहर निकलेगी तो कलुषित हो जायेगी समाज में नारी की इसी स्थिति का चित्रण भगवती प्रसाद बाजपेयी जी ने अपने "निमंत्रण" नामक उपन्यास में मालती के मुँह से कहलाया है- मालती रेणु की स्थिति देखकर उससे कहती है-" हमारे समाज मेंस्त्री का क्या मूल्य है, क्या वे नहीं जानते?केवल स्वामी के लिये नित्य सुख, शांति की व्यवस्था करना और बच्चे जन जनकर रात-दिन उनके पालन-पोषण में अपने को खपा देना, बस यही दो कार्य स्त्री के लिये रह गये है न?[1]

आज की नारी जागरूक हो रही है, वह शिक्षित हो रही हैं अतः शिक्षा प्राप्त करने के बाद वह भी स्वतंत्रता चाहती है कुछ बनना चाहती है घर की चहारदीवारी में घुट घुटकर रहना नहीं चाहती वह विद्रोह करना चाहती है मगर अभी इतनी जागरूकता न आयी थी कि सभी स्त्रियाँ इसका खुलकर विरोध करती अतः मन में घुट-घुट कर ही रह जाती थीं और फिर से स्वार्थी, लोभी पुरुष समाज नारी की ये स्वतंत्रता बर्दाश्त भी तो नहीं करसकता। नारी बाहर निकलने के लिये छटपटाती है-रेणु घर में बैठकर मालती को

1-

1- निमंत्रण- भगवती प्रसाद बाजपेयी-पृ0- 29

देखकर सोचती है कि मालती से वह किसी चीज में कम नहीं मगर आज मालती कहाँ पहुँच गई और वह क्या रह गई इसलिये कि वह एकपत्नी है एक माँ है-"मेरा निर्माण क्या ये इतने उत्तम ढंग से नहीं कर सकते थे कि घर की इस चहारदीवारी के बाहर भी आ-जा सकती? इन्हीं दीवालों के भीतर निरन्तर बन्द रखकर इन्होंने मुझे क्या दिया?"[1]

नारी को स्वतंत्र रहने का सबसे बढ़ा तरीका है कि वह विवाह ही न करें क्योंकि अगर उसने विवाह किया तो उसे पुरुष का गुलाम बनकर रहना पड़ेगा उसके हाथ की कठपुतली बनना ही पड़ेगा--दादा कामरेड में शैल इसी स्वतंत्रता की बात करती है "यदि स्त्री को किसी की बनकर ही रहना है तो उसकी स्वतंत्रता का अर्थ ही क्या हुआ? स्वतंत्रता शायद इसी बात की है कि स्त्री एक दफे अपना मालिक चुने परन्तु गुलाम उसे जरूर बनना है।"

"----हरीश ने पूछा-क्यों, पति का अर्थ मालिक न होकर साथी भी तो हो सकता है?"

"खाक हो सकता है। जब स्त्री को एक आदमी से बंध जाना है और सामाजिक अवस्थाओं के अनुसार उसके आधीन रहना है, उस सम्बन्ध को चाहे जो नाम दिया जाय वह है स्त्री की गुलामी ही। अच्छा साथी तो एक व्यक्ति के कई हो सकते हैं स्त्री के कई पति होना तुम्हें सहन हो सकता है।"[2]

यशपाल जी ने पुरुष समाज से कुछ बदल जाने के लिये कहा वे चाहते हैं यदि पुरुष स्त्री को समझने की कोशिश करे वह ये सोच ले कि वह भी इन्सान है उसकी भी कुछ इच्छायें हो सकती है वह भी समाज का एक अंग है उसे भी स्वतंत्रता का हक है और अपने विचारों में स्त्री के लिये कुछ बदलाव लाये अपनी प्राचीन मान्यतायें और संस्कार बदल डाले स्त्री के प्रति अपनी मानसिकता में थोड़ा परिवर्तन लाये तो ये समस्या सुलझ सकती है यशपाल जी ने यही बात शैल द्वारा कहलायी है- "---- अब तक स्त्रियाँ रही हैं मर्दों की व्यक्तिगत इसके माल की चीज, यदि वे अपने व्यक्तित्व को जरा भी अलग से खड़ा करने की

- -

1- निर्मंत्रण- भगवती प्रसाद बाजपेयी- पृ0-80
2- दादा कामरेड- यशपाल- पृ0-45

चेष्टा करेंगी तो उँगली तो जरूर उठेगी। लेकिन थोड़े दिन बाद नहीं, जरा हिम्मत करो पुरुषों को सहने का अभ्यास होना चाहिये कि स्त्रियाँ भी अपना व्यक्तित्व रखती हैं। जो कोई उन्हें देख लेगा या छू लेगा वे उसी की नहीं हो जायेंगी। जरा घर से बाहर भी निकलें जरा औरतरफ ध्यान दें फिर केवल पुरुष के संदेह पर ही प्राण दे देने की इच्छा नहीं रहेगी।[1]

हमारे समाज में वैवाहिक जीवन में भी बड़ा संघर्ष, कुण्ठा एवं निराशा है स्त्री पुरुष बिना किसी अनुराग के एक दूसरे से निर्वाह करते जाते हैं। एक मशीन की भाँति यन्त्रवत उनका उबाऊ जीवन चलता जाता है जिसमें वह साथ खुशी खुशी रह भी नहीं पाते और अलग भी नहीं हो पाते क्योंकि हमारे यहाँ की सामाजिक रचना ही ऐसी है यहाँ वैवाहिक जीवन को ही जीवन की पूर्णता माना गया है अलग हुये पति-पत्नी को समाज क्षमा नहीं करता स्त्री की स्थिति तो और भी शोचनीय हो जाती है अलग हुई स्त्री एक कटी पतंग के समान हो जाती है जिसे लूटना सभी चाहते हैं थामना कोई नहीं। अतः इस समाज के डर से स्त्री एक निराशा में घिरी मूक बनी अपना जीवन जीती जाती है मगर विद्रोह नहीं करती इसी दशा का चित्रण निर्मंत्रण में हुआ है रेणु और शर्मा जी के वैवाहिक जीवन की समीक्षा मालती करती है और सोचती है-" उसे यह भी प्रतीत हुआ कि इन लोगों में प्रेम की वह ऊँचाई नहीं है, जहाँ एक सदा दूसरे के आगे समर्पित रहता है। ये आपस में लड़ते हैं, क्योंकि मिल नहीं पाते, घुल नहीं पाते, और ये फिर जुड़ते भी हैं क्योंकि समाज और उसके संगठन को तोड़ नहीं सकते क्योंकि विवाहित हैं और विच्छेद में समाज के आगे कटु आलोचना के पात्र बनने से डरते हैं मानो इनके आगे आलोचना के पात्र बनने का जो भय है जैसे वह जीवन का नवनिर्माण, नवप्रयोग और इसकी नवदृष्टि की अपेक्षा कहीं गुरुतर है। उनके अन्दर एक कायरता भरी हुई है। वे उसी सड़क पर चले जा रहे हैं, जिसमें काँटे बिछ गये हैं, कंकड़, पत्थर और खड्ड जहाँ तहाँ पड़ गये हैं, जिसके इर्द-गिर्द इतने सघन वन हैं कि हिंसक जन्तुओं का शिकार बन जाना एक साधारण बात है। वे न स्वयं नवपथ खोजने को तैयार हैं न मालूम हो जाने पर उसे अपनाने को तत्पर।"[2]

1- दादा कामरेड-यशपाल- पृ0-172
2- निर्मंत्रण- भगवती प्रसाद बाजपेयी- पृ0-109

समाज में स्त्री की स्थिति शोचनीय इसलिये भी है कि उसे सन्तान को जन्म देना होता है जिसके लिये उसे किसीपुरुष के सहारे की जरूरत होती है वह आर्थिक रूप से उस पर निर्भर करती है कि वह ठीक से उसकी सन्तान का लालन-पालन कर देगा इस सम्बन्ध में शैल कहती है-" यही तो बात है। पुरुष स्त्री के दृष्टिकोण से समस्या को देख नहीं सकता। स्त्री की सबसे बड़ी मुसीबत तो यह है कि उसे संतान पैदा करनी है इसलिए पुरुष जमीन के टुकड़े की तरह उस पर मिल्कीयत जमाने के लिये व्याकुल रहता है।[1]

सन् 1934-35 के युग में नारी-स्वतंत्रता की जो आवाज उठी उसमें स्वयंनारी जो पुरुष के समान अधिकारों को पाने के लिये संघर्ष कर रहीथी, विद्रोह के क्षेत्र में उतर आयी। पश्चिम का अनुकरण करके ये नारियाँ भी अब घर की चहार दीवारी में बंद रहकर घुटना नहीं चाहती थी वह भी बाहर की दुनिया देखना चाहती थी अपना भी कुछ अस्तित्व बनाना चाहती थीं जिससे उनकी एक अलग पहचान बने वह पुरुष की छाया मात्र न रह जायें। वह राजनीतिक क्षेत्र में भी उतरना चाहतीथीं और वोट पाने का प्रयास करती थी मगर प्रेमचन्द वगैरह मनीषी स्त्रियों के पश्चिमी अन्धानुकरण के विरूद्ध थे।वह नारी के लिये गृहणी का आदर्श त्यागकर तितलियों का रंग पकड़ना हेय समझते थे।नारी स्वतंत्रता की आड़ में फैशन हाव-भाव-प्रदर्शन और स्वछन्द विहार को वह बुरा मानते थे।"[2]

"गोदान में प्रेमचन्द ने मेहता के माध्यम से नारी संबंधी अपने विचार व्यक्त किये हैं।उन्हें नारी के मातृत्व पर पूर्ण विश्वास है वह उसे भोग-विलास की वस्तु नहीं त्याग और श्रद्धा की मूर्ति समझते हैं जो अपनी सेवा से क्षमा से पुरुष के व्यक्तित्व कानिर्माण करती है पुरुष को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाती है अगर वह भी पुरुषों के गुण हिंसा, घृणा, द्वेष अपना ले तो समाज का कल्याण संभव ही नहीं-मेहता कहते हैं-"लेकिन मैं समझता हूँ कि नारी केवल माता है और इसके उपरान्त वह जो कुछहै, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या ,सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान विजय है।एक शब्द में,उसे लय कहूँगा-जीवन का, व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।"[3]

1- यशपाल- दादा कामरेड-पृ0- 32

2- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष-"गोदान"-डा0कृष्णदेव झारी- पृ0-140

3- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 167

नारी तो अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दे पुरुष का निर्माण करे परन्तु पुरुष अपने कर्तव्य की ओर लव मात्र भी ध्यान न दे वह अपनी सभी कमजोरी नारी पर थोपे ये कैसे हो सकता है उसे भी तो अपना कर्तव्य धर्म निबाहना चाहिये क्या उसकी कमजोरी ही स्त्री को विद्रोह करने पर मजबूर नहीं कर देती इसी बात में गोदान में गोविन्दी मेहता से स्पष्ट करती है-"पहली बात यही है कि भूल जाइए कि नारी श्रेष्ठ है और सारी जिम्मेदारी उसी पर है, श्रेष्ठ पुरुष है और उसी पर गृहस्थी का सारा भार है। नारी में सेवा और संयम और कर्तव्य सब कुछ वही पैदा कर सकता है, अगर उसमें इन बातों का अभाव है तो नारी में भी अभाव रहेगा। नारियों में आज जो यह विद्रोह है, उसका कारण पुरुष का इन गुणों से शून्य हो जाना है।"[1]

एक स्थान पर धुनिया ने भी औरतों को बिगाड़ने का दोष पुरुष पर छोड़ा है अगर वह स्वयं बिगड़ा होगा उसके अपने ऊपर अंकुश नहीं रहेगा तो स्त्री भी इधर-उधर जायेगी ही धुनिया गोबर से कहती है -"बहुत करके तो मर्द ही औरतों को बिगाड़ते हैं। जब मर्द इधर-उधर तक झाँक करेगा तो औरत भी आँख लड़ायेगी मर्द दूसरी औरतों के पीछे दौड़ेगा, तो औरत भी जरूर मर्दों के पीछे दौड़ेगी। मर्द का हरजाईपन औरत को भी उतना ही बुरा लगता है जितना औरत का मर्द को। यही समझ लो। मैंने तो अपने आदमी से साफ-साफ कह दिया था, अगर तुम इधर-उधर लपके, तो मेरी भी जो इच्छा होगी, वह करूँगी। यह चाहो कि तुम तो अपने मन की करो और औरत को मार के डर से अपने काबू में रखो, तो यह न होगा तुम खुले खजाने करते हो वह छिपकर करेगी। तुम उसे बलात्कार सुखी नहीं रह सकते।"[2]हमारे समाज को नारी की प्रगतिशीलता बर्दाश्त नहीं। नारी सिर्फ घर के लिये है उसेउसी चहारदीवारी में बन्द रहना चाहिये उसकी यही मर्यादा है वह बाहर निकलेगी तो कुलटा कही जायेगी। पुरुष का तो काम ही बाहर का है वह चाहें जितनी लड़कियों से बात करे बात ही नहीं प्रेमलीला भी रचाये तो पवित्र है किन्तु स्त्री अगर किसी से हँसकर बात भी कर ले तो पुरुष का अहंकार उसे सहन नहीं कर सकता वह नारी का बाहर निकलना

- -

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 139
2- वही, पृ0-4 4

सार्वजनिक कामों में भाग लेना बर्दाश्त नहीं कर सकता-दादा कामरेड में अमरनाथ एक ऐसा ही रूढ़िवादी और सन्देही पुरुष है वह अपनी पत्नी का बाहर निकलकर कांग्रेस की सदस्या बनकर कार्य करना पसन्द नहीं करता वह हरीश और यशोदा को लेकर संदेह भी करता है उसका कथन है-"स्त्रियों का स्थान घर के भीतर है। एक मर्यादा के भीतर रहने से सब काम ठीक चलता है------हमारे समाज का आचार जैसा है, वह मैं जानता हूँ। स्त्रियाँ यदि सार्वजनिक कामों में भाग लें तो उनके बारे में कितनी बाते बनती हैं, उनकी ओर कितनी उँगलियाँ उठती है, इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये। मैं अपनी पत्नी के बाबत ऐसा देखना सुनना पसन्द नहीं करता।"[1]

समाज में नारी की कई प्रकार की स्थितियाँ हैं, कई जगह तो नारी स्वयं अपनी दयनीय स्थिति के लिये जिम्मेदार है। वह स्वयं भी अपने आराम तलब स्वभाव के कारण कहीं कहीं हँसी का पात्र बनती है। वहस्वयं एक अमीर साहब के घर सजे हुये शो-पीस की तरह रहना पसन्द करती है। आधुनिक ऐश्वर्य और वैभव से सजी-फैशन में लिप्त आधुनिक वेष-भूषा में सैर सपाटा करना अपना गर्व समझती हैं। वह इसी में अपना अस्तित्व और जीवन का सार्थक होना मानती हैं। अतः इस प्रकार की स्त्रियों के बारे में हरीश कहता है - अमीर श्रेणी की औरतें। पुरुष के मन बहलाव औरसंतान प्रसव करने के अतिरिक्त वे कुछ नहीं करती। अमीर लोग इन्हें बैठा-बैठा कर अपने शौक और शान के लिये खिलाया करते हैं जैसे तोता, मैना या गोद के पालतू कुत्ते को खिलाया जाता है। आप बताइये, ऐसी स्त्री समाज के उपयोग के लिये क्या करती है और समाज उनका पालन पोषण क्यों करे? वह समाज पर बोझ है इसलिये वह पुरुष की कृपा परनिर्भर रहती है, उसकी गुलामी करती है। इस समाज की स्त्रियाँ यदि छतरी और बटुआ हाथ में लेकर मनमानी साड़ियाँ और जेवर खरीदने की स्वतंत्रता पा जाती हैं तो अपने आपको स्वतंत्र समझती हैं परन्तु यदि वे स्वतंत्रता से अपना घर बसाना चाहें या स्वतंत्रता से सन्तान पैदा करना चाहें तो क्या वे स्वतंत्र है?"[2]

- -

1- यशपाल- दादा कामरेड- पृ0- 110-11
2- वही, पृ0-91

ये बात सच है समाज में कुछ स्त्रियों की संख्या इसी प्रकार की है। आज स्त्री की जो दयनीय स्थिति है उसके लिये पूर्ण रूप से पुरुष समाज को ही दोषी मानना गलत है इस स्थिति के लिये स्त्री स्वयं भी उतनी ही दोषी है जितना कि पुरुष। ये तो युग का नियम है कि जो शक्तिशाली होता है वह सब पर अपना प्रभुत्व कायम कर लेता है पुरुष में वह बल था उसने सब पर अपना प्रभुत्व कायम किया और फिर बड़ी ही चालाकी से स्त्री को अपनी सम्पत्ति बनाकर उसे फुसलाकर अर्द्धांगिनी का दर्जा देकर रख लिया और ये तो स्त्री की कमजोरी थी कि वह हथियार डालती गई और फिर उसे तो आराम से सारी जिम्मेदारियाँ छोड़कर जीवन व्यतीत करने को मिल रहा था अतः बिना कुछ विरोध किये वो एक दायरे में सिमटती गई और एक समय ऐसा आया कि समाज में औरत का अस्तित्व मात्र विवाह करके गृहस्थी बसाना, पति की सेवा करना और उसका वंश चलाना रह गया उसका अपना व्यक्तित्व समाप्त हो गया। अतः स्त्रियों की भी कई प्रकार की श्रेणियाँ हो गई अमीर औरतों के बारे में हरीश कहता है-"अच्छा आप ही बताइये क्या यह उचित है कि एक आदमी की सेवा के लिये चार-पाँच आदमी रहें। इसका अर्थ हो जाता है कि उस आदमी का जीवनसेवा करने वाले चार-पाँच आदमियों के जीवन से अधिक महत्व का है। यदि हमारे समाज में सब आदमियों के लिये शिक्षा और पढ़ाई का अवसर समान रूप से रहे तो केवल रोटी पर तमाम जिन्दगी बिताने के लिये कोई तैयार न होगा। ऐसी अवस्था में स्त्री की स्थिति क्या होगी? क्यों न स्त्री भी पुरुष के समान ही काम करे और ब्याह कर साथ ही रहना हो तो कमाकर परिवार की सहायता करें।"[1]

किन्तु इस सबके बावजूद भी स्त्री है पुरुष की छाया मात्र पुरुष के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं उसका हँसना-रोना सब पति पर ही निर्भर करता है। पत्नी अपने पति के हाथ की कठपुतली बनकर रहती है। इसी प्रकार की पत्नी है यशोदा जो पतिव्रता भारतीय नारी है वह शैल से अपनी घुटन कहती है-"स्त्रियों का मरना जीना ही क्या? जब तक पति प्रसन्न है, वे जीती हैं, पति अप्रसन्न हो गये, मरना हो गया।"[2]

- -

1- यशपाल- दादा कामरेड-पृ0- 9।

2- वही, पृ0-103

किन्तु इस प्रकार का संघर्ष प्रगतिवाद स्वीकार नहीं करता वह हर प्रकार की स्वतंत्रता का हिमायती है। नारी के अधिकारों के प्रति प्रगतिवाद जागरूक है अतः उसके नारी पात्र इस बन्धन का विरोध करते हैं। शैल मार्क्सवाद से प्रभावित है और वह यशोदा से विरोध प्रकट करती है-" पुरुषों के सन्देह और बेमतलब नाराजगी की बहुत परवाह करने से या तो केवल उनके जेब के रुमाल की तरह रहो, स्वयं सोचना अपने जीवन की बात करना छोड़ दो या फिर उन्हें सोचने दो।[1]

पहले के समय में कुछ कबीलों में औरतें बेचने का रिवाज होता था जो जितने ज्यादा पैसे देकर औरत को खरीदता था वह उसी की हो जाती थी फिर वह खरीदने वाला मर्द चाहें जैसा भी हो ह तो मर्द ही न औरत को अपनी रजामन्दी देने की कोई जरूरत नहीं। देश द्रोही में यशपाल जी ने एक ऐसे ही जजीरी कबीले के रीति रिवाज और रहनसहन का वर्णन किया है उसमें भी नारी जाति के प्रति अन्याय का चित्रण किया है-"फ्रितयाँ बुड्ढे के हाथ न बिकने की जिद्द करने लगी। करीमगुल ने फैसला किया कि औरत को इस बात से क्या मतलब? हमीद और अमान को बहुत गुस्सा आ गया। हमीद छुरा निकालकर बोला-"बेशर्म, हरामजादी का सर काट लो। औरत को क्या मतलब कि बुड्ढा शौहर कीमत देता है कि जवान? कीमत क्या वह दे रही है जो जवान और बुड्ढा देखेगी? शौहर बुड्ढा तो क्या, जवान तो क्या? बुड्ढा मर्द अगर गधा खरीदेगा तो क्या गधा भी सवारी देने से इन्कार कर देगा? औरत को जबान हिलाने का क्या मजाल?"[2]

मतलब ये हुआ कि एक औरत और जानवर में कोई अन्तर नहीं जिस प्रकार मालिक गधे को गुलामी करने के लिये खरीदता है वैसे ही औरत को गुलामी के लिये खरीदता है। गधे को तो जुबान नहीं है, इसलिये उसे कुछ नहीं बोलना है किन्तु औरत जुबान होने के बावजूद बेजुबान बनाकर रखी जाती है।

देशद्रोही में एक ओर इस प्रकार की स्त्री का चित्रण है तो दूसरी तरफ बदलते हुए समाज में और युग की माँग को देखते हुए एक पढ़ी-लिखी लड़की अपना सारा जीवन

1- यशपाल- दादा कामरेड-पृ0- 103

2- यशपाल- देशद्रोही विप्लव कार्यालय, लखनऊ सन् 1943 पृ0-41

बेकार के ढकोसलों में न बिताकर समाज के प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाहता है तो भी पारिवारिक परिस्थितियाँ उसे ऐसा करने से रोकती हैं। परिवार जन उससे रूष्ट हो जाते हैं उनके घर की मर्यादाओं पर दाग लगता है अत: जब राज अपने वैधव्य और अकेलेपन से ऊबकर समाज के दुख-सुखमें शामिल होती है तो उसके परिवार वालों को यह असहय हो जाता है कि उनकेघर की स्त्री की चर्चा बाहर वाले लोगोंके मुँह पर हो उसे वह लोग ताने सुनाते भले घर की बहू-बेटियों के यह काम नहीं कि सिपाहियों की तरह कमर बाँध कर बाजारों में फिरे। इस घर की बहुओं ने कभी अकेले मलों में कदम न रखा था। यह अच्छी सुलच्छनी आई हैं कि दुनिया में खानदान का नाम रोशन कर दिया। लाला ईश्वर दास की सहनशीलता भी हार मान गई।उन्होंने कह दिया "अगर ऐसी ही आजादी चाहिये तो आगरे में अपने माँ-बाप के लिये जल कमाये।हम छोटे आदमी हैं,बड़ी बाते हमारे यहाँ नहीं निभ सकती।"[1]

देश द्रोही में मुख्य रूप से तीन नारीपात्र हैं वैसे तो कुछ नारी पात्र और आये हैं जैसे नर्गिस,खातून और गुलशा" किन्तु ये गौण पात्र बनकर आये हैं और इनके चरित्र के सभी पहेलुओं का विकासनहीं हुआ है इसमें से खातून की चारित्रिक विशेषताओं तो फिर कुछ उभर कर आयी हैं उसके जीवन के संघर्ष का चित्र कई जगह उभरा है कि किस तरह अपने बचपन से खिन्न वह अपना भविष्य स्वयं संवारती है और नारी शोषण का मुख्य कारण उसका पढ़ा-लिखा न होना उसका नकाब में घर के भीतर घुटना है अत: जब वह बड़ी हो जाती है तो चाहती है कि हर लड़की बाहर निकले पढ़े-लिखे दुनियाँ देखे और आत्म निर्भर बने इसीलिये वह एक घर में छिपा कर रखी गई लड़की को जबर्दस्ती उसकी माँ से छीन लाती है और उसे पढ़ने लिखने के लिए बाध्य करती है।वहपूर्ण रूप से समाजवादी है। इधर हिन्दुस्तान में तीन मुख्य नारी पात्रों में एक है शिवनाथ की बहन यमुना। पिता के गुजर जाने के बाद एक मात्र सहारा भाई शिवनाथ था किन्तु वह भी क्रांतिकारी बन देशहित में लग गया और उसका जीवन या जेल में यामजदूरों की बस्तियों में कटने लगा। माँ का भी

- -

1- यशपाल- देश द्रोही- पृ0-81

देहान्त हो गया ऐसे में यमुना को संघर्ष करके पढ़ लिखकर आत्मनिर्भर बनना था अतः वह इस काबिल बन गई कि स्वयं आर्थिक रूप से आत्म निर्भर बन गई किन्तु उसका जीवन यहीं तक सीमित हो गया बस अपने जीविकोपार्जन के लिये कमाना और जीना ही उसका उद्देश्य हो गया। किन्तु क्या जीवन का मात्र यही उद्देश्य है? क्या इतना जीवन ही पूर्ण है? क्या आर्थिक स्वावलम्बन ही मात्र स्वतंत्रता है और नारी जीवन का विकास है? सबकुछ होने के बाद हर स्वतंत्रता और समानता पाने के बाद भी स्त्री स्त्री है उसके कुछ सपने होते हैं उसका अपना व्यक्तित्व होता है वह विस्तार चाहती है। यमुना का जीवन एक मशीन से ज्यादा कुछ न था। वह किसी के लिये जी नहीं रही और न किसी को उसकी आवश्यकता है वह अपने जीवन के प्रति पूर्णरुप से उदासीन है। "यमुना भाई के समाजवादी विचारों के कारण स्त्री के अधिकार और स्थिति के नाते बहुत स्वतंत्र थी। स्त्री की परतंत्रता उसे स्वीकार न थी परन्तु उस पर अधिकार रखने वाला ही कोई नहीं, जिससे अपना अधिकार मांगे। यह कितना बड़ा अभाव था। अपनी इच्छा और अपने निश्चय से ही सब कुछ करना कितना कठिन काम था? × × × × × × × × "जीवन के प्रति उत्साह से हीन यमुना अपने प्रति भी निरपेक्ष थी। उस जीवन का, उसके अपने आप का कुछ भी मूल्य न था। वह शनैः शनैः खाने पीने से, पहनने-ओढ़ने से विरक्त सी होती जा रही थी। उसे न किसी पर अधिकार था, न किसी से भय न किसी से संकोच। स्वास्थ्य खराब हो तो क्या और अच्छा हो तो क्या। इससे किसी को क्या मतलब? उसे स्वयं भी क्या मतलब? आयु के अट्ठाइस वर्ष बीत गये, वैसे ही एक दो पाँच-दस और भी बीत जायेंगे।"[1]

इस प्रकार यमुना का जीवन स्वतंत्र होते हुए भी संघर्षमय है, अकेलापन अपने आप में काफी भयावह है।

उपन्यास की दूसरी नारी पात्र है राज। राज डा० खन्ना की पत्नी हैं वैसे तो उसका जीवन ठीक-ठाक चल रहा था किन्तु अचानक डा० खन्ना के गायब हो जाने से और उनकी मृत्यु की खबर आ जाने से राज का जीवन दुखमय हो गया। एक विधवा हिन्दू नारी का जीवन अत्यन्त भयानक होता है। पति के मरने के बाद उसका जीवन मानो समाप्त

1- यशपाल- देशद्रोही- पृ0- 174

सा हो जाता है। मायके वाले उसे पहले ही ब्याह देने के बाद सारी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं और ससुराल में भीउसका स्थान पति के कारण होता है। पति के मर जाने के बाद ससुराल वालों को उसमें कोई रुचि नहीं रह जाती। राज भी इन्हीं परिस्थितियों से जूझरही थी पति के मरने के बाद वह जिन्दा लाश की तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहीथी। किन्तु समय बदल रहा था नारी जागृति आरम्भ हो गयी थी राज के शुभचिन्तकों ने उसे घर के घुटन भरे वातावरण से निकाला औरसमाज सेवा के लिये तत्पर किया। राज घर से बाहर निकल आयी और समाज हित में अपना समय व्यतीत करने लगी। उपन्यास के माध्यम से विधवा विवाह को स्वीकारोक्ति दिलवाई गई और उसके अस्तित्व को स्वीकार किया गया। राज को श्रद्धा मिली, शोहरत मिली समाज मेंउसकी प्रतिष्ठा हुई। किन्तु अंत में जब उसका अपना पति खन्ना जो कि मरानहीं था वह घायल होकर जीवन और मृत्यु से लड़ता हुआ उसी राज के द्वार पर शरण की भीख मांगने पहुँचता है तो वह कमजोर और विवश हिन्दु नारी है।एक दिन जिसके विछोह में वह मर जाना चाहती थी उसका जीवन समाप्त हो गया था आज वह उस व्यक्ति को जिन्दा देखकर खुश भी नहीं हो सकती उसे अपने यहाँ शरण भीनहीं दे सकती। ऐसे समय में उसका मन द्वन्द्व में उलझा रहता है।

उपन्यास का तीसरा किन्तु महत्वपूर्ण पात्र है चन्दा। चन्दा राज की बड़ी बहन है और राजाराम जो किउसके पति हैं एक बिजनेस मैन हैं और पत्नी का स्थान उनके लिये मात्र घर में है। पत्नी अपने पति सेवा करने घर गृहस्थीएवं बच्चों की देखभाल करने के लिये है।राजाराम अपनी पत्नी का अकेले घूमना किसी दूसरे से खुलकर बात करना पुरुषों के बराबर बैठकर उनकी बातों मेंदखल देना पसन्द नहीं करते। पहले तो चन्दा इसी माहौल में ढली थी और इसी में खुश थी किन्तु जब से खन्ना से उसके परिचय हुआ तो उसकोमालूम हुआ किवह जो कुछ है उसमें उसकी अपनी कोई पहचान नहीं वह पति के हाथ की कठपुतली मात्र है। खन्ना ने चन्दा को बाहरी दुनियाकी बातें बतायी उसे महसूस कराया कि एक दुनिया और भी है जहाँ स्त्री आगे बढ़ रही है पुरुष से कन्धा मिलाकर उसके काम में सहयोग कर रही है। खन्ना की संगति से चन्दा के स्वभाव में कुछ परिवर्तन आना शुरू हो गया था

वह भी गंभीर चर्चा में रुचि लेने लगी थी और कभी-कभी बीच में बोलकर अपनी राय भी जाहिर करती थी किन्तु राजाराम को ये सब पसन्द न था वह खन्ना और चन्दा के रिश्ते को शक की दृष्टि से देखते थे । अतःचन्दा के गृहस्थ जीवन में जहर घुल गया ।

खन्ना जो कि मजदूरों के लिये लड़ रहा था सारा दिन धूप में इधर-उधर फिरने के बाद चन्दा की स्नेहमयी छाया में कुछ देर सुस्ता लेता थाचन्दा भी उसे अपने स्नेह सागर में उतार लेती थी। नारी का स्वभाव है वह बहुत भावुक होती है स्नेह और ममता का उसके पास भंडार होता है उसका प्रेम संकुचित नहीं विस्तृत होता है वह किसी को भीदुखी परेशान देखकर व्याकुल हो जाती है और उसका दुख दर्द मिटाने की भरसक कोशिश करती है । चन्दा का मन होता था कि वह खन्ना का काम में हाथ बटाये किन्तु ये संभव न था इसलिये वह खन्ना को ही थोड़ा सुख देकर अपना कर्तव्य निभाना चाहती थी किन्तु पति उसके सतीत्व पर संदेह करता है। घर का वातावरण तनावपूर्ण हो जाता है। परिणाम होता है चन्दा द्वारा आत्महत्या काप्रयास , किन्तु डा० खन्ना के अथक प्रयास से वह बच जाती है।खन्ना द्वारा चन्दा की गोद में सिर रखकर लेटने की जिद पर चन्दा परेशान हो जाती है। उसके हिसाब से ये गलत है किन्तु खन्ना उसे समझाता है -" प्रश्न तो है, किसी बात को बुरा समझ कर करना अवश्य उचित नहीं है, परन्तु प्रत्येक स्पर्श में मनोविकार भी अवश्य हो, यह मैं विश्वास नहीं करता । न मैं यह विश्वास करता हूँ कि स्त्री को एक ही व्यक्ति के उपभोग कीवस्तु बनाकर सुरक्षित रख लेना ही आचार निष्ठा का सबसे बड़ा आदर्श है। पुरुष की वंश रक्षा के लिये संतान्नोत्पत्ति का साधन होने के अतिरिक्त स्त्री का अपना व्यक्तित्व और संतोष भी कोई चीज हैं।"[1] राजाराम

- -

1- यशपाल - देशद्रोही - पृ0- 184

को अपनी पत्नी का राजनीति आदि के बारे में बोलना बिल्कुल पसन्द न था चन्दा के बोलने पर राजाराम ने उसे डाँट दिया -" जिस बात को समझती नहीं, उसमें क्यों बोलती हो ? तुम सबसे पहले सोशलिस्ट बन जाओ। पत्नी द्वारा बराबर से बहस लड़ाना पुरुष के अहम को चोटपहुँचाता है अत: उसने चंदा को डाँट दिया - "तुम्हारा बीच में बोलने का क्या मतलब ? " राजाराम को घर में अपना अपमान महसूस होता और खन्ना को लेकर तरह- तरह कीआशंकायें उसके मन को घेरने लगीं वह मौके की तलाश में रहने लगा और एक दिन वहबाहर से आया उसके आने के दो मिनटपहले ही खन्ना भी आये थे औरचन्दा सफाई में गन्दी हो जाने के कारण नहाने जा रही थी अत: राजाराम को उस पर शक हुआ और उसने चन्दा पर वह आरोप लगा दिया जिसे नारी जाति पर सबसे बड़ा लांछन समझा जाता है उसका नैतिक पतन और एक भारतीय पतिव्रता नारी इसे भी सहन नहीं कर सकती । " इस प्रकार के मतभेद या पति के व्यवहार में रुखाई अनुभव करती चन्दा बारह वर्ष तक अपने आपको गृहस्थ जीवन में साधती आई थी । वह घर के बाग की बेल थी और पति माली । पति कोपसन्द के प्रतिकूल फूटपड़ने वाले स्वभाव और प्रवृत्ति की कोपलों को काट-छाँटकर पति कोपसन्द और गृहस्थ की परिस्थितियों के अनुकूल शाखाओं को बढ़ाना ही स्त्री के जीवन का क्रम है । चन्दा भी यह विश्वास करती आई थी। उसकी अपनी स्वाभाविकता उसके सामने अपराध होकर बेबस हो जाती थी। कभी उसे अनुभव होता कि स्त्री होना ही अपराध है । इधर खन्ना के विचारों का भी विरोध करते रहकर भी उसका अन्त:करण स्वयं अपने अस्तित्व और अधिकार को स्वीकार करने का संतोष पाने लगा था । वह समझने लगी थी कि पति से मत भेद में स्त्री की ही भूल या अपराध होना आवश्यक नहीं ।"[1]

- -

1- यशपाल - देश द्रोही - पृ0- 200

उधर चंदा के पति राजाराम के पत्नी के बारे में कुछ विचार थे-"पति के आश्रय में जीवन बिताने वाली स्त्री का पति के समान अधिकार का दावा उन्हें स्वीकार न था। उनका विचार था, प्रेम में समानता का क्या प्रश्न। समानता के दावे का अर्थ पति के अधिकार को चुनौती देना है। स्त्री को अपने उचित स्थान पर रखने के लिये वे उससे दैन्य स्वीकार करवाना आवश्यक समझते थे। चंदा का अपने कुल और शिक्षा का अभिमान उनकी दृष्टि में कलह का मूल था। स्त्री के रोकर दैन्य प्रकट किये बिना उन्हें संतोष न होता था।[1] किन्तु राजाराम के इस विचार से खन्ना सहमत न था। खन्ना को अपने बाहरी सामाजिक कार्यों के लिये चंदा की सहायता की आवश्यकता थी किन्तु चन्दा ने बेबसी जाहिर की "मैं क्या करूँ---तुम जैसे कहो, मैं तैयार हूँ पर इस घर में रहते क्या कर सकती हूँ? इनसे लड़कर मैं घर में कैसे रह सकती हूँ?"[2]

खन्ना ने चंदा की बेबसी से खीझ कर कहा - "तो ऐसे घर से ही क्या जिसमें तुम्हारा अपना कुछ भी व्यक्तित्व नहीं। जिसमें तुम्हारी इच्छा का मूल्य नहीं, वह घर तुम्हारा तो न हुआ, तुम घर की एक वस्तु मात्र हो।" खन्ना चंदा के सहनशील स्वभाव को देखकर कहता है-"कुल के सम्मान के लिये तुम गल रही हो, अपने बलिदान से नारी-समाज के बन्धन दृढ़ कर रही हो। बच्चों के प्रश्न पर मैं कहता कि एक घर से बढ़कर देश और मनुष्यता का ध्यान होना चाहिये---।"[3]

पति द्वारा अपने सतीत्व पर संदेह करने से नारी तड़प उठती है उस समय उसकी मानसिक स्थिति बिगड़ जाती है उसका मन उलझन में घिर जाता है उसका चैन खत्म हो जाता है वह सोचती है-सन्देह! असतीत्व का संदेह! इस से बढ़कर अपमान और यंत्रणा पति अपनी पत्नी को और क्या दे सकता है? अपने आत्म सम्मान और गर्व पर प्रथम बार ऐसी चोट खाकर चन्दा के लिये जीवन असम्भव हो गया था। जीने का उत्साह तभी से न रहा था। जब चोट नयी थी तो उसके विरोध में प्राण देकर भी आत्म सम्मान की रक्षा का महत्व था। तब उसे अपमानित करके मरने भी न दिया गया। पति के विश्वास का गौरव समाप्त हो जाने

1- यशपाल- देशद्रोही-पृ0-200
2- वही, पृ0-225
3- वही, पृ0-226

पर न आत्म सम्मान रहा, न जीवन का मूल्य----- वह जीवित थी,अपनी दृष्टि में गौरव हीन,मरी हुई से बदतर। पति ने ही उसे मार डाला, जिसके लिये वह जीवित थी।----किस अपराध में?---- अपना अपराध ही तो वह जान न पाती थी।---इसलिये कि मैंने खन्ना को आदर और स्नेह के योग्य समझा?------मैंने इनका विश्वास किया इसलिये इन्हें मेरा विश्वास न रहा। जब मेरा विश्वास होनहीं, तो क्या करूँ?"[1]

निराश और हताश चंदा को जो अपने जीवन से ऊब गयी है मर जाना चाहती है खन्ना समझाते हैं-" यदि स्त्री की स्थिति ही समाज में ऐसी है। जब तक उसे जीवन के साधन जुटाने का स्वतंत्र अवसर और अधिकार नहीं, उसकी स्वाधीनता ,प्रेम और आचार सब पुरुष का खिलौना है तुमने आपको बलिदान कर सब सहा,अब उसके प्रति विद्रोह भी करो तो क्याकर सकती हो? जब तक जीवन के संघर्ष में अपने पैरों पर खड़े होने का साधन तुम्हारे पास न हो---।"[2]

डॉ० खन्ना मिल को जला डालने के लिये आतुर मजदूरों को रोकने में बुरी तरह घायल हो गये और किसी द्वारा अपने घर में लाकर लेटा दिये गये। उधर शिवनाथ ने डा० खन्ना को पुलिस में पकड़वा देने की धमकी दी और वह पत्र पहुँचा चंदाके पास अत: चंदा के पास कोई चारा न था उसको वहाँ जाना पड़ा और डा० खन्ना की इतनी बुरी स्थिति देखकर वह उसे बाहर ले जाने के लिये मजबूर हो गयी अत: सारी हिम्मत जुटाकर वह थोड़ा रुपया लेकर डा० खन्ना को वहाँ से लेकर वह राज के यहाँ पहुँची। राजाराम को जब इसकी सूचना मिली तो उसने चंदा के साथ किस पाशविकता का व्यवहार किया-" राजाराम ने दो कदम आगे बढ़ और भी उग्र स्वर में पूछा --"किससे पूछके आई तुम?" आवेश में उनका हाथ चल गया।चंदागाल पर जोर से पड़े थप्पड़ से पत्थरों पर गिर पड़ी।-"किससे पूछ कर आई तू?" उन्होंने दो दफे दोहराया,"और चोरी करो! खूब आजादी लो!चार दिन की गैरहाजिरी में ही समझ लिया कि हम मर गये।"चंदा से कहा-"चलो वापिस जहाँ से आई हो?मरना है तो उसी घर में चलकर मरो!तुम्हारी ऐयाशी के लियेमैं अपना मुँह काला नहीं कराऊँगा।तुम्हारी चिता उसीघर में बनेगी और अब देखना आजादी।"

1- यशपाल-देशद्रोही-पृ०- 229
2- वही,पृ०- 244

राजाराम ने डाण्डी से क्षत-विक्षत खन्ना को उतारकर जंगलमेंडाल दिया और जेंटा को उसी में ले कर चले गये। खन्ना को उन्होंने देशद्रोही कहकर उसी जंगल में मरने के लिये छोड़ दिया और उनकी वजह से गरीबों को अपना एक मसीहा खोना पड़ा।

श्रमिकवर्ग-

समाज में श्रमिक वर्ग सबसे ज्यादा शोषण का शिकार है। सर्व-साधारण लोगों में श्रमिक वर्गका बाहुल्य होता है। वह अपना श्रम विक्रय करके अपना जीवन यापन करता है परन्तु उसे अपने श्रम के अनुरूप पारिश्रमिक नहीं मिलता। पूँजीवादी श्रमिक के श्रम से उत्पादित अतिरिक्त पूँजी का लाभ स्वयं उठाता है। श्रमिक वर्ग जो सबसे ज्यादा मेहनत भी करता है और सबसे ज्यादाआर्थिक संकट भी भोगता है-इस शोषण के प्रति श्रमिक समाज का ध्यान आकर्षित करते हुए यशपाल दादा कामरेड में कहते हैं-" मजदूर भाइयों यह मिलेतुम्हारे और तुम्हारे भाइयों की मेहनत से बनी है। तुम्हारे बिना यह मिलें एक सेकेण्ड भी नहीं चल सकती। इनसे धागे का एक तार भी तैयार नहीं हो सकता। तुम्हारी मेहनत की कमाई से मिलों के मालिक और हिस्सेदार बैठे-बैठे संसार के सब सुख लूटते हैं और तुम सब कुछ पैदा करके भी पेट भर अनाज नहीं पा सकते।मंदी का बहाना करके आज तुममें से कुछ को निकाला जा रहा है। कल तुम्हें निकाल दिया जायेगा और तुम्हारी जगह सस्ती मजदूरी पर दूसरे मजदूर भरती कर लिये जायेंगे।जब तुम्हारे सैकड़ों भाई बेकार हो जायेंगे तो वे रोटी कपड़ा कहाँ से खरीदेंगे? खरीदने वाले न होने से फिर मन्दी होगी और तुम्हें निकालने का बहाना बनेगा। तुम्हारी ही मेहनत काट-काट कर पूंजी तैयार की जाती है और नई मिलें खोलकर तुम्हें किराये पर लगाया जाता है और तुम्हारा खून चूसा जाता है।[1] श्रमिक वर्ग क्या है समाज में उसकी वास्तविक स्थिति क्या है?भगवती प्रसाद बाजपेयी के उपन्यास "निमंत्रण" में मालती इस पर गहराई से सोचती है और इस नतीजे पर पहुँचती है कि-"आज इस घोड़े की जो स्थिति है,वही पूँजीजीवी समाज में प्रत्येक श्रमजीवी की है।"[2]

- -

1- यशपाल-दादा कामरेड- पृ0- 145
2- भगवती प्रसाद बाजपेयी-निमंत्रण- पृ0-66

वास्तव में जो स्थिति घोड़े की है वही श्रमजीवी की है,घोड़ा भी दिन रात गाड़ी में जुता रहता है और बोझ ढोता इधर से उधर भागता रहता है और इस कड़ी मेहनत पर भी उसे पेटभर खाना भी मालिक नहीं देता उल्टे उस पर चाबुक की बरसात होती रहती है, मालिक के हाथ में हर वक्त चाबुक रहता है और ये चाबुक बात बेबात घोड़े पर चलता रहता है, उसी प्रकार श्रमजीवी दिन रात श्रम करता है पर मालिक यानी पूँजीपति उसे पेटभर रोटी भी नहीं देते उल्टे गालियाँ और फटकारों की बरसात करते रहते हैं। श्रमजीवी दिन रात घोड़ों की भाँति जुता दौड़ता जाता है दौड़ता जाता है कहीं कोई ठहराव नहीं कोई मंजिल नहीं।

सामाजिक विषमता के कारण सर्व-साधारण का सार्वांगीण विकास नहीं हो पाता। वह अपना सारा समय अपना पेट भरने के साधन जुटाने में ही लगा देता है उसे और तरफ सोचने की या और तरफ विकास करने की फुरसत ही कहाँ यदि समाज से उसे उसके श्रम के अनुरूप पारिश्रमिक मिल जाये उसे आवश्यकतानुसार जीने के साधन मिल जायें तो वह भी शिक्षा,संस्कृति, सभ्यता की ओर ध्यान दे।श्रमिक अपना सारा जीवन मेहनत करने और अपने परिवार के लिये दो जून रोटी जुटाने में ही लगा देताहै।वह दिन रात काम करता है फिर भी भूखा मरता है उसके बच्चे उसी के आगे भूख से बिलख बिलख कर दम तोड़ देते है जबकि विडम्बना ये है कि वह सारा दिन अपने ही हाथों से अन्न का उत्पादन करता है मगर उसे भर पेट भोजन मयस्सरनहीं इसी विषमता को यशपाल जी ने दादा कामरेड में चित्रित किया है-"मनुष्य समाज का कितना बड़ा भाग मौजूदा व्यवस्था के कारण अपनी गोद में सिसकते बच्चों का पेट न भर सकने के कारण अपनी आँखों के सामने उन्हें निष्प्राण होते देखता है ।कितने गरीब अपनी आँखों के सामने अपने वृद्ध माता-पिता को इसलिये दम तोड़ते देखते हैं कि वे उनके लिये दवाई की दो खुराक मुहय्या नहीं कर सकते,क्योंकि वे उनके लिये डाक्टर या वैद्य को अंतिम समय पर भी नहीं ला सकते।हरीश का मजाक में उसे "डाकू की बेटी"पुकारना याद आ जाता।वह कहता था तुम्हारे पिता का यह मकान जिसमें सैकड़ों गरीब आदमी गुजारा कर सकते हैं।उनको यह लाखों की सम्पत्ति, क्या उनके हाथों की मेहनत है? लाखों गरीबों की मेहनत का यह छीना हुआ अंश ही उनकी

शक्ति है।आज यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे मकान से मुट्ठी भर आटा उठा ले जाये तो वह चोर है परन्तु तुम्हारे पिता कितनी मिलों और बैंकों में अपनी पूँजियाँ लगाकर मुनाफा ले रहे हैं? उन्हें मालूम भी नहीं कि उन मिलों मेंकितने मजदूर किस प्रकार मेहनत करते हैं? उन्हीं मजदूरों की मेहनत की तो यह कमाई है जो अपना तन भी ढाँप नहीं सकते, जो अपना पेट भी भर नहीं सकते? क्या यह चोरीनहीं है? तुम्हारे पिता और उनके साथियों ने अपने काम और सहूलियत के मुताबिक कानून बना लिया है, कि उनकी चोरी मुनासिब है और दूसरे की नहीं।

यदि तुम्हारे पिता को हजारों मजदूरों की मेहनत का हिस्सा अपने प्रबन्ध से छीन लेने का अधिकार है, यदि यह न्याय है,तो विदेशियों का इस देश को पराधीन रखकर इसका शोषण करना अन्याय कैसे है? अपने लाभ के लिये समाज की ऐसी व्यवस्था को कायम रखने के लिये वे न्याय और धर्म की पुकार मचाते हैं। वे हजारों मजदूरों को रोजी देने का दम भरते हैं। तुम्हारे पिता ठीक इसी तरह इन मजदूरों को खाते हैं,जैसे मुर्गी पालने वाला मुर्गियों को दाना डालकर उन्हें खाने के लिये पालता है।"[1]

सब विपत्तियों की जड़ आर्थिक असमानता हीहै।पूँजी कुछ लोगों के हाथों में सिमट कर रह गई है। चाहें कोई कितनी भी योग्यता एवं प्रतिभा रखता है परन्तु यदि वे चमार हैतो चमार रहेगा,मोची है तो मोची ही रहेगा,मजदूर है तो मजदूर और उसे पारिश्र-मिक भीउतना नहीं मिलेगा जितने का वहहकदार है।ये जितने भी बड़े-बड़े शिक्षित लोगों के पद हैं वह सभी साधारण जनता का शोषण करते हैं। ये सब वकील,डाक्टर,बड़े-बड़े अफसर ये सब पूँजीपतियों के चाटुकार और पिछलग्गू होते हैं। जो अमीर है उसको सभी सेवायें उपलब्ध हो जाती हैं वह कचहरी,थाने के चक्कर से भी जल्दी छूट जाता है,पुलिस,सिपाही सभी उसको सलाम ठोकते हैं वह अपने पैसे की आड़ में सभी काले कारनामे करता है मगर किसी की क्या मजाल की उसके खिलाफ एक भी शब्द बोल सकें अगर बोल दें तो तुरन्त नौकरी से बर्खास्त।इसी प्रकार अस्पतालों में अमीरों का इलाज पहले होता है गरीब वहीं बिना दवा के तड़प-तड़प कर अपना दम तोड़ देता है। कारण है आर्थिक असमानता इस स्थिति को स्पष्ट करते हुये भगवती प्रसाद बाजपेयी "निर्माण" उपन्यास में गिरधारी शर्मा

1- यशपाल- दादा कामरेड-पृ0- 170-171

से कहलाते हैं-" उत्पादन के जितने भी साधन हैं उन पर प्रभुत्व यहाँ स्थापित है उस समाज को जो न श्रम का उचित मूल्यांकन करता है न बौद्धिक प्रयोगों का।पूँजी पर आज व्यक्ति का अधिकार है और उसका यहअधिकार वंशानुक्रम के रूप में चल रहा है। चाहे जितनी योग्यता और प्रतिभा हममें हो किन्तु हम सदा मोची के मोची बने रहते हैं। ये सूदखोर महाजन,लगानखोर जमींदार ,हरामखोर व्यापारी और उनके दलाल, रिश्वतखोर हाकिम और अहलकार शाब्दिक विवादों के पेशेवर वकील सबके सब संगठित रूप से हमारा जो शोषण करते हैं,उसी का तो कुफल हम भोग रहे हैं। हमारे अन्दर का सारा असन्तोष आज सच पूँछो तो आर्थिक असमानता से उत्पन्न हुआ है।"[1]

संयुक्त परिवार के लोग आपस में मिलकर व्यापारकरते हैं और उनमें फिर धन को संचय करके रखने की प्रवृत्ति बढ़ती है वह संचित धन एक दिन पूँजी का रूप धारण कर लेता है और वही चक्र चलता है कि उस धन के बल पर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य पर शासन करता है वह अपनीपूँजी से सब कुछ खरीद लेना चाहता है और श्रमिक वर्ग को उसके आगे कुत्तों की तरह दुम हिलानी पड़ती है इस संबंध में मालती,रेणु से कहती है-"कुटुम्ब ने मनुष्य को खरीद लिया। उसने उसे पूँजी का संचय सिखाया ।फिर आगे चलकर उसी पूँजी ने आज एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के आगे विवश,पशु,हीन, स्थनीयऔर पथ का भिक्षुक बनाकर छोड़ दिया है।"[2]

पूँजीपति वर्ग अपने लाभ के लिये,कि बाजार में उसके माल की माँग में कमी न आने पाये अपने कारखानों में दिन-रात काम करवाता है उसके लिये तो मजदूरों को "ओवर टाइम" का लालच देता है और उनसे जानवरों की तरह काम करवाता है और दूसरी तरफ इस बात पर भी ध्यान रखता है कि बाजार में माल ज्यादा पहुँच जाये जिससे माँग में कमी आ जाये। माल की जितनी ज्यादा माँग होगी वो उतना ही मँहगा मिलेगा और उसे उतना ही लाभ होगा। इसके लिये ये वर्ग माल तैयार कराकर अपने गोदाम भरता रहता है और बाहर वह जनता जो दिन रात कोल्हू के बैल की तरह मेहनत करती है एक एक अन्न के दाने को तरसती

1- निर्मंत्रण- भगवती प्रसाद बाजपेयी-पृ0- 114
2- वही, पृ0- 128

है इतना ही नहीं इन पूँजीपतियों की नीचता उस समय हद पार कर जाती है जब बाजार में माल ज्यादा न पहुँच जाये और उसकी माँग न गिर जाये इसलिये तैयार शुदा माल को नष्ट कर देते हैं। कितनी विषमता है कोई अन्न के दाने-दाने के लिये तरसे और किसी के वहाँ सड़ के या जल के नष्ट हो जाये इसी स्थिति को स्पष्ट किया है शर्मा जी ने-

"पूँजीपति चाहता है कि जनता के चाहे जितना कष्ट हो पर उसको अंधाधुन्ध मिलता जाय। वह अपने कारखाने में एक ओर तो माल तैयार कराने की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि चाहता है, दूसरी ओर उसकी दृष्टि इस बात पर लगी रहती है कि माँग में कमी न होने पाये, क्योंकि अगर बाजार में माल अधिक पहुँच जायगा तो माँग में अंतर आ जायेगा। इसीलियेवह कभी कारखानों में काम करने वाले कर्मचारियों की संख्या घटाने लगता है और कभीतैयार माल को बाजार में न भेजकर गोदामों में भरना प्रारंभ कर देता है। कहीं कहीं तो बाजार दर को स्थिर रखने के लिये तैयार शुदा माल नष्ट तक कर दियाजाता है। एक ओर जनता भर पेट भोजन न मिलने के कारण भूखी और नंगी रहती है, दूसरी ओर पूँजीपति माल की खपत बढ़ाने के लिये करोड़ों मन गेहूँ जलाकर नष्ट कर डालता है।"[1]

पूँजीपतियों की स्वार्थपरता के कारण हमारे समाज में सर्वहारा वर्ग, जो बहुसंख्यक हैं उनका जीवन कैसा है? एक मशीनी जीवन वहजीते हैंरात-दिन परिवार सहित काम करना जैसे-जैसे पेट की रोटी का इंतजाम करना सूदखोरों की गालियाँ सुनना, घर में यदि कोई बाल बच्चा हो तो महाजन से जाकर हाथ-पैर जोड़कर ॠण लाना और जानवरों की तरह पड़कर सो रहना। पानी, धूप से बचने के लिये सर छिपाने को छप्पर है तो ठीक, नहीं हैं तो विशाल धरती उसका घर और आसमान उसके ढाँपने वाला छप्पर तो है ही प्रकृति का असीम आनन्द उसके हिस्से में तो आ ही जाता है। दुनिया में क्या हो रहा है? क्या आधुनिकता बढ़ी? भोग-विलास के क्या साधन हैं? उससे उसे कुछ मतलब नहीं, जिन्दगी में कहीं आनन्द भी है सुख भी है, वह इससे बेखबर अपने को अभागा मानता हुआ अपने पूर्व कर्मों को कोसता हुआ, अगले जन्म में सुख की लालसा संजोता हुआ इस ईश्वर को सब बातों का जिम्मेदार ठहराता हुआ अपने जीवनका बोझ ढोता जाता है। इस संबंध में पूर्णिमा अपनी सास से कहती है-

---

1- भगवतीप्रसाद बाजपेयी- निमंत्रण- पृ0- 164

"क्या हमारे देश में भी ऐसे लोगों कीकमी है जो सपरिवार रात-दिन लगातार काम में तेली के बैल की तरह जुते रहते हैं। उनका सारा का सारा जीवन अँधेरी कोठरियों, गन्दे मकानों धूल और शीत कीस्वास्थ्य घातक सीमाओं, दिल और दिमाग को बेकार कर देने वाली मशीनों और फैक्टरियों की घनघोर ध्वनियों के बीच खप जाता है। फिर भी वे दरिद्र के दरिद्र ही बने रहते हैं। काम करते करते ही वे जन्म लेते और पनपते हैं। काम करने की ही दशा में गृहस्थबनते और मस्तिष्क और स्नायुओं से निःशक्त होते-होते अपना जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। वे नहीं जानते भाग्योदय क्यावस्तु है। वे नहीं जानते जीव की उन्नति क्या है? वह यह भी नहीं जान पाते कि इस समस्त जगत के असीम सौख्य-भोग में उनका भी कोई भाग है। फिर यह क्रम आज पचासों वर्षों से बराबर चल आ रहा पीढ़ियाँ खत्म हो गयीं, पर उनकी गरीबी खत्म नहीं हुई। मैं पूँछता हूँ कि क्या यह हमी लोगों की स्वार्थपरता का कुफल नहीं है।[1]

श्रमिक शोषण-

श्रमिक शोषण के रूप गोदान में बहुत मिलते हैं प्रेमचन्द ने किसानों की समस्याओं को नजदीक से देखा था और उनके सभी उपन्यास उनके किसानों मजदूरों की करुण हानी कहते हैं। प्रेमचन्द के उपन्यास पहले आदर्शवाद में परिणत होते थे किन्तु परिस्थितियों को समझते हुये सारा अध्ययन कर चुकने पर प्रेमचन्द यथार्थवाद को ही ठीक समझने लगे और गोदान तक आते आते उनके विचारों में भी परिवर्तन हो गया गोदान में सर्वत्र किसानों और मजदूरों का यथार्थवादी चित्रण है। दोहरी कथा के चित्रण में प्रेमचन्द ने गाँवों और नगरों दोनों की समस्याओं का सजीव और यथार्थवादी चित्रण किया है। गोदान में शोषण केविविध रूप चित्रित हैं जिसमें से एक सामन्तीय शोषण है।जमींदारी शोषण में रायसाहब,अमरपाल सिंह और उनके कारिन्दे हैं। राय साहब किसानों पर अत्याचार करते हैं उनसे जबरदस्ती लगान वसूल करवाते हैं उनसे बेगार करवाते हैं लगान समय से न देने पर उन्हें बेदखल कर देते हैं कुछ भी कह देने पर उन पर डाँड़ लगवाते हैं।अपने मनोरंजन के लिये अपने सामाजिक दिखावे एवं धार्मिक पाखण्ड के लिये मजदूरों, किसानों से

- -

1- निर्मंत्रण- भगवती प्रसाद बाजपेयी-पृ0- 205

बेगार कराते हैं और उन्हें उनके श्रम के अनुसार पारिश्रमिक न देकर उन्हें परेशान करते है। इसका एक उदाहरण है।एक चपरासी आकर कहता है- "सरकार बेगारों ने काम करने से इन्कार कर दिया है। कहते हैं, जब तक हमें खाने को न मिलेगा, हम काम न करेंगे।"

"राय साहब के माथे पर बल पड़ गये। आंखे निकालकर बोले-"उन दुष्टों को ठीककरता हूँ। जब कभी खाने को नहीं दिया गया,तो आज यह नई बात क्यों? एक आने रोज के हिसाब से मजूरी मिलेगी,जो हमेशा मिलती रही है,और इस मजूरी पर उन्हें काम करना होगा,सीधे करें या टेढ़े।[1]

हमारे समाज की यही तो विडम्बना है कि यहाँ श्रम का उचित पात्र नहीं मिलता। दिन रात काम करने के बाद भी क्यों मजदूर भूखे पेट सो जाता है जबकि उसकी इच्छायें भी सीमित होती हैं बस पेट भर खाना, कपड़ा और सिर छुपाने के जगह मिल जाये वह उसी में सन्तुष्ट है मगर उसे इतना भी नसीब नहीं होता तो वह विद्रोह कर उठता है।इसी श्रम के फल को न देकर गरीब का शोषण करके अमीर बनने वालों को दादा-कामरेड में हरीश डाकू कहता है-" प्रत्येक मनुष्य को अपने परिश्रम के फल पर पूर्ण अधिकार होना चाहिये। एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से, एक श्रेणी दूसरी श्रेणी से, एक देश दूसरे देश से उसके परिश्रम का फल छीन ले तो यह अनुचित है, अन्याय है, अपराध है।यह समाजमें निरंतर होने वाली भयंकर हिंसा और डकैती है।"[2]

श्रमिकों या किसानों की सबसे बड़ी समस्या है ऋण की समस्या वह उसी में जीता है उसी में मर जाता है एक बार महाजन से ऋण ले लिया तो उसकी पुश्तें तक उसे चुकाती रहती है क्योंकि महाजन उसमें सूद इतना जोड़ता जाता है कि जो किसान देता है वह सूद में कट जाता है और असल ज्यों का त्यों रहजाता है। दातादीन ने बैल के लिये तीस रुपये होरी को उधार दिये थे। अब दो सौ माँगता है।गोबर कहता है-"मुझे खूब याद है तुमने बैल के लिये तीस रुपये दिये थे। उसके सौ हुए। और अब सौ के दो सौ हो गए।इसी तरह तुम लोगों ने किसानों को लूट-लूटकर मजूर बना डाला और आप उनकी जमीन के मालिक बन बैठे। तीस के दो सौ।कुछ हद है।"[3]

- -

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 15-16

2- यशपाल-दादा कामरेड- पृ0-154

3- प्रेमचन्द गोदान-पृ0- 183

पूँजीपति वर्ग अपने आपको बुद्धिजीवी वर्ग कहता है वह बुद्धि और अपनी प्रतिभा से कार्य करता है इसीलिये वह ज्यादा मेहनत करता है इसलिये उसे अधिक पैसा मिलना चाहिये और मजदूर हाथ से काम करता है इसलिये उसे उनसे कम पैसा मिलना चाहिये।

गोदान में जीवन के सभी पहलुओं को प्रेमचन्द जी ने उजागर किया है एक भी अंग उनकी आँखों से ओझल नहीं होने पया प्राणी मात्र के जीवन का इतना वृहत परिवेश है गोदान का इतनी सारी समस्याओं को एक ही उपन्यास में गूथकर उपन्यासकार ने निश्चय ही एक झकझोर देने वाला प्रश्न उपस्थित कर दिया देश के कर्णधारों के सामने। देश केवल राजनैतिक दृष्टि से ही परतंत्र नहीं था बल्कि वह सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभीदृष्टियों से पराधीन था सब जगह विषमता थी। देश को शोषण विदेशी होनहीं अपने ही देश के जमींदार उनके कारिन्दे, गाँव के महाजन उनके प्यादे, पण्डित, साहूकार यहाँ तक की बड़े किसान, दरोगा कान्सटेबिल सभी मिलकर करते थे और एक किसान जो भोला है, निरीह है पुराने आडम्बरों में जकड़ा है , भाग्यवादी है, धर्मान्धता में जकड़ा है पुरानी जीर्ण-शीर्ण रीतियों का बोझ अपने जर्जर कन्धों पर ढोता हुआ एक जिन्दा लाश की तरह एक गाँव मेंजीता है, नहीं, रोज मरता हुआतिल-तिल कर घुनता हुआ अंत में दम तोड़ देता है। उसके क्रिया-कर्म तक को चन्दा लेना पड़ता है कितनी विडम्बना है वह अन्नविधाता कर्मयोगी दिन रात काम करके अन्न उपजाता है मगर मरते समय बीस आने पैसे की थाती छोड़कर सदा के लिये एक गाय को तरसता चला जाता है न जाने कितने होरी ऐसे ही जन्म लेते हैं और मर जाते हैं। होरी का जीवन भारत के किसानों का प्रतिनिधित्व करता है यही सच्चाई है। प्रेमचन्द ने गोदान में उसी का जीवन्त निर्वाह किया है।

गाँव में बेइमानी ने सीमा पार कर रखी है ये उस समयदृष्टिगत होता है जब नोखेराम होरी के सब लगान चुकता कर देने के बाद भी प्यादा उसके यहाँ भेज देता है बाकी चुकाने के लिये क्योंकिरशीद तो वो देता न था क्या सबूत था कि उसने लगान चुकता कर दिया। नोखेराम को वेतन तो मात्र दस रुपये मिलते थे मगर एक हजार साल की आमदनी ऊपर से थी। चरित्र के इतने ओछे थे कि भोला कीपत्नी को अपने यहाँ रखे हुए थे। गाँव के पंचों में शामिल होकर गरीब किसानों पर डाँड लगाता है, रिश्वत लेता है,

दलाली खाता है और महाजनी करता है।

इस गाँव में शहर के पूँजीपति का एजेन्ट झिंगुरी सिंह भी रहता है जो किसानों की हालत का फायदा उठाकर उनको भारीसूद पर कर्ज देता है और उसमें भी आधे ही किसान के हाथ लगतेहैं क्योंकि पहले वह कागज लिखाई, दस्तूरी, नजराना और छः महीने ब्याज का पेशगी ले लेता है। वह कर्ज दिनों दिन बढ़ता जाता है तीस रुपये को दो सौ हो जाते हैं।इसीलिये जो एक बार कर्ज ले लेता है वह उससे उऋण नहीं हो पाता सारा जीवन वहउसका सूद ही भरता रहता है। किसान की सारी फसल खेत में ही महाजनों की भेंट चढ़ जाती है और घर में बच्चे दाने दाने को तरसते रह जाते हैं। धनियाँ के तीन बच्चे इसी में मर गये थे ।

गोदान में रिश्वत खोर दरोगा की भी पोल पट्टी खोली गई है एक गरीब किसान जो स्वयं अपने बोझ से मर रहा है चारों तरफ से लूटा जा रहा है उसे भला ये क्यों छोड़ दें। किसान अशिक्षित होने के कारण कोर्ट कचहरी से डरता है एक घुड़की दी की वह सब कुछ करने को तैयार है और फिर ये लोग अपनी झूठी मर्यादाओं में इतना फँसे रहते हैं कि इनमें इतनी सोचने समझने की शक्ति नहीं बचती कि वह क्या करें क्या न करें होरी की गाय को उसी के भाई हीरा ने जहर देकर मार दी और स्वयं लज्जा वश कहीं भाग गया दरोगा तो इसी की तलाश में रहते हैं सुनकर तुरंत आ गये और गाँव के सभी महाजनों ने अपनी दलाली तय कर ली और लगे होरी को डराने धमकाने कि हीरा के घर की तलाशी लेंगे दीन होरी झूठी मर्यादा को कलेजे से लगाये है तलाशी नहीं लेने देना चाहता उससे उसकी इज्जत चली जायेगी। गाँव के पंच जो स्वयं भी दरोगा के काले कारनामें शामिल थे होरी से बोले -"निकालो।जो कुछ देना है, यों गला न छूटेगा।"[1]

इस शोषण का शिकार शहर के जमींदार वगैरहभी हैं बस ये है कि जो जिससे कम बलशाली है वह उसी का खून चूसता है-जमींदार किसानों का चूसते हैं और शहर के बड़े-बड़े अफसर साहब जमींदारों को घुड़की दिखाते रहते हैं।अमीर आदमी भी खुश नहीं है गरीब समझता है कि केवल वह दुखी है लेकिनअमीर आदमी निरंतर कुण्ठा और अशांति का जीवन

- -

1- प्रेमचन्द- गोदान-पृ0- 95

जीते है। धन से सब कुछ खरीदा जा सकता है मगर शांति नहीं वह अपनी झूठी मर्यादाओं अपने दिखावे में ही जान दिये रहते है।उनका अहम उनको जलाये डालता हैउनको भी चाटुकारिता करनी पड़ती है। राय साहब जो जमींदार है वह अपनी इसी संघर्षता का वर्णन होरी से करते हैं-"दुनिया समझती है हम बड़े सुखी हैं। हमारे पास इलाके, महल, सवारियाँ, नौकर चाकर, कर्ज, वेश्याएं, क्या नहीं है, लेकिन जिसकी आत्मा में बल नहीं, अभिमान नहीं, वह और चाहे कुछ हो, आदमी नहीं है। जिसे दुश्मन के भय के मारे रात को नींद न आती हो, जिसके दुख पर सब हँसे और रोने वाला कोई न हो, जिसकी चोटी दूसरों के पैरों के नीचे दबी हो, जो भोग-विलास के नशे में अपने को बिल्कुल भूल गया हो, जो हुक्काम के तलवे चाटता हो और अपने आधीनों का खून चूसता हो, उसे मैं सुखी नहीं कहता। वह तो संसार का सबसे अभागा प्राणी है।"[1]

प्रेमचन्द ने जमींदार से अपने मुँह से अपनी गलतियों का अपनी दशा का बखान करवाया है वह अपने आप होरी के सामने अपनी कमजोरियों को कबूल करता है लेकिन मात्र स्वीकार करता है कहता है मगर उसे अपने व्यवहार में नहीं लाता कथनी और करनी में बड़ा अंतर है वह अपने स्वार्थ को कहीं भी छोड़ नहीं पाता। रायसाहब स्वयं कहते हैं-" मुफ्तखोरी ने हमें अपंग बना दिया है, हमें, अपने पुरुषार्थ पर लेश मात्र भी विश्वास नहीं, केवल अफसरों के सामने दुम हिला-हिलाकर किसी तरह उनके कृपापात्र बने रहना और उनकी सहायता से अपनी प्रजा पर आतंक जमाना ही हमारा उद्यम है। पिछलगुओं की खुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनकमिजाज बना दिया है कि हममें शील, विनय और सेवा का लोप हो गया है।"[2]

ये बड़े-बड़े पूंजीपति और जमींदार अगर अपने असामियों पर थोड़ी कृपा भी करते हैं तो इस उद्देश्य सेनहीं कि वह उनसे हमदर्दी रखते हैं, सहानुभूति रखते हैंउनकी दशा सुधारना चाहते हैं बल्कि उसके पीछे भी उनकाअपना ही कोई स्वार्थ छिपा रहता है। वह होरी को इसलिये अपनेयहाँ धनुष्यज्ञ में जनक के माली का काम देते हैं कि उसके द्वारा गाँव से शगुन के रूप में इकट्ठे हो सके" धर्म की आड़ में गरीबों का शोषण करते हैं जो किसान

- -

1- प्रेमचन्द- गोदान-पृ0- 15
2- वही,

एक एक पैसे को मोहताज है वह धर्म के डर से शगुन के रूपये कहीं से भी जुटाने में दृढ़ संकल्प है कुछ भी हो पूँजीपति हर क्षेत्र में अपना ही स्वार्थ देखता है इसी स्वार्थ को मेहता जी राय साहब के मुँह पर कहते हैं-" मानता हूँ, आपका अपने असामियों के साथ बहुत अच्छा बर्ताव है, मगर प्रश्न यह है कि उसमें स्वार्थ है या नहीं। इसका एक कारण क्या यह नहीं हो सकता कि मद्धिम आँच में भोजन स्वादिष्ट पकता है? गुड़ से मारने वाला जहर से मारने वाले की अपेक्षा कहीं सफल हो सकता है। मैं तो केवल इतना जानता हूँ, हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। हैं तो उसका व्यवहार करें, नहीं हैं तो बकना छोड़ दें। मैं नकली जिन्दगी का विरोधी हूँ। अगर मांस खाना अच्छा समझते हो तो खुलकर खाओ। बुरा समझते हो, तो मत खाओ, यह तो मेरी समझ में आता है, लेकिन अच्छा समझना और छिपकर खाना, यह मेरी समझ में नहीं आता। मैं तो इसे कायरता भी कहता हूँ और धूर्त्तता भी, जो वास्तव में एक है।"[1]

ये पूँजीपति इतने स्वार्थी होते हैं कि अपने लाभ के लिये जब गोदाम माल से भर जाता है और माल की कोई कमी नहीं रहती और बाजार में माँग बराबर बनी रहती है तब ये उससे कम मजूरी पर नये मजदूर रख लेते हैं और पुराने हटा देते हैं अथवा जब इन पर कोई बाहरी आर्थिक दबाव आकर पड़ता है तो बजाय ये अपना वेतन कम करने के अपने भोग-विलास में कमी करने के गरीब मजदूरों की मजदूरी घटा देते हैं इन्हें इससे क्या मतलब वो जियें या मरे वह किस तरह से अपना नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं अगर ये हईस आदमी उसको देख तक लें तो घृणा करे इसी पर मेहता मिल मालिक खन्ना से कहते हैं-" क्या यह जरूरी था कि ड्यूटी लग जाने से मजूरों का वेतन घटा दिया जाय? आपको सरकार से शिकायत करनी चाहिये थी। अगर सरकार ने नहीं सुना तो उसका दण्ड मजूरों को क्यों दिया जाय? क्या आपका विचार है कि मजूरों को इतनी मजदूरी दी जाती है कि उसमें चौथाई काम कर देने से मजूरों को कष्ट नहीं होगा? आपके मजूर बिलों में रहते है-गंदे बदबूदार बिलों में जहाँ आप एक मिनट भी रह जाये, तो आपको कै हो जाए, कपड़े जो पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोंछेंगे। खाना जो वह खाता है, वह आपका कुत्ता भी न खाएगा। मैंने उनके जीवन में भाग लिया है। आप उनकी रोटियाँ छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं-------।"[2]

1- प्रेमचन्द गोदान-पृ0- 46
2- वही, पृ0-240

मजदूर, किसान ये कुछ तो पूँजीपति यों द्वारा शोषित किये जाते हैं और कुछ अपने भोलेपन, अज्ञानता, अशिक्षिता और अन्धविश्वासी होने से मारकीय जीवन जाते हैं इनसे सबल व्यक्ति कुछ भी कहते तो उसके आगे निरीह बनकर सर झुका देते हैं विद्रोहकरना तो जैसे जानते है नहीं। अन्ध विश्वासी होने से झूठे धर्म के ढकोसलों में आकर अपने भूखे बच्चों की भी परवाह नहीं करते एक-एक दाना ढोकर दे देते हैं, झूठी मर्यादाओं को पालना, सड़ी-गली परम्पराओं, रूढ़ रीति-रिवाजों में यह जकड़े रहते हैं। इनकी दयनीय दशा देख कर मेहता को बड़ी सहानुभूति होती है और वह मन में कराह उठते हैं और सोचते हैं -"मेहता जी इस समय इन गँवारों के बीच में बैठे हुए इस प्रश्न को हल कर रहे थे कि इनकी दशा इतनी दयनीय क्यों है। वह सत्य से आँखें मिलाने का साहस न कर सकते थे कि इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, तो यों न ठुकराए जाते। देश में कुछ भी हो क्रांति ही क्यों न आ जाये, इनसे कोई मतलब नहीं। कोई दल उनके सामने सबल के रूप में आये, उसके सामने सिर झुकाने को तैयार। उनकी निरीहता जड़ता की हद तक पहुँच गई है, जिसे कठोर आघात ही कर्मण्य बना सकता है। उनकी आत्मा जैसे चारों ओर से निराश होकर अब अपन अन्दर ही टाँगे तोड़कर बैठ गई है। उन्हें अपने जीवन की चेतना ही जैसे लुप्त हो गई है।"[1]

विषमता-

कैसी विषमता है। इन गरीबों को पेट भर मोटा झोटा भोजन भी नहीं मिलता जो स्वयं सर्दी में धूप में बरसात में अन्न उपजाता है वह स्वयं एक समय खाता है और वह भी कभी -कभीचबेने पर ही बसर करना पड़ता है। दूध-घी अंजन लगाने को भी नसीब नहीं। जाड़ी सर्दी एक फटे-चीथड़े कम्बल में काट देते हैं वह भी 50 वर्ष पुराना। इनके बच्चे बिनादवा-दारु के ही मर जाते हैं। उसका अनाज तो सबका सब खलिहान में ही तुलजाता है। जमींदार, उसका कारिन्दा, तीन तीन महाजन, धर्म गुरु पण्डित सब अपना अपना ले जाते हैं। किसान खड़ा ताकता रह जाता है। एक गाय की अतृप्त लालसा लिये मन में रह जाता है। बेचारे गरीब को यह सामाजिक कुरीतियाँ भी नहीं बख्शतीं ये घुन की तरह उसको खाती रहती हैं। मरते समय भी धार्मिक शोषण उसका पिंड नहीं छोड़ता। कैसी

- -

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 257

विडम्बना है कि जो किसान जीवन भर एक गाय की लालसा मन में संजोये रहा उसी से अंतिम समय में गोदान की आशा की जाती है ये धर्म के लटेरे उसकी कमाई अंतिम बोस आने भी नहीं छोड़ते और उसी से गोदान हो जाता है। इस समय मन घृणा से भर जाता है। प्रेमचन्द समाज के प्रबुद्ध वर्ग को मानों झकझोर देते हों वह उसे विचलित कर देना चाहते हो कि ऐसी है व्यवस्था हमारे समाज की जहाँ न जीने दिया जाता है न मरने।

"समाज की ऐसी व्यवस्था, जिसमें कुछ लोग मौज करें और अधिक लोग पिसें और खपें, कभी सुखद नहीं हो सकती।"[1]

।प्रेमचन्द। उन्होंने होरी के दयनीय चित्र द्वारा भावी समाज को चुनौती दी है कि किसान अस्तित्व अनस्तित्व के दुराहे पर खड़ा है। एक कगार पर खड़ा है, जहाँ से आगे या तो आत्मसंहार की अतुल जलराशि है या स्वत्व खोकर इन्सान की तरह जी पाने के संकल्प की कठोर विषम भूमि-विनाश है या क्रांति। समझौता का अब प्रश्न नहीं रहा।"[2]

"पाठक को "गोदान" झकझोर कर जगा रहा है कि बदलो इससमाज व्यवस्था को, इस अर्थ-तंत्र और समाज की सभी रूढ़ियों को जड़-मूल से उखाड़ दो, सभी मानव-शोषक पद्धतियों का अंत करो। पत्तियाँ तोड़ने व सींचने से भी कुछ न होगा। मेहता के शब्दों में स्पष्ट कहा गया है कि जड़ को पकड़ो-सारी समाज व्यवस्था या अर्थ व्यवस्था को बदलो।"[3]

सामाजिक विषमता के प्रति असन्तोष भगवतीप्रसाद बाजपेयी के उपन्यास निर्माण में भी व्यक्त किये गये हैं। समाज का बहुसंख्यक वर्ग जो रोटी को मोहताज है और दिनरात कड़ी मेहनत करता है, किन्तु दूसरी तरफ अल्पवर्ग जिसके हाथ में समाज की समस्त पूँजी भी सिमट आयी है और उस पूँजी का उपभोग करने का समय भी और तरह-तरह के आधुनिक साज-ओ-सामान भी उसने ।मालती। अनुभव किया है कि जो समाज रात दिन श्रम करता है, उसकोयह दुर्गति हो कि वह अपने परिवार का भरण-पोषण तक न कर सके और केवल पूँजी

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0-47
2- महेन्द्र चतुर्वेदी-हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण-पृ0- 80
3- प्रेमचन्द की उ0क0क0उ0-गोदान- पृ0- 133-डा0 कृष्ण देव झारी

की बदौलत, जो वास्तव में राज्य की सम्पत्ति होनी चाहिये, कुछ लोग बिना परिश्रम किये गुल छर्रे उड़ाते रहे, हमारे समाज की यह कैसी जड़ता है।"[1]

धार्मिक अन्धविश्वास-

हमारे सामाजिक ढांचे में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। समाज के अधिकांश नियम धर्म के उपदेशों से रचे गए हैं जिसमें ब्राह्मण को ब्रह्म का अंश माना गया है इसलिये वो चाहें कुछ भी करे सबको उसकी हर बात शिरोधार्य करनी चाहिये। चाहे वह पाखण्डी हो पापी धूर्त अथवा वस्त्र रंगाये तिलक-छाप लगायें, कण्ठा धारण किये भीतर से बगला भगत ही क्यों न हो मगर वह भगवान की तरह पूज्य है घर में किसान दाने को तरस जायेगा। मगर ब्राह्मण को नाखुश नहीं कर सकता नहीं तो उसके श्राप से सब कुछ भंग हो जायेगा।

इस जीवन में सुख भोगना या दुख भोगना भी पूर्वजन्म के किये कर्मों का फल है इससे मनुष्य भाग्यवादी बन जाता है और अपनी दशा पर सन्तोष करके अकर्मण्य बन जाता है। धर्म का अर्थ यह नहीं था वह था मनुष्य की नैतिकता को बनाये रखने के लिये उसकी आत्मा को पवित्र रखने के लिये कि कहीं मनुष्य अपनी इन्सानियत से गिर न जाय इसलिये सामाजिक प्रारम्भ में धर्म का स्थान रखा गया था। मगर कुछ स्वार्थी लोगों ने इन धार्मिक नियमों को रूढ़ बना दिया अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिये नाना प्रपंच रचकिये नाना परम्परायें बना दी और ईश्वर का रूद्र रूप जनता के सामने रख दिया जो ईश्वर मन को बल दे सबकी रक्षा करने वाला है उसका रूद्र रूप सामने रख दिया कि अगर ऐसा न हुआ तो ईश्वर रूष्ट हो जायेगा और उसका सर्वनाश हो जायेगा। धर्म की आड़ में शोषण प्रारंभ हुआ इसका ग्रास सबसे ज्यादा निम्नवर्ग, किसान और मजदूर बना क्योंकि उनकी समझ के बाहर थे ये सब धर्म के ढकोसले वे ज्यादा पढ़े-लिखे होते नहीं, हृदय के सरल होते हैं जो समझा दिया जाता है वही समझ लेते हैं।

प्रगतिवादी धारा में तो ईश्वर का कोई स्थान न था उसका दर्शन तो आध्यात्मिक नहीं भौतिक ढांचे में खड़ा था वह ईश्वर नाम की किसी अदृश्य शक्ति पर

1- भगवती प्रसाद बाजपेयी- निर्मंत्रण- पृ0-69

पर विश्वास होना नहीं करता था। उसका दर्शन तो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद था। मार्क्स के अनुसार संसार के दो पदार्थ हैं-स्वीकारात्मक और नकारात्मक-इन दोनों तत्वों के संघर्ष का नाम ही जीवन है, जिसका आधार वस्तु। अंटर । ये दोनों विरोधी तत्व वस्तु में स्थित ही निरंतर संघर्ष रत रहते हैं। इसी से चेतना का जन्म होता है। यही चेतना द्वन्द्वात्मक होती है। इसी आधार पर कार्ल मार्क्स के इस सिद्धांत को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा गया है।

प्रगतिवाद में अर्थ को ज्यादा महत्व दिया गया जब से प्रगतिवादी धारा का हिन्दी साहित्य में प्रवाह आया तब से धर्म को ढकोसलों का खण्डन शुरू हो गया। लेखकों ने अपनी रचनाओं में खुलकर धार्मिक आडम्बरों का खण्डन किया और ये धर्म के बहरूपियों का भाण्डा फोड़ा और सभी रीति-रिवाजों, सड़ी हुई रूढ़ परम्पराओं को तोड़ने के लिये एक क्रांति प्रारंभ कर दी। प्रेमचन्द भी प्रारंभ में तो आदर्शवादी रहे किन्तु धीरे-धीरे वक्त की माँग को देखते हुये यथार्थ पर उतर आये इस समय जनता को धार्मिक उत्थान की आवश्यकता थी इस संकीर्णता के क्षेत्र से निकलकर व्यापक दृष्टि की आवश्यकता थी जिसमें वह डटकर ईश्वर का डर छोड़कर शोषितों से लड़े और अपना अधिकार प्राप्त करे जिससे उसे भी जीना आये, पलना नहीं।

"गोदान में प्रेमचन्द ने धार्मिक पाखंड को गिनगिन कर कड़ियां तोड़ी हैं। इस रचना तक आते-आते ईश्वर और तथाकथित धर्म के प्रति उनका मन अविश्वासी हो गयाथा।[1] मेहता के माध्यम से प्रेमचन्द ने गोदान में धार्मिक आडंबर की धज्जियाँ उड़ायी हैं-" और जो यह ईश्वर और मोक्ष का चक्कर है, इस पर तो मुझे हँसी आती है। वह मोक्ष और उपासना अहंकार की पराकाष्ठा है जो हमारी मानवता को नष्ट किये डालती है। जहाँ जीवन है, क्रीड़ा है, चहक है, प्रेम है, वहीं ईश्वर है और जीवन को सुखी बनाना ही उपासना है और मोक्ष है। ज्ञानी कहता है, ओठों पर मुस्कराहट न आये, आँखों में आँसू न आये। मैं कहता हूँ, अगर तुम हँस नहीं सकते और रो नहीं सकते तो तुम मनुष्य नहीं हो पत्थर हो। वह ज्ञान जो मानवता को पीस डाले ज्ञान नहीं है, कोल्हू है। "[2]

- -

1- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष-गोदान डा० कृष्ण देव झारी- पृ०-9।
2- प्रेमचन्द-गोदान- पृ०-

ये सरल हृदय, सन्तोषी जन अपने दुख को अपनी आर्थिक विपन्नता को अपने पूर्व जन्मों का फल समझते हैं ये यह नहीं समझते कि इन्सान अपनी तकदीर अपने हाथ से लिखता है ये सब इन पाखण्डियों के बनाये हुये हथकण्डे हैं जिसमें यह समझा दिया जाता है कि जिसके जो भाग्य में है उसको उतना ही मिलता है ये कहाँ का न्याय है कि दिन भर मेहनत करने के बाद भी पेट-भर भोजन भी नसीब न हो महाजन, जमींदार, पूँजीपति सब उधर से ही किसी न किसी बहाने सब चट कर जायें और उसे भाग्य का दोष कह दिया जाय कोई सूद ज्यादा लगाकर रुपये ऐंठता है कोई लगान वसूल कर, कोई बेगारी से कोई डाँड़ लगाकर, कोई मर्यादा का डण्डा दिखाकर और कोई कानून की धुड़की देकर शोषण करता है और नाम है पूर्व जन्म के कर्मों का फल।

गोदान में होरी इसी बात को मानता है कि ये सब पूर्व जन्म का फल है कि हम दाने-दाने को मोहताज हैं और जो रईस हैं वहअपने पूर्व जन्म के फल के ही कारण आनन्द भोगते हैं इस पर गोबर इसका प्रतिवाद करता है क्योंकि वह नयी जीवन चेतना का प्रतिनिधित्व करता है वह यह सब बर्दाश्त नहीं कर पाता उसका मन विद्रोह करता है वह कहता है-"यह सब कहने की बातें हैं। हम लोग दाने-दाने को मुहताज हैं, देह पर साबितकपड़े नहीं ह, चोटी का पसीना एड़ी तक आता है, तब भी गुजर नहीं होता। उन्हें क्या, मजे से गद्दा-मसनद लगाए बैठे हैं, सैकड़ों नौकर-चाकर हैं, हजारों आदमियों पर हुकूमत है। रुपये न जमा होते हों, पर सुख तो सभी तरह का भोगते हैं। धन लेकर आदमी और क्या करता है।

" तुम्हारी समझ में हम और वह बराबर हैं?

भगवान ने तो सबको बराबर ही बनाया है।

यह बात नहीं है बेटा, छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं। सम्पत्ति बड़ी तपस्या से मिलती है। उन्होंने पूर्व जन्म में जैसे कर्म किए, हैं, उनका आनन्द भोग रहे हैं। हमने कुछ नहीं संचा, तो भोगे क्या?"

यह सब मन को समझाने की बाते हैं। भगवान सबको बराबर बनाते हैं। यहाँ जिसके हाथ में लाठी है, वह गरीबों को कुचलकर बड़ा आदमी बनजाता है।"

"यह तुम्हारा भरम है। मालिक आज भी चार घण्टे रोज भगवान का भजन करते हैं।

"किसके बल पर यह भजन-भाव और दान-धर्म होता है?"

"अपने बल पर

"नहीं किसानों के बल पर और मजदूरों के बल पर। यह पाप का धन पचे कैसे? इसीलिए दान-धर्म करना पड़ता है, भगवान का भजन भी इसीलिए होता है। भूखे-नंगे रहकर भगवान का भजन करें, तो हम भी देखें। हमें कोई दोनों जून खाने को दे, तो हम आठों पहर भगवान का जाप ही करते रहें। एक दिन खेत में ऊख गोड़ना पड़े तो सारी भक्ति भूल जाय।"[1]

पण्डित जो अपने आपको ब्रह्मा का अवतार बताकर जनता से अपनी पूजा करवाते हैं और मर्यादा का ढकोसला रचाये माथे पर तिलक-छाप लगाये ढोंगी की तरह घूमते है वह अन्दर से कितने पापी कितने दुश्चरित्र होते हैं इसका भण्डाफोड़ करके इन लेखकों ने जनता से मानो अपील की कि इन धूर्तों को पहचानो इनको भगवान तक पहुँचने का माध्यम समझकर इन पर अपना सर्वस्व मत लुटवाओ ये चार धर्म की पुस्तकें पढ़ने वाले नियम-व्रत करने वाले पाखण्डी हैं-झुनिया जो कि ब्राह्मण के यहाँ दूध देने जाती थी उस पर बुरी नजर रखता था उस पाखण्डी की पोल-पट्टी खोलती है-"यही लिखा है तुम्हारे पोथी पत्रे में कि दूसरों की बहू-बेटी को अपने घर में बन्द करके बेइज्जत करो। इसीलिये तिलक-मुद्रा का जाल बिछाए बैठे हो? लगा हाथ जोड़ने, पैरों पड़ने-एक प्रेमी का मन रख दोगी तो तुम्हारा क्या बिगड़ जायेगा, झुना रानी।-----।" उस ब्राह्मण की खिल्ली गोबर ने भी खूब उड़ायी, झुनिया के बताने पर कि उसने दूध की मटकी उस पंडित पर फोड़ दी तो गोबर बहुत खुश हुआ ""बहुत अच्छा किया तुमने। दूध से नहा गया होगा। तिलक मुद्रा भी धुल गई होगी। मूछे भी क्यों न उखाड़ ली?।"[2]

परम्परागत ब्राह्मणों की इन लेखकोंने खूब धज्जियाँ उड़ायीं। जो धर्म को एक ढकोसला बनाये डालते हैं सब कुछ नियमों का पालन कर दो तिलक-छाप लगा दो भगवा वस्त्र पहन लो, सर मुड़ा लो दो-चार पोथी-पत्रे बाँच दो थोड़ी सी देर पूजा-पाठ कर लो

- -

1- प्रेमचन्द-गोदान--पृ0- 18

2- वही, पृ0- 42-43

कथा व्रत कर लो बस हो गया धर्म का पालन मन में चाहे बड़े-बड़े काले नाग खेलें परन्तु बाहर से स्वच्छ रहो, किसी अछूत के साथ का पकाया खाना न खाओ परन्तु उसके साथ सोने में कोई हानि नहीं अजाब है ये धर्म का ढकोसला-" हमारा धर्म है हमारा भोजन। भोजन पवित्र रहे, फिर हमारे धर्म पर कोई आँच नहीं आ सकती। रोटियाँ ढाल बनकर अधर्म से हमारी रक्षा करती हैं।" दातादीन और उनके पुत्र मातादीन के पाखण्डी धर्म पर कैसा चुटीला व्यंग्य है कि तड़फ जायें। दातादीन का पुत्र मातादीन एक चमारिन को अपने यहाँ रखे हैं उससे खाना नहीं छुआता, रसोई में नहीं जाने देता मगर रहता उसी के साथ था-" पर वह तिलक लगाता था, पोथी पत्रे बाँचता था, कथा-भागवत कहता था, धर्म संस्कार कराता था उसकी प्रतिष्ठा में जरा भी कमी न थी। वह नित्य स्नान पूजा करके अपने पापों का प्रायश्चित कर लेता था।"

सिलिया जो एक चमार की बेटी है। चमार अपनी ये बेइज्जती बर्दाश्त न कर सके कि उनकी बेटी चमार की तरह एक मजदूर बनकर रहे और ये पाखण्डी सब पाप करते हुये भी पण्डित बने बैठे मौज उड़ाते रहे उन चमारों ने विद्रोह कर दिया मानो सभी हरिजनों ने इस पाखण्डपूर्ण धर्म के नकली ठेकेदारों के विरुद्ध जेहाद छेड़ दिया हो एक स्वाभाविक क्षोभ उनमें व्याप्त हो गया और वह लोग मातादीन के दिखावी धर्म को नष्ट कर देने को उतारु हो गये-" हम आज या तो मातादीन को चमार बना के छोड़ेंगे, या उनका और अपना रकत एक कर देंगे। सिलिया कन्या जात है, किसी न किसी के घर जायेगी ही। इस पर हमें कुछ नहीं कहना है, मगर उसे जो कोई भी रखे हमारा होकर रहे। तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं। हमें ब्राह्मन बना दो, हमारी सारी बिरादरी बनने को तैयार है। जब यह समरथ नहीं है, तो फिर तुम भी चमार बनो। हमारे साथ खाओ, पिओ, हमारे साथ उठो-बैठो हमारी इज्जत लेते हो, तो अपना धरम हमें दो।

मातादीन के प्रतिविद्रोह भरे स्वर में सिलिया की माँ कहती है-"वाह-वाह पण्डित। खूब नियाव करते हो। तुम्हारी लड़की किसी चमार के साथ निकल गई होती और

तुम इसी तरह की बातें करते, तो देखती। हम चमार हैं, इसलिए हमारी कोई इज्जत ही नहीं। हम सिलिया को अकेले न ले जायेंगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जायेंगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेमी-धरमी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी न पियोगे।"[1]

इस विद्रोह के बाद भी जब इन पाखण्डियों पर कोई असर नहीं पड़ा तो चमारों ने मातादीन के मुँह से हड्डी छुआ दी फिर क्या था मातादीन का धर्म भ्रष्ट हो गया-"जिस मर्यादा के बल पर उसकी रसिकता और घमण्ड और पुरुषार्थ अकड़ता फिरता था, वह मिट चुकी थी। उस हड्डी के टुकड़े ने उसके मुँह को ही नहीं, उसकी आत्मा को भी अपवित्र कर दिया था। उसका धर्म इसी खान-पान, छूत-विचार पर टिका हुआ था। आज उस धर्म की जड़ कट गई। अब वह लाख प्रायश्चित करे, लाख गोबर खाय और गंगाजल पिए, लाख दान-पुण्य और तीर्थ-व्रत करे, उसका मरा हुआ धर्म जी नहीं सकता।"[2] काशी के पण्डित जब प्रायश्चित करवाते हैं दान-भोजन उड़ाते हैं मातादीन को गौ-मूत्र और गोबर पिलाया-खिलाया जाता है तब कहीं जाकर उसका धर्म कुछ ठीक होता है।

इस प्रायश्चित ने मातादीन की आँखे खोल दीं वह इस ढोंग को पहचान गया उसे घृणा हो गई इस ढकोसले से उसका मन पवित्र हो गया मन की कलुषिता धुल गई और उसकी मानवता निखर आई उसने जनेऊ तोड़ दिया, उसे धर्म के नाम से चिढ़ हो गयी और उसने सिलिया के प्रति अपने अपराध को स्वीकार कर लिया और एक मानव का जो कर्म होता है उसे अपना लिया एक झूठा ढकोसला छोड़कर।

बगुला-भगत नोखेराम-"प्रातः कालपूजा पर बैठ जाते थे और दस बजे तक बैठे राम-नाम लिखा करते थे, मगर भगवान के सामने से उठते ही उनकी मानवता विकृत होकर उनके मन, वचन और कर्म सभी को विषाक्त कर देती थी।"[3] लाला पटेश्वरी गाँव में पुण्यात्मा मशहूर थे। पूर्णमासी को नित्य सत्यनारायण की कथा सुनते थे, पर पटवारी होने के नाते खेत बेगार में जुतवाते थे, सिंचाई बेगार में करवाते थे और असामियों को एक दूसरे से

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 208

2- वही, पृ0- 209

3- वही, पृ0-

लड़ाकर रकम मारते थे।"[1] "इन झूठे नेमी-धर्मियों की प्रेमचन्द ने खूब खबर ली है। इनकी काली करतूतों का कच्चा-चिट्ठा दिखाकर स्पष्ट किया गया है कि यह धर्म कितनी कच्ची रेत की दीवार पर टिका हुआ है। कबीर आदि प्राचीन सन्तों से भी अधिक सजीव रूप में प्रेमचन्द ने ब्राह्मणी धर्म के किले की ईंट से ईंट बजाई है।"[2]

एक समय था जब कि पाशविक वृत्तियों को समाज के नैतिक मापदण्डों ने संयमित किया था किन्तु आज वे भी निष्प्राण होती जा रही हैं आज इन नैतिक मापदण्डों का कोई मूल्य नहीं रह गया अब समाज व्यक्ति के लिये न होकर व्यक्ति समाज के लिये बनता जा रहा है आवश्यकता है इन मनोरहस्यों को समझने कि और समाज को एक स्वस्थ और सामूहिक कल्याण की राह दिखाने, न कि शोषण की।

वैवाहिक पद्धति में द्वन्द्व-

प्रगतिवादी लेखकों ने अपने उपन्यासों में भारतीय समाज में प्रचलित वैवाहिक पद्धति की खूब खबर ली है। इस वैवाहिक पद्धति के दोषों को इन लेखकों ने अपने उपन्यासों में स्थान-स्थान पर दिखाया है। इस पद्धति में अनमेल विवाह, बाल विवाह, विधवा-विवाह बहु-विवाह पर जम कर लेखनी चलाई है। विवाह समाज का सबसे प्रमुख और अहम् मुद्दा है। विवाह पद्धति समाज की प्रमुख व्यवस्था है अगर ये ही गलत हुई, रूढ़ हुई तो सारा समाज विश्रृंखलित होजायेगा।समाज की सुदृढ़ नींव विवाह पर ही खड़ी होती है, विवाह से ही परिवार बनता है और परिवार समुदाय, समुदाय एक समाज का रूप धारणकरता है। मगर कैसी विडम्बना है हमारे यहाँ की वैवाहिक पद्धति ही सबसे ज्यादा दूषित है इसमें अनेक बुराइयाँ और कुरीतियाँ व्याप्त हैं।

कहीं विवाह में आयु की दृष्टि से अनमेल है, वर छोटा है वधू बड़ी है या वधू छोटी है वर बड़ा है और इस अनमेल विवाह के कारण भी समाज के द्वारा स्वयं ही उठाये हुये हैं।कहीं दहेज की समस्या के कारण अपनी फूल सी कन्या किसी अधेड़ व्यक्ति

- -

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0-

2- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष - "गोदान"- डा0 कृष्ण देव झारी पृ0- 94

के साथ इसलिये ब्याह दी जाती है क्योंकि वह दहेज नहीं लेगा। कहीं पैसे के लालच में माँ-बाप अपनी बेटी को बूढ़े के हवाले कर देते हैं। अन्ध परम्परा एवं अशिक्षा के कारण बेटी का विवाह बचपन में ही कर दिया जाता है। बेटी तो पराया धन है किसी और की अमानत है इसको जितना जल्दी उसे सौंप दिया जाय उतनी जल्दी इस कर्ज से उऋण हो जायें, कन्या दान एक पुण्य है जल्दी से कन्या का दान करके पुण्य प्राप्त कर लें कहीं उससे वंचित न रह जायें किनरक में जगह मिले, इन सब आडम्बरों और अंध-विश्वास के कारण कन्या का विवाह उस समय कर दिया जाता है जबकि वह नासमझ होती है उसके खेलने खाने के दिन होते हैं, गृहस्थी का बोझ सम्भालना उसके लिये दुष्कर होता है परिणाम होता है पारिवारिक कलह और उसको अपना जीवन तड़प-तड़प कर काटना पड़ता है।

विवाह में प्रकृति रीति, विचार आदि के मिलान के बजाय जब रुपये पैसे की माप-जोख होगी तो विषम परिस्थितियाँ जन्म लेंगी ही। हमारे यहाँ अबसब कुछ रुपया हो गया है। शादी भी लड़का-लड़की को देखने के बजाय रुपया देखकर होती हैं, जन्मकुण्डलियाँ अगर न मिल रही हों तो रुपया-पैसा देकर मिलवा ली जाती है लेकिन बाद में इसका दुष्परिणाम भी सामने आता है और समाज में तरह-तरह की बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं जैसे तलाक, आत्महत्या और वेश्यावृत्ति को भी इससे बढ़ावा मिलता है क्योंकि स्त्री पति के छोड़ देने के बाद या तो आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाती है या दुनिया के हाथ का खिलौना बनकर कोठे पर जा बैठती है, क्योंकि शिक्षित इतना होती नहीं और न ही इतनी जागरूक होती है कि पति से अलग रहकर अपनी जीविका निर्वाह कर सके।

विवाह के सम्बन्ध में एक और दोष है माँ-बाप अपने लड़के-लड़की की शादी स्वयं करेंगे, वह अपनी इच्छा अपने बच्चों पर लादते हैं जिन्हें अपना सारा जीवन जिसके साथ निर्वाह करना है उसे कोई हक नहीं कि वह अपना साथी स्वयं चुन ले इतना तो दूर है उसे इतना भी अधिकार नहीं कि वह अपने साथी के बारे में कुछ पूछ भी ले। लड़की को तो इतना भी अधिकार नहीं है कि वह अपने होने वाले पति को देख भी ले। माँ-बाप अपने मन से रिश्ते तय कर लेते हैं और वचन दे देते हैं-लड़का-लड़की के विरोध करने पर वह अपने दिये गये वचन की दुहाई देते हैं। उनके लिये किये गये अपने बलिदान गिनाते हैं और अपने प्रति

उनके कर्तव्य की याद दिलाते हैं और मजबूर करते हैं कि वह उनके सामने घुटने टेक दे और जिस खूँटे से उनको बाँधा जा रहा है वह बिना किसी विरोध के एक मूक गाय की भाँति बँध जाये।

विचारों की विषमता, जहाँ दोनों पति-पत्नी के स्वभाव अलग-अलग हों वहाँ जीवन सुखी नहीं रहसकता। पति पत्नी से पटतीनहीं है उनका सारा जीवन दुखमय हो जाता है। इस समस्या को गोदान में प्रेमचन्द ने बड़ी अच्छी तरह उठाया है। गोविन्दी और खन्ना में नहीं पटती-लेखक व्यंग करता है "क्यों नहीं पटती, यह बताना कठिन है। ज्योतिष के हिसाब से उनके ग्रहों में कोई विरोध है, हालाँकि विवाह के समय ग्रह और नक्षत्र खूब मिला लिये गए थे।"[1] दोनों के विचारों में विषमता है, खन्ना धन -दौलत का मतवाला, ऐश्वर्य-गर्व में चूर, विलासप्रिय, रसिक, धन, भोग को ही सब कुछ समझने वाले हैं दूसरी तरफ गोबिन्दी सरल हृदय, शान्त स्वभाव, धन-ऐश्वर्य को कुछ भी न समझने वाली एक क्षमाशील, त्याग और सेवा की मूर्ति भारतीय नारी है। वह एक कुण्ठित जीवन व्यतीत कर रही है उसकी कुण्ठा का एक दृश्य प्रेमचन्द जी ने खींचा है-"खन्ना के पास विलास के ऊपरी साधनों की कमी नहीं, अव्वल दरजे का बंगला है, अव्वल दर्जे का फर्नीचर, अव्वल दरजे की कार और अपार धन, पर गोबिन्दी की दृष्टि में जैसे इन चीजों का कोई मूल्य नहीं। इस खारे सागर में वह प्यासी पड़ी रहती है। बच्चों का लालन-पालन और गृहस्थी के छोटे-मोटे काम हीउसके लिए सब कुछ हैं। वह इनमें इतनी व्यस्त रहती है कि भोग की ओर उसका ध्यान नहीं जाता। आकर्षक क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न हो सकता है, इसकी ओर उसने कभी विचार नहींकिया। वह पुरुष का खिलौना नहीं है, न उसके भोग की वस्तु फिर क्यों आकर्षक बनने की चेष्टा करें? अगर पुरुष उसका असली सौन्दर्य देखने के लिये आँखे नहीं रखता, कामिनियों के पीछे मारा-मारा फिरता है, तो वह उसका दुर्भाग्य है। वह उसी प्रेम और निष्ठा से पति की सेवा किए जाती है, जैसे द्वेष और मोह जैसी भावनाओं को उसने जीत लिया है। और यह अपार सम्पत्ति तो जैसे उसकीआत्मा को कुचलती रहती है। इन आडम्बरों और पाखण्डों से मुक्त होने के लिए उसका मन सदैव ललचाया करता है। अपने सरल और स्वाभाविक जीवन में वह कितनी सुखी रह सकती थी इसका वह नित्य स्वप्न देखती रहती है।"[2]

- -

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 158
2- वही,

लड़की की इच्छा के बिना मात्र धन-दौलत देकर ब्याह कर देना हमारे समाज की परम्परा रही है लड़के का चरित्र कैसा है उसका खानदान उसका रहन-सहन कैसा है यह न देखकर उसके पास धन-ऐश्वर्य कितना है यह देखकर लड़की ब्याह दी जाती है और वह भोगे जीवन भर अपने पति की निर्दयता। ऐसा ही एक चित्रप्रस्तुत है "गोदान से जिसमें राय साहब ने अपनी लड़की मीनाक्षी की शादी कुंवर-दिग्विजय सिंह से कर दी-ऐश्वर्य तो बहुत था मगर बेचारा चरित्र का बहुत ही खराब था-"साधारण हिन्दू-बालिकाओं की तरह मीनाक्षी भी बेजबान थी। बाप ने जिसके साथ ब्याह कर दिया उसके साथ चली गई, लेकिन स्त्री-पुरुष में प्रेम न था। दिग्विजय सिंह ऐयाश भी थे, शराबी भी। मीनाक्षी भीतर ही भीतर कुढ़ती रहती थी। पुस्तकों और पत्रिकाओं से मन बहलाया करती थी। दिग्विजय की अवस्था तो तीस से अधिक न थी। पढ़ा-लिखा भी था, मगर बड़ा मगरूर, अपनी कुल-प्रतिष्ठा की डींग मारने वाला स्वभाव का निर्दयी और कृपण। गाँव की नीच जाति की बहू-बेटियों पर डोरे डाला करता था। सोहबत भी नीचों की थी, जिनकी खुशामदों ने उसे और भी खुशामदपसन्द बना दिया था। मीनाक्षी ऐसे व्यक्ति का सम्मान दिल से न कर सकती थी।"[1]

मीनाक्षी पढ़ी-लिखी थी और उन दिनों नारी जागृतिकी लहर उठ रही थी नारी के अधिकारों की चर्चा पत्र-पत्रिकाओं में होती थी मीनाक्षी भी क्लब जाने लगी जहाँ इन पुरुषों से अपने अधिकारों के प्रति संघर्ष की चर्चा होती थी। मीनाक्षी ने इसी से प्रेरणा ग्रहण करके पति से अलग रहने लगी और उस पर गुजारे का दावा कर दिया, गुजारा मिल जाने पर भीउसका क्षोभ शान्त न हुआ तो उसने अपने पति को उसके शोहदे समेत पीटा। एक वेश्या जो वहाँ नाच रही थी उसको देखकर मीनाक्षीने जो व्यंग्य किया वह सचमुच बड़ा ही विद्रोही है पुरुष प्रधानसमाज में नारी की क्या स्थितिहै-"हम स्त्रियाँ भोग-विलास की चीजें है-हाँ, तेरा कोई दोष नहीं।"[2]

समाज की व्यवस्था ऐसी ही कि इसमें लड़का लड़की की पसन्द की कोई जगह नहीं) माँ-बाप अपनी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा की दुहाई देतेहुये अपनी पसन्द अपने बच्चों पर लादते हैं। शादी-ब्याह में बराबर की प्रतिष्ठा देखी जाती है, जाति-पाँति ऊँच-नीच सब

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 269

2- वही, पृ0- 270

कुछ देखा जाता है। लेकिन जब किसी का प्रेम हो किसी के साथ तो वह कैसे अपना दिल तोड़ दे। प्रेम तो कोई जाति-ऊँच, नीच, अमीर-गरीब देखता नहीं है। राय साहब अपने लड़के रूद्रपाल की शादी सूर्य प्रताप सिंह की लड़की से करना चाहते हैं क्योंकि वह समाज में प्रतिष्ठित एवं ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्ति हैं वह राय साहब की जोड़ के हैं। मगर रूद्रपाल मालती की बहन सरोज से प्रेम करता है उसे सूर्य प्रताप सिंह का रिश्ता मंजूर नहीं-राय साहब कहते हैं-" यह संबंध समाज में तुम्हारा स्थान कितना ऊँचा कर देगा, कुछ तुमने सोचा है? इसे ईश्वर की प्रेरणा समझो।"[1] परन्तु इसी बात को कितने अच्छे ढंग से प्रेमचन्द ने एक मनोवैज्ञानिक तरीके से बताया है क्यों मनुष्य अपनी इच्छा अपने बच्चों पर लादता है-"हम जिनके लिए त्याग करते हैं, उनसे किसी बदले की आशा न रखकर भीउनके मन पर शासन करना चाहते हैं, चाहे वह शासन उन्हीं के हित के लिए हो, यद्यपि उस हित को हम इतना अपना लेतेहैं कि वह उनका न होकर हमारा हो जाता है। त्याग की मात्रा जितनी ही ज्यादा होती है, यह शासन-भावना भी उतनी ही प्रबल होती है और जब सहसा हमें विद्रोह का सामना करना पड़ता है, तो हम क्षुब्ध हो उठते हैं, और वह त्याग जैसे प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है। राय साहब को यह जिद पड़ गई कि रूद्रपाल का विवाह सरोज के साथ न होने पाए, चाहें इसके लिए उन्हें पुलिस की मदद क्यों न लेनी पड़े, नीति की हत्या क्यों न करनी पड़े।"[2]

मेहता से जब राय साहब सलाह लेते हैं तब वह इस समस्या का समाधान बताते हैं निश्चय ही प्रेमचन्द ने खूब सोच समझकर एक सटीक समाधान बताया है समाज की इस समस्या के उन्मूलन के लिये-मेहता कहते हैं-"आप अपनी शादी के जिम्मेदार हो सकते हैं। लड़के की शादी का दायित्व आप क्यों अपने ऊपर लेते हैं, खासकर जब आपका लड़का बालिग है और अपना नफा नुकसान समझता है। कम से कम मैं तो शादी जैसे महत्व के मुआमले में प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं समझता।"[3]

"शहरों में यह विषमता पुरूष की सभ्यता और स्वभाव की उद्दण्डता के कारण उत्पन्न होती है, जिसके मूल में है धन-सम्पत्ति का दोष। गाँव में विषमता का कारण

- -

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 263
2- वही, पृ0- 264-65
3- वही, पृ0- 266

है विवशता।"1 होरी की दशा बड़ी ही दयनीय है उसके बैल चले गये, घर रहन हो गया, खेती रही नहीं मगर बेटी का ब्याहकरना है। अनमेल विवाह का बड़ा मार्मिक चित्रण है गोदान में लेकिन इसके पीछे होरी की विवशता है कोई स्वार्थ नहीं। अपनी इज्जत बचाने के लिये होरी को अपनी फूल सी कन्या बेच देनी पड़ती है पहले वह अपने मन को समझा नहीं पाता एक अन्तर्द्वन्द्व सा मच जाता है उसके मस्तिष्क में लेकिन अंत में उसको लाचारी के आगे घुटने टेकने पड़ जाते हैं। पण्डित दातादीन रामसेवक जो एक सम्पन्न आदमी है और होरी की ही करीब-करीब उम्र का है उसका रिश्ता रूपा सेकरने को कहता है उससे विवाह करने से कुछ रुपया मिल जायेगा और होरी के खेत बच जायेंगे-" रामसेवक होरी से दो ही चार साल छोटा था। ऐसे आदमी से रूपा के ब्याह करने का प्रस्ताव ही अपमानजनक था। कहाँ फूल सी रूपा और कहाँ बूढा ठूँठ।"2

इस अनमेल विवाह के अतिरिक्त एक और अनमेल विवाह "गोदान" में दिखाया गया है और उसके क्या घातक परिणाम निकलते हैं वह भी दिखाया गया है सारा जीवन नर्क मय हो जाता है। एक बूढ़े के साथ अतृप्त लालसमयी, नवयुवती जो अभी एक कली है अपना जीवन कैसे व्यतीत करे उसके अपने अरमान होते हैं सपने होते हैं वह ऐसी परिस्थितियों से समझौता नहीं कर पाती और वह इधर उधर भटकतीघूमती है उसका परिणाम होता है दोनों का ही जीवन क्लेशपूर्ण हो जाता है। भोला विधुर हैं किन्तु शादी करने के लिये लालायित हैं एक विधवा से वह शादी कर लेते हैं नाम है नोहरी। जवान बेटे-बहुओं के घर दूसरी शादी कर लाये बाप तो बच्चों पर कुछ बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। पहले घर में बहुओंका राज चलता था फिर नोहरी का चलने लगा। बहुयें इसको कैसे सहन कर सकती थीं परिणाम हुआ पारिवारिक कलह, बेटे ने सारी मर्यादायें लांघ कर बाप पर हाथ छोड़ दिया दिन रात कलह-क्लेश शुरू हुआ और अंत हुआ बेटों के बाप को मार कर घर से निकाल देने में "नई स्त्री लाकर बेटे से आदर पाने का अबउसे कोई हक न रह गया था। कामता ने भोला को पीटकर घर से निकाल दिया।"3

1- प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष- गोदान-डा0कृष्ण देव झारी-पृ0- 101

2- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 290

3- वही, पृ0-220

इधर नोहरी के विषय में कनबतियाँ होती रहीं- नोहरी ने आज गुलाबी साड़ी पहनी है। अबक्या पूछना है,चाहे रोज एक साड़ी पहने।सैयां भये कोतवाल ,अब डर काहे का।भोला की आँखें फूट गई हैं क्या?।"[1] यही परिणाम निकलता है बेमेल विवाह का पैसे के प्रभाव से भी बेमेल विवाह हुआ करते हैं। झिंगुरी सिंह बूढ़े हो चले मगर दो-दो जवान बीवियाँ घर में रखे हैं। वह उन्हें पर्दे में रखते हैं लेकिन परदे की ओट में ही वहाँ गुल खिलते रहते हैं ये अस्वाभाविक विवाह जिसमें प्रकृति रीति और वय का सम नहीं होता नैतिक पतन का कारण बन जाते हैं।

सम और स्वाभाविक प्रेम में रास्ते में जाँति पाँति रीति रिवाज भी अपने रोड़े बिछाये रहते हैं जिससे स्वाभाविक विवाह कम ही हो पाते हैं और जो हो जाते हैं उसमें समाज उनका जीना दुष्कर कर देते हैं। गाँव में तो ये और भी ज्यादा बीमारी फली हुई है वहाँ तो अपने रीति-रिवाज और मर्यादा के कारण जान तक दे दो मगर चूँ न करो। उनको बिरादरी से निकलने का बड़ा डर रहता है उनका हुक्का पानी बन्द हो गया तो वे किस दीन के रहेंगे। समाज के ठेकेदार उन्हें तरह तरह से डराते हैं डाँड वसूलते हैं शुद्धि कराने के लिये भोज कराते हैं, दान-दक्षिणा करवाते हैं तबकहीं उसका हुक्का पानी खुलता है नहीं तो बेचारा बिरादरी से निकाल बाहर किया जाता है।

इसी तरह का संघर्षगोदान में दिखाया है गोबर और झुनिया आपस में प्रेम करने लगतेहैं मगर यथार्थ को सोचकर गोबर का हृदय काँप उठता है-"एक विचित्र भय मिश्रित आनन्द से उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा।लेकिनयह कैसे होगा?झुनियाको रख ले तो रखेली को लेकर घर में रहेगा कैसे बिरादरी का झंझट है। सारा गाँव काँव कौव करने लगेगा। सभी दुश्मन हो जायेंगे।"[2] और यही हुआ झुनिया जब गोबर के घर आ गई और गोबर तो भाग गया मगर इधर सारे गाँव में जैसे तूफान आ गया एक विधवा,अहीर की लड़की को रख कैसे लिया वह कुलटा है। होरी के यहाँ का हुक्का पानी बन्द उसे बिरादरी से बाहर कर दिया जायेगा,बसइसके दो ही रास्ते हैं या तो झुनिया को मारकर घर से निकाल दो या डाँड दो,सारी बिरादरी को भात दो,ब्राह्मणों को भोज दो।

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 222
2- वही, पृ0-41

इस कट्ठरजातिवाद की ओट में शोषकवर्ग अपनी सुविधानुसार सामाजिक नियमों में परिवर्तन एवं संशोधन करके समाज केबहुसंख्यक साधनहीन वर्ग का शोषण करता रहा है। धनिया ने बुर्जुआवर्ग के इसी स्वार्थ पर व्यंग करते हुये दातादीन से कहा-[1]हमको कुल प्रतिष्ठा इतनी प्यारी नहीं है महराज, कि उसके पीछे एक जीव की हत्या कर डालते। ब्याहता न सही, पर उसकीबाहु तो पकड़ी है मेरे बेटे ने ही। किस मुँह से निकाल देती? वही काम बड़े-बड़े करतेहैं, मुदा उनसे कोई नहीं बोलता उन्हें कलंक ही नहीं लगता। वही काम छोटे आदमी करते हैं तो उनकी मरजाद बिगड़ जातीहै। नाक कट जाती है। बड़े आदमियों को अपनी नाक दूसरों की जान से प्यारी होगी, हमें तो अपनी नाक इतनी प्यारीनहीं।[2] दातादीन, पटेश्वरी आदि सभी पीछेपड़ गये होरी और धनिया के। पटेश्वरी ने कहा- "समाज तो भय के बल से चलता है। आज समाज का आँकुस जाता रहे, फिर देखो संसार मेंक्या क्या अनर्थ होने लगते हैं।"[3]

इन समाज के ठेकेदारों ने झुनिया की बात को लेकर बर्बाद करदिया पंचायत बैठायी गई, पंचायत ने होरी पर सौ रुपये नकद और तीस मन अनाज का डाँड़ लगा दिया। जो किसान कौड़ी कौड़ी को मोहताज हो, अन्न के दाने को तरस रहा हो वह इतना बड़ा डाँड़ कैसे देगा। मगर ये गाँव वाले भोले और अशिक्षित होते हैं इनमें सोचने समझने की जैसे शक्ति खत्म होजाती है ये अन्धविश्वास में पंचों को परमेश्वर मान बैठते हैंमगर उनके अन्दर का राक्षस नहीं देखते। होरी अपना एक एक दाना खेत से ही उठाकर दे देने को राजी हो जाता है अपने बच्चों के लिये भी एक दाना नहीं रखेगा, अगर उसमें भीकमी पड़े तो बैल खोलकर ले जायें। मगर धनिया विद्रोही स्वभाव की है उसे ये सब सहन नहींहोता वहसमझती है कि ये परमेश्वर नहीं राक्षस हैं- "मैं एकदानान अनाजदूँगी, कौड़ीडाँड। जिसमें बूता हो चलकर मुझसे ले। अच्छी दिल्लगी है। सोचा होगा डाँड के बहाने इसकी सब जैजात ले लो और नजराना लेकर दूसरों को दे दो। बाग बगीचा बेचकर मजे से तर माल उड़ाओ। धनिया के जीते जी यह नहीं होने का, और तुम्हारी लालसा तुम्हारे मन में ही रहेगी। हमें नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायेगी। अबभी अपने पसीने की कमाई खाते हैं,

---

1- हिन्दी गद्य-साहित्य पर समाजवाद का प्रभाव-डा० शंकर लाल जायसवाल पृ0-102
2- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0-105
3- वही, पृ0-106

तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे।[1] मगर होरी अपने को इस दायरे से ऊपर नहीं उठा पाता वह मर्यादा और बिरादरी के झूठे ढकोसले में बंधा हुआ है, वह अपने घर की तबाही तो करवा सकता है लेकिन पंच परमेश्वरों की बात नहीं टाल सकता और कहता है-"हम सब बिरादरी के चाकर हैं, उसके बाहर नहीं जा सकते। वह जो डाँड़ लगाती है, उसे सिर झुकाकर मंजूर कर। नक्कू बनकर जीने से तो गले में फांसी लगा लेना अच्छा है। आज मर जाय तो बिरादरी ही तो इस मिट्टी को पार लगाएगी। बिरादरी ही तारेगी तो तरेंगे।"[2]

होरी अपने खेत से सारा अनाज ढोकर पंचों के घर पहुँचा देता है, मगर धनिया के सीने में आग जल रही है वह नागिन की भाँति फुफकार रही है मगर होरी उसकी एक नहीं सुन रहा अपने बच्चों के लिये एक दाना भी न बचे तो मातृत्व तिलमिला उठता है जबकि उसने रात-दिन मेहनत करके अन्न पैदा किया है वह कहती है-"यह पंच नहीं है राक्षस है, पक्के राक्षस। यह सब हमारी जगह जमीन छीनकर माल मारना चाहते हैं। डाँड़ तो बहाना है समझाती जाती हूँ, पर तुम्हारी आँखें नहीं खुलतीं। तुम इन पिशाचों से दया की आशा रखते हो? सोचते हो, दस-पाँच मन निकालकर तुम्हें दे देंगे। मुँह धो रखो। उसके यहाँ पोता होने पर बिरादरी से कोई भी न आया, मगर धनिया को इसकी कोई परवाह न थी।" उसी वक्त होरी अपने घर को अस्सी रुपये पर झिंगुरी सिंह के हाथ गिरों रख रहा था डाँड़ के रुपए का इसके सिवा वह और कोई प्रबन्ध न कर सकता था। बीस रुपये तो तेलहन, गेहूँ और मटर से मिल गए। शेष के लिए घर लिखना पड़ गया। नोखेराम तो चाहते थे कि बैल बिकवा लिये जाए लेकिन, पटेश्वरी और दातादीन ने इसका विरोध किया।"[3]

कितनी घृणा होती है ऐसी सामाजिक व्यवस्था से इन्सान पीस ही डाले क्या झुनिया को घर में आश्रय देने का इतना भयंकर परिणाम मिलना चाहिये था कि बच्चे एक-एक दाने के तरसे घर तक रहन हो जाये मगर इन पत्थर को देवताओं के हृदय पर रंचमात्र भी दया न आये कितने क्रूरी थे ये समाज के ठेकेदार। समाज व्यक्ति के लिये होता है या व्यक्ति समाज के लिये ऐसे न जाने कितने ही किसान शोषण की चक्की में पिसते ही चले आ रहे हैं

1- प्रेमचन्द-गोदान-पृ0- 108
2- वही, पृ0 -108
3- वही, पृ0-109

आज भी ये समस्या बकरार है भले ही उसका कुछ रूप बदल गया हो मगर है अभी भी वही सड़ी-गली व्यवस्था।

हमें अपनीवैवाहिक पद्धति को बदलना होगा अपनी सामाजिक व्यवस्था की लगाम को थोड़ा ढीलाकरना पड़ेगा। मां-बाप अपनी झूठी प्रतिष्ठा और पैसे के लोभ में जो लड़की का सौदा करते हैं उसे रद्दपात्र की तरह अस्वीकार करना होगा।बेमेल विवाह में पति अगर विषम स्वभाव का है आवारा है,लम्पट है तो मीनाक्षी की तरह उसे सबक सिखाना है,घुट-घुटकर मरना या उसके चरणों की दासी बन कर नहीं रहना होगा,तभी हमारी सामाजिक विषमता और वैवाहिक पद्धति के दोष दूर हो सकेंगे।

विवाह के सम्बन्ध में हमारे यहाँ समाज की व्यवस्था बहुत खराब ह इसमें विवाह को एक अनिवार्य बन्धन बना दिया है न कि एक स्वाभाविक और विकसित प्रेम की परिणति, विवाह एक पवित्र मानसिक प्रक्रिया है प्रेम का उदात्त और शाश्वत रूप ही विवाह के बाद उत्पन्न होता है किन्तु ये इच्छा पर निर्भर होना चाहिये कोई जबर्दस्ती या बोझनहीं होना चाहिये।प्रगतिवादी विवाह में स्वच्छन्दता चाहते हैं उनका विचार है जब तक पति-पत्नी को एक दूसर पर विश्वास हो उनमें आपस में अनुराग हो वह साथ रहें अन्यथा अलग हो जाये और अपने दूसरे मनपसन्द साथी से विवाह कर लें। लेकिन इसमें सामाजिक व्यवस्था आड़े आती है हमारे समाज में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है और न समाज इसे स्वीकार ही कर सकता है-इसी द्वन्द्व को यशपाल जी ने "दादा कामरेड" में व्यक्त किया है राबर्ट और फ्लोरा पति पत्नी हैं किन्तु उनमें आपस में नहीं पटती वह दोनों अलग होकर अपने-अपने मनपसन्द साथी से विवाह करने चाहते हैं-"समाज का यह दूसरा नियम है कि स्त्री का संबंध जीवन भर एक पुरुष से रहे बताइये,अब यह नियम मेरे, फ्लोरा और उस पुरुष, जिससे फ्लोरा विवाह करना चाहती है और उस स्त्री, जिससे मैं विवाह करना चाहता हूँ वे जीवनों को मुसीबत में डाल रहा है या नहीं?जब तक स्त्री पुरुष की सम्पत्ति समझी जाती थी,उसका एक पुरुष की बने रहना जरूरी था परन्तु आज जब स्त्री को पुरुष के समान अधिकार देने की बात आप कहते हैं तो इस प्रकार के नियम या कानून की जरूरत? स्त्री-पुरुषों का जीवन सुख शान्ति से चले,इसीलिये तो समाज नियम, कानून बनाता है। आप इन्कार नहीं कर सकते कि विवाह एक बन्धन है। बन्धन उस समय

लागू किया जाता है जब अव्यवस्था का डर रहता है। हैरान हूँ कि समाज में इस बन्धन को इतना आदर क्यों है? दूसरे बन्धनों की तरह इसे भी आजादी का शत्रु समझना चाहिये। तमाशा यह है कि लोग इस बन्धन में बंधने के लिये बेताब रहते हैं।"[1]

हमारा समाज स्वच्छन्द प्रेम स्वीकार नहीं करता वह विवाह की आवश्यकता मानता है, विवाह के बाद प्रेम करने वालों को समाज की तरफ से स्वीकृति मिल जाती है, विवाह के पहले कोई आपस में प्रेम करे समाज का उस पर प्रतिबन्ध है, प्रगतिवादी इस प्रतिबन्ध को स्वीकार नहीं करते उन्हें ये बन्धन लगता है-"दादाकामरेड" में हरीश कहता है-"विवाह एक लाइसेंस या परवाना है। बन्धन तो वास्तव में यह है कि समाज कोई पुरुष किसी स्त्री से कोई संबंध नहीं रख सकता परन्तु जब इस ढंग से काम नहीं चलता तब एक पुरुष को एक स्त्री के लिये परवाना या लाइसेंस दे दिया जाता है कि वे परस्पर सम्बन्ध पैदा कर सकते हैं।"

राबर्ट ने कहा -हाँ आपने अधिक अच्छे ढंग से कहा यानी कहिये जिस तरह पराई सम्पत्ति लेना पाप है, उसी तरह दूसरे की औरत से सम्पर्क भी पाप है।परन्तु औरतऐसी सम्पत्ति है, जिसके हाथ-पैर और सिर है, इसलिये उसे समझाया गया है कि अपने मालिक से चिपके रहने में ही तेरा कल्याण है इसीलिये तू पतिव्रता बनी रहना।"

------हरीश ने कहा-"स्त्री कीपूर्ण स्वतंत्रता का अर्थ है, विवाह की प्रथा को दूर कर देना---।" शैल ने कहा-"वाह! तो फिर हो क्या?।" क्यों-होने को क्या है?" उत्तेजित हो हरीश ने उत्तर दिया, "तुम्हारे देश के यदि दमनकारी कानून दूर कर दिये जाये तो क्या होगा?इसी तरहविवाह का दमनकारी संबंध दूर कर देने पर स्त्री-पुरुष अपनी अपनी स्वाभाविक अवस्था में रहेंगे।" "यह मैं नहीं मानती"-शैल ने विरोध किया, "एक सीमा तो होनी ही चाहिये।"

"मैं जानता हूँ,तुम क्योंनहीं मानती। मुस्कराते हुये हरीश ने उत्तर दिया, "बुरा मत मानना,तुम चाहती हो कि पति कमाकर लाये और तुम उड़ाओ।मैं पूछता हूँ

- -

1- दादा कामरेड-यशपाल- पृ0-88-89

कि यदि स्त्री सन्तान चाहती है तो उसके पालन की जिम्मेदारी से क्यों डरती है।"[1]

विवाह के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के विचार दादा कामरेड में व्यक्त हुये है सब अपने अपनेविचारों के अनुसार उसकी व्याख्याकरते हैं हरीश और शैल के विचारों को सुनने के बाद विवाह पर राबर्ट के अलग विचार है आज के आधुनिक दम्पति क्या चाहते हैं या आज के युग में विवाह की क्या स्थिति है, राबर्ट कहता है-"परन्तु सन्तान की इच्छा से ही हमारे समाज में आजकल कितने लोग विवाह करते हैं। सन्तान हो जाती है, फिर प्राकृतिक मोह उसे पालने के लिये विवश कर देता है। इस देश में साधारणतः विवाह होता हैं इसलिये कि विवाह होना ही चाहिये विवाह की जरूरत महसूसहोने से पहले ही वह हो जाता है जैसे आग लगने से पहले, आशंका के ख्याल से ही सरकारी इमारतों में आग बुझाने के लिये लाल रंग की बाल्टियाँ लटका दी जाती हैं या रात में सोने से पहले सिरहाने पानी कागिलास रख लिया जाता हैं। उसी प्रकार समाज में विवाह हो जाता है, फिर लोग अपने प्रेम या आसक्ति को तृप्त करने के लिये जब अपने आपको भूल जाते हैं उस समय भी उनके सामने पलने में चाँद से हँसते खेलते बालक का चित्र नहीं होता। सन्तान तो बाद में आ कूदती है। असल बात तो यह है कि आज का सभ्य समाज सन्तान से डरता है परन्तु प्रकृति उन्हें धोखा देती है, ठीक उसी तरह जैसे चिड़ीमार जाल में चारा फैलाकर पक्षियों को धोखा देता है। प्रेमियों को दिखाई देता है केवल शारीरिक आकर्षण का चारा परन्तु इस चारे में छिपे रहते हैं सन्तान के जाल के फन्दे ।"[2]

<u>प्रेम में द्वन्द्व-</u>

प्रणय मानव की शाश्वत सहजप्रवृत्ति है। जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में प्रेम होता है, पलताऔर बढ़ता है।प्राणी मात्र में प्रेम की प्रवृत्ति प्रारम्भ से रहती है, बचपन वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रेम करता है अपने आस-पास के लोगों से लेकिन जैसे जैसे उमर बढ़ती है उसका दायरा भी बढ़ता जाता है लेकिन पहले के प्रेम में कुछ लेने की प्रवृत्ति नहीं रहती बाद में जो प्रेम होता है उसमें उसके बदले कुछ पाने की इच्छा रहती है

1- यशपाल- दादा कामरेड-पृ0- 89

2- वही, पृ0-90

लेकिन जब वह इच्छा पूरी नहीं होती तो निराशा होती है, कुण्ठा होती है। कई युवक युवतियाँ तो आत्महत्या तक कर बैठते हैं।

प्रेम वही सफल होता है जब वह शाश्वत हो निःस्वार्थ हो, प्रेमपूर्ण समर्पण माँगता है, उसमें सन्देह, स्वार्थ का कोई स्थान नहीं रहता, प्रेम बन्धन भी स्वीकार नहीं करता और आज का प्रगतिवादी प्रेम तो किसी भी प्रकार का बन्धन अपने आप में स्वीकार नहीं करता वह स्वतंत्रता चाहता है और अगर उस पर कोई अपना दबाव या बन्धन डालना चाहता है तो वह विद्रोह करता है।

प्रेम एक आकर्षण है जो पुरुष को स्त्री की ओर आकर्षित करता है कुछ लोग इसे विनाशकारी मानते हैं किन्तु यह विनाशकारी नहीं ये पुरुष की पूर्णता है, स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। यह प्रेम भी कई प्रकार का है, जिसमें दाम्पत्य प्रेम का अत्यन्त उज्ज्वल और उदात्त तथा महान रूप होता है। दाम्पत्य प्रेम के बारे में गोदान पर काफी चर्चा हुई है। डा० मेहता इसी प्रेम को पवित्र और शाश्वत मानते हैं।

"अपनी अपूर्णता के आत्मबोध में जब मनुष्य जीवन की टिप्पणियाँ लिखने में असमर्थ हो जाता है-कर्म की रेखायें खींचने में जब उसे एक सामाजिक साथी की आवश्यकता प्रतीत होती है वह अपने विवेक के आन्दोलन के प्रकाश में उसे ढूँढ़ निकालता है और उसके संपर्क का आग्रह उसकी कविता में जाग उठता है।----जो रोमान्स जीवन के कर्म पथ को बलवान बनाने की दीक्षा देता है- मानवता की जाग्रत सेवा के सम्मुख जो सपनों की रंगीनी को कम महत्व देता है वह सदैव मानव को जीवन के समस्त अवरोधों से जूझने के लिये रणक्षेत्र की ओर ले जायेगा।"[1] प्रगतिवाद वैयक्तिक एवं क्षयी प्रेम का विरोधी है वह प्रेम जो कर्म क्षेत्र से दूर ले जाता है और व्यक्ति के चरित्र को संकुचित कर देता है वह प्रगतिवाद को स्वीकार नहीं ऐसा स्वस्थ रोमान्स जो कर्मक्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है और व्यक्ति-वाद की परिधि से निकालकर उसे यथार्थ और जनसम्पर्कमय बनाता है।

"रोमान्स में जीवन की लौह श्रृंखलायें-बन्धनों की हथकड़ियाँ, और बेड़ियाँ चन्द्र किरणों की तूलिका से लिखे गये पलायनवादी, कोमल, मीठे गीत बनकर न आवें वरन् अपनी

1- समाज और साहित्य-अंचल-नई हिन्दी कविता का प्रगतिवादी पक्ष-पृ०- 197

कुरूपता और कठोरता में स्थिर रहते हुए जीवन की वर्तमान दुरवस्थाओं से मुँह न फेरकर उनसे मोर्चा लेते रहने का बोलशेविक निश्चय और निहलिस्ट दृढ़ता प्रदान करें। तभी रोमान्स में उस गहरी मानव-भावना और पलायन के प्रति घृणा का जीवनोन्मुख उच्चार होगाजो जीवन से भागकर, आत्माहीन, निष्प्राण और मृत प्रेम में आश्रय खोजने और हाथी दाँत के स्वरत मीनारों में जाकर छिपने की प्रवृत्ति का खात्मा करेगा।"[1] प्रेम के सम्बन्ध में कुछविचार यशपाल जी के उपन्यास "दादा कामरेड" में राबर्ट द्वारा प्रकट हुये हैं-"मानसिक प्रेम और शारीरिक आकर्षण की सीमा एक दूसरे से दूर दूर नहीं रहतीं। इस पार श्रद्धा प्रेम और भक्ति है, दूसरी ओर तृप्ति की चेष्टा और फिर यह सीमाकोई ठोस पदार्थ नहीं। भावना और विचारों में ही यह सीमा रहती है इसीलिये भावना, विचार या इच्छा की यह तरंग इसे कहीं पहुँचा सकती है, मिटा भी सकती है।"[2]

प्रेम वैसे तो ऐसा होता है जो बदले में कुछ चाहता है बहुत कम ऐसा होता है कि सच्चा प्रेम कोई करे और उसके बदले में कुछ चाहे नहीं। पुरुष का प्रेम तो अवश्य ही बदले में अधिकार की कामना रखता है वह स्त्री पर अपना एकाधिकार समझकर उसे बंधन में बांध देना चाहता है अगर प्रगतिवाद मे प्रेम सीमित होकर रहना नहीं चाहता वह तो विस्तार चाहता है-"शैल का कथन-"मैं सोचने लगी हम क्यों लड़ पड़े? उत्तर मिला प्रेम द्वारा मैं अपने जीवन का विस्तार चाहती थी और वह मुझ पर बंधन लगाकर मेरे जीवन को अपने लिये सीमित कर देना चाहता था। देखो-चौदह, पन्द्रह बरस का लड़का भी मुझे अपनी सम्पत्ति समझना चाहता था।"[3]

प्रेम एक आवश्यकवस्तु है आकर्षण मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं एक के बिनादूसरा अधूरा है। प्रेम ही मनुष्य को पूर्ण बनाता है वह जीवन का आधार है पुरुष के बिना स्त्री कोई कमी महसूस करती है और स्त्री के बिना पुरुष कमी महसूस करता है अतः परस्पर आकर्षण स्वाभाविक है किन्तु समाज इसकी ऐसी तस्वीररखता है मानों यह कोई [illegible] वस्तु हो समाज ने प्रेम पर तमाम बंधन और अंकुश लगा रखे हैं स्वछन्द प्रेम तो समाज द्वारा तिरस्कृत हैहिन्दू समाज प्रेम पर प्रतिबंध

- -

1- समाज और साहित्य-अंचल- नई हिन्दी कविता का प्रगतिवादी पक्ष-पृ0- 198
2- यशपाल- दादा कामरेड- पृ0-86

रखता है। समाज के प्रेम के प्रति इस नकारात्मक रवैये से व्यक्ति प्रेम करने से घबराने लगता है, "दादा कामरेड" में हरीश कहता है-"यदि पुरुष के जीवन-विकास में स्त्री का आकर्षण विनाशकारी होता तो प्रकृति यह आकर्षण पैदा क्यों करती? जिन वस्तुओं से मनुष्य के जीवन को भय है, उनसे वह डरता है, दूर भागता है परन्तु स्त्री की ओर पुरुष आकर्षित होता है मानो उसके जीवन में कोई कमी है, जिसे वह स्त्री से पूर्ण करना चाहता है क्या स्त्री भी पुरुष के प्रति ऐसा ही अनुभव नहीं करती।"[1]

प्रेम के प्रति उपेक्षा पर देशद्रोही में खातून डा०खन्ना से कहती है-"बुद्धिजीवी लोगों में व्यक्ति सिमटते जाने का भाव अनुचित रूप से बढ़ जाता है।समाजवादी नागरिक को सद्गृहस्थ होना चाहिये। आधुनिक युवक और युवतियाँ माता-पिता बनने के उत्तरदायित्व से जाने क्यों डरते हैं? यह तो पूँजीवादी समाज का रोग है,जहाँ अधिकांश जनता सब प्रकार के साधनों से हीन अवस्था में पैदा होकर दुखपाती है।समाजवादी सोवियत में जन्म लेने वाली संतानों के लिये संसार का छठा भाग,यह महान प्रजातंत्र सब प्रकार की संभव सुविधायें देने के लिये तैयार है। इसमहान देश के साधनों को उपयोग में लाने के लिये संसार भर के शोषितों के हित के संरक्षक इस समाजवादी सोवियत प्रजातंत्र को सबल बनाने के लिये,हमें स्वस्थ सन्तानों की आवश्यकता है।"[2]

सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष की भावना

समाज में अर्थ कीमहत्ता इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि सब कुछ धन की तुला पर तोला जा रहा है। अब कौटम्बिक रिश्ता भी कोई मायने नहीं रखता। मनुष्य का अब इतना चारित्रिक पतन हो चुका है कि अपने स्वार्थ के लिये वह घृणित से घृणित काम करने में भी संकोच नहीं करता है। ऐसे घृणित समाज के प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त हुई है भगवती प्रसाद बाजपेयी के उपन्यास "निमंत्रण" में जिसमें मालती शर्मा जी की पत्नी रेणु से कहती है-" चरित्र मानसिक सदाचार का दूसरा नाम है। जो लोग दुनियाँ भर के झूठ,सच,छल प्रपंच,कपट,धूर्तता तथा ईर्ष्या द्वेष के कुन से रंगे रहते हैं,जो मनुष्य के साथ कुत्ते का सा व्यवहार करते नहीं लजाते,जो सत्य और न्याय से दूर रहकर एक मात्र स्वार्थों

1- यशपाल- दादा कामरेड-पृ0- 98
2- वही, देशद्रोही- पृ0- 114

में ही संलग्न रहते है, पैसे के बल पर जो जमीन और जा दाद, स्त्री और प्रेयसी के लिये भाई और पुत्र तक का छिपकर सत्यानाश कर सकते हैं, जो समाज उन्हें चरित्रहीन नहीं मानता, मैं ऐसे समाज को नहीं मानती। बल्कि मैं तो उसका नाश देखना चाहती हैं।"[1]

समाज का इस हद तक पतन हो चुका है, मनुष्यता समाप्त हो चुकी है चारों तरफ भ्रष्टाचार का ताण्डव हो रहा है।

हम अपनी प्राचीन रूढ़ियों और संस्कृतियों में इतने मिटे हुए है कि उसके पार हम नहीं *जानना* चाहते कि इससे भी अलग और अच्छा कुछ हो सकता है। कुछ परम्परायें तो ऐसी हैं जो आज के युग में सही नहीं बैठता आधुनिकता की ओर बढ़ते समाज के लिये वहबोझ बन जाती हैं किन्तु हम हैं किउस लीक को पीटते जाते हैं। समाज से भय मनुष्य के अन्दर घर कर गया है, वह समाज की अवस्था में से परेशान रहता है मगर उसे तोड़ फेंकने की हिम्मत नहीं कर पाता। निमंत्रण उपन्यास में गिरधारी रेणु से कहता है-"शताब्दियों से हम परम्पराओं, रूढ़ियों और संस्कृति के नामपर अनेक प्रकार की अलौकिक मान्यताओं के शिकार होते आ रहे हैं। हमारे संस्कारों में इतनी अधिक जड़ता मिट गई है कि जीवन को पूर्ण बनाने के संबंध से कोई भी नव प्रयोग करते हुए हम झिझकते और डरते हैं। नवजीवन नवनिर्माण और नवचेतना के जो भी मार्ग हमें देख पड़ते हैं केवल इस विचार से हम उन्हें नहीं अपनाते कि हमसे संबंध रखने वाला समाज क्या जाने उन्हें स्वीकार करेगा या नहीं। हममें इतना साहस नहीं कि हम अधिकारपूर्वक इतना भी कह सकें कि हमारे विकास का मार्ग वह नहीं, यह है।"[2]

समाज के बन्धन मनुष्य को सीमित कर देते हैं और जहाँ मनुष्य की सुविधा उन बन्धनों से बाधित होती है वह उसे तोड़ने पर मजबूर हो जाता है-मालती भी यही बात कहती है-"समाज के प्रतिबन्ध जहाँ मनुष्य को सीमित कर देते हैं, वहाँ उसे उन सीमाओं का उल्लंघन कर देना पड़ता है, और उल्लंघन के लिये सुविधा उसका सबसे पहला पद है।"[3]

1- भगवती प्रसाद बाजपेयी- निमंत्रण-पृ0- 29
2- वही, पृ0- 113
3- वही, पृ0- 132

समाज के नियम एवं परम्परायें परिवर्तनशील होने चाहिये क्यों जैसे समय बदलता जाता है, वातावरण बदलता है मनुष्य की आवश्यकतायें बदलती जाती हैं अत: मानव की रक्षा करने वाला समाज उसे भी मनुष्यकी आवश्यकताओं के अनुरूप बदलते जाना चाहिये- समाज की इसी रूढ़िवादिता के प्रति यशपाल के उपन्यास "दादाकामरेड" में राबर्ट कहता है-"जैसे ईंटों के बिना इमारत नहीं बन सकती, उसी तरह बिना व्यक्तियों के समाज भी नहीं बन सकता। समाज अपनी रचना व्यक्तियों के विकास के लिये ही व्यवस्था करता है परन्तु मनुष्य के जीवन में परिवर्तन आ जाता है, उसकी आवश्यकतायें बदल जाती हैं और पुरानी व्यवस्था में उसे रूकावट अनुभव होने लगती है। जैसे बचपन में कोई कपड़ा शरीर पर सी दिया जाय तो उम्र बढ़ने पर दम घोंटने लगेगा, वही हालत हमारी सामाजिक व्यवस्थाओं की भी है।"[1]

वैसे प्रगतिवादी आतंकवाद के बजाय अपनी रचनाओं में आर्थिक-राजनैतिक प्रश्नों को अधिक महत्व देते थे। यशपाल के उपन्यास "दादा कामरेड" का नायक हरीश भी इस सिद्धांत को मानता है, आतंकवाद से जनता से संपर्क नहीं रहता, आतंकवादी आत्म-बलिदान को ही अपना साध्य मान लेता है। दादा अपने सिद्धांत की हार स्वीकार करते हैं और हरीश और शैल के मार्ग पर चल निकलते हैं-समय बदल गया है-----गाँधीवादी विचारधारा का भी प्रगतिवादी साहित्य में विरोध पाया जाता है। गाँधी जी के अहिंसा एवं सत्याग्रह का प्रगतिवादियों ने खण्डन किया है। यशपाल के पात्र चुपचाप अपने पर लाठियाँ नहीं बरसवा सकते वो ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते है। मानव-मानव के भेद को मिटाने के लिये एवं देश हित में, सामाजिक कर्तव्य के पालन के लिये की गयी हिंसा, हिंसा नहीं अहिंसा है।

ऊपर से खुशहाल दिखने वाला व्यक्ति क्या वास्तव में पूर्णरूप से सुखी है? ये कोई जरूरी नहीं है ऊपर साज-सज्जा के बावजूद व्यक्ति अंदर से कितना खोखला है कितना क्षुब्ध है समाज के दिखावे में मनुष्य को क्या क्या झेलना पड़ता है? "दादाकामरेड" में हरीश

1- यशपाल-दादा कामरेड- पृ0-86

शैल से कहता है-" तुम्हारे व्यक्तित्व के रूप में, जो देखने में खुशहाल है, समाज कितनी गुप्त यंत्रणा भोग रहा है, यह मैं जानना चाहता हूँ। यदि मैं समाज की अवस्था जानना चाहता हूँ तो उसकी नब्ज से या खुर्दबीन के सहारे तो ऐसा कर नहीं सकता। समाज के अनुभव से ही हमें समाज का ज्ञान हो सकता है।"[1]

नैतिक एवं मानव मूल्यों के अधःपतन से उत्पन्न द्वन्द्व-

भारत का अधिकांश वर्ग इसलिये भी शोषित है कि वह अशिक्षित है, कुछ तो निठल्ले हैं, अंधविश्वासी एवं जड़ बुद्धि है और उस पर भी पूँजी जिनके हाथ में समाज की जिम्मेदारी जिन पर है वह तो आलसी और धूर्त हैं, "निमंत्रण" भगवती प्रसाद बाजपेयी इसी बात का समर्थन करते हैं- शर्मा जीने कहा-" गुलाम देश, अधिकांश जनता अशिक्षित, शिक्षित जनता बेकार या पथभ्रष्ट। पूँजी उन लोगों के हाथों में, जो अधिकतर मूर्ख, लम्पट, स्वार्थी, दुर्व्यसनी, अंधविश्वासी और जड़ हैं। किया क्या जाय।"[2] शर्मा जी की इस बात पर गिरधारी ।जो कि एक स्वाभिमानी युवक था। बोला कि"किन्तु उच्च श्रेणी की सरकारी नौकरियों में भी कर्तव्य, न्याय और सत्य पर दृष्टि रखने वाले कुछ इने गिने व्यक्ति अपवाद रूप में ही मिलेंगे, और निम्न मध्यश्रेणी के लोगों में भी अधिकांश न कर्मठ होते हैं न ईमानदार। रात उनकी होटलों, जलपानगृहों, पिक्चर हाउसों, चकलेखानों तथा प्रेयसियों के यहाँ कटती है। नशेबाज भी वे कम नहीं होते। सड़क पर चलते हुए पास से गुजरने वाली स्त्रियों और युवतियों की ओर कुदृष्टि से देखे बिना उनकी तबियत नहीं मानती। उनमें अधिकांश या तो अविवाहित होते हैं या नौकरी के नगर में अकेले स्त्रियों को वे लोग मायके या देहात के घरों में डाल रखते हैं। अधेड़ अथवा कुरूप होने के कारण पत्नी का संबंधउनके साथ बनाये रखना उन्हें स्वीकार नहीं होता। महीने में गिने रुपये उन अबलाओं के पास मनीआर्डर से आ जाते हैं और उन्हीं के आधार पर वे अत्यन्त हीन और दयनीय जीवन व्यतीत करती हैं। उनके बच्चे नीरोग नहीं रहते। शिक्षा भी उन्हें ठीक ढंगसे नहीं मिल पाती और उनके पिता और संरक्षक बाबू लोग निश्चिन्त रहते हैं और जीवन उनका जैसा चलता है बराबर चलता रहता है।"[3]

1- यशपाल-दादा कामरेड- पृ0-32
2- भगवतीप्रसाद बाजपेयी-निमंत्रण"पृ0- 91
3- वही, पृ0- 97-98

ये है असली तस्वीर इस समाज के नौकरीपेशे लोगों कि तो क्या अशिक्षित वर्ग क्या शिक्षित वर्ग क्या निम्नवर्ग क्या उच्चवर्ग सब उपरसे नीचे तक भ्रष्ट हो चुके हैं चारों तरफ ऊहापोह का वातावरण है।

जो शिक्षित हैं उन्हें तो समाज की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक होना चाहिये किन्तु वो भी उन्हीं का पक्ष लेते हैं जो पहले से ही गरीब जनता का खून चूस रहे होते हैं और जिनके हाथ में सम्पूर्ण शक्ति रहती है-अगर शोषितों के साथ मिलकर ये वर्ग शोषकों के प्रति विद्रोह कर दे तो सारा समाज रास्ते पर आ जाय किन्तु विडम्बना तो ये है कि ये भी चुप साध जाते हैं और मानों हार मान कर बैठ जाते हैं-

गिरधारी विनायक से कहता है-"देखिये न कितनी दयनीय स्थिति है कि हड़तालें होती हैं, तो ये लोग पक्ष लेते हैं मिल मालिकों का मुकदमें बाजी होता है तो अदालतों में झूठी गवाहियाँ देना इनके लिये एक मामली बात है। अपने सगे सम्बन्धियों और आत्मीय,स्वजनों,माताओं और बहनों तक का अपमान करने और सहने में उन्हें कोई असुविधा अथवा आपत्ति नहीं होती। वे मूलतः पूँजीवादी न होते हुएभी समर्थक उसी वर्ग के होते हैं। जीवन से निरंतर लड़ते लड़ते वे अब उससे हार मान बैठे हैं।तभी उन्होंने उस पूँजीजीवी वर्ग की सत्ता,परिपाटी और नीति के आगे घुटने टेक दिये हैं। जो हमारे न केवल सामूहिक स्वार्थों वरन् व्यक्तिगत जीवन के भी शत्रु हैं।इतनी विकृतियाँ उनके अन्दर पनप रही हैं कि वे निरन्तर अपने विनाश की ओर बढ़ते जा रहे हैं।"[1]

आजकल समाज में चारों ओर रिश्वत,घूस और भ्रष्टाचार का बोलबाला है। सरकारी नौकरियों में सिफारिश और घूस जमकर चलतीहै। जिसका कहीं पौवा है या फिरवह रिश्वत दे सकता है उसका काम फटाफट होगा और दूसरे बेचारे जूतियाँ घिसते रह जातेहैं। नौकरियों में तरक्की के लिये भी अपने से बड़े बाबू या आफीसर को घूस देना और उसकी चापलूसी करना पड़ता है उसमें जो ये सब कर सकता है वह तो आगे बढ़ता जाता है भले ही वह इस तरक्की के योग्य न हो और जो वास्तव में तरक्की के

- -

1- भगवतीप्रसाद बाजपेयी- निमंत्रण-पृ0- 100

योग्य है वहपीछे रहजाते हैं इसी अनीति का शिकार है अख्तर "दादा कामरेड" का एक गरीब इन्सान वह किस प्रकार से षडयंत्र का शिकार हुआ इसकी कहानी हरीश को सुनाता है, यशपाल जी ने बड़ी खूबी से उस पात्र की खांस, कल्पाहट का चित्रण किया है। हर जगह जिस तरह की अनैतिकता व्याप्त है गरीबों के साथ जो दुर्व्यवहार होता है उनकी औरतों की जो बेइज्जती होती है उसका खुलकर यथार्थ चित्रण हुआ है आज भी कई आदिवासी गाँवों कोन्ही स्थिति है वहाँ काम करने वालों के साथ यही अभद्र व्यवहार होता है अख्तर बदले की आग से जल रहा है वह ऐसे समाज के खूँखार लोगों को मार देना चाहता है हरीश के मना करने पर वह उससे बताता है-हेड मिस्त्री ने मेरी जिन्दगी बरबाद कर दी। मेरा मौका था फिटर बनने का। तीन साल से वह मेरी तरक्की रोके है पिछले बैसाख से मैंने उसके आगे हाथ जोड़ मिन्नत की। तूजानता है, अब बुढ़ापे में ज्यादा मेहनत नहीं होती। फिर यह लड़की और हो गयी। एक लड़का है कुछ तरक्की हो तोकाम चले। मेरे साथ के जहूर और हरनामसिंह दो-दो साल से फिटर बने हैं। साठ-सत्तर ले रहे हैं। मेरे वही इक्कीस! हरामी---कोई न कोई झूठी शिकायत कर देता है। उसने मुझसे अस्सी रुपये मांगे। चालीस मैं जमीला की नथ बनिये के यहाँ रखी, चालीस इससे उधार लिये, अस्सी उसे पूजे। बनिये का पाँच रुपये महीना सूद चढ़ता रहा, तीस रुपये यह हो गये। खुद ढाई सौ महीने के मारता है, पचास-साठ ऊपर से-----"अब मौका था तो कहता है तूने दिया ही क्या है?-------जाबर का मान जा वह ब्राह्मण का नया लौण्डा आयाहै, उसे सालभर नहीं हुआ उसे फिटर बना दिया है। जानता है क्यों?-----गाँव से बीवी का नया गौना करके लाया है न और वह मिस्त्री के घर बच्चों को खिलाने जाती है और वहाँ हरामी साला-----मिस्त्री उससे खेलता है-- -लाइन में से कितनी ही औरतों को साला पकड़ मंगवाता है-------। यह जिल्लत बर्दाश्त नहीं होती सरदार! अपने बच्चे भूखे मरें---इन सालों का पेट भरें और फिर ऊपर से यह बेइज्जती----तू इन दोनों को गाँवपहुँचा दे। मिस्त्री तीसरे पहर एक दफा इंजन देखने जाता है। आज मैं साले को खत्म कर दूँगा----और एक उस कश्मीरी को और फिर ----बेद मुझे होना नहीं है। अपने आपको खत्म कर दूँगा।"[1]

- -

1- यशपाल-दादा कामरेड- पृ0-57

जो गरीब अपनी गरीबी के बोझ से स्वयं मर रहा है उसे ये भ्रष्ट और मारते हैं खुद का ते ज्यादा से ज्यादा तन्खवाह मिलने पर भी गुजारा नहीं होता और गरीब जिसे उधार लेकर अपना गुजारा करना पड़ता है उससे और चूसते हुए नहीं लजाते बेचारा इन लोगों का पेट भरनेके लिये घर के जेवरबर्तन बेंचता है दुगुने सूद पर उधार लेता है केवल इस लालच में कि उसकी भी तरक्की होगी और वह भी ज्यादा कमायेगा किन्तु कुछ भी हाथ न आने पर वह क्षुब्धहो जाता है और अपना आपा भूल जाता है और यह स्वाभाविक भी है।

मनुष्य में पैसे की इतनी भूख है किवह इसके आगे-पीछे झाँककर देखनानहीं चाहता उसे किसी के दुख-दर्द से कोई सरोकारनहीं वह अपना मुनाफा देखता है। देशद्रोही में लेखक ने दिखाया है कि "युद्ध के समय सरकारी खरीद के कारण गल्ला और बाजार भाव में तेजी आ रहीथी। नगरों में देहात से गल्ला और दूसरी मण्डियों से सामान न पहुँचने के कारण, नागरिकों को जीवन के अत्यन्त आवश्यक पदार्थ मिलना भी दुष्कर था। मूल्य बहुत बढ़ गये थे। व्यापारी मुनाफा समेटने का स्वर्ण अवसर सामने देख कर एक दूसरे की होड़ में कीमते बढ़ा रहे थे। गोदामों मे सामान भरा रहने पर भी माल न होने की अफवाह उड़ा दी जाती और मनमाने दाम वसूल किये जाते। बाजार की इस तेजी को सट्टा और तेज कर रहा था। बढ़ी दर पर बिका माल, बिना उपयोग में आये, गोदामों से बाहर निकलेबिना अधिक ऊँचे दामों बिकता चला जा रहा था। मुनाफे की रकमें और हुडियाँ इधर से उधर चली जाती। आवश्यक वस्तुओं के बिना भरने वाले गरीब विवश देखते रह जाते, जीवन रक्षा के लिये आवश्यक पदार्थ उनकी पहुँच से बाहर होते जा रहे थे।

व्यापारियों आदि की तो बन आयी थी उन्हें खूब मुनाफा होरहाथा किन्तु बेचारे गरीब क्या करते एक-एक रुपये का गल्ला लेने के लिये उन्हें दिन भर लाइन लगानी पड़ती थीं, दिन भर की मजदूरी भी मारी जाती थी चारों तरफ लूट-पाट तोड़ फोड़ का वातावरण था और चारों तरफ दुर्दशा थी मात्र गरीब की-"लम्बी लम्बी रकमों कीहुंडी काट सकने वाले माल को बाजार में जाने से रोके थे। व्यापारियों की आँखों में सन्नाटा था,

बांधे मिली हुई थी। दबी जबान में वे कहते कूड़े की चांदी हो रही है। गरीबों और साधनहीनों की आंखों में निराशा थी। जनता ने अपने परिश्रम से जिस माल को पैदा करके अपने पूंजीपति संरक्षकों के पास धरोहर रख दिया था, उसी के लिये उन्हें दुगुने चौगुने दाम देने पड़ रहे थे जो उनके पास न थे। गोदामों के मालिक गाव-तकिये का सहारा लिये धैर्य से चुनौती दे रहे थे कब तक तुम खरीदने न आओगे? माल धरा है। अपना गुजारा चलता है। आज नहीं कल बिकेगा।"[1]

वर्ग संघर्ष-

मार्क्सवाद से प्रभावित होने के कारण प्रगतिवादी वर्ग संघर्ष में विश्वास रखते हैं। इस युग की सभी रचनाओं में समाज को दो भागों में बंटा प्रदर्शित किया गया है। शोषक और शोषित, शोषित वर्ग के प्रति सभी कवियों ने सहानुभूति प्रदर्शित की है। गोदान में प्रेमचन्द ने भेड़िये और भेड़ो के प्रतीक से शोषक और शोषित वर्ग को बाँटा है प्रेमचन्द शोषक वर्ग के हाथों शोषितों को सुरक्षित नहीं मानते। यशपाल के सभी उपन्यासों में समाज को दो वर्गों में बँटा हुआ दिखाया गया है। यद्यपि यशपाल ने सर्वहारा की विजय नहीं दिखलायी किन्तु अदम्य साहस एवं उत्साह से समूल आर्थिक मूल्यों से सामाजिक परिवर्तन के लिये रत दिखलाया है।

" जीवन कूड़े करकट, धुएँ, धुंध, गर्द, गुबार, कीचड़, दलदल से अटा पड़ा है। उसके बाहर की उलझनों का विस्तार अपरिमित है उसके अंतर में बेगिनती गह्वर है, अंधेरी कन्दरायें हैं, जिनकी झाँकी मात्र कंपा देने को काफी है।"[2] "साहित्य और कला की गति पृथ्वी और सर्वसाधारण के समतल और समानान्तर दिशाओं में चलने और बढ़ने में है। हमारे यथार्थ का नग्न रूप, क्षुधा और कामजन्य चीत्कार है, वह श्रेणी संघर्ष के बीच प्रकट होता है, वह जघन्य चाहे हो पर हमारे समाज की वास्तविकता है। यशपाल ने अपने उपन्यासों में वर्ग संघर्ष की उभरती हुई चेतना को प्रस्तुत किया। उन्होंने समाज के खोखलेपन के उघाड़ा है

1- यशपाल- देशद्रोही- पृ0- 238
2- हिन्दी साहित्य, भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग-पृ0- 299

और द्वैत तथा वैषम्य के विरुद्ध आवाज उठाई जो वर्ग वैषम्य को बढ़ावा देता है और मानव सम्बन्धों को जटिल कटु और तीखा बनाता है।"[1]

मजदूर वर्ग किस घिनौने वातावरण में पलता है रहता है इसका एक छोटा सा नमूना यशपाल जी ने चित्रित किया है, मजदूर के एक घर का चित्रण किया है-"क्वार्टर में पहले एक छोटा सा सहन और फिर कोठरी थी। कोठरी में दरवाजे के एक ओर चूल्हा था। सामने कुछ कनस्तर और डिब्बे धरे थे। दाईं तरफ की दीवार में खूटियों से बंधी अलगनी पर कुछ कपड़े टंगे हुए थे नीचे एक खाट पर मैला, फटा लिहाफ बिस्तर पर पड़ा था। चूल्हे पर रखी मिट्टी के तेल की ढिबरी से कोठरी के फर्श पर कुछ लाल सा प्रकाश और छत पर धुँआ फैल रहा था। चूल्हे में जली लकड़ियों के कुछ अंगारे थे। खाट के पास फर्श पर कम्बल ओढ़ अख्तर बैठा था।"[2]

पूँजीपतियों के मनमाने व्यवहार से तंग होकर मजदूरों ने अपना पहला हथियार प्रयोग किया और यह हथियार था हड़ताल किन्तु इस हड़ताल से मिल मालिक घबरा जाते हैं और वह सोंचते हैं कि मजदूर उन पर ज्यादती कर रहे हैं बेबात बतंगड़ खड़ा कर रहे हैं जब सारा देश स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में जूझ रहा है स्वराज्य की कामना कर रहा है ये मजदूर अपने पेट के लिये लड़ रहे हैं। किन्तु इसहड़ताल से मजदूरों का क्या हाल होता है, इससे उन्हें कितनी मुसीबत झेलनी पड़ती है ये कोई कम नहीं ये पेट का सवाल नहीं अपने अधिकार का सवाल है न्याय की लड़ाई है-" हड़ताल हो जाना माजक नहीं। हजारों मजदूर बेकार हो जायेंगे। उन सब के स्त्री बच्चे भूखे मरेंगे। मई की इसगरमी में उनके भूखे मरने का परिणाम क्या होगा, इस बात का आप ख्याल कीजिए। आदमी को भूख लगने पर कुछ घंटे खाना नहीं मिलता तो क्या हाल होता है। यहाँ यह भूख हफ्तों, महीनों चलेगी। ऐसी अवस्था में उनमें बीमारी फैलेगी। किस तरह वे लोग बिलबिलायेंगे? सैकड़ों दूध पीते बच्चे मर जायेंगे।"[3]

चाहें लोग इसे गलत ही समझें कि मजदूर अपने पेट के लिये लड़ रहे हैं किन्तु वह क्यों न लड़े-" मजदूरों के पेट का सवाल है। मजदूरों के ही परिश्रम से यह सब मिलें बनी हैं। उन्हीं के परिश्रम से सब कमाई हो रही है तो उनके पेट भरने और तन ढाँपने की आवश्यकतायें

- -

1-हिन्दी साहित्य, भारतीय हिन्दी परिषद-प्रयाग, पृ0- 301-302

2- यशपाल- दादा कामरेड- पृ0-55

3- वही, देशद्रोही- पृ0-61-62

उससे पूरी क्यों न हों? आयु भर अपनी कमाई से दूसरों के ऐश का सामान तैयार कर स्वयं कंगाली में सड़ते रहने की अपेक्षा मजदूर एक दफे संकट झेलकर, भरपेट खाने का अधिकार क्यों न प्राप्त करे? सभी कपड़ा मिलें एक साथ बन्द हो गईं मजदूर सोचने लगे, जब उनके किये बिना कुछ भी नहीं हो सकता तो मालिकों को उनकी शर्तें मानने के लिये मजबूर होना ही पड़ेगा। और वे अपनी कमाई का ही एक हिस्सा तो माँग रहे हैं।"[1]

किन्तु मजदूरों के लिये तर्क और सिद्धान्तों को समझ पाना अत्यन्त मुश्किल है वह सीधी सी बातें समझते हैं। मिल मालिकों के दलाल आदि मजदूरों में फूट डलवाने की कोशिश करते, मजदूर नेताओं के लिये भ्रामक बातें फैलाकर उन्हें धोखेबाज, धूर्त, स्वार्थी बताकर और भूखे मजदूरों को रसद आदि बाँटकर भड़काने का काम करते। भोले भाले मजदूर हड़ताल तोड़ने पर मजबूर हो जाते और असल बात इस षड्यंत्र के बीच दबकर रह जाती। कांग्रेस पार्टी जो स्वराज्य के लिये लड़ रही थी उसके नेता विद्रोह और क्रान्ति करके अपनी माँगे मनवाने के पक्ष में नहीं थे वे मालिकों के हृदय परिवर्तन की बात सोचते थे और मजदूरों की कुछ माँगे मनवाकर दोनों में प्रेमभाव स्थापित करना चाहते थे वो चाहते थे कि मिल मालिक मजदूरों की स्थिति समझें और उन पर दया और प्रेम दिखायें किन्तु अपने अधिकारों के लिये लड़ने वाले मजदूर सभा को ये मंजूर न था, वह मालिकों की दया और उनके प्रेम पर जीना नहीं चाहते थे उत्पादन में हिस्सा मिलना उनका अधिकार है मिलें उनके श्रम से चलती हैं अतः उसके मालिक वे स्वयं होंगे न कि मुफ्तखोर पूंजीपति-देशद्रोही ऐसे ही वर्ग भेद की कहानी कहती है-" मिल मालिकों का ख्याल है कि वे मजदूरों पर बहुत दया करते हैं। शिवनाथ बोला, "यदि थोड़ी और दया करने लगे तो उससे क्या फरक पड़ जायेगा? हम दया की भीख नहीं माँगते। हमारा दावा है कि मिल की पैदावार पर हमारे मजदूरों का अधिकार मालिक कहलाने वालों से अधिक है। हमारे मजदूरों की आवश्यकता उससे पूरी होनी चाहिए। मालिक चाहे जितना प्रेम करें, वह पालतू जानवर से किये जाने वाले प्रेम की ही भाँति होगा। मजदूर रहेगा तो मालिक का आश्रित ही लेकिन हम चाहते हैं, अपने भाग्य का निर्णय करने का अवसर स्वयं मजदूर को हो।"[2]

1- यशपाल- देशद्रोही- पृ0-65
2- वही, पृ0- 76

मजदूर वर्ग पढ़ा लिखा नहीं है उसमें उतनी सूझ बूझ और तर्क शक्ति भी नहीं है कि वह कुछ दूर की बात सोंच सके इसके विपरीत जिस वर्ग के हाथ ताकत है वह पढ़ा लिखा है और उसका उठना बैठना भी पढ़े लिखे बुद्धिजीवियों के साथ होता है अतः वह अपनी चालों से मजदूरों की सभी मांगों को झुठला भी लेता है उन्हें तोड़ भी देता है उनकी मांगों को बेबुनियादी भी मनवा दता है। देशद्रोही में खन्ना इस बात को कहता है "श्रेणी संघर्ष की चेतना शोषित वर्ग में उतनी अधिक जागृत नहीं, जितनी कोशोषक वर्ग और उनके सहायकों में हो चुकी है। कारण यह कि यह वर्ग शिक्षित और साधन-सम्पन्न है। कांग्रेस को जनमत से समाजवादी शक्ति बनाने का प्रयत्न कांग्रेस के विधान के अनुसार अवैधानिक बनते जा रहे हैं। जनमत पैदा करने के सब साधन पूंजीपतियों के हाथ में हैं। वे शोषित जनता के "हायरोटी" पुकारने को संकीर्णता, स्वार्थ और श्रेणी [illegible] कहते है और अपनी श्रेणी के अधिकार बढ़ाने के आन्दोलन कोजनता का "स्वराज "और त्याग बताते हैं। यदि कांग्रेस आन्दोलन में सहयोग दे पाने की शर्त "ईश्वर में विश्वास होना" हो सकती ह तो फिर जनता को मूर्ख बनाया जा सकने की कोई सीमा नहीं।"[1]

देशद्रोही में वर्ग संघर्ष की भावना का खुला चित्रण है। यह एक ऐसे [illegible] की कहानी कहता है जहाँ दो विचारधारायें आपस में टकराती हैं दोनों ही वर्ग देशभक्त हैं देश के लिये समर्पित हैं दोनों ही गरीबों और मजदूरों की सहायता करना चाहते हैं किन्तु फर्क है तो बस विचारों काकोई तर्क से सूक्ष्म बात सोंचता है और दूरदर्शी है और कोई ऊपरी तौर से मोटा मोटा सोंचता है। इसप्रकार का फर्क है शिवनाथ और डा0 खन्ना में वैसे तो दोनों परम मित्र हैं किन्तु राजनैतिक विचारधारायें दोनों की अलग हैं। सबसेबड़ा असन्तोष उन्हें फासिज्म और युद्ध को लेकर है-शिवनाथ का दल युद्ध में सरकार की मदद करना नहीं चाहता और डा0 खन्ना चाहते हैं कि जो देश गरीबों और मजदूरों के हक के लिये लड़ रहा है उसकी सहायता करनी चाहिये। डा0खन्ना कम्युनिस्टथे और क्रांति चाहते थे शिवनाथ कांग्रेसी समाजवादी था वह पहले स्वराज्य चाहता था और सारी मजदूरों की शक्ति उसके लिये लगाना चाहता था उसकायुद्ध पहले अपने ही लोगों के प्रति चल पड़ा जो उसके विचारों से अलग की था उसका कहना था-"अब देखना है वाम पक्ष वाले क्रांति के अरमान कैसे पूरे करते

1- यशपाल-देश द्रोही- पृ0-168

है? देश में सरकार की मशीनरी को बिल्कुल ठप्प कर देना है। उसके बाद चाहे जो हो। इसका कार्यक्रम में रेल, तार, डाक, अदालत, खजाना सरकारी सामान और इमारतें सभी कुछ जिन साधनों से सरकार शासन और दमन करती है, सब उखाड़ देना है। "------तुम लोग देशव्यापी हड़ताल द्वारा शासन की व्यवस्था मेहनत करने वाली श्रेणी के हाथ में लेने की बातें करते हो। रेलवे और दूसरे कारोबार के मजदूरों में तुम्हारा संगठन है। सब जगह काम बन्द कराकर तुम मौजूदा व्यवस्था का अंत कुछ घंटों में ही कर दे सकते हो। ऐसा होने से सेना और पुलिस एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सकेगी। एक स्थानसे दूसरे स्थान का सम्बन्ध न रहने से सरकार क्रांति का दमन संगठित रूप से न कर सकेगी। सरकार की शक्ति जगह-जगह बिखर जाने पर जनता की शक्ति अधिक होगी और हम क्रांति को सफल बना सकेंगे।"[1] किन्तु डा० खन्ना स्वराज्य को स्वीकार करता हुआ भी दूर की बात सोच रहा है वह हर काम परिस्थितियों के अनुकूल करना चाहता है वह नहीं चाहता कि उत्साह और जल्दबाजी में हम कोई ऐसा कार्य कर बैठें जोहमें और ज्यादा मुसीबत में डाल दे अतः वह कहता है "हम उसी उपाय पर निर्भर कर सकते हैं जिसकी सफलता की आशा हम इन परिस्थितियों में कर सकें। ऐसे उपाय पर नहीं जो हमारे उद्देश्य को ही हानि पहुँचाये। अंग्रेज सरकार के आत्म निर्णय या स्वराज्य के अधिकार का हमारा तकाजा है। वह हम लेंगे ही परन्तु आज शत्रु शक्ति हमारे देश पर चढ़ी आ रही है। अंग्रेजों से झगड़ते-झगड़ते हम यदि इस दूसरी शक्ति के पंजे में पड़ जाय तो क्याहोगा? स्वराज्य तो मिलेगानहीं, अलबत्ता शत्रु के आक्रमण से हमारा देश और जनता लाखों की संख्या में बरबाद हो जायेगा।"[2] किन्तु शिवनाथ सोचता है कि जापान अंग्रेजों को भारत से शक्ति तोड़ने के लिये आक्रमण कर रहा है। खन्ना जापान को फैसिस्टशक्ति मानते हैं। वह जानते हैं इनसे अकेले लड़ना आसान नहीं इसके लिये एक दो राष्ट्रों को अपना मित्र बनाना पड़ेगा तब यह लड़ाई जीती जा सकती है। "क्या यह दूरदर्शिता है कि फैसिज्म का विरोध करने वाली जो अंतर्राष्ट्रीय शक्तियाँ आज मौजूद हों उनसे हम सहयोग न करें, अपनी अवस्था को और गिरा लें और फिर फैसिज्म के विरुद्ध नई अंतर्राष्ट्रीय शक्तियों के पैदा होने और उनके सबल होने की प्रतीक्षा करें?।"[3]

- -

1- यशपाल- देशद्रोही- पृ०-215

2- वही, पृ०- 216

3- वही, पृ०- 217

शिवनाथ अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों से लाभ उठाकर गुलामी की जंजीरें काटना चाहता है किन्तु खन्ना सोचते हैं मित्र राष्ट्रों के साथ खड़े होकर फैसिस्ट शक्ति का हम मुकाबला करें इससे हमें स्वराज्य प्राप्त होगा। फैसिस्ट का विरोध करना हमारा कर्तव्य है न कि अंग्रेजों का साथ न देकर फैसिज्म विरोधी युद्ध का विरोध करें तो यह वास्तव में फैसिज्म की सहायता करना ही होगा----हमें मनुष्य की किसी जाति से द्वेष नहीं, हमें तो गुलाम बनाने वाले तरीकों से विरोध है, जिसका सबसे भयंकर रूप फैसिज्म है।" खन्ना और उसके साथी अपनी संपूर्ण शक्ति से जनमत परिवर्तन करने के काम में लगे थे। उनके सम्मुख प्रश्न था, अपने देश को चीन और बर्मा की भाँति आग की ज्वाला में जलने और रक्त की नदी में डूबने से बचाने के लिये, मित्र राष्ट्रों के फैसिस्ट विरोधी मोर्चे में समान उत्तरदायित्व पाने के यत्न किया जाये।" कांग्रेस की कार्यकारिणी बैठक जोरदार ढंग से ये बात उठाई गई कि जनता शासन के साथ असहयोग करे। कम्युनिस्टों को देशद्रोही बताया गया। जनता तो कम पढ़ी लिखी थी वह गहराई से कुछ सोचने में समर्थ न थी अतः उसे कांग्रेसियों के प्रति सहानुभूति थी उसके बड़े बड़े नेता गिरफ्तारियाँ दे रहे थे देश के लिये लड़ रहे थे अतः जनता के लिये वह देशभक्त थे और कम्युनिस्ट देशद्रोही थे।

कांग्रेसियों का असहयोग आन्दोलन प्रारंभ हो गया जगह जगह तोड़फोड़, आगजनी और अराजकता का वातावरण फैल गया इस सम कम्युनिस्ट जबरदस्त संघर्ष से गुजर रहे थे एक तरफ सरकार की दृष्टि में वह गलत थे दूसरी तरफ जनता में उनकी छवि देशद्रोही की बना दी गया तीसरी तरफ देश के लिये लड़ना इन सबने मिलकर कम्युनिस्टों को परेशान कर दिया एक बार बाहर के शत्रु से निपटना आसान है किन्तु अपने ही घर के लोग जब शत्रु बन जाये उनसे निपटना बहुत मुश्किल है। जनता विध्वंसक कार्यों को अपनी आजादी का युद्ध समझ बैठी। कम्युनिस्ट लोगों के विचार में इन कामों में क्रांति की योजना नहीं, जनता की शक्ति की बर्बादी हो रही थी। उनके विचार में फैलती अराजकता, आने जाने के साधनों का नाश और युद्ध के लिये आवश्यकताओं में रुकावट डालना स्वयं अपने देश पर शत्रु के आक्रमण को निमंत्रण देना था। देश की जनता से वसूल किये गये टैक्सों से बनी राष्ट्रीय सम्पत्ति का ध्वंस उन्हें अपने ही देश की हानि दिखाई देती थी। इन कामों का परिणाम देश की उत्तर-पूर्व सीमा

पर पहुँची हुई शत्रु की सेना का सामना करने वाली अपने देश की रक्षक शक्ति को कमजोर करना था। विध्वंस के अतिरंजित समाचारों से अपनी विजय के भ्रम में पागल हो रही जनता को कुछ समझा सकना कठिन काम था परंतु खन्ना और उसके साथी जनता के लाक्षनों की परवाह न कर, दिन रात अपने काम में जुटे रहते थे।"[1]

शिवनाथ और खन्ना में मनमुटाव बढ़ता ही गया दोनों आपस में शत्रु के समान हो गये खन्ना सोचते थे तोड़फोड़ से सरकार का कुछ नहीं बिगड़ता ये सब बनता तो जनता के ही पैसे से है, सारी मुसीबत जनता के सिर पड़ती है। रेल व्यवस्था चौपट कर देने से जनता को ही कष्ट होता है देखना है तो इन दिनों स्टेशन पर जाकरदेख लो। लाखों व्यक्ति विकटसंकट और मुसीबत में पड़े हैं। रेल मार्ग टूटने से सेना और लड़ाई का सामान सीमा पर नहीं पहुँच सकता अतः शत्रु जब चढ़ कर आ रहा है ऐसे समय में उसका मुकाबला करने के लिये न जाय तो ये तो शत्रु का मार्ग साफ कर देना है।

एक दिन मिल में आग लगाने की योजना बनाई गई खन्ना को जबये बातपता लगी तो उसने अपने साथियों से कहा कि हमें किसी भी कीमत पर मिल को बचाना है अतः वहमिल बचाने गया परिणाम स्वरूप घायल होकर लौटा और ऐसी घायलावस्था में जब कि वह चल फिर नहीं सकता था उसका परम मित्र शिवनाथ जो उसके हर भेद से परिचित था पुलिस में उसके बारे में बता देने के लिये आतुर हो गया अतःखन्ना को उसी अवस्था में भागना पड़ा और गरीबों के लिये लड़ने वाले इस देशभक्ति को अपने ही भाइयों द्वारा देशद्रोही होकर मरना पड़ा।

इस प्रकार इस उपन्यास में एक ही उद्देश्य से प्रेरित दो वर्गों के द्वन्द्व की कहानी कहता है। जनता उसी कीबात सुनती है जिस पर उसका सीधाप्रभाव पड़ता है। उसके लिये वही देशभक्त है उनका हमदर्द भी वही है।

=x=x=

1- यशपाल- देश द्रोही- पृ0- 223

कहानी साहित्य में सामाजिक द्वन्द्व

कहानी-

उपन्यास की ही भाँति कहानी विधा में भी प्रेमचन्द के समय से ही बदलाव प्रारंभ हुआ और कहानी का उद्देश्य मात्र मनोरंजन और रोमांच ही पैदा करना न होकर एक संदेश देना हो गया। छोटी-छोटी कहानियों में महान उद्देश्य छिपा रहने लगा। समाज की समस्याओं को उसमें स्थान मिला। और एकछोटी सी कहानी पाठक के मन और दिमाग पर अपनी छाप वर्षों तक छोड़ने लगी। प्रेमचन्द की कहानियों से कहानी का क्षेत्र बदला और वह सामान्य व्यक्तियों की झाँकी बन गयी।

प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में गरीब किसानों और पारिवारिक जीवन में घटने वाली छोटी-छोटी घटनाओं का चित्रण किया। आर्थिक विपन्नता उनकी कहानी का मुख्यकथ्य था इसका उदाहरण है उनकी कहानी कफ़न। अतः प्रेमचन्द के समय से ही साहित्य का नजरिया कुछ बदलने लगा अब साहित्यकारों का विचार था "साहित्य को नये जीवन के अंकुर व्यक्ति व्यक्ति की मनोभूमि में पैदा करना है। उसे जनता को शोषण, दोहन और अधःपतन के श्मशान घाट तक पहुँचाने के लिये रास्ते का पड़ाव नहीं बनना है। घृणा और कष्ट से स्थिर हो रही जनता की आँखों में उसे फिर से जीवन का उष्ण प्रवाह संचालित करना है।"[1]

प्रगतिवादी कलाकारों में यशपाल जी का नाम प्रमुख साहित्यकारों में है। अपने उपन्यास के साथ-साथ श्रेष्ठ कहानी संग्रह भी लिखे हैं जो हमारे सामाजिक जीवन का आइना हैं और मनुष्य को जीवन से जोड़ती हैं और मानवात्मा की गहराइयों तक झाँक कर देखती है अतः कई कहानियों में वाह्य वातावरण के साथ-साथ मनुष्य के अर्न्तमन की भी झलक दी गई है। यशपाल जी का कहानी संग्रह "पिंजरे की उड़ान" (1939) में

- -

1- रामेश्वर शुक्ल अंचल- समाज और साहित्य- प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा साहित्य पृ0- 145

प्रकाशित हुआ इसकी सभी कहानियाँ इसी प्रकार की हैं- यशपाल जी की कहानी "समाज सेवा" जिसमें नारी के प्रति कुछ थोड़े से विचार कहानी का एक पात्र नाथ कहता है- "जितना धन और श्रम देश में राजनैतिक आन्दोलन और दूसरी समस्याओं पर व्यय हो रहा है यदि उसका आधा भी स्त्रियों की उन्नति पर हो तो फल चौगुने से अधिक हो सकता है। और इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये वह देशव्यापी आंदोलन और संगठन की आवश्यकता समझता है आगे उसका कहना है-स्त्रियाँ केवलपुरुषों की सेवाका ही साधन क्यों बनी रहें,उनका अपना स्वतंत्र जीवन क्यों न हो? इस आंदोलन की धुरी लेकर आप लोगों को आगे बढ़ना चाहिये।"[1] किन्तु सच्चाई क्या है औरत के प्रति इतने ऊँचे विचार रखने वाला आदमी,झूठी प्रतिष्ठा दिखाकर एक समाज सेविका से शादी करता है और उसके साथ भी वही होता है जो एक आम भारतीय महिला के साथ होता है अर्थात घर,गृहस्थी,पति और बच्चों की सेवा।

यशपाल जी ने अपनी कई कहानियों में नारी के सात्विक प्रेम का चित्रण किया है जो अपने पति के इंतजार में सारा जीवन व्यतीत कर देती है उसको इस बात का यकीन है कि एक न एक दिन उसका पति आयेगा अवश्य, वह हर आने जाने वाले से उसका पता बड़ी व्याकुलता सेपूछती है हालाँकि उसे उसके शहर के अलावा और किसी अते पते की जानकारी नहीं है,ऐसी मार्मिक कहानी हैं पहाड़ की स्मृति।

नारी के बेबस रूप का चित्रण "दुखी-दुखी" कहानी में हुआ है इस कहानी के पात्र का दिल्ली में सारा सामान उठा है उसे जाना है कलकत्ते मगर टिकट तो बक्से में ही था अतः उस बड़े से अनजाने शहर में वह बेचारा भिखारियों से बदतर हो जाता है चार दिन से उसने कुछ खाया नहीं।अच्छे घर का होने से पढ़ा लिखा होने से कुछ माँगने की आदत नहीं अतः भूख और संस्कारों के बीच खूब द्वन्द्व हुआ-" हलवाई की दुकान पर से पूरी खाकर जो लोग पत्ते फेंक देते थे,उनके भोजन पदार्थ का कुछ अंश देख हाथ उस ओर जाना चाहते थे परंतु अभी शरीर पर कपड़े बाकी थे।उनका ख्याल ही हाथों को रोक देता

1- यशपाल- पिंजरे की उड़ान- समाज सेवा-विप्लव कार्यालय,लखनऊ

था- आत्मा का अभिमान उड़ गया था लेकिन कपड़ों का अभी बाकी था।"[1]

इसके बाद वह भटकता हुआ वहाँ पहुँच गया जहाँ पर दूसरे स्तर की वेश्यायें रहतीथीं,उन वेश्याओं का हाल बहुत बुरा रहता है-" जो तुम चाहो,अल्ला के नाम पर दे देना। मैं मरीजा रही हूँ। आज चार रोज मुझे यहाँ आये हो गये।अल्ला की कसम,एक दाना मुँह में नहीं गया। वह इस गन्दी जगह आ कैसे गई इसके पीछे भीएक पुरूष का हाथ है अतः नारी को गिराने के पीछे भीपुरूष का ही हाथ होता है,वेश्याबनने के बाद भी वह पुरूष के शोषण का शिकार होती है और वेश्या बनती भी वह पुरूष के शोषण से ही है। इस वेश्याका पति भी इसे मार-पीट कर किसी दूसरी औरत के साथ चला गया,लाचार बिना पढ़ी लिखी स्त्री जाये तो कहाँ जाये पेटकी भूख उसे कोठे पर बिठा देती है।यह सब देखकर उस पात्र के मन में ग्लानि न हुई उसने सोंचा-"उस समय एक रोटी के लिए मैं क्या कुछकरने को तैयार न हो जाता यह आज नहीं कह सकता।"[1]

नारी पर अत्याचार की कहानी एककहानी और कहती है-"मृत्युंजय"।डा0 प्रताप माँ के अथक प्रयास और बलिदान से डाक्टर बना था मगर मा को डाक्टर बनने से पहले ही खो बैठा। माँ को खोने के बाद जीवन से निराश डा0 प्रताप एक पत्थर के बुत के समान जीवन व्यतीत करने लगा एक लक्ष्यहीन,हृदयहीन जीवन इसी बीच जीवन में एक किरण की तरह चमके दो बच्चे जिन्होंने जीवन में स्थिरता के स्थान पर हलचल भर दी एक ठहराव में गति पैदा कर दी डाक्टर को मानों जीने का बहाना मिल गया। नूरी को उसने अपनी बेटी की तरह प्यारदियाऔर शादी में पैसे आदिलगाकर उसका ब्याह कर दिया किन्तु जब पहली बिदा वह घर आयी तो डाक्टर से मिलने आयी इसी पर उसके पति को शक हो गया और उसने उसकी जान ले ली। पति पत्नी को अपनी सम्पत्ति समझता है वह उसका अपने दायरे से निकलना पसन्द नहीं करता।

"प्रायश्चित"कहानी में इस बात पर प्रश्न किया गया है कि यदि समाज या परिवार अपने बच्चों को संयमी,संस्कारवादी,सदचरित्र और ब्रह्मचारी बनाना चाहता

- -

1- यशपाल- पिंजरे की उड़ान- दुखी दुखी- पृ0-83

है तो वैसा ही वातावरण उपस्थित क्यों नहीं करता? उसके आगे स्वयं भी वैसा ही आचरण क्यों नहीं करता? सारी आशा बच्चों से ही क्यों की जाती है उनके आगे जैसा वातावरण होगा लोगों का जैसा आचरण होगा वे वैसा ही करेंगे। इस कहानी की स्त्री पात्र को उसके पिता ने वासनाओं से बचाने के लिये और ब्रह्मचर्य के सत्यमार्ग पर चलाने के लिये वेद मंत्र आदि पढ़ाये गये, मोटा पहिनाया गया, सर के बाल कटवा दिये गये पैरों में चप्पल आदि नहीं पहनने दिया गया और कन्या गुरुकुल में दाखिल करवा दिया गया। किन्तु गुरुकुलों की स्थिति क्या है वे गुरुकुल स्वयं नियमों का उल्लंघन करते हैं- ब्रह्मचारियों और ब्रह्मचारिणियों को गरमी की छुट्टियों में नगरों में जाने की इजाजत क्यों दी जाती है-----जो लड़कियाँ नगरों में छुट्टियाँ बिता कर आती हैं वे प्रायः सुगन्धित तेल, साबुन, चेहरे पर लगाने की क्रीम, पाउडर आदि का जिक्र दूसरी लड़कियों से करती रहती हैं। महीन कपड़ों, रेशमी साड़ियों, आभूषणों, ऊँची एड़ी के जूतों और मोजों की प्रशंसा करती हैं।--------इसमें दोष नहीं तो दोष है किसमें?------ गुरुकुल में ब्रह्मचर्य का जैसा पालन होना चाहिए, वैसा नहीं हो रहा, वहाँ भी शौकीनी की बीमारी पहुँच रही है। गुरुकुल में जो अध्यापिकायें पढ़ाती हैं उन्हें भी तो सादगी से रहना चाहिये तो वह स्वयं तो बन-ठन कर आती हैं और शिक्षा देती हैं ब्रह्मचर्य की। रघुवंश और शकुन्तला नाटक विशेष विशेष स्थलों को निकालकर पढ़ाये जाते हैं। परन्तु क्या उन छिपाये गये अंशों को पढ़ने की इच्छा हमें नहीं होती? कोई भी पूर्ण-संस्करण हमें मिलने पर हम सबसे पहले वर्जित अंशों को ही पढ़ने का यत्न करती हैं।[1]

बड़ा ही गूढ़ प्रश्न है कि सब कुछ बदल देने पर भी प्राकृतिक चीजों पर रोक कैसे लगेगी प्रकृति अपना क्रम नहीं बदलेगी और जहाँ तक प्रभाव की बात है प्रकृति का प्रभाव मनुष्य के हृदयतम तक पहुँच जाता है इन फूलों पर तितलियों को मण्डराने क्यों दिया जाता है? इन पक्षियों को गुरुकुलमें व्यभिचार क्यों करने दिया जाता है?-----माना कि दर्पण हमें नहीं दिया जाता परन्तु लोटे के जल में मुख की छाया क्यों पड़ जाती है।-[2] बाद में शहर की लड़कियों के बीच उसके आ जाने से शहर के लोग उसे जंगली बकरी कहकर पुकारते। किन्तु समय वातावरण में रहकर उसकी इन्द्रियाँ भी डगमगा गयीं यौवन सुलभ

- -

1- यशपाल- पिंजड़े की उड़ान- प्रायश्चित- पृ0- 127 से 129 तक

2- वही, पृ0- 129- 130

शृंगारिक इच्छा उसके भी मन में उठने लगी बस मात्रयही उसका अपराध था इतने से ही वह कुलकलंकिनी बन गयी और आत्महत्या कर अपनी भूलों का प्रायश्चित कर गई किन्तु एक प्रश्न सारे समाज के सामने छोड़ गयी कि अगर इन्द्रियों का दमन करनाही सत्मार्ग और सद्‌चरित्र है तो सारी प्रकृति झूठी है हमारे महापुरुष झूठे हैं सारे ग्रन्थ झूठे हैं सबको बदलना चाहिये क्योंकि सब मनुष्य को प्रभावित करते हैं।

अपनी "कम्बल" कहानी में यशपाल जी ने अमीर और गरीब के दुख का अंतर व्यक्त किया है अमीर का दुख-दुख है और गरीब का दुख कोई मायने नहीं रखता वह अमीरों की नींद खराब करता है। जाड़े की एक रात को जब जोरदार बारिश हो रही थी ऐसे में उन लोगों का क्या हाल होता है जिनके पास सिर छिपाने के लिए "ईश्वर" का अमूल्य उपहार आकाश या म्युनिसिपैलिटी की कृपा पेड़ होते हैं किन्तु जब बरसात होती है तो ये बेचारे अमीरों की हवेलियों की आड़ में पानी से बचने की कोशिश करते हैं उनमें से एक सेठजी० के बरामदे में आ जाता है उसके बाद चार-पाँच और लोग आ गये अत: आपस में बरसात से बचने के लिये झगड़ाहोने लगा, सेठ जी के आदेश पर नौकर ने सबको डण्डे के बल से बाहर खदेड़ दिया-"कोई भागकर किसी बन्द दुकान के छज्जे के नीचे जा बठा कोई किसी ड्योढ़ी की आड़ में हो गया।लेकिन बिंदी की टागों में इतना जोर बाकी न था। तिसपर गोद के बच्चे का बोझ। टाट के टुकड़े में लिपटे बच्चे को पेट से चिपकाये वह फिसलते कदम पर नीम के पेड़ के तने से सटकर जा बैठी।"[1] इस तेज ठण्ड और बरसात में बिन्दी के बच्चे का रो-रो कर गला रह गया एक दिन पूरा हो गया था उसे कुछ खाने पीने को नहीं मिला था, इतनी तेज बरसात में कोई घर से बाहर निकलताही नहीं जो बिन्दी को कुछ दे देता-" बिन्दी का बच्चा रह-रहकर चिड़िया के चूजे की तरह मुँह बा देता न उसमें से रोने की ही आवाज निकल पाती थी न उसमें खाने के लिये ही कुछ था। बिन्दी अधीर हो, पुचकार -पुचकार उसे अपने शरीर की गरमी से गरम रखने की चेष्टा कर रही थी।"[2] बेपनाह सर्दी और भूख से बिन्दी का बच्चा मर गया वह तड़फ कर रो दी किन्तु आराम के वक्तउसका क्रन्दन सेठ घर के लोगों की नींद खराब करने लगा पास ही

1- यशपाल- पिंजरे की उड़ान- कम्बल- पृ0- 159
2- वही, पृ0- 160

के घर में सेठानी जी की बिटिया कुछ बीमार थी वह सो रही थी-"नीचे से बेवक्त रोने की आवाज उन्हें बहुत बुरी मालूम हुई। चिल्लाकर उन्होंने पुकाराअरे कोई है, देखो नीचे यह कौन स्यापा डाल कर अपनों को रो रहा है? बिटिया की जरा आँख लगी है। उसे क्या सोने नहीं देगा?" नौकर ने जाकर ललकार सुनाई "चल हट रॉड़ यहाँ से,तमाशा करने आई है। नहीं एक डण्डे सेसिर तोड़ दूँगा। बिन्दी चली गई सेठानी जी भगवान से प्रार्थना करने लगी -"मेरी बेटी का कष्ट दूर करो भगवान जिसने बेटी की नींद बिगाड़ दी उसका सत्यानाश हो।"[1]

यशपाल ने आत्मिक प्रेम को नकारते हुए भी प्रेम को केवल देह की वस्तु नहीं माना है। यह दो व्यक्तियों का एकदूसरे को समझ सकने का नाता है।इसमें सम्बन्ध व्यक्तियों में दुतर्फा सहयोग होता है।इस सहयोग के कारण सम्बन्ध व्यक्तियों के व्यक्तित्व अधिक पूर्णता प्राप्त करते हैं। इस सम्बन्ध का आंतरिक आधार मैत्री है। इसीलिये महाकवि कालिदास ने गृहिणी के लिये "सखा"शब्द का प्रयोग किया है।दो व्यक्तियों के बीच का सखाभाव समता और स्वतंत्रता के होने पर ही संभव है। सखा भाव के होने पर ही दाम्पत्य संबंध का कलात्मक रूप अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ साकार होता है।"[2] इसप्रकार का आत्मिक प्रेम "दर्पण" कहानी में साकार हुआ है। चिन्तामिणा हो गई है किन्तु अपने पति रतन के प्रति उसके मन में आत्मिक प्रेम है वह उसकीयादों के सहारे जीवन व्यतीत करती है उसके लिये रतन का अस्तित्व उसके आसपास है वह उसके द्वारा दिये हुये आइने में अपनी शृंगारिक छवि को देखती रहती है किन्तु जब वही आइना बच्चो से गिरकर टूट जाता है तो उसका जीवन भी समाप्त हो जाता है क्योंकि यह आइना नहीं उसके पति का दिल की गहराइयों से दिया हुआ तोहफा था।

"परलोक "कहानी में यशपाल जी ने बच्चों के स्वभाव के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था और भारतीय लोगों के स्वभाव का चित्रण किया है। भारतवासी कल की आशा पर जीते हैं,परलोक में सुख भोगने की कल्पना में वर्तमान जीवन घोर यातना और पीड़ा में व्यतीत कर देते हैं। जनता सब अन्याय अत्याचार सहती जाती है मात्र आश्वासन और

1- यशपाल- पिंजरे की उड़ान-करवा- पृ0-16।

2- डॉ0 चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे-यशपाल की कहानियाँ- कथ्य और शिल्प- पृ0-54-55

वायदे पर किन्तु उसका भाई भट्ट यूरोप की भाँति वायदे और आश्वासन पर विश्वास नहीं करता उसे जो चाहिये उसे हासिल करता है नहीं तो छीन लेता है और भारतीय जनता मल्ली की भाँति भविष्य की आशा पर जीती जा रही है। दूसरे देश भट्टू की भाँति आज के मतलब की बात सोचते हैं। "सोचता हूँ- भविष्य के हजारों वायदों को पाकर भी जैसे मल्ली भट्ट की अपेक्षा कभी अधिक सफल न हो सकेगी, उसी तरह भगवान भी भारतवासियों की भविष्य आशा का क्या करेंगे?

यूरोप को देख उनका मन प्रसन्न ही होगा। जिस तरह हम भट्टू को देखकर कुछ नहीं कर सकते, उसी तरह भगवान यूरोप को कहेंगे- शाबाश बेटे।" और भारत को पुचकार कर कहेंगे-घबराओ नहीं, तुम्हारे लिये परलोक हैं। लेकिन परलोक में भी अगर परलोक है यही भगवान होंगे और यूरोप होगा भट्टू और हम होंगे मल्ली।"[1]

यशपाल जी ने बच्चों के माध्यम से बड़े सुन्दर ढंग से अपनी भारतीय व्यवस्था पर क्षोभ प्रकट किया है भारतीय जनता परलोक की आशा में अपना ये जीवन नर्क बना लेतीहै अपना शोषण करवाती है।सांसारिक पदार्थों में आसक्त होने से परलोक प्राप्ति में बाधा होगी, इसलिये ये लोग उस ओर ध्यान ही नहीं देते और परिणाम क्या होता है हम भौतिक उन्नति में पिछड़ जाते हैं वैज्ञानिक युग में जब और देश चाँद पर जा रहे हैं हम "चन्दा मामा दूर के" गाकर बच्चे को सुला रहे हैं। आधुनिकता से हम मुँह मोड़े बैठे हैं अपने पिछड़ेपन और दुख शोषण को हम अपना भाग्य समझकर, हरिइच्छा सोंचकर चुपचाप सहते जाते हैं, हम पापियों -दुष्टों के आगे घुटने टेकते जाते कि हमें स्वर्ग मिलेगा।इसीलिये और देश हमारा शोषण करते हैंहमारे ही कंधों के सहारे वह आगे जा रहा है और हम पीछे आ रहे हैं।

"दुख" कहानी में लेखक ने यह बताने की चेष्टा की है कि हम पर एक दुख पड़ता है हम उसे ही सबसे बड़ा दुख मान लेते हैं हम समझते हैंकि हम पर बहुत बड़ा संकट आ पड़ा किन्तु दुख की कोई सीमानहीं अगर हम बाहर निकलकर देखें,तो पायेंगे कि न जाने कितने अनगिनत लोग जिनका जीवन ही अपने आप में दुखमय है वो कैसे रहते हैं। सारा

- -

1- यशपाल- पिंजरे की उड़ान- परलोक- पृ0- 17।

समाज एक मार्मान्तिक पीड़ा में सांस ले रहा है हम पर जरा सासंकट आताहै हम टूट जाते हैं, घबरा जाते हैं मगर जिसका जीवन ही दुख है वह क्या करे? "दुख" कहानी का दिलीप अपनी पत्नी के शक करने पर टूटजाताहै उसका मन वितृष्णा से भर जाता है, उसे जीवन की चाह नहीं रहती वहजब पार्क से लौट रहा होता है तो सर्दी की रात में सुनसान सड़क पर एक छोटा सा बच्चा खोमचा लेकर बैठा था उसके पास मिट्टी के तेल की ढिबरी तक नहीं थी "उसकी थालीभी खोमचे का थाल न होकर घरेलू व्यवहार की एक मामूली हल्की [illegible] थाली थी। पकौड़ियों की अीठ ढेरी एक एक पैसे में दिलीप ने खरादी किन्तु दिया उसे एक रुपया बच्चे के पास लौटाने को बाकी पैसे नहीं थे अतः दिलीप उसका घर देखना चाहता था पैसे लेने के बहाने वो चला उसके साथ रास्ते में पता चला। बच्चा खोमचा इसलिये बेचता है क्योंकि उसके पिता का देहान्त हो गया, माँ चौका बर्तन करती थी अढ़ाई सायेमहीने पर किन्तु दूसरी के दो रुपये में कर देने पर उसे निकाल दिया गया इसलिये अब वह खोमचा बेचता है। घर के पास पहुँचकर दिलीप ने उसका घर देखा जो कि इस प्रकार था-" मुश्किल से आदमी के कद की ऊँचाई की कोठरी में जैसी प्राय शहरों में ईंधन रखने के लिये बनी रहतीहै धुआँ उगलती मिट्टी के तेल की एक ढिबरी अपना धुंधला लाल प्रकाश फैला रही थी। एक छोटीचारपाई, जैसी कि श्राद्ध में महाब्राह्मणों को दान दी जाती है, काली दीवार के सहारे खड़ीथी। उसके पाये से दो- एक मैले कपड़े लटक रहे थे। एक क्षीणकाय, आधी उमर की स्त्री मैली सी धोती में शरीर लपेटे बैठी थी।"[1]

इस गरीबी में भी इन लोगों को किसीप्रकार का लालच नहीं घर में फुटकर पैसे न होने पर माँ कहती है कि रुपया बाबू को लौटा दो पैसे फिर उनके घर से जाकर ले आना, किन्तु दिलीप उन्हें रुपया देकर चला गया। उसने देखा उसके घर में रखी दो रोटियों के सिवाकुछ भी नहीं बच्चादाल खाने को तरसता है। दिलीप ने जो यह दृश्य देखा था उसके सामने उसे अपना दुख तुच्छ जान पड़ा उसने अपनी पत्नी के पत्र में लिखे दुख शब्द पर कहा "काश्, तुम जानतीदुख किसे कहते हैं-------तुम्हारा यह रसीला दुख तुम्हें न मिले तो जिन्दगी दूभर हो जाय।"

1- यशपाल- पिंजरे की उड़ान-"दुख" पृ0- 178

भारत की एक तिहाई जनता इसी प्रकार के दुख में अपना जीवन व्यतीत करती है दुख अपरिमित है, विस्तृत है इसका कोई ओर -छोर नहीं।

वो दुनियाँ-

यशपाल जी का दूसरा कहानी संग्रह है "वो दुनियाँ" इसमें कविने इस दुनिया के वैषम्य का असंगतियों का चित्रण किया है। इस दुनिया की संकीर्णता और असह्य परि-स्थितियों के कारण उत्पन्न विकलता का लेखक ने हर कहानी में चित्रण किया है।पहली कहानी है "सन्यासी।" सन्यासी कहानी का नवयुवक पात्र अपने विधार्थी जीवन में तरह तरह के सपने देखते हैं अपनी कल्पना में एक सुखमय जीवन साकार करता है। वह पढ़ लिखकर ऊँचे पद पर काम करेगा उसके पास सभी सुख के साधन होंगे उसका बंगला होगा, वह एम० एस०सी० पास करने के बाद उसने सोंचा था कि कालेज की प्रोफेसरी बड़े बैंक की मैनेजरी, मजिस्ट्रेटी इसमें से कुछ न कुछ तो वो ही ही जायेगा, ये उसके भविष्य को सुरक्षितकरेगा और उसके जीवन का उद्देश्य बनेगी भारतीय वेश के लावण्य और सादगी में लज्जा से सकुचाई हुई कल्पना की वह सन्यासिनी। एम० एस०सी० पास करने के बाद उसे बड़ीनौकरी तो नहीं मिली बस सा.रूपया महीने की ही नौकरी उसे मिली किन्तु सबके जोर देने पर उसने वह नौकरी कर तो ली उसने आगे अच्छी नौकरी के लिये सोंचा था और फिर वह शादी करके ले आया उस कल्पना को जिसके सपने वह संजोये रहता था। दोनों एक दूसरे को पाकर कृतार्थ हो रहे थे। नरदेव ने शीला से कहा कि उन दोनों का संबंध पूर्व जन्म का है और आगे जन्मों में भी वह लोग मिलते रहेंगे।उस अंतरहीन सामीप्य में किसी न्यूनता और अवसाद की अनुभूति के लिये स्थान न रह गया। ये सब तो था यौवन का कल्पनाशील स्वप्न किन्तु यथार्थ क्या था? क्या समाज की ऐसी व्यवस्था है कि पढ़ा लिखा युवक अपने मनमुताबिक नौकरी पा सके और आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सके।यौवन में देखे हुए सब सपने आँख के सामने धूल धूसरीत हो गये अपने बीबी बच्चे स्वयं पर बोझ मालूम पड़ने लगे।अपनी [illegible] बढ़ाने के लिये वह अकाउन्टेन्ट की डिग्री की परीक्षा देना चाहता था किन्तु फीस नहीं जुटा सका।"बैंक में तरक्की की कोई आशा दिखाई नहीं देती थी। वहाँ सभी क्लर्क एक दूसरे की जड़ काटकर अपनी जड़ मजबूत करने के यत्न में लगे रहते थे। सब ओर से निराश होकर भी नरदेव ने साहस किया।सुबह वह

एक ट्यूशन पढ़ाने लगा और शाम को एक व्यापारी का लेखा लिख देने का काम उसने ले लिया परन्तु सब कुटुम्ब-छाजन समेटकर भी सिलसिला ठीक से नहीं बैठ पाया। प्रेममयी शीला शाखा प्रशाखा सहित अपने विस्तृत रूप में वहाँ मौजूद थी परन्तु उनकी प्रेम कुटीर से प्रेम पूजन की गूँज लुप्त हो गई। अब वहाँ सुनाई देती थी, बच्चों के रोने-चिल्लाने की पुकार, शीला की दर्दभरी कराहट और कभी-कभी नरदेव की झल्लाहट।"[1] अब उसकी कल्पना भविष्य जीवन के लिये मनोरम राजपथ तैयार नहीं करती थी। उसकी सीमा अब बनिये के हिसाब, ब्याज और दूध के खर्च तक रह गई। समय ने कैसा पलटा खाया एक समय था जब शीला उसके जीवन का उद्देश्य थी, शीला उसकी शक्ति, उसकी प्रेरणा थी किन्तु अब वह उसे बोझ समझ रहा था यहाँ तक कि उसके मर जाने तक कि कामना करने लगा था। वह अपनी उन्नति की बाधा शीला को मानने लगा उसकी सारी महत्वाकांक्षायें सारा उत्साह ठण्डा पड़ चुका था इस गृहस्थी का भार ढोते-ढोते। उसकी शक्ति आगे न बढ़कर पत्नी और बच्चों के पालन में डूब गई।

परिवार दिन पर दिन बढ़ रहा था पाँचवा बच्चा होने को था। नरदेव का मन इसी से घबराया जा रहा था कि अब उसी रोटी में से पाँच को बाँटनी पड़ेगी अर्थात किसी एक के अधिकार का हनन। नरदेव एक विकराल मानसिक यंत्रणा से जूझ रहा है कभी कभी उसका मन करता कि ये सब छोड़ कर भाग जाये और अपने मोह को जीतकर सन्यासी बन जाये। एक अंर्तद्वन्द्व से नरदेव जूझता रहा उसका मन विषाद से भरा है कोई रास्ता दिखाई नहीं देता चारों तरफ असफलता है घोर अन्धकार है क्या यही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है कि शादी कर लेने और बीवी बच्चों का भारवहन करते करते एक दम दुनिया को अलविदा कह दो। नरदेव का मन इतना निराश हो गया कि वह इस बोझ से पलायन कर गया और मोह को जीतने वाला सन्यासी बन गया।

"दो दुनिया" में लेखक की एक कहानी है दूसरी नाक इसमें पारिवारिक द्वन्द्व उभरा है। जवाहर जो कहानी का मुख्य पात्र है एक गरीब घरेलू लड़की से शादी न करके

- -

1- यशपाल- दो दुनिया- सन्यासी- पृ0-15

एक खूब सूरत नखरीली लड़की को ढाई सौ रुपये में खरीद कर लाना चाहता है। इसमें लेखकने बताया है कि शादियाँ होती हैं तो लड़के वाले को लड़की के कुछरूपये जो तय होते हैं वो देने पड़ते हैं शब्बू के दुने दाम चुका कर उसके घर वाले ब्याह कर लाते हैं मगर यह एक घरेलू लड़की नहीं साज श्रृंगार करके नखरे से घूमना उसका स्वभाव है इसलिये उसके घर वाले उससे खुश नहीं मगर दाम्पत्य जीवन को जो बिखेर कर रख देता है वह है "शक" ये अगर दो में से किसी को भी हो जाये तो कुछन कुछ किये बिना दम नहीं लेते।जब्बार जबदूसरे गाँव कुछ धन्धा करने चला जाता है तो वो शब्बू को छिपकर देखने के लिये आता है अत:उसके बनाव श्रृंगार करके हँसते,इठलाते रहने से जब्बार को शक हो जाता है और वह सोचता है कि शब्बू का हुस्न ही हर मुसीबत की जड़ है अत: वह उसकी नाक काट लेता है लोग सलाह देते हैं कि नाक पर ताजा गोश्त रखने से वह ठीक होगी अन्यथा वह मर जायेगी तो जब्बार अपनी जाँघ से काटकर गोश्त उसकी नाक पर रखता है और उसे लेकर वहशहर में दिखाने जाता है उसी तरह लगड़ाता है और हस्पताल में उसकी देखभालमें कोई कसर नहीं रखता।अंत में शब्बू के जिद करने पर प्लास्टिक कीनाक लगवा देता है मगर एक शर्त के साथ कि जब कोई उसे घूरे तो वहनाक उतारकर रख ले। इस प्रकार लेखक ने पति-पत्नी के बीच नाजुक रिश्ते को साकार किया है।

"मोटर वाली-कोयले वाली" कहानी में लेखक ने समाज के बदलते हुए दृष्टिकोण पर प्रकाश डाला है किस प्रकार मानवता पर,इन्सानियत पर,पैसा हावी हो रहा है अब सिर्फ अर्थ कीमहत्ता है सारे रिश्ते नाते पैसे की भेंट चढ़ गये हैं वर्मा कीशादी रूपा से तय हुई थी वह बहुत खुश था अपनी कल्पना की दुनिया में नये-नये सपने सजाता था ~~[illegible]~~ उसको क्या मालूम था कि उसके साथ रिश्ता उसको मिलने वाली जायदाद के कारण हुआ है मगर जब वह जायदाद उसको नहीं मिलती है तो उसके साथ रूपा का रिश्ता तोड़ दिया जाता है और दूसरे अमीर लोगों के यहाँ कर दिया जाता है इससे वर्मा का दिल टूटजाता है वह परेशान होकर मायूस उखड़कर रहता है।वहाँ एक कोयलेवाली लड़की है जो निश्छल, निष्कपट,सरल है धीरे-धीरे वर्मा उसकी मासूमियत की ओर आकर्षित होता है लेकिन अंत में जब कोयलेवाली उससे कोई याद की चीज माँगती

है तो वर्मा कहता है कि मैं तुमको अपनी तस्वीर दूँगा मगर कोयले वाली कहती है कि वह तस्वीर लेकर क्या करेगी उसे तो सोने की जंजीर चाहिये। उसने पूछा-"सोने का क्या होगा?" उसने उत्तर दिया-" बुढ़ापे में क्याखाऊँगी?" वर्मा ने उसे रुपये दे दिये और उसे निकालकर सोचने लगा-"हाय, सोना, हाय रुपया---यह मोटरवाली और कोयलेवाली सब एक हैं। इनका देवता पैसाहै, प्रेम नहीं।"[1]

दो दुनिया कहानीसंग्रह में एक बड़ी अच्छी कहानी है "कुत्ते कीपूँछ।" इस कहानी में एक अनाथ बच्चा है जिसको कोई उसका रिश्तेदार एकहलवाई के यहाँ छोड़ गया था जिसके साठ रुपये उस बच्चे के बाप पर बाकी थे। वह हलवाई बच्चे से बड़ी मेहनत करवाता था। अपने से भी कुछ बड़ा कड़ाव बच्चे को माँजता देख एक भले घर की भद्रमहिला का दिल पिघल गया और मार्क्सवादी अन्दाज में कहा "मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की कोई सीमानहीं। किन्तु आज इस तरह दूसरों के शोषण पर हाय हाय करने वाली कल स्वयं उसी बच्चे का शोषण करने लगती है। फलतः गरीब पर अमीर का शोषण, दीन पर शक्तिवान का शोषण ये सब एक चक्र की भाँति चलता रहता है। जिस बच्चे को बड़े दया भाव से मेम साहब ले गयी थीं उसे अच्छेकपड़े पहनाकर स्कूल आदि में पढ़ाकर लाड़-प्यार करके आदमी बनाना चाहती थीं किन्तु बाद में वही लड़का उनको भार लगने लगा वह उनको जानवर नजर आने लगा। पहले कहती थीं, लड़के में स्वाभाविक प्रतिभा है। यदि उसे अवसर मिले तो वह क्या नहीं कर सकेगा? किन्तु वही बाद में कहती है-"तुम्हीं बताओ मैं इसका क्या करूँ? वही बात हुई न कि कुत्ते का मुँह न लीपने का, न पोतने का। अच्छी बला गले पड़ गई। श्रीमती जी को उसकी कोई भी बात नहीं सुहाती उसकी हर हरकतें उन्हें गलत मालूम पड़ती है हरदम बच्चे के खाने की ओर आँखे उठाये रहता है। जाने कैसा भुक्खड़ है। इन लोगों को कितना ही खिलाओ, समझाओ, इनकी भूख बढ़ती ही जातीहै---।"[2]

आखिर ये बदलाव क्यों आया क्या कारण है किश्रीमती जीइस तरह का व्यवहार करने लगीं कारण था कि जानवर को आदमी बनाना बहुत कठिन है। उसे पुचकार

- -

1- यशपाल-दो दुनिया- मोटरवाली कोयलेवाली-पृ0- 7।

2- यशपाल- दो दुनिया-कुत्तेकी पूँछ-पृ0- 88

पास बुलाने में बुरा नहीं मालूम होता क्योंकि उसमें हमें दया करने का सन्तोष होता है। परन्तु जब जानवर स्वयम हीपर गोद में रख मुँह चाटने का यत्न करने लगता है तब अपना अपमान जान पड़ने लगता है-----। "बात सिर्फ बच्चे के शोषण के साथ-साथ मजदूरों के शोषण पर भी लागू होती है लेखक ने साफ कहा यही सरकार मजदूरों की भलाई के लिये कानून पास करती है और जब मजदूरों का हौंसला बढ़ जाता है तो वे खुद ही सुधार मांगने लगते हैं तब सरकार को उनका आंदोलन दबाने की जरुरत महसूस होने लगती है।"[1]

इस प्रकार ये कहानी हमारी मानसिकता का परिचय देती है हमारे हर कार्य के पीछे कोई न कोई स्वार्थ काम करता है। हम गरीबोंपर दया करते हैं अपने अहम को संतुष्ट करने के लिये अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मात्र मानवीयप्रेम से नहीं, हमें दया की भीख देना अच्छा लगता है अधिकार देनानहीं। बड़े-बड़े मिल मालिक मजदूरों के गिड़गिड़ाने पर उनकी दयनीय अवस्था से द्रवित होकर उन पर कुछ दया करने को तो तैयार हो जाते हैं किन्तु यदि मजदूर अपने अधिकार की बात करता है तो वह तिलमिला जाताहै। पशुता के केन्द्र में शरीर होता है, किन्तु मनुष्य में स्वार्थ से परे जाने की प्रवृत्ति होती है। मनुष्य की सामाजिकता का आधार यही प्रवृत्तिहै। पशु प्रकृति का जीवन जीता है और मनुष्य संस्कृति का। मनुष्य के सुसंस्कृत रूप का प्रतिबिम्ब उसके विभिन्न सामाजिक व्यवहारों में दीखता है। प्रेम भी मनुष्य की सामाजिकता का , एक आयाम है। ।गुड बाई दर्दे दिल।।[2] ये कथन "गुडबाई दर्द दिल के लिये कहा गया है इसमें शीश को प्रेम सामाजिकता का एक आयाम है, वह जिसको चाहती है देखती है उसमें मनुष्य के प्रति प्रेम नहीं, उसे अपने आगे किसी दूसरे की परवाह नहीं उसमें सामाजिकता, का बोध नहीं अतः वह उसे छोड़ देती है। कहानी में रिक्शेवालों के दर्द की कहानी कही गई है। पहाड़ों पर रिक्शेवालों को ऊँचे चढ़ाई पर सवारियों को लेकर चढ़ना पड़ता है चढ़ाई पर रिक्शा थोड़ा धीरे तो चलता ही हैअतः उस पर बैठे सवारये समझते हैं कि रिक्शे पर बैठे और सर्राटे से रिक्शा खिंचता चला जाये उन्हें इस बात से मतलब नहीं कि खींचने वाला अपनी जान निकालकर खींच रहा है वह उस पर से उतर जाने की धमकी देते हैं वहस्वयं तो कदम पैदल नहीं चल सकते उनकी

1- यशपाल- वो दुनिया-कुत्ते की पूँछ- पृ0- 89-90
2- यशपाल की कहानियाँ- कथ्य और शिल्प - डा0 चन्द्रभानु सीताराम सोनवणे पृ0- 54-55

पैंट और जूते धूल से खराब हो जायेंगे। रिक्शेवालों को जोरसे चलने के लिये कहने पर वह जोर से चले और उनमें से एक कुली पहाड़ की चट्टान से टकरा कर गिर पड़ा। एक इन्सान की जान पर बनी थीं मगर इन अमीरजादों को अपना सामान लादने और घर पहुँचने की चिन्ता हो रही थी उनका कितना वक्तखराब किया इन बदमाश कुलियों ने। दोनों सवारों ने कुली का पैसा भी नहीं दिया और दूसरे रिक्शे से चले गये वह उन्हें पैसा क्यों दें? कितना परेशान किया है इन कुलियों ने उनका समय बर्बाद किया उन्हें जगह पर पहुँचाया भी नहीं तो पैसा किस बात का। ये कुली जो इन्सान हैं वो क्यों इन्सान ढोने का काम करते हैं जिस पहाड़ पर आदमी स्वयं का बोझ लेकर नहीं चल पाता वहीं पर ये बेचारे दूसरों को लादकर चलते हैं क्यों? हुजूर पेट का वास्ता---अरे भाई इनका कसूर क्या?---कसूर है उन लोगों काजो इनकी गरीबी का फायदा उठाकर इन्हें इन्सान से हैवान बना देते हैं?कुछ सज्जनों का विचार था कि इस कुली को अस्पताल ले जाओ। मगर इस गरीब का इलाज कौन सा अस्पताल करेगा गरीब का कोई सहारा नहीं अतः उस भीड़ से एक सज्जन कहता है-" अस्पताल ले जाओ? पर कौन से अस्पताल? इन्सानों के या हैवानों के? और अगर दोनों ही अस्पतालोंने इसे लेने से इंकार कर दिया---?। कहानी में विषम परिस्थितियों का चित्रण है एक तरफ ये गरीब तबका जो पेट के कारण जानवर की तरह मेहनत करता है और अंत में कुत्ते की मौत मरता है और दूसरी तरफ बंगले के लॉन में बैठकर चाय पीना, गप्पे मारना और समय बिताने के लिये टेनिस खेलना यह है इनकी जिन्दगी।

वो दोनों सवारियाँ रणजीत और केशव अपने बंगले पर आकर उतरे तो वह पहले वाला कुली उसके पीछे-पीछे भागता हुआ अपने पैसे के लिये आया लेकिन वह लोग पैसा देना नहीं चाहते थे उस पर भीस्पर्ध क्या हैं वे भूलकर उस कुली को कहते हैं"क्या जानवर है, मरते आदमी की फिक्र नहीं।---पैसे के लियेदौड़ा आयाहै।"इन अमीरों को इस बात सेभीनहीं मतलब कि वहक्यों रिक्शा खींचते हैं उन्हें शौक नहीं कि अपना खूनजलायें उन लोगों की नजर में ये मजबूरी नहीं लालच है "देखिये तो इन लोगों का लालच। जिस्म में ताकत नहीं है तो क्यों तुम रिक्शा खींचने आते हो?अपने पैसों के लिये दूसरे आदमी का वक्त खराब करोगे---बेशरम कहीं के।---क्यों तुम ऐसाकमजोर आदमी लाया। तुमने हमारा सबा घंटा खराब कर दिया। अंत में आभा जो रणजीत को चाहती थी, रणजीत अपना दर्द

से भरा दिल शशि के कदमों में रख देना चाहता है औरशशि कहती है और तुम्हारे कदमों में पाँच रुपये में खरीदे हुये आदमी की लाश---१" इसप्रकार प्रगतिवादी प्रेम सामाजिकता के परिवेश में ही होता है उसे स्वार्थ और संकीर्णता पसन्द नहीं अतः शशि ने उसे ठुकरा दिया। "अभिप्राय है प्रेमयदि व्यक्तियों के परस्पर आकर्षण का सुसंस्कृत रूप है तो व्यक्ति की वह संस्कृत केवल यौन आकर्षण में हीप्रकट न होकर सामाजिक व्यवहार में भी होनी चाहिये।"

दो दुनिया में नई दुनिया कहानी में लेखक ने मार्क्सवादी विचारधारा के अनुसार मजदूरों और मिल मालिकों का संघर्ष चित्रित किया है। इस कहानी में व्यक्ति मात्र की समस्याओं और मजबूरियों का चित्रण नहीं पूरे समाज की समस्याओं का चित्रण है और लेखक समाधान भी व्यक्तिगत नहीं समष्टिगत चाहता है। माथुर मजदूर नेता है और सरीन मिल के मालिक। जिन्हें अपनी मेहनत के पन्द्रह सौ रुपये महीना वेतन मिलता है। माथुर मजदूरों के हित में लड़ रहा है। क्योंकि मिलमें नयी मशीन आ रही है और ये साढ़े चार लाख की है अतः ये कुछ काम तो करेगी ही और जब आदमियों के बदले ये काम करेगी तो मजदूरों में से छटनी तो होगी ही और फिर मशीन तेजीसे काम करेगी देश की औद्योगिक उन्नति होगी। लेकिन उन्हें इसबात से कोई मतलब नहीं कि उन्नति मात्रचन्द लोगों की होगी इस उन्नति मेंदेश की तीन तिहाई जनता का कोई हिस्सा नहीं उल्टे मशीन के काम करने से हजारों मजदूर बेकार हो जायेंगे।

मिल मालिक मजदूरों पर दया करके उनके लिये कुछ सहायता करना चाहते हैं मगर माथुर कहते हैं कि सहायता करने का मतलब ये होना चाहिये कि वे सहायता के लिये किसी का मुँह न तककर स्वयं मालिक बन जाय। वह अपनी आवश्यकतायें स्वयं पूरी करने में सक्षम हो। माथुर भी अपनी सहायता स्वयं नहीं कर सका था-

माथुर एक गरीब परिवार का लड़का था ट्यूशन करके आगे पढ़ाई जारी किये था। पिता केअधिक परिश्रम से वह बीमार हो गये और फिर वही हुआ जो देश को करोड़ों लोगों के साथ हुआकरता है। माथुर को अपने पिता को बचाने के लिये एक सौ बानबे रुपयों की जरूरत थी क्योंकिजिस दवा से वो बच सकते थे वह एक सौ बानबे

रुपये की थी, किन्तु माथुर के पास इतने पैसे नहीं थे अतः दवाई मौजूद होते हुए भी वह अपने पिता को न बचा सका मात्र पैसा न होने से -"दवाई डॉब्सन कम्पनी की अलमारी में रखी रही इस प्रतीक्षा में कि किसी का खून पतला पड़े,कोई मरने लगे तो एक सौ बानबे रुपये उन्हें दे। मनुष्य के प्राणों की चिंता किसी को नहीं एक सौ बानबे रुपये की चिन्ता है।"[1] जिस आदमी ने 23 वर्ष तक स्कूल में लड़कों को पढ़ाकर समाज कीसेवा कीउस समाज से उन्हें अंतिम समय दवा भी न मिल सकी। आज समाज में हर जगह पैसाकमाने की होड़ लगी है कम्पनियाँ दवाई इसलियेनहीं बनाती किउससे बीमारों कीप्राण रक्षा होगी वह उससे पैसा कमाने के लिये बनाती है। मिले कपड़ा इसलिये नहीं बुनती की उससे नंगों का तन ढकेगा। "समाज में सब जगह परस्पर यही होड़ और द्वन्द्व चल रहा है।व्यापार का अर्थ लोगों की आवश्यकता पूरा करना नहीं बल्कि उनकी जेब से पैसा खींचना है।नौकरी का प्रयोजन भी यही है।शिक्षा और पढ़ाई का प्रयोजन है,दूसरों को पीछे हटाकर अपने लिये स्थान बनाने की योग्यता प्राप्तकरना।"[2]

किन्तु कारण क्या है किहमपरिश्रम भी करते हैं और हमारे देश में आवश्यकताओं को पूरा करने योग्य साधन भी हैं और शक्ति भी है तब भी दुनिया की और देश की ये हालत क्यों?क्योंकि शक्ति का उपयोग इस काम के लिये नहीं होता। जिन लोगों के हाथ में शक्ति है,वे मनुष्य की इस शक्ति को अपनी शक्ति या पूंजी बढ़ाने के काम में लगाते हैं, जनता के हित में नहीं। जनता परिश्रम करके भी कंगाल है बल्किउन्हें बेकार बनाकरपरिश्रम करने का अधिकार भी उनसे छीन लिया गया है। यह दुनिया स्वयं अपना सर्वनाश कर रही है।"[3]

माथुर को मिसेज सरीन सलाह देती हैंकि वह उनके पति की मिल में सौ रुपये माह पर काम करले क्योंकि इस गरीबी के कारण ही उसके पिता की मृत्यु हुई अतः अब वह अपनी माँ को ही सुख दे। किन्तु माथुर उनमें से नहीं जो मात्र अपने सुख की बात सोंचे उसकी समस्या का हल होने का मतलब ये नहीं कि समस्या सुलझ गई दुनिया में एक

- -

1- यशपाल-नई दुनिया-धो दुनिया- पृ0-133
2- वही,पृ0-135
3- वही,पृ0- 135

मात्र वही नहीं पूरा समाज इसी तरह की समस्याओं से जूझ रहा है हल हो तो सामाजिक रूप में हो पूरी व्यवस्था बदले जिससे समाज का हर व्यक्ति अपना अधिकार पा सके अपनी आवश्यकतायें पूरी कर सकें। माथुर को नौकरी मंजूर नहीं वह कहता है संकट हर व्यक्ति के सामने है जिसके पास नहीं है वह पाना चाहता है जिसके पास है वह गंवाने से डरता है अतः इसका उपाय व्यक्तिगत रूप से नहीं, सामाजिक रूप से ही हो सकता है, व्यवस्था को बदलने की जरूरत है सामाजिक प्रयत्न से। माथुर का विश्वास है कि ऐसा सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन मजदूर वर्ग ही ला सकता है। वह चाहता है कि सब लोग अपने परिश्रम का पूरा फल पा सकें और आत्मनिर्भर हो१।"

मिल ने नई मशीनरी मँगवाली और फालतू मजदूरों को कुछ दिन के लिये हटाना चाहा अतः हड़ताल होने की सम्भावना हो गई। मिल में हड़ताल हो गयी, सतीन की चिन्ताओं का ठिकाना न रहा। मजदूरों के आगे झुकना उन्हें स्वीकार नहीं। मजदूर मिल को चारों ओर से घेरे रहते थे और "इन्क्लाब जिन्दाबाद। मजदूरों का राज हो आदि नारे लगाते रहते थे। मिल पर धरना देने वाले मजदूरों को पुलिस पकड़ कर ले जाती। इस तरह सवा सौ मजदूर जेल पहुँच गये।" सवा दो महीने से मजदूरी न मिलने के कारण हजारों मजदूरों के बाल बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। मिल के डायरेक्टर गिरफ्तार और हड़ताली मजदूरों के रोते बिलखते बाल-बच्चों को खींच खींचकर क्वार्टरों से बाहर निकाल उनमें ताले लगा रहे हैं। इस समय जब आप गरम और नरम लिहाफों में अपने बाल-बच्चों को सीने से लगाकर सोते हैं, डेढ़ हजार मजदूर स्त्री-पुरुष, बच्चे पूस की रातों की गहर ओस में मैदानों में पड़े कुड़कुड़ाया करते हैं। इनमें पचास को निमोनिया हो गया है और डेढ़ सौ के करीब बुखार से मर रहे हैं। यह सब संकट झेलकर भी मजदूर डटे रहेंगे जब तक की मिल मालिक साढ़े तीन सौ मजदूरों को मिल से निकालने का हुक्म रद्द नहीं कर देते---। मिल मालिक मजदूरों के परिश्रम से मुनाफा कमाकर उन्हीं की रोटी छीन लें, यह कभी बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।"२

- -

१--

२-- यशपाल --दो दुनिया--नई दुनिया-- पृ०--१४४

हड़ताल के दौरान मजदूरों में फूट डलवायी जाती है थोड़े ज्यादा पैसे का लालच देकर दूसरे मजदूर लाये जाते हैं। हड़ताल को असफल करने के लिये। मजदूरों का मिल मालिकों के खिलाफ जमकर संघर्ष इस कहानी में उजागर हुआ है मजदूर मर जाना चाहते हैं मगर झुकना नहीं चाहते, ये मात्र अपने लिये नहीं लड़ रहे बल्कि दुनिया भर के गरीब मजदूरों के लिये लड़ रहे हैं। क्या मजदूरों ने अपने परिश्रम से लाखों का मुनाफा मिल मालिकों को इसलिये जमा कर दिया है कि वे नई मशीनें लाकर मजदूरों को बेकार कर भूखा मारे।

मिल मालिक यहाँ तक गिर गये कि लारी में नये मजदूरों को भरवा कर वहउसे मिल के अन्दर पहुँचा देना चाहते हैं फिर चाहें बीच में कितने ही मजदूर कुचल क्यों न जाय किन्तु लारी चलाने वाला भी था तो आखिर एक गरीब, वह अपने गरीब भाइयों पर लारी कैसे चला सकता था उसेन साफ इंकार कर दिया हुजूर। यह हमसे नहीं हो सकता----मजदूरों के ऊपर लारी हम किस तरह चला दें? वो सामने से हटते नहीं। लारी चलाने वाले के मना करने पर भी सरीन साहब नहीं माने वो तो अड़े थे कि लारी चलाओ अन्यथा मजदूरी नहीं मिलेगी। सरीन अपनी इज्जत बचाने के लिये बीस लाख तक खर्च करने को तैयार हैं किन्तु मजदूरों के आगे घुटने टेकने को तैयार नहीं। वह इतने जल्लाद बन चुके थे कि उनके सिर पर खून सवार था अतः लारी स्वयं चलाने का फैसला कर सरीन लारी लेकर चले। जब लारी आगे चली तो कुछ मजदूरों जो आगे लेटे थे हटकर एक ओर हो गये मगर एक आदमी आगे लेटा रहा और वहआदमी था माथुर। लारी उस को कुचलती हुई आगे निकल गई। माथुर को ऊर्मिला सरीन अपने यहाँ उठा कर ले गई डा० से उनका इलाज करवाया। मगर कोई फायदा नहीं। अंत समय में माथुर ने नये भविष्य को आशीर्वाद दियानयी दुनिया बसाने का।जो काम वो अधूरा छोड़ कर जारहा है उसे आशा है अगली पीढ़ीउसे जरूर पूरा करेगी। उधर मिल मालिक सरीन भी मारे जाते हैं।

इस प्रकार पूरी कहानी में पूँजीवादी व्यवस्था का विरोध है, अपने अधिकारों के प्रति मजदूरों का संघर्ष है और ये संघर्ष जारी है, कोई किसी के आगे [illegible]नहीं अपना

बलिदान कर दिया।

"वो दुनिया" कहानी में समाज की अव्यवस्थाओं पर व्यंग्य है और नयी दुनिया कैसी हो, ये दुनिया कैसी है? क्यों हैं इस पर लेखक ने अपने विचार प्रकट किये हैं। लेखक का विचार है कि महाजन जो सूद पर अपना रुपया लगाते हैं वो इतने सूद पर पैसा क्यों लगाते हैं क्योंकि उन्होंने अपनी सौ जरूरतों को पूरा नहीं किया तब जाकर हजार दो हजार रुपया वे जोड़ पाये होंगे कि लोगों को कठिनाई और आवश्यकता पड़ने पर वे रुपये पर एक आना माहवार सूद लेकर, उनकी सहायता कर सकें। "लेकिन सहायता वो दूसरों की क्या दूना सूद लेकर अपनी ही करते हैं और पैसों के बल पर दूसरों की मजबूरी खरीदते हैं। पूँजी के जोर पर दूसरों के उपार्जित परिश्रम को मुनाफे के रूप में छीनकर जमा करते जाते हैं। इस संचित परिश्रम को न तो मेहनत से कमाई करने वालों को खर्च करने देते हैं न वे स्वयं ही खर्च करते हैं।"

पूँजीवादी युग में पूँजी की वृद्धि के लिये कमाई होती है। जिन लोगों के हाथ पूँजी है वह ही और भी कमाते हैं और जिनके पास पूँजी नहीं है वह बैठे हाथ मला करते हैं। बेकारी क्यों हो जाती है और पूँजी एक दायरे में क्यों संकुचित होती जाती है इसके लिये कहानी के एक पात्र की जुबान से लेखक जो कहलाते हैं कि पूँजी को पैदावार की शक्ति का रूप, मिल या व्यापार की शक्ल में दिया जाता है। वह और भी अधिक पैदावार करने लगती है। परन्तु पैदावार के लिये चाहिये खरीददार। खरीददार आये कहाँ से? खरीददारी तो तब हो सके जब परिश्रम का फल परिश्रम करने वालों के हाथ में रहे। यहाँ जो भी पैदावार होती है वह कमाने वाले के पास लौट जाती है। पूँजी के देवता जब खरीददार नहीं पाते तो पैदावार का दायरा कम करते हैं और बेकार बढ़ते हैं। "-1

इसी कहानी में तत्कालीन नारी के लिये भी विचार व्यक्त हुये हैं कि पुरुष नारी पर अपना एकाधिकार समझता है और अपनी आवश्यकता के लिये उसे घर में सजी वस्तु बनाकर रख लेता है- उनका जीवन है, दफ्तर में तीस रुपये पाने वाले बाबू

- -

1- यशपाल-वो दुनिया- पृ0-159

जी की इच्छा और आवश्यकता पूर्ति के लिये।----यह आधी दुनिया पेट की रोटी और तन के कपड़े के लिये बता नहीं सहती या इनका मन ही ऐसा बन गया है कि मूक गुलामी को अपना परमधर्म और परम सम्मान समझे बैठी हैं। ये तो एक मामूली आदमी की स्त्री का चित्र था मगर अमीर आदमी की स्त्री का चित्र इससे कुछ भिन्न होता है किन्तु अवस्था उनकी भी किसी गुलाम से कुछ कम नहीं। वे समाज के डर से आँचल से सिर नहीं ढकती, जरीदार साड़ी पहनकर चेहरे पर मेकप करके निकलती हैं। वह महफिल में रोटी, कपड़े की चर्चा नहीं करती और न ही सन्तानोत्पत्ति की ओर उनकी रुचि होती है किन्तु गरीब की स्त्री छोटी-छोटी आवश्यकता की पूर्ति न होने पर अपने पति को उलाहना देती रहती है और कठिन जीवन संघर्ष के इस जमाने में मेरी कमाई के स्वल्प आधार पर निर्भर करने वाले पैदा किये चली जाती है। जिस सन्तान की कामना से हमारे पूर्वज तपस्या किया करते थे, उस सन्तान का आगमन मेरे लिये महा चिन्ता का विषय बनता जाता है। भरी हुई रेलगाड़ी में चढ़ने वाले मुसाफिर का जैसे आदर नहीं होता, उसी प्रकार मानों दुनिया में उनके लिये कोई स्थान न होते हुये भी वे चले चले आते हैं।"[1]

लेखक ने बड़ी गम्भीरता से इस दुनिया की समस्याओं और लोगों की परेशानी पर प्रकाश डाला है, "क्या अमीर? क्या गरीब? किसी न किसी रूप में सभी दुखी हैं। हर इन्सान को कुछ न कुछ कमी है कारण क्या है? विज्ञान द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क की पहुँच और उसका सामर्थ्य बढ़ता चला जा रहा है परन्तु ठीक उसी हिसाब से यह दुनिया सिकुड़ती चली जाती है। मनुष्य के लिये रहने का स्थान और उसके लिये जीवन निर्वाह के अवसर घटते चले जाते हैं। कुछ ऐसे व्याकुल होकर देखते हैं कि सब प्रकार से परिश्रम करने के लिये तत्पर रहने पर भी परिश्रम करने का अवसर नहीं मिलता।और मिलता है तो इस शर्त पर कि अपने परिश्रम के फल का बड़ा भाग उसके चरणों में सौंप दें।

कहानी में इस पर भी विचार व्यक्त है कि दुख से बचने का उपाय ये नहीं कि उसे भ्रम मान लिया जाय यदि सब कुछ भ्रम मान लिया जाय तो मनुष्य जीवित कैसे

- -

1- यशपाल- दो दुनिया- पृ0-163

रहेंगे और संसार को दुखमय समझ, उसे भूल, उससे मुक्ति पाने की चेष्टा करना व्यक्तिगत उपाय है। बात है पूरे समाज की और समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति की, एक व्यक्ति के मुक्त हो जाने से पूरा समाज मुक्त नहीं हो जाता। आज समाज किस ओर जा रहा है और मनुष्य में निरंतर गिरावट आ रही है मनुष्य का नैतिक स्तर समाप्त हो चुका है और हर चीज का स्थान रुपये ने ले लिया है-समाज का रक्त रुपये का रूप धर सब काम चलाता है। समाज के शरीर में कीड़े पड़ गये है। जो मुनाफा खाते हैं येह कीड़े समाज के रक्त को मुनाफे के रूप में अपने तोंद में भरते चले जाते हैं और समाज का शरीर रक्त हीन होकर निश्चेष्ट होता जाता है। बेरोजगारी और बेकारी से उसके अंग हिल नहीं पाते। अंगों के हिल न पाने से शरीर बेजान हुआ जा रहा है। शरीर के मुनाफा खोर कीड़े रक्त को समेट रहे हैं। यदि शरीर को जीवित रहना है तो इन कीड़ों से उसे मुक्ति दिलानी होगी।" लेखक ने समाज को खोखला करने वाले पूंजीपतियों की कीड़ों से तुलना की है और समाज को शरीर कहा है अतः प्रतीकों के माध्यम से समाज के विकृत रूप का चित्रण किया है।

भारतीय समाज की एक बहुत बुरी रीति है कि वह भगवान से तो डरता है और उसके नाम पर जाने क्या क्या करता है किन्तु मनुष्य की उसकी निगाह में कोई महत्ता नहीं वह मनुष्य को लूटता खसोटता रहता है। इस दुनिया में मनुष्य जिन सुखों के लिये तरसता है उसे उस दुनिया में पाने के लिये वह भगवान को भेंट चढ़ाता है और दान पुण्य करके अपना परलोक सुधारता है। बड़े आदमी यह दुनिया कमाकर वो दुनिया खरीद लेने की चेष्टा करते हैं और गरीब आदमी इस दुनिया से हाथ धोकर उस दुनिया की आशा करते हैं।

इस प्रकार समाज में रहने वाले मनुष्यों से संघर्ष की कहानी कहकर लेखक एक ऐसी दुनिया का स्वप्न देखता है, जिसमें मनुष्य को आत्मनिर्णय का अवसर और अधिकार हो। परन्तु ऐसा कर सकने के लिये समाज के रक्त को मुनाफा बनाकर चूस लेने वाले कीड़ों को दूर करना ही होगा जो समाज के शरीर को टाइफाइड, सेप्टिक, कोढ़ या पूंजीवाद, [illegible] से युक्त किये हैं।"[1]

1- [illegible] की दुनिया- पृ0-168

यशपाल जी का एक अन्य कहानीसंग्रह "तर्क का तूफान" इसमें एक कहानी हैं "परदा" जो गरीबी का घिनौना दृश्य प्रस्तुत करता है। यह समाज के लिये बड़े शर्म की बात है कि जहाँ लोगों के पास कपड़ों की गिनती नहीं वहीं कुछ लोग अपना तन ढकने के लिये भी कपड़े नहीं जुटा पाते। परदा समाज में शर्म और हया की निशानी माना जाता है भद्र लोग अपने दरवाजे पर परदा टाँगते हैं और ये परदा ही समाज में उनकी प्रतिष्ठा का उनकी इज्जत का सहारा होता है। ये सबकी इज्जत ढकता है अत: चौधरी परिवार के यहाँ भी परदा उनकी गरीबी की इज्जत रखे था। चौधरी जी की खानदानी सफेद पोश इज्जत थी अत: ऐसा वैसा काम भी न कर सकते थे एक तेल मिल में मुंशीगिरी कर ली थी और बारह रुपया महीना वेतन पाते थे। जहाँ वह रहते थे उसका नक्शा था "कच्ची गली के बीचों बीच गली के मुहाने पर लगे कमेटी के नल से टपकते पानी की काली धार बहती रहती। जिसके किनारे घासउग आई थी। नालीपर मच्छरों और मक्खियों के बादल उमड़ते रहते।"[1] परिवार दिन पर दिन बढ़ गया था और तनख्वाह इतनी ज्यादा न थी अत: घर पर कोई जरूरत पड़ने पर कोई चीज गिरवीं रख उधार आती थी, ब्याज मिलाकर सोलह आने हो जाते और फिर चीज के घर लौट आने कीसंभावना न रहती। किन्तु बाहर लटका परदा घर के अन्दरूनी हालत को छिपाये था। मकान की ड्योढ़ी के किवाड़ बिल्कुल गल गये। एक दिन किवाड़ गिर गये। बाहर सफेद पोशी और इज्जत के कारण चोर का खतरा तो था मगर चोर के लिये घर में एक साबुत कपड़ा तक न था। परदा घर की आबरू था जब वहभी तार तार हो गिर गया तो पुरानी दरी द्वार पर टाँगी गयी।

गरीबी का आलम ये था कि घर में सभी औरतों के तन से कपड़े तार-तार होकर गिरने लगे स्वयं चौधरी साहब के पायजामे में कई पैबन्द थे वहभी साथ छोड़ गये थे। घर में कुछ भी न बचा था जिसे गिरवी रख कुछ इंतजाम कर लेते। लड़के के जन्म पर चौधरी साहब ने एक खान से रुपया उधार लिया था और वहआठ महीने में अदा होना है हुआ था, किसी तरह पेट काट-काट कर सात महीने का तो दे दिया किन्तु जब सूखा पड़ जाने से महँगाई बढ़ गयी तो किश्त देना संभव न हो सका।

1-यशपाल- तर्क का तूफान- "परदा" पृ0- 149-50

खान ठहरा महाजन वह तो रुपया इसीलिये देता है कि रुपये के बीस आने वसूल हो वह यूँ ही अपना पैसा बाँटने थोड़े ही आया है चौधरी को कुछ भी परेशानी हो उसे उससे क्या मतलब उसे तो अपने पैसे से मतलब। चौधरी का परिवार दो समय रोटी को भी तरसने लगा, कभी चौराई और कभी बाजरा उबाल सब लोग एक एक कटोरा पीकर सबर कर लेते थे। उधर खान पैसे के लिये घर पर चक्कर लगाता था और इधर चौधरी साहब बेचारे उससे मुँह चुराये इधर उधर परेशान घूम रहे थे कहीं से कुछ इंतजाम न हो सका। मगर खान तो रुपया लेने आया था उसे ये सब बहाना मालूम पड़ता है अतः क्रोध में उसने कहा "पैसा नहीं देना था, लिया क्यों? तनखा किदर में जाता? आरामी आमारा पैसा मारेगा। अब तुमारा खाल खींच लेगा।---- पैसा नई है तो घर पर परदा लटका के शरीफ जादा कैसे बनता ? ---- तुम अमको बीबी का गेना दो, बर्तन दो, कुछ तो भी दो। अम ऐसे नई जायेगा----।" खान ने खीझ कर क्रोध में परदा घसीटकर आँगन में फेंक दिया अन्दर का दृश्य देखकर उस कठोर का भी मन पिघल गया अन्दर औरतें इस हालत में थीं कि बाहर टँगा परदा ही एक मात्र उनकी आबरू ढके था उनके तन के कपड़े तीन चौथाई फट गये थे। चौधरी बेसुध होकर गिर पड़े होश आने पर देखा परदा गायब था और उसे दोबारा उन्होंने नहीं लटकाया अब उसकी जरूरत भी न थी क्योंकि जिस कारण वह लटकाया था वह आबरू लुट चुकी थी जिसे वह अब तक छिपाये थे वह सबके आगे खुल चुकी थी।

इस प्रकार परदा कहानी सफेद पोश इज्जत और अत्यन्त गरीबी की कहानी कहता है। अपनी पुश्तैनी इज्जत का बोझ ढोते, उसी की हनक मन में लिये न जाने कितने लोग समाज में घिसट-घिसट कर जी रहे हैं। समाज में अब भी कितने लोग हैं जो समाज में अपने बाहरी श्री के कारण प्रतिष्ठित हैं किन्तु अन्दर से बहुत खोखले। बाहर से दिखने वाली हर अच्छी चीज जरूरी नहीं कि वह अन्दर से भी उतनी ही सुन्दर है बल्कि वह अन्दर खोखली ही होती है।

समाज में निरंतर अव्यवस्थाओं के प्रति विद्रोह और संघर्ष जारी था। समय तेजी से बदल रहा था और लोगों में जागृति की लहर दौड़ रही थी। शोषण के प्रति

- -

1- यशपाल- तर्क का तूफान-परदा-पृ0- 155

आक्रोश अब जनता में मुखरित हो गया था अतः साहित्य भी इसी शोषण के खिलाफ लिखा जारहा था। प्रगतिवादी कलाकार हर प्रकार के शोषण का विरोध कर रहे थे अतः गरीब तो शोषित था ही उसके विरुद्ध आवाज उठाने के साथ साथ नारी जो समाज में सबसे बड़ा शोषित वर्ग था, साहित्यकारों के ध्यान का केन्द्र था। अंचल ने अपने कहानी संग्रह "ये, वे, बहुतेरे" में नारी के शोषित रूपों का चित्रण किया है, कि किस प्रकार एक नारी कभी पुरुष के कारण कभी अपनी गरीबी और मजबूरी के कारण लगातार पीड़ा झेलती आयी है, कभी वह वेश्या बन जाती है कभी आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती है। इसी प्रकार नारी पर पुरुष के अत्याचार की कहानी अंचल के कहानी संग्रह ये, वे, बहुतेरे में "जुलेखा" नामक कहानी में एक स्त्री को इसीप्रकार की पीड़ा झेलनी पड़ी। जुलेखा एक नौजवान युसुफ को चाहती थी और युसुफ भी उसे चाहता था। जुलेखा बहुत खूबसूरत थी। बादशाह हुस्नपरस्त थे, कोई भी हसीन लड़की कीचर्चा सुनते तो वह उसे पाने की ख्वाहिश करने लगते। जुलेखा के भी हुस्न के चर्चे सुनकर उन्होंने उसे पाने की इच्छा जाहिर की और हुक्म जारी कर दिया कि जुलेखा उनके हुजूर में पेश की जाये अन्यथा अन्जाम तो मालूम ही है कि क्या होगा?

जुलेखा और युसुफ दोनों एक दूसरे को चाहते थे और कितने-कितने सपने सँजोये थे लेकिन वह सब एक झटके में टूटते नजर आने लगे अतः उन दोनों ने भागजाने की योजना बनायी किन्तु औरत इतनी मजबूर कर दी जाती है कि वह अपने मन की कुछ कर नहीं सकती जुलेखा भी नहीं कर सकी और उसे अपने सपनों का खून करके बादशाह के पास जाना पड़ा। बादशाह के यहाँ उसे रानी बनाके रखने की जगह थोड़े ही था वो तो उसका यौवनारस लूट कर छोड़ देते हैं दर की ठोकरें खाने को "यही ग्रामीण बालिका-एक दिन बादशाह के सीने से सटकर सोती थी। कुछ दिन बादशाह ने जिसका यौवन लूटा वही फिर बादशाह के नौकरों-गुलामों के साथ कमन्य कुकर्म करने के लिये ठुकरा दी गयी और वहाँ से भी आपनी दुकान बढ़ाकर आज वह सड़कों पर दो-दो पैसों पर नाचती, गाती और न जाने क्या-क्या करती है, तब कहीं जाकर पापी पेट भरता है।"[1] क्या-क्या सोचा था उसने अपने यौवन काल में मगर एक कामी पुरुष ने उसे कहाँ पहुँचा दिया। आज वह नरक की जिन्दगी

1- अंचल- ये, वे, बहुतेरे-जुलेखा- पृ0-5।

बिताने को मजबूर है। इसी प्रकार न जाने कितनी लड़कियाँ वेश्या बन जाती हैं और घोर यंत्रणा का जीवन व्यतीत करती हैं।

येसो थी पुरुष के शोषण के कारण बनी वेश्या का रूप और दूसरा है मजबूरी और भुखमरी का कारण जिससे स्त्री को वेश्या बनना पड़ता है। स्त्री न चाहते हुए भी मजबूर है इस तरह के द्वन्द्व में फंसी स्त्रियों का चित्रण अंचल जी ने अपनी कहानी "तब और अब" में किया है। रूपा के पिता की मृत्यु हो चुकी थी वह एक मिल में मजदूर था और हड़ताल के दौरान जब दूसरे मजदूरों को लेकर लारी मिल के अन्दर घुस रही थी तो पहले के मजदूर रास्ता रोककर आगे लेट गये थे, लारी उन लोगों को कुचलती हुई आगे बढ़ गई थी उसीमें उसके पिता की मृत्यु हो गई थी रूपा की माँ ने उसे तन बेचकर पाला था औरअब वह बूढ़ी हो गई थी और मरणासन्न थी , अब वह रोटीकमा नहीं सकतीथी वह भूख से तड़फड़ा रही थी उसे अब अच्छी अच्छी चीजें खाने का मन था, बीमारी के कारण वह बहुत चिड़चिड़ी हो गई थी। जिस माँ ने रूपा को अपने जीवन के काले-काले कुत्सित व्याधि जैसे दुर्गन्धमय कीचड़ में कमल सा निर्दोष निष्कलंक रखा था वही आज भूख से व्याकुल हो उसे भी तन बेचने को कहती है, वह उसे विवश करती है। भूख के आगे मनुष्य को कुछ नजर नहीं आता वह अन्धा हो जाता है। रूपा की माँ भी रूपा पर चिल्लाती कि क्या उसने उसे इसी दिन के लिये पाल पोसकर इतना बड़ा किया था कि वह एक-एक रोटी को तरसती हुई मर जाये।

किन्तु रूपा शुरू से ही इस काम को बुरा मानती आई है उसे इस काम से घृणा है तो वह कैसे ऐसा घृणित काम करे। रूपा का मन द्वन्द्व में फंस गया एक भीषण हाहाकार उसके मन में मचलने लगा। वह क्या करे? जिस बात के लिये उसके अन्दर आज तक एक भी हिलोर नहीं आई वही उसे करना पड़ेगा। रूपा बेचैन हो जाती। उसकी देह जैसे उसी को खाने दौड़ती और उसकी आत्मा शरीर से निकलने लगती। पास पड़ोस से वह जितना उधार और भीख ले सकती थी ले चुकी थी। और काम उसे कोई देता नहीं क्योंकि जिसकी माँ इतना घृणित काम करती हो और प्रसुप्त जैसे घृणित रोग से पीड़ित हो उसकी लड़कीको कोई काम भला क्यों देगा? यही तो है समाज की [illegible] की एक वेश्या की लड़की को भी वेश्यावृत्ति ही करनी पड़ेगी उसे कोई दूसरा काम करने का अधिकार नहीं उस पर वेश्या

की मुहर लग जाती है अगर वह इस वृत्ति से घृणा करती है तो भी करना उसे यही पड़ेगा समाज में उसके लिये कोई स्थान नहीं। रूपा के लिये भी समाजमें अच्छे काम के लिये कोई स्थान नहीं जहाँ व मेहनत मजदूरी करके अपना और अपनी माँ का पेट भर सकती उसे तो वही करना है जो उसकी माँ करती थी। माँ के बार-बार कहने पर वह बाहर आयी। जब रूपा सड़क पर आयी तो शहर की विराट हलचल देखकर वह घबरा गयी, शहर का विलास और वैभव देखकर वह हत-प्रभ रह गयी, गरीबी की फटी फटी सी सिसकन उसे चारों ओर सुनाई दी। दोनों तरफ ऊँची-ऊँची अट्टालिकाये थीं। अधिकार और धन के गर्व में तने, चूर वे भी उसमें थे। जिनके निकट अर्थ और सम्मान के अतिरिक्त किसी चीज का अस्तित्व ही संसार में नहीं। दूसरी ओर चीथड़ों से लिपटे और सहमी सहमी आँखे धरती में गाड़े वे भी थे जिनके लिये पेट और केवल पेट का ही प्रश्न था। जिनके लिये दुनिया एक बेहयाई की मंजिलगन रही थी और अपने अपने भाग्य से जो कफन के पैसों के लिये जूझते फिरते थे।"[1]

रूपा ये सब देखती हुई एक पार्क में गयी जहाँ कुछ बेंचे पड़ीथीं जिस पर उसी प्रकार का धंधा करने वाली लड़कियाँ आकर बैठती थीं और वह एक सपने में खो गई कि उसका एक छोटा सा घर होगा उसकापति मेहनत मजदूरी करके कमाकर जो लायेगा उसी में खुश रहेगी वो इसी प्रकार के सपनों में खोयी थी तभी एक शराबी ने उससे पूछा चलोगी और वह उसका हाथ झटककर भागी, उसने तय किया कि वह भीख माँग लेगी मगर ऐसा घृणित काम नहीं करेगी मगर बदले में उसे भीख न मिलकर मिली फब्तियाँ और गन्दे गन्दे ताने किसी ने भी दया कर एक पैसा न दिया हताश निराश वो घर आ गयी। माँ पहले से ज्यादा ही कमजोरऔर भूख से तड़प रहीथी, ऐसा लग रहा था जैसे भूखउनका एक एक अंग खाये जा रही है। रूपा से माँ की निरीहता देखी नहीं गयी। माँ अपनी अंतिम साँसे गिन रही थी और भूख से तड़पकर इस दुनिया से विदा हो रही थी। रूपा जो अभी तक एक विश्वास में अडिग थी एक अंतर्द्वन्द्व से लड़ रही थी माँ की निरीहता देखकर टूट गई और वह सब करने को विवश हो गई जिससे उसे नफरत थी। वहदौड़कर उसी पार्क में गई जहाँ उसे पहले एक आदमी मिला था किन्तु अबकि वह उस बैंच पर न जाकर गली से दूसरी तरफ चली गई और एक भद्र पुरुष से

- -

1- अंचल- पे, वे, बहुतेरे - तब और अब-पृ0- 64

धन्धे कोबात का बैठी उस पुरुष ने जवाब दिया-"दूर हो कमीनी औरत सामने से। यहाँ आकर भले आदमियों पर डोरे डालती है। शरीफों के लड़कों को ऐसी ही "फ्लर्ट" खराब करती है। फौरन चली जा, नहीं तो अभी पुलिस वालों को बुलाऊँगा। सारी बदमाशी हवा हो जायेगी।"[1]

रूपा के पास अब कोई चारा नहीं सब तरफ से निराश हताश वह बैठ गयी। ये समाज इसी तरह का है वह किसी तरीके से जिन्दगी बिताने में रोड़े अटकाता है शरीफ बदमाश तो आसानी से बन सकता है किन्तु एक बदमाश को शरीफ बनने का कोई माहौल और सहयोग समाज की तरफ से नहीं है।

इसी प्रकार के शोषण से पीड़ित एक और नारी का चित्र है कहानी "एक रात" में जिसमें अमीरों द्वारा गरीब स्त्री का शोषण हुआ है। एक अमीर की लड़की की बारात जा रही है, उसको खूब सारे अमूल्य दहेज से सँवारा गया है और वह दहेज लड़के वालों [illegible] पर पहुँचाने का कार्य कर रहे हैं गरीब, चीथड़ों में लिपटे अपनी गरीबी से तंग चन्द मजदूर और मजदूरनी। गजब की सर्दी की रात है साहब लोग तो बड़े-बड़े ओवर कोट डाटे-कारों पर चल रहे हैं और दहेज का सामान लदे मनुष्यों के धीरे चलने से तंग आकर झल्लाना लगते थे। "जिन लोगों के सिर पर दहेज का राज सी सामान था, वे भी इन्हीं बरातियों जैसे हाड़-मास के बने इन्सान थे। मानव से वे भी मिलते-जुलते थे, यद्यपि वे स्वयं यह नहीं महसूस कर पाते थे कि वे भी मानव हैं। दिसम्बर की गलती हुई शब्द निशा में नंगे पाँवों जब वे बरफ सी ठण्डी सड़कों फटे पुराने चिथड़े और काले गन्दे लत्तों से लिपटे हुए के सिरों पर कीमती कीमती सामान रखे कुलों से चलते जा रहे थे, तब लगता था जैसे वे आदमी और जानवर दोनों के बीच की कोई चीज है।"[2]

इन्हीं मजदूरों में से एक थी रूपा, जिसकापति एक बनते हुएमकान में पानी पहुँचाते समय सीढ़ियों से नीचे गिरकर मर गया था। तब से रूपा पर सारी जिम्मेदारी आ गई थी उसका दो साल का लड़का था जिसे वह घर पर अफीम खिलाकर-सुलाकर आती

- -

1- अंचल- ये, वे, बहुतेरे- तब और अब-पृ0- 63

2- वही, एक रात - पृ0- 96

थी और दूसरा बच्चा उसे होने वाला था। इसी हालत में उसे पाँच मील रात को ठिठुरते हुये जाना था। इतनी जबरदस्त ठंड की रात में हवा से तीर सी मालूम पड़तीथी और वह मन में तरह-तरह के विचार लिये चली जा रहीथी कभीउसे घर में अकेले सोते अपने बेटे का ध्यान आ जाता कि अगर उसकी नींद खुल गई तो वो रोयेगा, आज तक वह बच्चे को कभी अकेला छोड़कर नहीं गई थी। इतनी दूर पैदल चलना उसकेलिये मुश्किल हो रहा था उसे मचली भी प्रतीत हो रही थी और चक्कर भी आ रहा था।लेखक ने अकेले राह पर सोचती चली रही स्त्री की मनोदशा का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।और अपने बच्चे के लिये उसका ध्यान उसकी चिन्ता बड़ी ही मनोवैज्ञानिक बन पड़ी है।पूर्ण रूप से माँ काचरित्र साकार हो गया है।

वह अपने बगल में चलने वाले से पूछना चाहती थी कि अभी और कितनी दूर है किन्तु वह बूढ़ा था और उसकी भी वही गति हो रही थी जो स्वयं रूपा की थी, वह बुड्ढा चल न पाने के कारण बैठ गया। अंत में रूपा से न चला गया और चक्कर आने से वह लड़खड़ाकर गिर पड़ी। बीस सेर का पीतल का फूलदान सड़क पर गिरपड़ा, ये कोई छोटी बात तो थी नहीं, जो बारात के अगुआ थे उन्होंने रूपा के लातें जड़नी शुरू कर दी। और क्यों न रूपा को वह लताड़ते उनका बेशकीमती लैम्प टूट गया था जिसे उन्होंने बिटिया के कमरे में विशेष रूप से सजाने को दिया था। वह गरज कर बोले-"तुम लोग कमीने हो।लातों से मानते हो, बातों से कैसे तुम्हारा पेट भरेगा। बोल तूने क्यों गिराया यह फूलदान? उसे तोड़ डाला तूने। अगर नहीं चला जाता था तुझसे तो क्यों तू आई थी?यहाँ भी तूने हमसे क्यों नहीं कहा?हमउसे किसी दूसरे के सिर पर रख देते और तुझेचला जाने देते। बोल जल्दी जवाब दे।नहीं तो अब की हन्टर से बात करूँगा। सारा शकुन किरकिरा कर दिया।चुड़ैल, कुतियाँ कहीं की।"[1] रूपा क्यों आयी थी अगर उससे चला नहीं जाता था साहब के लिये ये पूछना आसान था मानो वह मौजमस्ती लूटने आयी थी उन्हें क्या मालूम कौन सी मजबूरी रूपा को इस हालत में भी मजदूरी कराने लायी थी। वह अपने बच्चे को अकेला छोड़कर आयी थी मगर मजदूरी करना तो आवश्यक था नहीं तो उसका और उसके बच्चे का गुजारा कैसे चलता। खूब जीभर कर मार चुकने

1- अंचल- रे, दे, बहुतेरे- एक रात-पृ0- 104

के बा उन लोगों ने उसे बिना मजदूरी दिये ऐसे ही सड़क पर पड़े रहने दिया।लोगों ने उसे खींचकर नाली के पास कर दिया। मानव का यह रूप जानवर की तरह नाली के पास पड़ाअपनी पीड़ा में तड़पता रहा मगर इतने बड़े संसार में ऐसा कोई नहीं जो उसे सहारा देता।

औरत के शोषण और पीड़ा का दूसरा रूप है विधवा का।समाज में विधवा का कोई स्थान नहीं वह अभागन है उसे जीते जी मरकर रहना चाहिये एक जिन्दा लाश की तरह।हमारे समाज में बालविधवा की स्थिति तो और भी भयावह होती है।छोटी सी उम्र में शादी हो जाती है, जिस समय उसे शादी का अर्थ भीनहीं मालूम होता।और अगर छोटी उम्र में वह विधवा होगई तो पूरी उम्र उसे वैसे ही काटनी होती है।बालविधवा हर बात से अनभिज्ञ जब यौवनावस्था में प्रवेश करती है तो उसमें इच्छायें,अभिलाषायें सभी जाग्रत होती हैंकिन्तु समाज में इन सबके लिये कोई स्थान नहीं।एक बाल विधवाकी कहानी "भूल न सकूँ" जिसमें कुंती नौ वर्ष की अवस्था में विधवाहो गई थी। विधवाहो जाने से जीवन की सारी,क्षुधा,तृष्णा,द्रोह,मोह आदि प्रवृत्तियाँ और प्रेरणायें कहाँ चली जायें।उन्हें भी तो इसी हृदय के घोंसले में रहना और मानव का जीवन बनाना या बिगाड़ना होता है। कुंती भी इसी प्रकार की स्त्री थी,वह जीवन एक पाषाण की तरह नहीं बिताना चाहती थी, जिसके लिये मन में कोई भावना नहीं थी उसके लिये पूरा जीवन यूँ ही बिता देना कहाँ की [illegible] थी।अत: 13वर्ष की उमर की उस अबोध विधवाने जब ब्राह्मण परिवार में होने वाले सारे पूजा-पाठ,धर्म-कर्म और उपदेश संयम की बातों को मानने से इंकार करना शुरू किया तो सारे गाँवमें तहलका मच गया।एक विधवा जो अपने पूर्वजन्म के ऐसे ही पापों से इस जीवन में मसल दी गई फिर भी आँखे नहीं खोल रही।फिर तो न जाने कितने जन्मों तक उसे ऐसे ही जलना और सुलगनापड़ेगा।"

समाज को इसी प्रकार का अंधविश्वास खाये जा रहा था, विधवा होना पूर्वजन्म का पाप है इसी कारण विधवा पापिन समझी जाती थीउसको देख लेना अपशकुन माना जाता था। कुंती एक ब्राह्मण विधवाहोकर एक ठाकुर से प्रेम करती थी यह पाप गाँव वाले कैसे सह सकते थे इसलिये कुंती को उसके माँ-बाप और रिश्तेदारों ने घरसे निकाल दिया।ठाकुर ने उसे

एक अलग मकान लेकर उसमें रख दिया। दिन-दहाड़े एक ब्राह्मणी जो युवा और विधवा हो, इस प्रकार एक ठाकुर द्वारा रख ली जाय तो गाँव के धर्म के ठेकेदारों में क्षोभ फैल जाना स्वाभाविक था, सारा गाँव उस पर थू-थू करता था यहाँ तक कि उसका रिश्ते का भाई भी उससे घृणा करता था। किन्तु वही भाई जबउससे मिला तो उसने अपने मन की बात अपने भाई को बतायी-" देखो छोटे भैया औरत और मर्द में कोई विशेष भेद नहीं होता परन्तु फिर भी एक दूसरे के लिये एक दूसरा आवश्यक है। फिर मेरे लिये प्रेम करना और प्रेम करकेमाँ बनना यह गलती कैसे है। प्रेम है क्या? अपने को अपूर्ण से पूर्ण करने का यत्न।------मैं कैसे अपने पास इतना रूप, इतना यौवन और भावनाओं का एक अपना ही संसार लिये अकेली जी सकती हूँ। मुझे भी तो एक सम्बल चाहिये।

कुछ दिनों बाद ठाकुर की मृत्यु हो गई। ठकुराइन के भाइयों को ज्ञात हुआ कि ठाकुर ने एक पैसा भी न छोड़ा और ठकुराइन ने बताया कि वह सारा पैसा उस कुंती के यहाँ दे आये तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और वो लोग चले कुंती को घर से निकाल कर सब लाने किन्तु जबवहाँ पहुँचे तो वह अपनी जीवन लीला समाप्त कर चुकी थी। उसे मालूम था कि ठाकुर के बाद अब कोई नहीं जो उसे सहारा देगा उसकी भावना को समझेगा, उसका सारा जीवन ठाकुर से बँधा था अतःउसके मरते ही उसने भी अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली। इस समाज और समाज में रहने वाला मनुष्य कभी किसी को पूर्ण रूप से समझ नहीं पाता। हम किसी को ऊपरी व्यवहार को देखकर उसके प्रति अपनी विचारधारा बना लेते हैं उसके मन में झाँक कर देखने की कभी चेष्टा नहीं करते। एक निचाई में भी कहीं न कहीं ऊँचाई और महत्ता छिपी रहती है। हम किसे क्या कहें और समझें। किसके मानस की गहराई तक हमारी पहुँच है। किसके जीवन की अन्तर्शिखा हम देख पाते हैं।

पे.वे. बहुरि की अंतिम कहानी अत्यंत मार्मिक और इस विषम समाज की बड़ी चिन्तीय स्थितियुक्त करती है। ये कहानी यानि "हत्यारा" असल में गरीबों की कहानी कहती है। समाज में निरंतर ऐसी घटनायें होती ही रहती है। कहानी एक गरीब इन्सान की है। ——— उसके झोपड़े के सामने के तालाब के सूखने से प्रारंभ होती है। जिस प्रकार वह तालाब सूख गया है उसी प्रकार रामदीन के जीवन की सभी आशायें सूख गई हैं जीर्ण-शीर्ण हो गई हैं।

गरीबी के कारण उसकी पत्नी और फिर उसका जवान बेटा अपनी अँधी बहु को छोड़कर चल बसे। अँधी बहु और साथ में उसका छोटा सा बेटा टीपू, इस छोटे से परिवार को पालने की जिम्मेदारी थी रामदीन की मगर वह उन्हें भी पेट में रोटी देने में असमर्थ हो रहा था। रामदीन का काम था, दिन भर सिर पर टोकरा रख मजदूरी करना। किन्तु आज तो रामदीन को कुछ न मिला। बिंदिया काँप उठी वह तो भूखी रह जायेगी, रामदीन भी करीब-करीब आधी जिन्दगी भूखा ही रहा था किन्तु नन्हा टीपू उसका क्या होगा। रात को बिंदिया के खूब जोर का बुखार भी चढ़ गया।

रोज की तरह व फिर अपना टोकरा संभाल कर काम की तलाश में निकला। एक मजदूर की जिन्दगी ही क्या! न घर में आटा था, न पास में पैसा। यूँ तो बिन्दियाँ घरों में आटा पीसकर कुछ पैसे कमा लेती थी किन्तु अब तो उसको बुखार आ गया था अब वह भी नहीं कर सकती थी। बनिए के भी कई रुपये चढ़ गये थे वह रोज तकाजा करता था। आज भी पूरा दिन बीत गया किन्तु रामदीनको एक पैसे से भी भेंट नहीं हुई। टीपू भूख के कारण तड़प रहा था, माँ से बार-बार रोटी माँग रहा था किन्तु वह बेचारी रोटी कहाँ से लाती? तीसरे दिन भी वही कहानी। एक साहब के बच्चे के हाथ से एक बिस्कुट गिर गया, रामदीन ने उसे झपटकर उठा लिया और भूखे टीपू को खाने को दिया और स्वयं दोनों भूखे पेट सो रहे। गरीबी ने अपनी सीमा पार कर ली थी। इन्सान कितने दिन तक भूखा रह सकता है उसकी भी एक सीमा होती है और बेचारा बच्चा वह तो भूखा रह नहीं सकता। रामदीन भी भूख से तड़पते अपने छोटे परिवार को मंजिल तक पहुँचाना चाहता था। रामदीन के दुर्बल मति हीन हाथ टीपू के गले पर दौड़े। वह निःसत्व उँगलियाँ कफन का ताना बाना गूँथ चलीं। रामदीन ने रोज रोज के कष्ट से टीपू को छुटकारा दिला दिया और फिर नम्बर आया बिन्दियाँ का, रामदीन ने बिन्दिया को भी मार डाला। एक बड़ा मार्मिक चित्र लेखक ने उभारा है कि रामदीन बहु और उसके बेटे को साथ साथ नहीं गाड़ता क्योंकि उसे डर है कि कहीं कब्र में भी टीपू बिन्दिया से रोटी न माँगे। मरने के बाद भी प्राणी की भूख प्यास कहीं चली नहीं जाती, ऐसा उसका विश्वास था।

सुबह होते ही पुलिस वाले आ गये रामदीन को पकड़ने। यहाँ तो विडम्बना है अगर वो लोग भूख से तड़पकर मरते तो स्वाभाविक मौत मानी जाती और इस तरह तड़प

कर मरने से पहले रामदीन ने उन्हें कुछ दिन के कष्ट से बचा लिया और पहले की उन्हें दुनिया भर की पीड़ाओं से छुटकारा दिला दिया तो वह हत्यारा हो गया। अंत में जब रामदीन जेल जाने लगा तो उसने तालाब की ओर देखा।" तालाब में फिर पानी लहरा रहा था, पर इस बार उसका रंग फीका लाल था। कुछ-कुछ वैसा ही, जैसा मछलियों को काट कर धोने पर, उनका धोवन।"[1]

इस प्रकार प्रगतिवादी कवियों ने न जाने कितनी ही कहानियां लिखीं जो सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को अपने में संजोये थीं। मकसद था जनता को जागृत करना, सड़ी-गली रूढ़ियों में परिवर्तन करना, समाज को अंधविश्वासों के बंधन से छुटकारा दिलाना, शोषण के विरु. आवाज उठाना, नव निर्माण के लिये क्रांति करना और बंधन के प्रति विद्रोह की भावना, धार्मिक आडम्बरों का तिरस्कार करना। प्रगतिवादी इन सब उद्देश्यों में सफल भी हुए मजदूरों में पूंजीवाद के विरु. विद्रोह का जागरण हुआ। नारियों में पुरुष के शोषण के प्रति विद्रोह जागा और वह अत्यधिक आत्मनिर्भर भरने की चेष्टा करने लगीं। और भी सकड़ों कहानियां हैं जो सामाजिक व्यवस्था के प्रति द्वन्द्व से भरी पड़ी हैं।

1- अंचल- के. के. बहुलेरे -हत्यारा-पृ0- 136

षष्ठ-अध्याय

हिन्दी निबन्ध तथा इतर साहित्य में सामाजिक द्वन्द

निबन्ध में सामाजिक द्वन्द्व

प्रगतिवादी विचारधारा के भारतीय साहित्य में प्रवेश के साथ ही कुछ प्रगतिवादी साहित्यकारों ने प्रगतिवाद के बारे में, मार्क्सवाद और साम्यवाद के बारे में अपने विचार प्रकट करने प्रारंभ किए। समाज में व्याप्त रोष और असंतोष को इन साहित्यकारों ने बारीकी से उजागर किया सामाजिक अव्यवस्थाओं के तह तक जाकर उसकी कमियों को आम जनता के सामने रखा और आमूल परिवर्तन कर नव-निर्माण की आकांक्षा प्रकट की। खोखला हो गये समाज की घिनौनी तस्वीर सामने रखी और नव जवानों को आवाज दी की इस सड़ी हुई समाज की रूढ़ियों को पहचानो, इसे नष्ट कर दो और एक नई दुनिया बसाओ जहाँ सभी को अपनी मूल आवश्यकताओं को पूरा करने की सुविधा हो धन पर श्रम करने वालों का अधिकार हो। ऐसा न हो कि किसान सर्दी गर्मी की परवाह किये बगैर अपने खेत में लगातार फावड़ा चलता रहे एक एक बालियों से वह गेहूँ अलग करता है इकट्ठा करता है। "महीनों को भूख से अधमरे उसके बच्चे चाह भरी निगाह से उस राशि को देखते हैं। वे समझते हैं कि दुख की अंधेरी रात कटने वाली है और सुख का सबेरा सामने आरहा है। उनको क्या मालूम कि उनकी यह राशि-जिसे उनके माता-पिता ने इतने कष्ट के साथ पैदा किया-उनके खाने के लिये नहीं है। इसके खाने के अधिकारी सबसे पहले वे स्त्री- पुरुष हैं, जिनके हाथों में एक भी घट्टा नहीं है। जिनके पास सर्दी से बचने के लिये ऊन और कीमती पोस्तीन है और गर्मी में पंखे, खस की टट्टियाँ हैं या गरमी शिमला या नैनीताल में बीतती हैं।"[1]

मजदूरों के साथ क्या बीतती है इसके बारे में राहुल जी कहते हैं- मजदूर मिलों में तीन-चार आने रोज में काम करता है इतने कम पैसों में वह अपने बीवी बच्चों सबका पालन करता है। एक दिन भी निश्चिन्त हो पेट भर खाना उसके लिये हराम है और उस पर से यदि बीमार पड़ गया तो नौकरी से जवाब और यदि बूढ़ा हो गया या अंग भंग हो गया तो भीख देने वाला भी कोई नहीं। अगर बाजार में माल की खपत कम हो जाती है या दाम गिर जाते हैं तो कारखाना बन्द कर दिया जाता है और मजदूर बेकार

1- राहुल सांकृत्यायन- तुम्हारी क्षय-तुम्हारे समाज की क्षय-पृ0- 7

हो जाते हैं जो जिन्दा ही मौत का काम करते हैं। मजदूर अपने हाथ से महल, बाग और सुख विलास की सामग्रियाँ तैयार करता है किन्तु यह सब चीजें उसके लिये स्वप्न समान हैं उसकी झोंपड़ी हर बरसात में बह जाती है।उन्हीं के खून से मोटी हुई ये तोंदें गरीबों के लिए उन्हें लांछित करती हैं। अमीरों की भाषा गरीबों के लिये दूसरी होती है।बुरी से बुरी गालियाँ केउनके लिये इस्तेमाल करना अमीरों की शान है।

लेखक को शिकायत है समाज के पंचों से जो ये मानते हैं कि अमीरी-गरीबी तो सदा से चली आयी है, अगर सभी बराबर कर दिये जायें तो कोई काम करना पसंद नहीं करेगा। समाज की बेड़ियाँ जेल जाने की बेड़ियों से भी सख्त हैं, कोई बात हुई कि समाज हाथ धोकर पीछे पड़ जाता है। जो पण्डित बैठ कर बड़ी बड़ी अलापें भरते हैं सारा संसार भगवान का रूप मानते हैं, रामायण और गीता का अलाप करते हैं वहीं किसी नीची जाति के व्यक्ति द्वारा कुँआ छू लेने पर उसे खा जाने को दौड़ते हैं।

राहुल जी ने समाज की सभी कुरीतियों और अव्यवस्थाओं पर तीखा प्रहार किया है और उसे गहराई से समझाया है कि क्यूँ हमारी व्यवस्था गलत है।हमारे समाज में लड़कियों की शादी बहुत छोटी उम्र में हो जाती है और यदि उस छोटी ही उम्र में वह विधवा हो जाती है, अब जिन्दगी भर उसे ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-संयम करना पड़ेगा। किन्तु पुरुष के लिये ये कानून नहीं है वो तो अगर पचास वर्ष का भी है तो और उसकी पत्नी मर गई है तो उसे शादी दोबारा करने की जरूरत पड़ जाती है। किन्तु लड़की जो छोटी उम्र में विधवा हो जाती है वह बन्धन में नहीं रहपाती और किसी न किसीसे अपना सम्बन्ध जोड़ लेती है फल होता है समाज द्वारा उसका बहिष्कार और फिर वेश्यावृत्ति करने के अलावा कोई चारा नहीं। समाज के कारण उसके भाई बन्धु उसे जहर भी दे सकते हैं, उसे किसी हथियार से मार भी सकते हैं। "जो समाज इन सब बातों को अपनी आँखों देखता है और इसके परिणामों को भी भलिभाँति समझता है, वह कैसे इतनी अलभ्य और अभागे व्यक्तियों के सामने पेश करता है? क्या इससे उसकी हृदयहीनता स्पष्ट नहीं होती है? हर पीढ़ी के करोड़ों व्यक्तियों के जीवन को इस प्रकार कलुषित, पीड़ित और [illegible] बनाकर क्या वह अपनीनर-पिशाचता का परिचय नहीं देता? ऐसे समाज के लिए हमारे दिल में क्या इज्जत हो सकती है, क्या सहानुभूति हो

सकती है? बाहर से धर्म का ढोंग, सदाचार का अभिनय ज्ञान-विज्ञान का मासा किया जाता है और भीतर से यह जघन्य, कुत्सित कर्म! धिक्कार है ऐसे समाज को!! सर्वनाश हो ऐसे समाज का !!! [1]

समाज में प्रतिभाशाली गरीब बच्चों की कोई कद्र नहीं और धनियों के गदहे लड़कों पर आधे दर्जन ट्यूटर लगा कर ठोक पीट कर आगे बढ़ाया जाता है। अमीरों के लड़के डा० और इंजीनियर बन जाते हैं जबकि उनमें प्रतिभा नहीं होती और गरीब जो प्रतिभा रखते हैं उनके पास धन नहीं इस लिये वह आगे नहीं बढ़ सकते।

धार्मिक मतभेदोंके कारण उत्पन्न अव्यवस्था का वातावरण-

हमारे हिन्दुस्तानी समाज में धार्मिक मतान्धता का बोलबाला है। धर्म के नाम पर हजारों बेगुनाहों का खून बह जाता है, लोग स्त्री और बच्चों को भी नहीं छोड़ते। धर्म में जाति-पाँति के बन्धन भी खूब कड़े हैं केवल हिन्दु समाज में ही नहीं मुसलमानों में भी जाँति-पाँति कम नहीं है, उनमें भी मोमिन। जुलाहा। अत्तार। धुनिया। राइन। कुंजड़ा। आदि का सवाल उठता है। सांस्कृतिक और आर्थिक क्षेत्र में इस्लाम की बड़ी जातों ने छोटी जातों को क्या आगे बढ़ने का मौका दिया? जो धर्म भाई को बेगाना बनाता है, ऐसे धर्म को धिक्कार! जो मजहब अपने नाम पर भाई का खून करने के लिए प्रेरित करता है, उस मजहब पर लानत! एक तरफ तो ये मजहब एक दूसरे के इतने जबर्दस्त खून के प्यासे हैं। उनमें से हर एक एक दूसरे के खिलाफ शिक्षा देता है। कपड़े लत्ते, खाने-पीने, बोली-बानी, रीति रिवाज में हर एक दूसरे से उल्टा रास्ता लेता है। लेकिन जहाँ गरीबों को चूसने और धनियों की स्वार्थ रक्षा का प्रश्न आ जाता है, तो दोनों बोलते हैं।

हमारे समाजमें एक बड़ी बुरी मान्यता है कि अगर कोई गरीबों का खून चूसकर धनी बन गया और शान ओ शौकत से अपना जीवन व्यतीत कर रहा है तो उसे कहा जायेगा कि वह अपने पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का फल भोग रहा है। गरीबों की गरीबी और दरिद्रता के जीवन का कोई बदला नहीं किन्तु यदि वे अपना पेट काटकर पण्डे-पुजारियों का पेट भरते

1- राहुल सांकृत्यायन-तुम्हारी क्षय-तुम्हारे समाज की क्षय- पृ०- 8

रहे तो उन्हें भी स्वर्ग में कुछ सुख प्राप्त हो सकता है। गरीबों को बस इसी स्वर्ग की उम्मीद पर अपनी जिन्दगी काटनी है। किन्तु लेखक का विचार है कि स्वर्ग और बहिश्त के लिये उस समय के भूगोल में स्थानथा। आजकल के भूगोल ने उनकी जड़ काट दी है। विज्ञान ने सारे रहस्य के परदे उठा दिये हैं। फिर उस आशा पर लोगों को भूखों रखना क्या भारी धोखा नहीं है।

ईश्वर के प्रति अविश्वास की भावना-

प्रगतिवाद की एक बड़ी विशेषता यह है कि इसमें ईश्वर नाम की किसी चीज का कोई स्थान नहीं, अज्ञान का दूसरा नाम ही ईश्वर है हम अपने अज्ञान को साफ स्वीकार करने में शर्माते हैं, अत: उसके लिये सुंदर नाम "ईश्वर" ढूंढ निकाला गया है। ईश्वर विश्वास का दूसरा कारण मनुष्य की असमर्थता और बेबसी है। मनुष्य जिसकाम को करने में असमर्थ हो जाता है उसके लिये वह ईश्वर का सहारा लेता है कि भगवान की यही मर्जी है, वह जो कुछ करता है अच्छा करता है। अज्ञान और असमर्थता के अतिरिक्त यदि कोई और भी आधार ईश्वर विश्वास के लिए है, तो वह है धनिकों और धूर्तों की अपनी स्वार्थ रक्षा का प्रयास। समाज में होते हजारों अत्याचारों और अन्यायों को वध साबित करने के लिए उन्होंने ईश्वर का बहाना ढूंढ निकाला है। भगवान कहाँ रहता है इसका जवाब बना लिया गया आकाश में क्योंकि धरती पर बताने से उसे प्रत्यक्ष दिखाना पड़ता।

लेखक ने तर्कों द्वारा ये सिद्ध करने का प्रयास किया कि लोग ईश्वर को दयालु समझते हैं किन्तु वह तो नितान्त पाषाण और हृदयहीन है वह बच्चों को पीड़ा देता है, तकलीफ देता है, बेटे से माँ-बाप छीनकर उसे जीवन भर तड़पाता है, माँ से उसका बच्चा छीनकर उसे परेशान करता है। मात्र मनुष्य ही नहीं अरबों जीव-जन्तुओं को भूख और हवा में मरने के लिये पैदा करता है। भगवान इन सबको न तो अपनी आत्मरक्षा के लिये मारता है और न अपनी भूख शान्त करने के लिये। इन दोनों के न होने पर सिर्फ खेल के लिएऐसा घोर कृत्य ईश्वर को क्या कहलाता है।"[1]

- -

1- राहुल सांकृत्यायन- तुम्हारी क्षय-तुम्हारे भगवान की क्षय

"जब तक न्याय का निर्णय दस प्रतिशत ही हाथ में रहेगा तब तक न्याय की कसौटी यही रहेगी कि नब्बे प्रतिशत के श्रम से दस प्रतिशत का काम चलतारहे। दस प्रतिशत का कल्याण इसी में है कि नब्बे प्रतिशत उन्हें "पिता"के स्थान पर मानकर "पुत्र" की तरह उनकी आज्ञा-पालन करते रहें। समाज के शरीर के हाथ-पाँव बन समाज के पेट दस प्रतिशत को भरते रहे। यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे न्याय, विधान और ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध जाते हैं। राम राज्य में विघ्न डालते हैं। मुश्किल तोयह कि नब्बे प्रतिशत यह कैसे मान लें कि ईश्वर की आज्ञा नब्बे प्रतिशत को भूखा ही रखने की है।"[1] ये विचार व्यक्त किये हैं यशपाल जी ने अपने निबन्ध "न्याय का संघर्ष" में वास्तव में नब्बे प्रतिशत जनता ईश्वर और धर्म के भय से दस प्रतिशत लोगों की गुलामी करते जा रहे हैं। वही दस प्रतिशत न्याय बनाते है वही तोड़ते हैं और अपनी सुविधानुसार उसे बदलते भी जाते हैं।

यशपाल जी ने अपने निबन्ध "गान्धीवाद" में दार्शनिक विचारधारा पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। हमारे समाज में धर्म राजनीति के साथ मिलकर चलता है।और धर्म में हमारे यहाँ परलोक पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है-" उस लोक की कामना और कल्पना से प्रेरित होकर मनुष्य जिस धर्म का संचय करता है, उसमें वह नितान्त रूप से आत्म-हित की ही बात सोचता है। उसके इस आत्महित में किसी दूसरे का साझा नहीं रहता। यदि वह "आत्मवत्सर्वभूतेषु" व्यवहार करने के लिये मजबूर होता है तो वह समाज के कल्याण के प्रति व्याकुल होकर नहीं, अपितु अपने निस्सर्ग जीवन को समाज में पग-पग पर ठोकर खाने से बचाने के लिये ही ऐसा करता है।इसके विपरीत राजनीति का उद्देश्य समाज की इहलौकिक सफलता और समृद्धि है। राजनीति का आधार है, सामाजिक संगठन और मानव समूहों का परस्पर संघर्ष।"[2]

प्रगतिवाद धर्म को शैशव की मानसिक दुर्बलता और पुरोहितों और सत्ताधारियों का धोखा और फरेब मानता है। राहुल जी का विचार है कि धर्महमारी प्रगति में बाधक है वह हमें आगे बढ़ाने के बजाय पीछे घसीटता है, जगत कीगति के साथ हमें सरपट दौड़ना

- -

1- यशपाल- न्याय का संघर्ष-पृ0- 13
2- वही, गांधीवाद- पृ0-17

चाहिये किन्तु धर्म हमें खींचकर पीछे रखना चाहते हैं। क्या हमारे पिछड़ने से संसार चक्र हमारी प्रतीक्षा के लिए खड़ा हो जायेगा? सामाजिक विषमता के नाश, निकम्मी और अनपेक्षित सन्तान के विरोध, आर्थिक समस्याओं के नये हल सभी बातों में तो यह मजहब प्राणपन से हमारा विरोध करते हैं, हमारी समस्याओं को और अधिक उलझाना और प्रगति विरोधियों का साथ देना ही एक मात्र इनका कर्तव्य रह गया है।"[1] हमारे देश की भयंकर समस्या है जनसंख्या जो सभी प्रकार की समस्याओं की जड़ है वह ईश्वर के विश्वास के कारण ही बढ़ती जा रही है लोगों को विश्वास है कि जो बच्चे देता है वह उसे सम्भालेगा भी। भगवान के काम में रोक कैसी। धर्म और ईश्वर मानसिक दासता की बेड़ी है शोषकों का अस्त्र है क्योंकि उसको सहारे वो गरीबों का शोषण करते हैं और कहते हैं भगवान उन्हें कर्मों का फल दे रहा है, या उसका भाग्य ही ऐसा है या गरीबी अमीरी तो भगवान की देन है।

ईश्वर के प्रति अविश्वास की भावना मार्क्सवाद के प्रमुख सिद्धांतों में से एक है। यशपाल जी ने अपने निबंध मार्क्सवाद में भी ईश्वर के प्रति अविश्वास व्यक्त किया है, ईश्वर की कल्पना मनुष्यों में भय उत्पन्न करती है और भय में लाभ की जगह हानि होती है और समाज को ये भय दिखा दिया जाता है कि समाज को मालिक श्रेणियों को भगवान ने गरीबों पर शासन करने के लिये ही बनाया है और उनकी इच्छा को पलटना पाप है अतः गरीब अपनी स्थिति पर संतुष्ट हो जाता है और उसके विरुद्ध आवाज उठाने में डरता है कि ईश्वर उससे रूठ जायेंगे और स्वर्ग में [illegible] सुख नहीं मिलेगा।

<u>सदाचार और नैतिकता का ह्रास-</u>

हमारे समाज में श्रेष्ठ वे ही व्यक्ति माने जाते हैं जो धनी हैं। सदाचारी कहलाने का ठेका उन्होंने ही लिया है, उस गरीब की कोई गिनती नहीं जो मेहनत से और ईमानदारी से कमाई करके अपना जीवन निर्वाह करता है। किन्तु श्रेष्ठ कहे जाने वाले ये व्यक्ति वास्तव में कितने श्रेष्ठ होते हैं? यह प्रश्न [illegible] है। जहाँ पुरुष विवाहित स्त्री

- -

1- राहुल सांकृत्यायन- साम्यवाद- ही क्यों -पृ0- 74

के साथ-साथ कई कई दासियाँ और रखेलियाँ रखता आया है और वेश्यावृत्ति में लिप्त रहता है तो उसे मर्द का बच्चा कहकर छोड़ दिया जाता है और "वेश्या" कहलाकर लांछित होती है मात्र स्त्री। जो सन्यासी हैं और जो बड़े बड़े मठ और तीर्थ स्थान है वहीं सबसे ज्यादा व्यभिचार होता है कितनी ही धर्म मंडलियाँ गुप्त व्यभिचार में लगी हुई हैं।

शराब पर मुमानियत सभी धर्मों में है लेकिन कौन है जो शराब नहीं पीता है। इसी प्रकार सत्य की भी हालत है। हमारी राजनीतिक संस्थायें असत्य प्रचार के सबसे बड़े अड्डे है। लोगों को धोखा देने और अपने स्वार्थ के लिये लोग झूठ बोलते हैं।समाज की व्यवस्था भी इसी प्रकार की है जो यहाँ सच बोलता है वह दण्ड और भर्त्सना का अधिकारी होता है और जो झूठ बोलता है वह साफ-साफ बच जाता है।ईमानदारी और सच्चाई से काम करने वाला आज पागल और बेवकूफ समझा जाता है।

आज समाज में जितनी ही भौतिकता और आधुनिकता बढ़ती जा रही है लोगों की आवश्यकतायें भी उतनी ही बढ़ रही हैं और उन्हें पूरा करने के लिये रिश्वत और चोरी का सहारा लेना पड़ता है।चोरों को पकड़ने की जिनकी जिम्मेदारी है वह स्वयं कुछ ले देकर चोरों को छोड़ देते हैं और निर्दोष व्यक्तियों को सजा देते हैं।थानेदार से लेकर इन्सपेक्टर और उससे भी ऊपर के सब अफसर रिश्वतलेते हैं। "ख्याल करने की बात है कि जिन लोगों को अपने परिवार की परवरिश के लिए काफी रुपया हर महीने मिल जाता है, यदि वे अवैध आमदनी से हाथ हटाना नहीं चाहते तो भूख की पीड़ा से पीड़ित होकर चोरी करने वाले अपने को कैसे रोक सकेंगे।"[1]

जाति-पाँति काविरोध और साम्प्रदायिकता-

हमारे देश को जिन बातों पर अभिमान है,उनमें जाँत पाँत भी एक है।अछूतों का सवाल,जो इसी जाति भेद का सबसे उग्र रूप है हमारे यहाँ सबसे भयंकर सवाल है।कितने लोग शरीर छू जाने से स्नान करना जरूरी समझते हैं। कितनी ही सड़कों पर अछूतों को चलने का [illegible] नहीं।

1- राहुल सांकृत्यायन- [illegible]-तुम्हारे सदाचार की क्षय-पृ0- 25

हमारे नेताओं में जातीयता के भाव जबर्दस्त भरे हैं, राजनीति में जातीय दलबन्दी की प्रवृत्तिजोर पकड़े हुएहै। जो जिस जाति का है वह उस दायरे से निकल नहीं पाता क्योंकि उसका उठना बैठना उसका शादी-ब्याह सब अपनी ही जाति में होता है और फिर अपनी ही जाति के लोगों को आगे बढ़ाने की चाह ये सब सार्वजनिक जीवन को गन्दा करते हैं और राष्ट्रीय शक्ति का ह्रास करती हैं।

"हमारी वृहत जनसंख्या छोटे-छोटे अनगिनत समूहों में विभक्त है। अनेक संस्कृतियाँ और अनेक सम्प्रदाय हमारे देश के छोटे छोटे ताल-तलैया में बँटे हुये हैं इसीलिये हम सामूहिक रुप से एक बड़ी नदी की तरह प्रबल वेग से बहकर अपना मार्ग नहीं बना पाते।"[1]

सब धर्म एक ही उद्देश्य के लिये हैं अल्लाह और राम सब एक ही शक्ति है ये उपदेश तो सब दे लेते हैं मगर उसे अपने जीवन में चरितार्थ नहीं कर पाते। इतिहास गवाह की हमारे भारत में धर्म के नाम पर हमेशा खून की नदियाँ बही हैं, तो आज अचानक वह सब कैसे समझजाय कि धर्म के नाम पर लड़ना मूर्खता है। सम्प्रदाय या धर्म में विश्वास रखकर भी कट्टर न होने का अर्थ है शायद सम्प्रदाय या मजहब के उपदेशों का आदर करते रहना परन्तु उन उपदेशों पर आचरण करने की चेष्टा न करना। ये सब विरोधी बातें आम जनता की समझ के बाहर हैं और नित नये महापरुषों के दिखाये रास्ते पर चलकर आम जनता बजाय कुछ शांति पाने और पथभ्रष्ट ही दिशाहीन हो जाती है वह अंतर्द्वन्द्व में फँस जाती है कि आखिर सही रास्ता क्या है?सत्य क्या है? यशपाल जी का अपना विचार है इस साम्प्रदायिकता से पीछा छुड़ाने का, उनका विचार है कि जब तक यह मजहब का बुरका, चाहे वह कट्टरता का गहरा बुरका हो चाहे सहिष्णुता का हलका बुरका हो, हम पर पड़ा रहेगा, हम आदमी के रुप में न पहचाने जायेंगे, न दूसरों को पहचान सकेंगे। न हमारी राष्ट्रीयता यहाँ पनप सकेगी, न हम राष्ट्रीयता के उस उद्देश्य की ओरएक भी कदम बढ़ा बढ़ा सकेंगे, जिसकाहम ढ़ालनढोल पीट रहे हैं।"[2]

1- यशपाल- न्याय का संघर्ष- मजहब का बुरका- पृ0-49
2- वही, पृ0-52

हर विचारशील भारतीय आसानी से जान सकता है कि उसके देश को पतित और पददलित करने में सबसे प्रधान कारण जाति भेद की बुरी प्रथा है, जिसने जातिको अनेक टुकड़ों में बांटकर बिल्कुल निर्बल कर दिया है।"[1]आज जब देश में जागृति का प्रसार हो रहा है अछूत अपने उपर हुये अत्याचारों के प्रति जागृत हो रहे हैं तब यही जाति के लोगों ने उनको बहलाने के लिये मंदिर और कुएं तो खोल दिये किन्तु विभिन्न रोजगारों में अछूतों का बहिष्कार जारी रहा,अध्यापकया डाक्टर होना अछूतों के लिये मुसीबत बन गया। सामाजिक भेद भाव आर्थिक जीवन पर भारी प्रभाव डालते हैं पूंजीवाद अपने अछूत भाई को कभी आगे बढ़ने का मौका नहीं दे सकता। रूढ़ियों और जातियों के समर्थक वही लोग होते हैं जिनके पास धन होता है। साम्यवाद तो व्यक्तिगत सम्पत्ति ही खत्म कर देता है इसलिये लोगों का प्रभाव भी खत्म हो जायेगा।

पूंजीवाद के प्रति आक्रोश-

पूंजीवाद मनुष्यों को अर्थ दास बनाता है और बराबर बेकारी बढ़ाकर उन्हें नरक की यातना में ढकेलता है।एक ओर गोदामों में करोड़ों रुपयों का माल भरा पड़ा रहता है और बाजार में माल का भाव बढ़वाया जाता है मिलों में काम कम कर दिया जाता है परिणाम होता है असंख्य मजदूरों की बेकारी।" 1938-39 में गेहूं की कीमत चढ़ाने के लिये पूंजीवादी अमेरिका में गेहूं को जलाया और समुद्र में फेंका गया था। दूसरी ओर लोग भूख से बिलबिलाते रहे।लोग सर्दी गर्मी में कपड़ा न होने से मरते हैं।"[2]

आज अधिक से अधिकधन मनुष्य का संहार करने के साधनों को बनाने पर खर्च किया जाता है। जो धन कड़ी से पैदा किया जाता हैउसको इस तरह उसी मनुष्य को खत्म करने के लिये खर्च किया जाता है।"मालिक ऐसी कोशिश कर रहे हैं कि मेहनत करने वाले जिस हालत में हैं उसी में बने रहें। मेहनत करने वाले कोशिश कर रहे हैं कि मेहनत करने के अधिकार से वंचित न किया जाय और मेहनत करने पर वे भूखे न रहें। कशमकश,तनातनी और संघर्ष जोर पकड़ रहा है।"[3]

- -

1- राहुल सांकृत्यायन- साम्यवाद ही क्यों-पृ0- 61
2- यशपाल-न्याय का संघर्ष- समाज का चौकटा चरॉं रहा है। पृ0-32
3- वही, पृ0- 32

पूँजीवाद ने जहाँ एक ओर बेकारी को जन्म दिया वहीं युद्ध की आशंका को भी जन्म दे दिया। विज्ञान ने भयंकर हथियार, विषैली गैसें और नाशक कीटाणुओं का आविष्कार प्रारंभ कर दिया है। राहुल जी ने उस समय एक कल्पना की जो आज साकार होती नजर आ रही है-"एक आदमी जेब में स्याही की भरी फाउन्टेनपेन की जगह पर एक वैसी ही शीशे की नली में ऐसे भयंकर कीटाणु समूह हैं जिन्हें वह आदमी हवाई जहाज से उड़कर न्यूयार्क या लन्दन जैसे शहर में छोड़ देता है, और कुछ ही घंटों में इतना बड़ा शहर मुर्दों के ढेर हो जाते हैं।"[1] राहुल जी ने पूँजीवाद के अन्य बुरे परिणामों के बारे में भी ध्यान आकर्षित किया है जैसे व्यक्ति को दरिद्रता में रखना और आगे न बढ़ने देना। जिनमें प्रतिभा है जो अवसर मिलने पर कुछ भी बनकर दिखा सकते हैं वह धन न होने पर और सुविधायें न होने पर आगे नहीं बढ़ पाते और दूसरी तरफ प्रतिभाहीन धनी सन्तानों के पढ़ने लिखने में लाखों रुपये बरबाद होते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था का ये एक दुष्परिणाम है।

पूँजीवाद दुनिया के हर साधनों को खरीदे हुए है समाचार पत्र आदि भी जनता के सामने स्वतंत्र विचार नहीं रख पाते। लेखकों और कवियों को भी पूँजीपतियों ने खरीद रखा है। "राजनीति तो और भी पूँजीपतियों की दासी है। राजनीति तो शक्ति का स्रोत है इसलिए उसे पूरी तौर पर हथियाना पूँजीपति लोग अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य समझते हैं।"[2]

श्रेणी समस्या-

आज हमारा समाज जो कई श्रेणियों में बंटा हुआ है उसमें सब मौज मार रहे हैं, किसी की सहूलियतों में कुछ फर्क नहीं पड़ा, मिल मालिकों को कोई परेशानी नहीं। कोठी वालों और व्यापारियों की भी दुरावस्था नहीं। वे भूखे नंगे नहीं उनके प्रासाद और उनकी मिलों की चिमनियाँ आकाश फोड़ रही हैं। उनकी मोटरों और वाहनों में कमी नहीं आयी। प्रतिवर्ष नये नये अफसरों की गाड़ियाँ उनके यहाँ लाइन लगा रही हैं। ऊँची तनख्वाह पाने वाले सरकारी अफसरों की भी दुरावस्था नहीं।

- -

1- राहुल सांकृत्यायन- साम्यवाद ही क्यों-पृ0- 42
2- वही, पृ0-92

"दुरावस्था है उन लोगों की जो अपने शरीर का पसीना बहाकर उपज और पैदावार मुहय्या करते हैं। जो समाज के विराट रथ में घोड़ों और पहियों का काम करते हैं, वे पिस रहे थे, पिस रहे हैं। उन्हीं के पेट खाली हैं, उन्हीं के शरीर नंगे हैं और जो समाज के रथ पर बैठकर सवारी कर रहे हैं या रथ की बागडोर हाथ में संभाले हैं, चाहे चिंता के बोझ से उनके माथे पर त्योरियाँ पड़ रही हों, जान के लाले उन्हें नहीं पड़ रहे हैं।"[1]

किसान की अवस्था हमारे समाज में बहुत अजीब है यह समाज के लिये अन्न उत्पन्न करके भी दीन हीन और पराश्रित है-"समाज की शिकारी श्रेणी के हाथ में वह बिना पंख का पक्षी है। वह कितनी विडम्बना का पात्र है, इसका अन्दाजा आप इसी बात से लगा सकते हैं कि उसका दूसरा समानार्थक नाम है- गंवार।"[2] यह विडम्बना ही तो है कि जो मेहनत करके धन कमाता है वह गिरी हुई निगाह से देखा जाता है और उसका कमाया हुआ धन उन लोगों के हाथ में चला जाता है जो मेहनत से नहीं दिमाग से चालबाजी करके उसका हिस्सा भी हड़प लेते हैं।

इक्कीस करोड़ अस्सी लाख किसान मेहनत करके जो पैदा करते हैं औरएक करोड़ बीस लाख लोग उसे खर्च करने में लगते हैं। "एक भाग्यवान के सुख और आराम की व्यवस्था के लिये अठारह अभागे मेहनत कर मरते हैं। यह विषम परिस्थिति का कारण [illegible] सामाजिक और आर्थिक अव्यवस्था जब तक यह व्यवस्था कायम रहेगी समाज का बहुसंख्यक वर्ग कभी सुख चैन का जीवन व्यतीत नहीं कर पायेगा।

लेखक ने अपने निबंध "किसान और मजदूर श्रेणी समस्या" में ये बताने का प्रयत्न किया है कि क्याकारण है किपूँजीपतियों और मजदूर वर्ग में संघर्ष होता है।पूँजीपति अपने [illegible] से सोचता है औरइस प्रकार जो वो करता है वह न्यायोचित है उसका मत है कि वह अपनी पूँजी से कारखाना लगाता है इसलिये लाभ का अधिकारी भी वो है। मजदूर जो करता है वह काम माँगता है।वह जो मजदूरी देना चाहता है वहयदि मजदूर

1- समाज-न्याय का संघर्ष- किसान और मजदूर श्रेणीसमस्या-पृ0- 4।
2- वही,

को मंजूर नहीं तो न करें उनकी जगह दूसरा आ जायेगा भारत में काम करने वालों की कोई कमी है? और मजदूर का अन्तर्दृष्टिकोण है वह दिन भर मरता खपता है लेकिन अन्त में हासिल क्या होता है, कर्जदारों की घुड़कियाँ, भूखे बच्चों का क्रन्दन, बिना दवा के मरते घिसटते माँ-बाप का कातर चेहरा। पूँजीपति मजदूर की मेहनत को इतना अधिक हड़प जाना चाहता है कि मजदूर का जीवन ही असंभव हो उठता है। उत्पत्ति के [illegible] साधनों को तो कोई नहीं बनाता। पूँजी क्या है? एक समय मेहनत द्वारा जो उत्पत्ति की जाती है और उस [illegible] के संपूर्ण अंश को उपयोग में न लाकर जो कुछ बचा लिया जाता है, वही पूँजी बन जाता है। इस पूँजी को उत्पन्नकरता है मजदूर और इस पूँजी द्वारा प्राप्त मशीनों पर काम करता है मजदूर परन्तु जो उत्पत्ति होती है उस पर अधिकार होता है पूँजीपति का। यह कैसा न्याय है।"[1] "मुझे मंजूर नहीं" निबन्ध में समाज की [illegible] पर और मजदूरों की मजबूरी पर लेखक ने अपने विचार व्यक्त किये हैं। लेखक के मन में कुछ प्रश्न हैं जो कौंधते हैं कि ये मजदूर जो बड़े-बड़े मकान, रेलगाड़ियाँ, मोटरें और विलास वैभव की चीज तैयार करते हैं उनके अपने पास रहने को जगह नहीं खाने को रोटी नहीं और दूसरे लोगउनकी मेहनत का हिस्सा काटकर लखपतिबन जाते हैं और नाम होता है [illegible] का।

हमारे देश में बेरोजगारी भीएक बहुत भयंकर रोग है। आदमी लाभ करना चाहता है मगर काम नहीं। माल कीखपत इसलिये नहीं होती कि नब्बे प्रतिशत जनता तो भूखी नंगी है माल खरीदे कौन। लेखक ने व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है। "जीवादियों को समाजवाद से चिढ़ है क्योंकि उससे उनकी जायदाद छिन जायेगी उनका कहना है "मैं मजदूर को अपना भाई कह सकता हूँ परन्तु अपने आपको मजदूर नहीं कह सकता और फिर दिन भर टोकरी कौन ढोयेगा?"[1]

हमारे समाज में विषमता का वातावरण चारों तरफव्याप्त हैं कुछ लोग महलों में रहते हैं मोटर-गाड़ियों पर चलते हैं और कुछ लोग गन्दे और छोटे-छोटे मकानों में रहते हैं चीथड़ों से लिपटे हुए दिन बिताते हैं। एक बड़ी श्रेणी काम करती है और उससे लाभ

1- [illegible]- न्याय का संघर्ष- मुझे मंजूर नहीं-पृ0- 84

उठाते हैं पूँजीपति और जमींदार। यह कैसे हो सकता है कि एक श्रेणी मेहनत करे और दूसरी श्रेणी लाभ उठाये। यशपाल जी ने बताया कि श्रेणी संघर्ष क्यों होते हैं-"मार्क्सवाद का सिद्धांत है कि साधनों की मालिक श्रेणी सदा ही मेहनत करने वाली श्रेणी से मेहनत कराकर पैदावार का अधिक भाग अपने पास रखने की कोशिश करती है और अपनी मेहनत से पैदा करने वाली श्रेणी अपने जीवन निर्वाह के लिये इन पदार्थों को स्वयं खर्च करना चाहती है। इस प्रश्न को लेकर इन दोनों श्रेणियों में तनातनी और संघर्ष चलता रहा है और यह तनातनी तथा संघर्ष ही मनुष्य समाज के आर्थिक विकास की कहानी है।"[1]

इस संघर्ष से छुटकारे का एक मात्र उपाय मार्क्सवाद बताता है पूँजीवाद का नाश और समाजवाद की स्थापना, वह किसी प्रकार के सुधार और लीपा पोती पर विश्वास नहीं करतावह संपूर्ण क्रान्ति कर पूरी तरह से नयी व्यवस्था स्थापित करना चाहता है जिसमें कोई व्यक्ति विशेष पूँजी का मालिक न होकर समाज हो सब परसमाज आधिपत्य हो और सभी लोग श्रम करें और अपनी आवश्यकता की पूर्ति करें।

मार्क्सवाद के दृष्टिकोण से वर्तमान संसार में व्यक्ति के जीवन से लेकर अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति में संकट का कारण आर्थिक विषमता है। समाज में पैदावार सम्पूर्ण समाज के हित के लिये नहीं की जाती बल्कि कुछ व्यक्तियों के मुनाफे के लिये ही की जाती है इसीलिये ऐसी विषमता पैदा हो जाती है।"[2]

<u>आर्थिक संकट-</u>

आर्थिक संकट है क्या?आर्थिक संकट है खपत से ज्यादा माल का पैदा हो जाना। लेकिन ये कैसा विरोधाभास है एक तरफ हम देखते हैं कि लोगों के पास तन ढकने को नहीं पेट में रोटी नहीं सर्वत्र अभाव ही अभाव है और दूसरी तरफ पूंजीपति [illegible] हैं कि माँग नहीं खपत नहीं? इसका मुख्य कारण यशपाल जी बताते हैं कि देश का बहुसंख्यक वर्ग मेहनतकश है और यह जितनी मेहनत कर समाज का धन बढ़ाता है उसको उसका उतना धन नहीं मिलता की वह अपनी आवश्यकता की वस्तुयें खरीद सके परिणाम

- -

1- यशपाल- मार्क्सवाद-पृ0- 196
2- वही, पृ0- 256

ये होता है कि वस्तुयें फालतू पड़ी रहती हैं मालिकों को मिलें बन्द करनी पड़ती हैं फलतः बेकारी बढ़ती है और समाज की प्रगति ठप्प हो जाती है।

जो व्यक्ति मजदूर बनकर मिल में माल तैयार करता है वही बाहर आकर ग्राहक बन माल खरीदता है किन्तु मजदूरी कम मिलने के कारण वह इतना गरीब हो जाता है कि माल को खरीदने में असमर्थ हो जाता है। नतीजा होता है आर्थिक संकट। यह आर्थिक संकट मालिक और मजदूर श्रेणियों के हितों में विरोध और संघर्ष होने के कारण ही पैदा होता है।

लेखक ने अपने एक निबन्ध "हमारी गुलामी तुमको मुबारिक"में एक स्त्री के संघर्षमय जीवन का जिक्र किया है। जिन कर्मों को करने से पुरुष महापुरुषों की कोटि में आ जाते हैं समाज में प्रतिष्ठित हो जाते हैं,लोग उनकी जय जयकार करते हैं वही कर्मों को दिन रात करती गरीब की स्त्री का समाज में कोई मूल्य नहीं भारत में स्त्रियों का जन्म इसीलिये होता है। एक स्त्री जो कि परदेश से आयी है पति बीमार है साथ में छोटा बच्चा है,"उसके सिर कितना बोझ है। इन दो आदमियों का और अपना पेट उसे नित्य भरना है।दिन में,रात में उनकी प्रत्येक आवश्यकता को उसे पूरा करना है।उसका अपना अस्तित्व कुछनहीं, वह अपने आराम या कष्ट की चिंतानहीं कर सकती,उसका अपना समय कोई नहीं, उसे आराम का कुछ अधिकार नहीं। अगर वह अपने आराम का ख्याल करती है तो वह दुष्टा है, नहीं वह डायन है।"[1]

लेखक ने स्त्रियों की परतंत्रता का जिक्र किया है कि आज जमाना बदल गया है दास प्रथा खत्म हो गई किन्तु सिर्फ पुरुषों के लिये स्त्रियों के लिये नहीं।स्त्री आदमी नहीं है वह पशुओं के समान आदमी के उपयोग की चीज है।लेखक ने बड़े सुन्दर उदाहरणों से स्त्री की स्थिति चित्रित की है कि आदमी बड़ा स्वार्थी है मतलब के लिये तो लोग गधे को भी बाप मान लेते हैं वही स्थिति आदमी की है जिस चीज के बिना उसका काम नहीं चलता वह उसको कोई पूज्य नाम दे देता है जैसे "गाय के दूध के बिना काम नहीं चलता

- -

1- यशपाल- न्याय का संघर्ष- हमारी गुलामी तुम्हें मुबारिक-पृ0-65

इसलिये उसको भी माता कहते हैं और गले में रस्सी बाँधकर खूँटे पर खड़ा कर देते हैं। नदी को गंगा मैया कहकर शहर का मल उसमें बहा देते हैं। इन चीजों की सार्थकता इसी बात में है कि वह मनुष्य-जीव के कितने उपयोग में आती है।"[1] किसी औरत का आदमी मर जाता है तो उसका जीवन समाप्त हो जाता है किन्तु अगर किसी पुरुष की स्त्री मर जाती है तो कुछ नहीं होता लोग स्त्री को आशीर्वाद देते हैं सदा सुहागन रहो, अर्थ हुआ तू किसी के काम आती रहे किसी की गुलामी करती रहे।

आज जमाना बदल रहा है शिक्षा का प्रसार बढ़ रहा है किन्तु शिक्षित पुरुष भी स्त्रियों के प्रति अपने विचार और अपनी मानसिकता को बदल नहीं पाया। औरत जहाँ थी वहीं है आज भी उसकी वही स्थिति है हर चीज में बदलाव आया किन्तु स्त्री की स्थिति में आज भी बदलाव नहीं आया।

नारी के संघर्षमय जीवन की एक और झाँकी निबन्ध-"पढ़ी लिखी लड़की" में व्यक्त हुये हैं। अब माता पिता लड़की को मजबूरी पढ़ाने लगे हैं क्यों? शादी के बाजार में उस का दर बढ़ाना जरूरी है वर्ना बाजार में बाकी बच रहे सौदे की तरह उसका घर में इस्तेमाल हो जाना संभव नहीं। वह गले का बोझ बनकर घर में पड़ी-पड़ी सड़ेगी, अपमान और बदनामी की दुर्गन्धा बन समाज में फैलेगी और वंश को ले डूबेगी। इतना ही नहीं, स्वर्ग में विश्राम करते हुए पूर्वजों को भी घसीट कर नरक में पहुँचा देगी।[2]

जैसे जैसे शिक्षा का प्रसार बढ़ा और स्त्री जाति के कदम बाहर पड़े उसे अपनी स्थिति का ज्ञान होने लगा। पढ़-लिखकर उसे अपनी स्थिति पर झुँझलाहट हुई। स्त्री की पराधीनता का सबसे बड़ा कारण आर्थिक परावलम्बन था उसकी समस्या पढ़ लिखकर हल होती देख उसका सिर चकराया और स्थिति ने करवट ली, "आर्थिक स्थितियों ने उसे दबाया, अक्षर ज्ञान ने उसके पैर की बेड़ियों को ढीला किया, देश के राजनैतिक बवंडर ने समाज को हतबुद्धि कर दिया और चतुर नारी पैंतरा बदल कर बाजार में खड़ी नजर आयी। पुरुष की हुकूमत का दबाव उठ चुका था, वह बोली-देश और राष्ट्र की इस लड़ाई में हम तुम्हारे साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलेंगी।"[3]

1- यशपाल- न्याय का संघर्ष-हमारी गुलामी तुम्हें मुबारिक-पृ0- 68
2- वही, पढ़ी लिखी लड़की-पृ0- 72
3- वही, पृ0- 74

यशपाल जी के निबन्ध "मार्क्सवाद" में स्त्री की स्थिति पर विचार व्यक्त किया गया है कि वैयक्तिक सम्पत्ति के आधार पर कायम पूँजीवादी समाज में स्त्री व्यक्ति की सम्पत्ति और मिल्कियत का केन्द्र होने के कारण या तो पुरुष के आधिपत्य में रहकर उसके वंश को चलाने, उसके उपयोग भोग में आने की वस्तु रहेगी या फिर आर्थिक संकट और बेकारी के शिकंजों में निचोड़े जाते हुए समाज के तंग होते हुए दायरे से अपनी शारीरिक निर्बलता के कारण जिस गुण के कारण वह समाज को उत्पन्न कर सकती है, समाज में जीविका का स्थान न पाकर केवल पुरुष के शिकार की वस्तु बनती जायेगी। यह अवस्था है साधनहीन गरीब और मध्यम श्रेणी की स्त्रियों की। साधन सम्पन्न और अमीर श्रेणी की स्त्रियाँ यद्यपि भूख और गरीबी से तड़पती नहीं, परन्तु उनके जीवन में भी आत्म निर्णय और विकास का द्वार बिल्कुल बन्द है। समाज के लिये भी वे एक प्रकार से बोझ हैं क्योंकि वे जितना खर्च करती है, समाज के लिये उतना काम नहीं करती या प्रायः संतान पैदा करने और पुरुष को रिझाने के सिवा वे कुछ भी नहीं करतीं।

मार्क्सवाद स्त्री को केवल उपभोग की वस्तु मानने पर विरोध प्रकट करता है। स्त्री के शारीरिक और मानसिक विकास के लिये तथा समाज के सुख और वृद्धि के लिये स्त्रियों का पैदावार के कार्य में सहयोग आवश्यक मानते हैं। मार्क्सवाद स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को पुरुष की सम्पत्ति और धर्म के भय से जकड़ देने के पक्ष में नहीं।

केवल मजदूरों और किसानों का जीवन ही संघर्षमय नहीं है आज के समय में नये वर्ग मध्यम वर्ग की हालत भी कुछ कम दयनीय नहीं। मजदूर और किसान वर्ग पूँजी-पति द्वारा जितना शोषित है उतना है क्लर्क और बाबू तबका अपने बड़े अफसरों और साहबों द्वारा शोषित है। मतलब ये है कि हर बड़ा और शक्तिशाली व्यक्ति अपने से छोटे व्यक्ति का शोषण करता है उस पर अपना रौब जमाता है। मध्यम वर्ग के एक क्लर्क के संघर्षमय जीवन का चित्रण निबन्ध "गरीब का भगवान" में हुआ है। क्लर्क का घर टूटा फूटा है उसको बनवाने के लिये जो एक मजदूर आता है वह घर की मरम्मत तो करता है किन्तु घर के लोगों को उसके काम से सन्तुष्टी नहीं वह उसे "हरामखोर" कहते हैं लड़ते झगड़ते हैं किन्तु वही क्लर्क

साहब जब अपने आफिस जाते हैं तो वहाँ उनके साहब भी उनके साथ वही बर्ताव करते हैं। तब वही बौखला उठता है और सोचता है कि साहब पैतालिस रुपये माहवार देते हैं और काम करवाते हैं सौ का। वह सोच रहा था-" समाज के यह सब आर्थिक सम्बन्ध छीना-झपटी और चोरी-डकैती नहीं तो क्या है? मेहनत करने वाला अपनी मेहनत का अधिक मूल्य चाहता है और मेहनत कराने वाला कम से कम मूल्य देकर अधिक से अधिक परिणाम चाहता है।"

मँहगाई सबसे ज्यादा कमर मध्य वर्ग की तोड़ देती है। चीजों के दाम आसमान छू रहे हैं कारण है माल की कमी, तो कमी से दाम बढ़ने की क्या जरूरत, दाम तो लागत के हिसाब से होने चाहिये। लेखक का विचार है कि अगर मुलम्मा की हुई चीज बाजार में सोने के दाम बेच देना चोरी है तो जो माल जितनी लागत और मेहनत से बना है उससे ज्यादा दाम वसूल लेना क्या चोरी नहीं।"[1]

यदि बाजार में कोई चीज की कमी है तो सब लोग थोड़ी थोड़ी हिस्से से पा जायें, किन्तु होता क्या है जिसके पास पैसा ज्यादा होता है वह अधिक सामान खरीद लेना चाहता है इससे मँहगाई और भी बढ़ जाती है और कम रुपयों वालों का संकट और भी बढ़ जाता है। हमारे समाज में रुपया वही कमा पाता है जिसके पास पहले से ही रुपया मौजूद रहता है। रुपया खर्च करने के लिये कमाया ही नहीं जाता वह तो कमाई के साधन के रूप में कमाया जाता है ताकि दूसरों के पास हमारी अपेक्षा कम रह जाय। दूसरे की वस्तु ले लेना चोरी है तो दूसरे की मेहनत खसोटना क्या चोरी नहीं? वस्तु भी मेहनत से बनती है, जिसके हाथ में पूँजी है वह मेहनत का पूरा रुपया देता नहीं। और जिस चीज में उन्हें ज्यादा मुनाफा नहीं उस चीज को बन्द कर देते हैं क्या रोटी और कपड़े की समाज को जरूरत नहीं? दुनियाँ में गरीब मरते हैं तो मरे उनकी बला से ताकत उनके पास है और जो ताकतवर है सब उसी का साथ देते हैं। विडम्बना तो इस बात की है कि अमीरों की इस ज्यादती को भी भगवान की इच्छा और न्याय का नाम दिया जाता है।

- -

1- यशपाल- न्याय का संघर्ष- गरीब का भगवान-पृ0- 93

साम्यवाद का नारा सिर्फ आज ही नहीं रहा है उतना पहले भी था अन्तर मात्र इतना है कि पहले ये सिद्धान्त रूप में नहीं था न ही ये कोई दर्शन या न कोई धारा के रूप में आया बस लोग छिटपुट इस बारे में अपने विचार व्यक्त करते रहते थे, किन्तु ये व्यवस्था व्यक्ति विशेष की थी सामूहिक रूप से ऐसा नहीं हुआ और न ही सामाजिक व्यवस्था ऐसी की गई जिसमें सबको बराबर का हिस्सा मिले। इस तरह की बातें कुछ सहृदय व्यक्ति आज भी सोचते हैं, कल भी सोचते थे किन्तु सौ में से एक व्यक्ति के सोचने से कुछ नहीं होता। जिस तरह बिजली के लैम्प को ऊपर से फूँककर बुझाया नहीं जा सकता, उसी तरह साइंस द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं को अन्धी तपस्या से हटाया नहीं जा सकता।"[1] वैज्ञानिक आविष्कार हुये हैं प्रत्येक मनुष्य की भलाई के लिये, समस्या जब उत्पन्न होती है जब इन आधुनिक साधनों पर चंद लोग कब्जा कर लेते हैं और नफा, कुछ लोगों के लिये होकर रह जाता है। जो काम छै आदमी कर लेते हैं बारह घंटे में वह अब मशीनों के कारण एक व्यक्ति कर लेता है तो साम्यवाद का हल ये है कि पाँच व्यक्तियों को बेकार नहीं करना चाहिये बल्कि उन छहों को दो दो घंटे काम बाँट देना चाहिए।

गरीबी और भुखमरी-

हमारे देश में गरीबी इस हद तक है कि देश की करोड़ों जनता भूखी-नंगी रहती है। जाड़े में भी ऊनी कपड़ा तो दूर की बात है उनका तो पूरा शरीर भी नहीं ढक पाता। राहुल जी उनकी समस्या का समझ कर बताते हैं कि हमारे शिक्षित भाई उनके मैले कपड़ों पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं। जिसने मुश्किल से पेटकाट दस आने पैसे जमाकर धोती खरीदी, भला वह हर आठवें रोज एक पैसा साबुन के लिए कहाँ से लावेगा? यदि कोई थोड़ी कंजूसी से काम लेता है, तो वह भी तो भविष्य के अंधकारमय होने के कारण। और बीमारी इनके लिए मौत का पैगाम लेकर आती है न इनके पास दवा के लिए पैसे हैं न भर पेट भोजन के लिये पैसा है। लोग बीमार होते हैं तो सिर्फ मृत्यु ही उनकी अंतिम मंजिल है। जरूरत की चीजों के अतिरिक्त मनुष्य बनने के लिये शिक्षा की भी आवश्यकता है किन्तु अधिकांश जनता

1- राहुल सांकृत्यायन- साम्यवाद ही क्यों-पृ0- 38

शिक्षा से अलग- लग है न ही गाँव-गाँव में स्कूलों का प्रबन्ध है और न ही उनको पढ़ाने के लिये पैसा है। छोटे-छोटे बच्चों को अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिये काम करना पड़ता है पढ़ना लिखना उनके भाग्य में कहाँ?।

हमारे देश मेंगरीबी का कारण है साधनों का सही इस्तेमाल न करना। हमारे देश में आधे से भीकम लोग काम करते हैं। जो अमीर पूँजीपति हैं वह स्वयं तो कोई काम करतेनहीं और उपर से अपने काम के लिये भी दस-दस आदमी रख लेते हैं। वह स्वयं काहिल हैं और दूसरे आदमियों का श्रम भी बर्बाद करते हैं। जिन लोगों को काम करनाभी है उसनो को भी काम नहीं मिलता मिल-मालिकों को परिमित संख्या में मजदूर चाहिये। सारी समस्याओं का हल लेखक साम्यवाद को बताता है।पूँजीवादीयुग में श्रम का सही उपयोग नहीं होता सभी चीजों नफे की तुला पर तोली जाती हैं।लेखक एक उदाहरण देते हैं बिहार का जहाँ भूकंप से तबाही आ गई और वह कई पीढ़ी तक पन नहीं सकता लेखक का मत है कि अगरवहाँ साम्यवाद होता तो डेढ़-दो वर्ष में ही सब फिर से बन जाता। बिहार की पचास लाख [illegible] इस काम में लगा दी जाती। सारी आवश्यक चीजें बिहार में ही तैयार होती और साम्यवादी सरकार प्रत्येक आदमी को एक नोट प्रतिदिन देती आवश्यक वस्तुयें खरीदने को।

वर्ग संघर्ष-

शहर की बात तो जो है सो है, हमारे गावों की हालत भी कुछ ठीक नहीं वहाँ भी किसानों काखून चूसने के लिये तमाम लोग बैठे हैं जैसे जमींदार, महाजन, ताल्लुकेदार थानेदार सभी अपने-अपने जुगाड़ में लगे रहते हैं। जमींदार किसानों से फसल का लगान लेता है, गाँव की फसल शहर में दूने दाम बिकवाता है और शहर से नमक, कपड़ा, तेल आदि गाँव में लाकर बेंचते हैं। थानेदार साहब भी गाँव-गाँव फिरते हैं कहीं कोई भूले से कुछ कर बैठता है तो थानेदार साहब उससे कुछ ऐंठ लेते हैं, अदालत में कुछ काम पड़ जाये तो वकील भी और कुछ नहीं बस रुपये से ही काम चला लेता है।

एक गरीब किसान जो चोरी के जुर्म में पकड़ा गया है वह भी कुछ और नहीं बैल इसीलिये खोल कर ले जारहा था मात्र रुपयों के लिये जिससे उसकी कुछ जरूरतें पूरी हो सकें जिन्हें सब पूरा करते हैं। सबका जरूरतें पूरी करने का एक ढंग है, कल्लू का भी एक ढंग है। संसार में जो भी होता है उसे वह दांव ही समझता है सब दांव खेलते हैं ये अलग बात है कि किसी का दांव पट और किसी का चित्त पड़ता है। महाजन उससे गलत दामें पर अंगूठा लगवाता है उसी का माल उसी के हाथ दुने दाम में बेंचता है, डाक्टर बिना रुपया गिनवाये दवाई नहीं देता ये सबके दांव सफल हो जाते हैं।

"समाजके सुखी और सम्पन्न अंश कोसमाज का हित-चिन्तक और समाज के साधनहीन अंश को समाज का शत्रु मान लेना हमारे समाज की आज दिन स्वीकृत व्यवस्था के अनुसार तो ठीक है परन्तु इस व्यवस्था का प्राकृतिक नियमों के अनुसार सर्वकाल के लिये सत्य नहीं माना जा सकता।"[1]

लेखक का विचार है कि अपनी आत्म रक्षा के लिये और परस्पर हितों के लिये झगड़ना कोई बुरी बात नहीं ऐसे लोग समाज के शत्रु नहीं होते ये प्राकृतिक शत्रु नहीं परिस्थितियां इन्हें मजबूर कर देती हैं। यदि अपने मुनाफे के लिये व्यापारी सस्ता माल मँहगा न बेचे वो गरीबों की पहुँच से बाहर न हो तो वह ऐसा गलत काम कभी नहीं करेंगे। किन्तु इस प्रकार के लोगों को सजा देने के बजाय हम अपनी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन करें और हम करते क्या हैं"समाज में इस प्रकार प्रकटहोने वाले विरोधों का उपाय हम समाज की चादर में सुधारों की छोटी-छोटी चिन्दियां लगाकर करना चाहते हैं। कारणयह कि हमारा दृष्टिकोण अब भी संस्कारों और श्रेणियों के अधिकार और हित के विचार से प्रभावित हैं। यदि हम मानवता के आधार पर कुछ तर्क करें तो व्यवस्था का केवल एक आधार दीखता है सब मनुष्यों को अपने श्रम का पूरा फल पाने का अधिकार और अवसर हो। केवल इसी आधार पर समाज के सब लोग परस्पर मित्र हो सकते हैं।"[2]

- -

1-यशपाल- समाज के शत्रु-पृ0- 105
2- वही - न्याय का संघर्ष-समाज का शत्रु- पृ0- 106

इस प्रकार लेखक न केवल समस्या पर बात करते हैं बल्कि उसकी गहराई में जाकर तथ्यपूर्ण उपाय भी बताते हैं और यही एक रास्ता है इस भयानक समस्या से छुटकारा पाने का।

लेखक का अगला निबन्ध "चोरी मत कर", उपनिषद" की एक पंक्ति से प्रारंभ होता है "मागृध: कस्यस्विद्धनम्" किसी का धन लेने का यत्न मत करो। यदि इस बातपर अमल किया जाय तो संसार के सारे संकटदूर हो जाये। दुनिया में सारा संघर्ष इसी धन को लेकर है। संसार छीना-झपटी और मारकाट में तबाह हो रहा ह और साथ में ये भी कह रहा ह कि किसी का धन मत ले। मनुष्य तो मनुष्य प्रकृति भी एक दूसरे का धन लूटती हैजैसे पक्षी वृक्षों का धन फल, मधुमक्खी फूलों का शहद, पशु घास पर, लाला ग्राहकों की जेब खाली कराने के लिये दुकान खोलते हैं मिल मालिक मजदूरों की शक्ति से धन एकत्र करते हैं। यह दुनिया स्पर्धा, लूट, चोरी और अन्याय से भरी है। सर्वत्र उहापोह का वातावरण है सर्वत्र एक भागदौड़ मची है लोगअन्धे होकर आगे भागते जा रहे हैं एक दूसरे को धकेल कर गिराते-पड़ाते खुद गिरते-उठते भागे जा रहा हैं किसी को मुड़कर देखने की फुर्सत नहीं।

न्याय वही लोग बनाते हैं जिनके हाथ में शक्ति है वह अपनी सहुलियतनुसार उसमें परिवर्तन करते रहतेहैं ह जो भी करें वह न्याय है और दूसरा जो करे वह पाप है, विद्रोह है। किसी के घर से पैसा उठा लाना चोरी है और किसी आदमी से दिन भर मेहनत कराके पाँच के बदले सवारुपया देना न्याय है। सरकारी व्यवस्था, पुलिस, सेना ये सब किसकी रक्षा के लिये है निश्चित रुप से अमीरों के लिये क्योंकि उन्हीं के पास इतना धन एकत्रित हो गया कि उन्हें ही उसकेछिन जाने का डर था। गरीबों के पास क्या है जो कोई उससे कुछ छीनेगा।

"समाज में शांति और न्याय कायम रखने का सूत्र और नियम है कोई किसी का धन न ले और हमारे वर्तमान समाज की व्यवस्था का उद्देश्य और आधार है, एक श्रेणी दूसरी श्रेणी का धन लेकर, अपने पास जमाकर शक्तिशाली बन सकती हैं। फिर उस धनकी रक्षा के लिये धन हीन श्रेणी का दमन करने के लिये सरकार कायम करे।-"[1]

1- यशपाल-न्याय का संघर्ष- चोरी मत कर-पृ0- 114

वर्ग संघर्ष क्यों उत्पन्न होता है?श्रेणियाँ कैसे बन जाती हैं? इस का कारण यशपाल जी ने अपने निबन्ध "मार्क्सवाद" में बताया है कि वर्ग संघर्ष इसलिये होता है कुछ व्यक्तियों का दूसरों की अपेक्षा अधिक बलवान और साधन सम्पन्न बन जाना। यह अशान्ति प्रकट होती है कुछ व्यक्तियों के सुखी और कुछ व्यक्तियों के दुखी हो जाने के रूप में कुछ आदमियों के सन्तुष्ट और कुछ के असन्तुष्ट हो जाने में।समाज में पैदा हो जाने वाला यह असंतोष,अशांति, विद्रोह और संघर्ष पैदा करता है।"[1]सारे संघर्ष की जड़ है असमानता व्यवस्था में और मनुष्यों में असमानता का जन्म कैसे हो जाता है कारण है "कुछ व्यक्तियों का बहुत बड़े परिमाण में पैदावार के साधनों का मालिक बन जाना और दूसरे व्यक्तियों का इन साधनों से हीन हो जाना ही समाज में असमानता की नींव है।"[2]

जैसे-जैसे विज्ञान की प्रगति हुई बड़ी-बड़ी मशीनों का आविष्कार हुआ। मामूली औजारों की अपेक्षा पैदावार के साधन मंहगे हो गए अतः जो साधारण व्यक्ति था वहइसे खरीदने में असमर्थ हो गया और जिसके हाथ में धन था वह इसका मालिक बन गया और जिसके पास धन का अभाव था उसका श्रम खरीदना आरंभ कर दिया साधनों के मालिकों ने इस प्रकार विषमता का वातावरण चारों तरफ व्याप्त हो गया।

<u>बेकारी की समस्या-</u>

बेकारी की समस्या उत्पन्नहुई नये नये अविष्कारों से।जो काम पहले दस आदमी मिलकर करते थे वो अब मशीन के कारण एक आदमी उससे भीज्यादा माल बना सकता था।इसी कारण बेकारी की समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जारही है।

राहुल सांकृत्यायन जी ने अपने निबन्ध "साम्यवाद ही क्यों" में बेकारी के कारण और फिर उससे उठने वाले संघर्ष के बारे में लिखा है-"पूंजीवाद ने जहाँ मजदूरों के लिये इतनी तकलीफों का सामान इकट्ठा कर दिया,वहाँ उसने उनके लिए एक बड़ा लाभ भी किया,और वह था बड़ी-बड़ी तादाद में मजदूरों को कारखानों के पास इकट्ठा कर देना।जहाँ खेती के मजदूर इधर उधर बिखरे रहने से अपनी तकलीफों को चुपचाप सह लिया करते थे,वहाँ कारखानों के मजदूर संगठित हो आन्दोलन करने की ताकत रखते हैं।"[3]

1-यशपाल- मार्क्सवाद- पृ0-19

2-वहीं,पृ0-21

3- राहुल सांकृत्यायन- साम्यवाद ही क्यों- पृ0- 36

नाटक एवं एकांकियों में सामाजिक द्वन्द्व

वर्ग संघर्ष-

"पूँजीवाद घातक विरोधाभासों से परिपूर्ण है, कुछ थोड़े से लोग तो मनमाने वैभव में मस्त हैं किन्तु अधिकतर आधे पेट भोजन करके जीवित रहते हैं। एक ओर फसलें सड़ रही हैं तो दूसरी ओरमनुष्य भूखा मर रहा है । कारखानों के अन्दर मशीनें खाली पड़ी हैं और बाहर बेकारी नग्न नृत्य कर रही है।"[1]

हिन्दी एकांकीकारों ने पूँजीवाद का डटकर विरोध किया है और साम्यवादी समाजवादी व्यवस्थाओं की ओरअपनी रचनाओं में संकेत किया है।

निम्नवर्ग का रहन-सहन कैसा हो सकता है, उसके पास जब पेट में खाने के लिये आवश्यक रोटी नहीं जुट पाती तो रहने के लिये अच्छे मकान कहाँ से हो सकते हैं। वह ऐसी जगह रहते हैं जहाँ बड़े घर का कोई आदमी पैर रखना भी गँवारा नहीं करेगा । भुवनेश्वर प्रसाद ने एक साम्यहीन-साम्यवादी एकांकी में कुलियों के निवास स्थानों का वर्णन किया है-

" कानपुर के पार्श्वभाग में लज्जा से मुँह छिपाये कुलियों के निवास-स्थान । नगर का विपुल प्रकाश वहाँ तक न पहुँच सका। उसी ज्वलन्त नगर के प्रेम

1- अंचल- ये, ये, बहुतेरे-हत्यारा- पृ०- 136

2- केशव कृष्ण डकोटे-अर्थशास्त्र के आधुनिक सिद्धांत-हिन्दी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति से उद्धृत।

के समान एक भाग में एक छोटी सी दो द्वारे की एक कोठरी, जिसमें सामान के नाम का एक टूटा काठ का बक्स, एक टूटी एक अर्ध टूटी चारपा कुछ धुएं के रंग की हड्डियाँ मनुष्य के नाम एक स्वयं अपने से ईर्ष्यालु हाड़-चाम का मजदूर, प्रकाश के नाम की एक बीस-बाईस वर्ष की युवती, मलिन वस्त्रों में इस प्रकार दीखती है जैसे आंसुओं की नीहारिका में नेत्र।"[1]

इस प्रकार की लाचारी के जीवन व्यतीत करते हैं और मेहनत करने में किसी से पीछे नहीं, दिन रात मेहनत करते हैं मगर अच्छी तरहसे रहना और कपड़े पहनना तो बहुत दूर की बात है इन्हें पेट भर रोटी भी मयस्सर नहीं।

"उच्चवर्ग को अधिक सामाजिक सुविधायें प्राप्त होती है और निम्नवर्ग को कम सामाजिक सुविधाएं प्राप्त होती हैं। परिणाम स्वरूप निम्नवर्ग सामाजिक सुविधाएं प्राप्त करने के लिएसंघर्ष का सहारा लेता है। और वर्गसंघर्ष उपस्थित हो जाते हैं।

उच्च वर्ग हमेशा इस ताक में रहता है कि किस तरह ज्यादा से ज्यादा पैसाइकट्ठा किया जा सकता है। वह हमेशा इस बात की कोशिश करता है कि निम्नवर्ग उसके बराबर न पहुंच पाए, इसलिये वह निम्नवर्ग के लोगों को उन्नति के अवसर नहीं प्रदान करता और ये उसके वश में इसलिये होता है क्योंकि सारी शक्ति उसी के हाथ में होती है। निम्नवर्ग ये सब कुछ चुपचाप सहता जाता है किन्तु जब उसमें चेतना जागृत होती है, उसे अपने अधिकारों के प्रति जानकारी होती है तो वह संघर्ष के लिये उद्यत हो जाते है। "वर्ग संघर्ष का प्रमुख कारण अन्य संघर्षों की भाँति स्वार्थों पर आधारित होता है। एक वर्ग दूसरे वर्ग को समाप्त कर देना चाहता है और समस्त लाभ स्वयं लेना चाहता है। वर्ग संघर्ष यद्यपि स्वार्थों पर [illegible] है, प्रत्येक वर्ग इस संघर्ष को बड़े महत्वपूर्ण सिद्धान्तों पर आधारित होने की घोषणा करता है।

- -

1- एक साम्यहीन -[illegible]-कारवां तथा अन्य एकांकी संग्रह-पृ0- 36 भुवनेश्वर प्रसाद।

उपेन्द्रनाथ अश्क के एकांकी संग्रह "देवताओं की छाया में" अधिकार का रक्षक" एकांकी है जिसमें अमीरों और गरीबों का चित्रण है अमीरों की करनी और कथनी में कितना अंतर है इस पर करारा व्यंग्य है। समाज में अपनी धाक जमाने के लिये ये लोग बातें तो बहुत बड़ी-बड़ी बनाते हैं बड़े-बड़े भाषण झाड़ते हैं किन्तु करते उसका उल्टा है एकांकी में इसी का चित्रण है। सेठ जी नेता है जनता के सामने हरिजनों के हमदर्द गरीबों से सहानुभूति रखने वाले हैं किन्तु अपने नौकरों के साथ पाशविकता का व्यवहार करते हैं अपने नौकर को गाली बकते हैं, अपनी जमादारिन को दो-तीन महीनों पैसा नहीं देते। भगवती जो उनका नौकर है उसे कई महीनों से पैसा नहीं दिया उसके सख्ती से मांगने पर उसे मारकर बाहर निकलवा दिया। और बाहर चुनाव में जीतने के लिये दम भरते हैं मजदूरों और श्रम जीवियों के हित की उनके नकली विचार इसप्रकार हैं-"ये पूंजीपति गरीब मजदूरों के कई-कई महीनों के वेतन रोककर उन्हें भूखों मरने पर विवश कर देते हैं, स्वयं मोटरों में सैर करते हैं, शानदार होटलों में खाना खाते है और जबये गरीब दिन रात परिश्रम करने के बाद लोहू पानी एक कर देने के बाद , अपनी मजदूरी मांगते हैं तब उन्हें हाथ तंग होने का कारोबार में हानि होने का अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बनाकर टाल देते हैं।"[1]

सेठ जी बाहर तो ऐसी ही बातें करते हैं किन्तु अपने नौकरों की तीन-तीन महीने तनख्वाह तक नहीं देते। पूंजीपतियों के समाज में यही होता है ये लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिये हर हथकण्डे इस्तेमाल करते हैं जो कहते है उसे व्यवहार में नहीं लाते और जो व्यवहार में लाते हैं वो कहते नहीं। हंस [illegible] प्रकाशित श्री ना०सी० फड़के द्वारा रचित एकांकी "चिनगारी" किसी मजदूरिन के शोषण का दृश्य उपस्थित करती है। इस एकांकी में बीड़ी कारखाने में काम करने वाली स्त्रियों की हड़ताल का चित्रण हैं। एक मजदूरिन [illegible] मालिक पर मारपीट की फरियाद करती है किन्तु वकील साहब मालिक की तरफ हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में स्त्रियां बदमाश होती हैं। जब उनको पता चलता है कि स्त्रियों ने हड़ताल कर दी है तब वह कहते हैं कि "प्रतिष्ठित व्यक्ति की ऐसी बेइज्जती। यह कैसी हड़ताल? एक एक मजदूर स्त्री को मारपीट कर बाँधकर क्यों नहीं लाया जाता है? मालिक की स्त्रियों की आंखें फूट [illegible] आती है। हजार बीड़ी के वे पाँच आने देते हैं इस पर [illegible] कहते हैं कि बहुत ज्यादह है। "हरेक भारतीय का रोजाना भोजन खर्च छः पैसों

1- उपेन्द्रनाथ अश्क- देवताओं की छाया में- पृ0-103

से ज्यादह नहीं होना चाहिये, अर्थशास्त्र यही कहता है। लेकिन ये तो दिनों दिन बदमाश होती जा रही है। कहती हैं कि बैठने के लिए जो मालिक की जगह है उसका चार आना किराया भी न देंगी। स्त्रियों की माँग है कि जब वह गर्भवती हो तो उन्हें घर बैठे भत्ता दिया जाय यह माँग मालिकों को अनुचित प्रतीत होती है।

राव बहादुर को उस समय धक्का पहुँचता है जब मालूम होता है कि उनकी अपनी लड़कियाँ इस शोषण के प्रति क्रांतिकारी हो चुकी हैं उन्होंने घर में ही विद्रोह कर दिया है उनमें औरत पर पुरुषों द्वारा हुए अत्याचार का जबर्दस्त क्षोभ है और वह विद्रोह कर देना चाहती हैं हर स्त्री को जगा देना चाहती हैं। मीरा रावबहादुर की बेटी बीड़ी कारखाने के मालिक नरसाप्पा को धिक्कारती हुई कहती है "इन्होंने लाखों रुपया कहाँ से पैदा किया। क्या खुद का पसीना बहाया। ये दान भी करेंगे तो गरीबों की आँखों में धूल झोंकने के लिये। मजदूर स्त्रियों को पीसकर छानकर ये बड़े हुए हैं। इसकमरे से भी छोटी वह जगह है जहाँ टीन की छत है। गर्मी में काम करने वाली स्त्रियों से पूछिये कि क्या हालत होती है वहाँ उनकी और उनके अर्भकों की। पीने के लिए पानी नहीं। फिर भी चार आना किराया। अपराध न होने पर भी मजदूरी में पचास प्रतिशत काँट छाँट।"[1]

मीरा चिनगारी बन कर इस शोषण में और विषमता के वातावरण को भस्म कर देना चाहती है उसके मन में विद्रोह के शोले जल रहे हैं और ये मन की तड़प वह पुरुष समाज के [illegible] के आगे कूककर निकाल लेना चाहती है वह कहती है- "गरीबों की चमड़े की झोपड़ी में जो भूख की पीड़न की दर्द की ज्वाला धधक रही है, उसमें भैभाव को जाग्रत करना चाहती हूँ। अमीरों के बड़े बड़े महल गरीबों के खून और पसीने से बने हैं। मीरा को ये बर्दाश्त नहीं कि कोई पुरुष स्त्री को अपने पैर की जूती समझे और उससे वैसा ही व्यवहार करे जैसा कोई अपने गुलाम से करता है एक स्त्री के उसके पति द्वारा निकाल दिये जाने पर वह उसे अपने यहाँ आश्रय देती है और जब उसका पति उसे लेने आता है तो फटकार कर भगा देती है। अपने पिता के साथ समझाने पर डाटने पर भी मीरा और अंबनी कूककर शोषण के खिलाफ लड़ने मैदान में उतर जाती हैं।

- -

1- [illegible] 1- भारतीयलक्ष्मी- अंक-1938

इस प्रकार एकांकी स्त्रियों के शोषण की कहानी और फिर पूंजीपतियों द्वारा मजदूर वर्ग के शोषण की कहानी तो कहती है और साथ ही में नयी पीढ़ी को उसके प्रति जाग्रत चित्रित किया गया है और वह खुलकर उसका विरोध भी करती है न केवल नवयुवक बल्कि नवयुवतियाँ भी समाज के विधमकानून से लड़ने आ गई हैं, एकांकी का यही संदेश है। प्रकाश आनन्द की लिखी एक एकांकी"सोशलिस्ट" एक ऐसे नवयुवक की कहानी है जो विदेश होकर आया है और मन पर समाजवाद की गहरी छाप लाया है उसके घरवाले इन ऊँची बातों को समझ नहीं पाते अतः उनके लिये ये सब बकवास है किन्तु जगदीश इसे समझता है और कहता है"मोटरों में चढ़ने वालों और सारा दिन ऐयाशी करने वालों की तो पूजा हो और दिन भर खून पसीना एक करके चक्की पीसने वालों को भूखों मरना पड़े। एक बेटी को फुंसी निकलने पर ही चिचना से डाक्टर बुला सके और दूसरे के मरे हुए बच्चे को ढांपने के लिये कपड़ा भी न मिले।"[1]

जगदीश के चाचा के ये कहने पर भी उसे अपने अन्य रिश्तेदारों से मिल आना चाहिये तो वह मना कर देता है और कहता है कि वह अपना समय इन सब कामों में व्यर्थ करने के बजाय उन किसानों को देखना चाहता है जो दिन रातकाम करने के बाद भी अपने बच्चों को भर पेट रोटी भीनहीं दे पाते। किन्तु इस प्रकार केविचार रखने वाला जगदीश मात्र विचारों से ही समाजवाद से प्रभावित था व्यवहारिकरूप से नहीं वह यथार्थ कोसोच तो सकता था मगर उसका मुकाबला नहीं कर सकता है, वह जीवन की सच्चाई को सह नहीं सका जब उसे जगह की और सुख सुविधाओं की कमी हुई तो उसके सारे समाजवादी विचार और गरीबों के प्रति सहानुभूति के विचार काफूर हो गये और वह वहां से भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार एकांकी में ये चित्रण है कि हम सोच तो बहुत कुछ लेते हैं सैद्धांतिक रूप से बातें भी बहुत बड़ी बड़ी बनाते हैं किन्तु क्या सच्चाई का मुकाबला करते हैंक्या हम सुख का त्याग करते हैं गरीबों के प्रति सहानुभूति लोग रखते हैं मगर कोरी सहानुभूति किन्तु इन कोरी बातों से कुछ नहीं होने वाले गरीबों की दशा पर चार आँसू बहाने से उनके ऊपर लम्बे लम्बे भाषण झाड़ देने से ही उनकी समस्या का हल नहीं हो जाता उसके लिये बहुत कुछ करना पड़ता है बहुत कुछ त्यागना और खोना पड़ता है।

- -

1-[illegible]- प्रकाश आनन्द- हंस- 1938

"कामरेड" एकांकी गणेश प्रसाद द्विवेदी का लिखा हुआहै।इसमें लेखक ने औरत के प्रति समाज के दकियानूसी विचारों का अंकन किया हैं।औरत के साथ पुरुष का मेल मिलाप, बात करना, काम करना, समाज की निगाह में ठीक नहीं वह अगर किसी काम से भी पुरुष से मिलती जुलती है तो वह एयूयाशी मानी जाती है।रमेश औरशीला कामरेड हैं वह पार्टी के लिये काम करते हैं। रमेश शीला को अपने पास रात को पार्टी के काम से बुलाता है उसके अन्य सहयोगी उस पर शक करते हैं और पार्टी के लिये उसे बदनामी का विषय बताते हैं उनकी विचारधारा वैसी ही आम जैसी को समाजके अन्य लोगों की विचारधारा है हमारे समाज में एक स्त्री का किसीपुरुष से बात करना या अकेले में उसके यहाँ आना-जाना खराब माना जाता है। रमेश कहता है कि हम कामरेड हैं हमारा सबसे पहला कानून है समाज की दकियानूसी बातों का खातमा। रमेश रनजीत से कहताहै कि तुम सिर्फ इतना ही जानते हो, औरतएक ऐयाशी का सामान है।इसके सिवा औरत और भी कुछ हो सकती है यह शायद अभी तुम न सोच सके।दोनों में काफी बहस होती है रनजीत उन लोगों को पार्टी से निकलवाने की धमकी देता है। रमेश कहता है किहमारे सारे धर्म संस्कृति हमें प्रेम से रहना सिखाती हैं। अब जमाना बदल गया हमें आगे बढ़नाचाहिये।और अंत में दोनों मजदूरों द्वारा की गई हड़ताल में शामिल होने चले जाते हैं उस समाज के ठुकरा दिये जाने के बाद जिसे सुखी बनाने के लिये ये अपनी सारी खुशियाँ और आराम का त्याग कर रहे हैं। श्रीधर्म प्रकाश आनन्द का"दीनू"मजदूरों की गिरी हुई आर्थिक स्थिति का अंकन करता है। उसमें पूंजी के असमान वितरण पर करारा व्यंग है।श्रीरामचन्द्र तिवारी का"वन्दिनी"गरीबी की भयंकरता एवं नग्नता का एक चित्र उपस्थित करता है।इसमें भी आधुनिक मशीनीकरण की व्यवस्था में असमान अर्थ वितरण समस्या तथा उससे उत्पन्न होने वाली विभीषिकाओं पर प्रकाश डाला गया है।

श्री रामशर्मा एक का सम्पूर्ण नाट्य साहित्य पूँजीवाद के विरोध में लिखा गया है।"आपके ढले हुए आँसू" टुकड़े एवं अर्थ, नाते रिश्ते, भिन्नभिन्न दृष्टिकोण से पूंजीवादके विरोध में जनमत और साम्यवाद के आदर्श उपस्थित करते है। श्री हरिश्चन्द्र चटोपाध्याय का "सौरी की लालटेन" एक मजदूर कवि तथासौदागर से पूर्व भावनाएं उपस्थित करता है।श्री

- -

1- हंस- 1938

राजेन्द्र सक्सेना का "दिमाग की गर्मी" ठेकेदारों तथा पुलिस का गठबन्धन तथा मजदूरों की नैतिकता पर आक्रमण का एक प्रभावशाली चित्र है। श्रीमती अमीरानी गुर्टु का "हरिया" होटलों में बालक नौकरों पर मैनेजरों द्वारा होने वाले अत्याचारों का एक यथार्थवादी चित्र है। श्रीशर्मा का इन्कलाब जिन्दाबाद मजदूरों में जागृति, वेतन वृद्धि के लिए पुकारें, मंहगाई तथा हड़तालों का चित्र है। इसके अनुसार आज का मजदूर अपने अधिकारों के लिये मर मिटने पर तुला हुआ है। वह राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में अपने अधिकार चाहता है। श्री रामचरण महेन्द्र का "कलम की मजदूरी" बैंकों के मैनेजरों द्वारा मातहत क्लर्कों पर किए गए अत्याचारों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

श्री प्रफुल्ल चन्द्र ओझा "मुक्त" के कई नाटक पूंजीपति और मजदूरों के संघर्ष से सम्बन्धित हैं वे यह मानते हैं कि आज की आर्थिक विषमता ने हमें देह धर्मा बना दिया है। यद्यपि संस्कारतः हम मनोधर्मी रहे हैं। सभ्यता के विकास ने मनुष्य के जीवन को कृत्रिम बना दिया है तथा मनुष्य, मनुष्य के मध्य अलंघ्य दीवारें खड़ी कर दी हैं। प्राचीन तथा नवीन का सहज सामंजस्य अपेक्षित है। आपके नाटकों में इसी की अवतारणा की गई है। मुक्त जी के दूसरे नाटक "घटनाएँ" में मजदूरों के विद्रोह की प्रतिनिधि दामिनी है जो साम्यवादिनी है। उसका मित्र संतोष कम्यूनिस्ट है ये दोनों मिलकर पूँजीपति विनोद बाबू से संघर्ष करते हैं। दामिनी का बलिदान होता है और तब विनोद को पूंजीवादी व्यवस्था के घातक प्रभाव का ज्ञान होता है।

श्री धर्मवीर भारती का "आवाज का नीलाम" पत्रकार जगत में फैली हुई पूंजीवादी राजनीति से संबंधित है। इसमें एक बेचारे सम्पादक का वैयक्तिक कठिनाइयों, गरीबी, पत्नी की बीमारी से तंग आकर अपना पत्र "आवाज" एक सेठ को बेचने का चित्र है। रुपये के बल पर पूंजीपति जनता को गुमराह करने के लिए अखबार खरीदते हैं, आकर्षक चीजें छाप कर वास्तविकता से दूर रखते हैं और जनता का स्वर ऊँचा नहीं उठने देते। यही चित्रित किया गया है।[1]

श्री भुवनेश्वर प्रसाद ने अपने "साम्यहीन साम्यवादी" एकांकी में कुलियों के निवास-स्थानों का वर्णन यों किया है-" कानपुर के पार्श्व भाग में लज्जा में मुँह छिपायें कुलियों

- -

1- हिन्दी एकांकी उद्भव और विकास-डा० रामचरण महेन्द्र साहित्य प्रकाशन दिल्ली।

के निवास स्थान नगर का विद्युत प्रकाश यहाँ तक न पहुँच सका। उसी ज्वलन्त नगर के प्रेत के समान एक भाग मेंएक छोटी सी दो द्वारों की एक कोठरी, जिसमें सामान के नाम का एक टूटा काठका बक्स एक टूटी एक अर्ध टूटी चारपाई कुछ धुएं के रंग की हड्डियाँ मनुष्य के नाम एक स्वयं अपने से ईर्ष्यालु हाड़-चाम का मजदूर, प्रकाश के नाम की एक बीस-बाईस वर्ष की युवती, मलिन वस्त्रों में इस प्रकार टकती है जैसे आसुओं की नीहारिका में नेत्र।"[1]

ये एक चित्र [illegible] की दयनीय अवस्था का परिचायक है। भारत की न जाने कितनी जनता इसी प्रकार गन्दे और घुटन वातावरण में पलती है। दिन भर कड़ी मेहनत के बावजूद जब मनुष्य को सुखपूर्वक जीने केलायक धन नहीं मिलता तो उसमें विद्रोह जागना स्वाभाविक है और उसमें जीवन के प्रति नैराश्य की भावना का जन्म हो जाता हैफलस्वरूप अनेक पापचार और दुराचार की ओर वह प्रवृत्त हो जाता है। यही कारण है कि निम्नवर्ग में शराब खोरी, जुआँ खोरी, चोरी, डकैती जैसी बुरी आदतें ज्यादा पायी जाती हैं।

विनोद रस्तोगी ने अपने एकांकी "गूंगी मछलियां" संग्रह में उच्च वर्ग द्वारा अपने घर के नौकर के प्रति अभद्र व्यवहार का चित्रण किया है। गुप्ता जी एक धनी ठेकेदार है उन्होंने अपने दोस्तों को दावत पर बुलाया है जिनमें से एक नेता जी हैं और दूसरे सरकारी अधिकारी। गुप्ता जी का नौकर रामू है उसका बेटा भूखा होने के कारण कुत्तेकी रोटी लेकर भाग तो गुप्ता जी की लड़की ने गुप्ता जी से कहा तो गुप्ता जी ने गुस्से में कहा-आज उसने टॉमी का खाना चुराया, कल रीता के कपड़े चुरायेगा, परसों जेवरों का हाथ साफ करेगा।"[2] रामू परेशान हो जाता है वह गुप्ता जी से कहता है-"चार दिन से राशन का गेहूं नहीं मिला, बच्चा भूखा था, तो मजबूरी से रोटी का टुकड़ा ले भागा।" किन्तु गुप्ता जी के लिये यह बहुत भयानक अपराध था और उनका कर्तव्य था कि वह इस भयंकर अपराधी को पुलिस के हवाले कर दें। कथा प्रतीकात्मक है रीता बताती है कि बड़ी मछलियों ने छोटी मछलियों को खा लिया। पूरा समाज इसी ढांचे का बना है बड़े लोग अपने से छोटों का शोषण करते हैं और जो छोटे है उनकी सुनने वाला कोई भी नहीं है वह मूक गूंगी बने चुपचाप सब सहते जाते हैं।

1- हिन्दी एकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति-एकसाम्यहीन साम्यवादी- भुवनेश्वर प्रसाद।

2- विनोद रस्तोगी- गूंगी मछलियां- पृ0-2।

वर्ग-संघर्ष-

रामचरण महेन्द्र के "कलम का एक मजदूर" एकांकी में वर्ग संघर्ष का अच्छा चित्रण है दोनों विपरीतविचारों के हैं अतः आपस में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है मालिक कहते हैं कि "जमाने की कुछ ऐसी हवा है कि कोई काम नहीं करना चाहता। मजदूर मजदूरी के लिए तो सबसे ज्यादा आवाज उठाते हैं लेकिन काम कुछनहीं करते। छुट्टियाँ, छुट्टियाँ, छुट्टियाँ बस जिसे देखो छुट्टियाँ छुट्टियाँ चिल्ला रहा है।"[1] दूसरी तरफ मजदूर क्या कहता है-"कौन कहता है मजदूर काम नहीं करता? मजदूर दिन भर कड़ी गर्मी, सर्दी में निरंतर काम करता है बीबी व बेटों की परवाह नहीं करता, तिस पर भीउसे मजदूरी इतनी कम मिलती है कि उसकी जान मुश्किल से कायम रहसकती है। आप कहते हैं काम नहीं करते। काम पूँजीपति नहीं करता, जो हवादार कमरे में बैठकर ठण्डे शरबत पीता है। दिन भर सोता है। जिसके पास खाने के लिए इतना है कि उसे पचता नहीं। मजदूर के पास दूसरे वक्त का भोजन नहीं।---पूँजीवाद पनप रहा है, श्रम करने वालों का रक्त चूसा जाता है। पूँजीवाद का दायरा बढ़ा हुआ है। पूँजीवाद का रूप हमारे दफ्तरों के अधिकारी वर्ग हैं। अफसर लोग पूँजीपतियों से क्या कम हैं? रुपये-पैसे वाले मजदूरों का खून चूसते हैं, अफसर क्लर्क का खून पीते हैं। पूँजीवाद का यह रूप भी उतना ही जालिम है जितना पहला रूप।"[2]

इस चित्र से ये जाहिर है कि दोनों के ही दृष्टिकोण अलग अलगहै दोनों अपने अनुसार सोचते हैं एक का हित दूसरे के हित को बाधित करता है और इसी में संघर्ष होता है।

इसी प्रकार के संघर्ष का एक चित्र एक साम्यहीन साम्यवादी" एकांकी में भी उपस्थित हुआ है हर तरफ विषमता का वातावरण हैएक तरफ पूँजीपति दूध, मलाई डकारते हैं तो दूसरी तरफ किसान और श्रमिक भूखों मरते हैं।

सुन्दर एक मजदूर है दिन भर कड़ी मेहनत करता है उसके बाद भी उसके पास खाने को कुछ नहीं है। गोविन्द नौ रुपये मासिक कमाता है, उसमें से पाँच रुपये जुर्माने में कट गये। चार रुपये में से दो रुपये पैरों को दे दिये अब उसके पास केवल दो रुपये बचे उन दो रुपयों से घर का काम कैसे चलेगा, इससे व्याकुल होकर गोविंद कहताहै-"क्या हम आदमी नहीं

- -

1- रामचरण महेन्द्र- कलम का एक मजदूर

2- वही, -इन्सानियत जिन्दाबाद संग्रह- पृ0- 38-39

है? हमारे भी तो हाथ पाव हैं। हमारे भी तो बीबी बच्चे हैं हम भी तो आराम से रहना चाहते हैं। हम भी तो बीमार अमार रहते हैं। ईश्वर ने सब को खाने को तो दिया है। यह क्या है कि रईस हजारों रुपयानाच मुजरे, मेले तमाशे में उड़ा दें दस रुपये के पान खाकर थूक दें और हम पेटभरखाने को भी न पावें। हमें भी तो अपने बच्चे इतने प्यारे हैं जितने उन्हें। उनके लड़के अलल्ले-तलल्ले करे घी-दूध में नहाये और हमारे बच्चे पेटभर खाना भी न पा सके लज्जा छिपाने के लिए कपड़े भी न मिलें।"[1]

इस एकांकी में परस्पर विरोधी विचार धारायें रखने वाले चरित्र हैं कुछ चरित्र हैं जो साम्यवाद के विरोधी हैं जैसे गोविंद के पिता उनका मानना है कि साम्यवादियों का दुनिया के "मजदूर एक हो जाय" एक चाल है और उनकी कथनी करनी में अंतर है दूसरों से कहते हैं तकलीफ सहो और स्वयं आलीशान महलों में रहते हैं। पेट की रोटी एक ऐसी आवश्यक चीज है जिसके लिये काम करना आवश्यक है एक मजदूर हड़ताल करेगा तो उसके स्थान पर दूसरा आ जायेगा क्योंकि उसे रोटी कमानी है कोई व्यक्ति कहाँ तक भूखा रह सकता है। इस प्रकार समाज के विभिन्न स्तरों के संघर्ष को एकांकियों में स्थान मिला है वह चाहें मजदूरों और मालिकों का वर्ग संघर्ष हो स्त्री या पुरुष का संघर्ष हो प्राचीन और नवीन संस्कृति का संघर्ष हो सब विषयों पर एकांकी की रचना हुई। आर्थिक पक्ष को लेकर काफी सशक्त एकांकियाँ लिखी गई [illegible] के प्रति सहानुभूति, पूँजीवाद के प्रति आक्रोश, गरीबों दलितों के लिये क्रांति का आवाहन सब पर खुलकर लिखा गया और काफी व्यावहारिक लिखा गया।

* **

उपसंहार

उपसंहार

सन् 1936 में प्रगतिवाद का शुभारम्भ माना गया वैसे तो किसी भी वाद या धारा का प्रारंभ किसी निश्चित सन् या तिथि में नहीं माना जा सकता क्योंकि न तो कोई धारा एकदम से जन्म लेती है और न समाप्त होती है। सन् 36 से 42 जो प्रमुख लेखन का कार्य था वह प्रगतिवाद का आरंभिक काल था इसके बाद प्रगतिवादी साहित्य ने साहित्य कोष की बहुत श्रीवृद्धि की। बहुत से लेखक इस क्षेत्र में उतरे और प्रगतिवाद को अनेकों सुन्दर, भावपूर्ण रचनायें प्रकाशित हुई और युगों से पददलित जनता का प्रतिनिधित्व करती रहीं।

इस क्षेत्र में डा० रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, रामेश्वर शुक्ल अंचल शील, रांगेय राघव काव्य में साहित्य की श्री वृद्धि कर रहे थे और गद्य साहित्य में यशपाल, नागार्जुन, राहुल सांकृत्यायन, अमृत राय आदि उपन्यास, कहानी सभी क्षेत्रों में लिखते रहे और ऐसी ऐसी रचनायें प्रस्तुत की जो बहुत प्रसिद्ध हुई और आम जनता में लोकप्रिय हो गईं।

रांगेय राघव के उपन्यास "विषाद मठ", उबाल, पराया, हुजूर, राहुल जी के सोने की ढाल, विस्मृति के गर्भ में। नागार्जुन के काव्य युग धारा, सतरंगे पंखोंवाली, त्रिलोचन शास्त्री की रचनायें धरती, गुलाब और बुलबुल। रांगेय राघव का अजेय खण्डहर, पिघलते पत्थर, शील जी का अंगड़ाई, उदय पंथ आदि रचनायें प्रकाशित हुईं।

सन् 36 से 42 का समय पराधीनता का था अतः सबका ध्यान देश को आजाद कराने की तरफ लगा था। साहित्य भी वीरता और उत्साह से भरी रचनायें लिखकर अपने देश के नवयुवकों को जगा रहे थे उस समय ज्यादा ध्यान देश की पराधीनता की ओर ही आकर्षित था देश की अन्य समस्याओं की ओर ध्यान कम ही था लोगों का किन्तु ऐसा नहीं था कि समाज की अन्य समस्याओं से सब बेखबर थे बल्कि इस प्रकार की रचनाओं का अभाव था। किन्तु इसका विस्तृत रूप स्वतंत्रता के बाद ही आया।

प्रगतिवाद की एक बड़ी विशेषता उसकी अंतर्राष्ट्रीयतावादिता है जिसमें संपूर्ण विश्व के मानव की समस्यायें समाहित हैं सब तरफ एक नवीन और खुशहाल समाज व्यवस्था

का आवाहन है सबकी पीड़ा को एक माना गया है।

हम शुरु से प्रगतिवादी साहित्य पर दृष्टि डालें तो पाते हैं कि इसके तीन केन्द्र बिन्दु हैं प्रथम वह राष्ट्रीय विचारधारा से ओत प्रोत काव्य है जिसमें भारतीय जनता में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए एक नया उत्साह और जोश था और यह राष्ट्रीय काव्य राजनीति तक ही सीमित न रहा, तत्कालीन जन जीवन की विषम स्थिति ने उसे यथार्थ-वादी सामाजिक स्वर भी दिये और परिणाम स्वरुप प्रगतिवादी काव्य की गौरवशाली परम्परा का सूत्रपात हुआ।"[1] दूसरा बिन्दु है उन कवियों की रचनाओं का जो मूलतः प्रगतिवाद के घेरे में नहीं आते और न ही ठेठ मार्क्सवादी हैं किन्तु उनकी रचनाओं में युग की माँग को देखते हुए प्रगतिवादी स्वर सुनाई पड़ते हैं इस प्रकार के कवि थे छायावादी कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत जी और निराला जी। और तीसरी अवस्था थी उन कवियों की जिन्हें मूल रुप से प्रगतिवादी आन्दोलन की देन कहा जा सकता है और जो मार्क्सवाद से प्रभावित हैं। इस प्रकार के कवि थे नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, नरेन्द्र शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री, शिवमंगलसिंह सुमन, रांगेय राघव, रामविलास शर्मा, शील, रामेश्वर शुक्ल अंचल की कुछ रचनाओं में भी प्रगतिवादी स्वर सुनाई पड़ते हैं।

प्रगतिवादी साहित्य की देन-

प्रगतिवादी साहित्य की सबसे बड़ी देन इस प्रश्न का उत्तर है कि साहित्य किसके लिये है, उसका लक्ष्य क्या है? प्रगतिवाद का उत्तर है 1-साहित्य जनता के लिये है, साहित्य का लक्ष्य जनजीवन का उत्थान और प्रगति है। 2-कल्पना और स्वप्नों के स्थान पर काव्य और साहित्य में एक नई बौद्धिक चेतना और एक नये यथार्थ की प्रतिष्ठा है, जिसने एक ओर तो जीवन की नाना समस्याओं को तर्क और बुद्धि की कसौटी में कसकर परखने और ग्रहण करने की प्रेरणा जाग्रत की और उनके जन्म देने वाले कारणों को भी उभारा। उसने अंध और व्यक्तिगत विलास कीउस बाढ़ को भी रोका जो "बच्चन" और "अंचल" जैसे कवियों के काव्य के माध्यम से हिन्दी की स्वस्थ सांस्कृतिक काव्य को लीलती हुई चली आ रही थी।

- -

1- प्रगतिवादी काव्य साहित्य- डा० कृष्ण लाल हंस- पृ०- 35।

3- जो काव्य अभी तक महान और लोक विश्रुत-ऐतिहासिक व्यक्तियों को ही नायकत्व का पद प्रदान करता था, उसने सड़क के साधारण मनुष्य को अपना केन्द्र मानकर उसी की आशाओं-आकांक्षाओं को चित्रित किया। युगीन राष्ट्रीयता भी स्वर देते हुये भी अंतर्राष्ट्रीयता और मानवतावाद संबंधी वह व्यापक दृष्टि है, जिसे प्रगतिवाद के किसी भी कवि के काव्य में सहज ही देखा जा सकता है।

प्रगतिवादी कवियों ने देश की दुर्बल, अभावग्रस्त जनता का हृदय विदारक वर्णन किया और वर्ग संघर्ष को अपनी रचनाओं का मुख्यविषय बनाया और पहली बार इन समस्याओं का मूल कारण स्पष्ट किया। मार्क्सवादी धारा से प्रभावित प्रगतिवादी कवियों ने वर्ग संघर्ष का वैज्ञानिक दृष्टिकोण सामने रखा हर समस्या की जड़ अर्थ वैषम्य को माना, और अर्थ वैषम्य का कारण हैपूंजी का असमान वितरण। पूँजी पर मुट्ठी भर लोगों का एकाधिकार और बहुसंख्यक जनता के श्रम का शोषण अपने मुनाफे केलिये पूँजीपतियों द्वारा श्रम से कम मजदूरी देना अपने मुनाफे के लिये दामों में बढ़ोत्तरी करना और मांग बढ़ाने के लिये उत्पादन में कमी करना आदि उनके पास पूंजी का एकत्रीकरण करा देता है ये सब मार्क्सवाद ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जनता के सामने रखा और प्रगतिवाद ने इससे प्रभावित हो इसी पर रचनायें की।

पूंजीवादी व्यवस्था की जड़े काफीमजबूत होकर पूरे विश्व में फैल गई थीं अतः इसको खत्म कर देना किसी एक के वश की बात नहीं और न ही शान्ति और प्रेम से हृदय परिवर्तन की ही गुंजायश है अतः प्रगतिवाद ने क्रांति की भावनाको प्रश्रय दिया और विश्व के सभी मजदूरों से एक होकर क्रांति कर देने का आवाहन किया, जिसका लक्ष्य होगापूँजीवाद कापूर्णतः नाश और समाजवाद की स्थापना जहाँ समाज की सरकार होगी पूँजी पर समाज का अधिकार होगा सबको श्रम के अवसर मिलेंगे और सभी को समान रूप से आवश्यकतानुसार धन उपलब्ध होगा। जो जितना श्रम करेगा उसके अनुसार उसको मिलेगा कोईनौकर नहीं कोई स्वामी नहीं सभी समान रूप से कार्य करेंगे।

मानवतावाद की प्रतिष्ठा प्रगतिवाद की एक अन्य देन है। हरचीज से ऊपर मानवता है किसी प्रकार का भी बन्धन अगर मनुष्य के उत्थान में रुकावट है तो उसे तोड़ने

में इन्हें कोई हिचक नहीं, यही कारण है कि प्रगतिवादी कवियों ने रूढ़ियों ,रीतियों, अंधविश्वासों में जकड़ी निराश और निस्सहाय जनता को उत्थान का मार्ग दिखाने के लिये उसे तोड़कर अपनी निर्माणकारी शक्ति से परिचित करने का म त्वपूर्ण कार्य किया। मनुष्य को इस समाज में रहने के लिये अपने में आत्मविश्वास बढ़ाने का कार्य किया।धर्म और ईश्वर के भय से और इहलोक बिगड़ जाने के भय से जो मासूम जनता शोषण के चक्के में पिसी जा रही थी उसे उस घेरे से बाहर निकालने का प्रयास किया,उसमें स्वाभिमान जगाया,अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया, विद्रोह करना सिखाया।जनता को उन जोकों से परिचित कराया जो धर्म और ईश्वर के नामपर भोली जनता को चूस रहे थे धर्म प्रगति का साधन न बन अवनति का कारण बन रहा था।

प्रगतिवाद की और देन नवयुग के आगमन की आकांक्षा है।प्रगतिवादी कवियों ने सभी प्राचीन जर्जरित सड़ी गली व्यवस्था के स्थान पर एक नवीन व्यवस्था की आकांक्षा की है और उसका संदेश उनकी रचनाओं में प्राप्त होता है।कवियों ने एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ मानवता निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसित होती है सुख से जीवन व्यतीत करेगी मानव मात्र सुख चैन की साँस लेगाऔर ऐसा संदेश देकर सभी को उस दिनकी प्रतीक्षा में बैठा दिया।

किन्तु क्या ये सपना पूरा हो सका? क्या ये प्रतीक्षा पूरी हुई?प्रगतिवाद जिन विचारों के लेकर चला था क्या उसने वह पूरी ईमानदारी से निभाया क्या मार्क्सवाद को कवियोंने पूरी तरह से समझा था और वाकई देश में समाजवाद की स्थापना का प्रयास किया गया था,इन सब सवालों का उत्तर सभी मिलेगा जब हम कुछ आलोचकों के लगाये हुए आक्षेपों पर दृष्टि डालेंगे।

प्रगतिवाद पर आक्षेप

1- आरंभ में कुछ कवियों की दृष्टि"रूस" पर ही स्थिर रही और उसमें राष्ट्रीयता के तत्व कुछ ओझल दिखायी देते हैं और कुछ कवियों की रचनायें तो रूस और कार्लमार्क्स की भक्ति में लिखी गई हैं।

2- दल विशेष में बंधे रहने के कारण प्रगतिवादी साहित्य एक सीमा में बंधकर रह गया उसका सर्वांगीण विकास न हो सका। साहित्य कभी सीमा में बंधकर नहीं रह सकता और उसमें प्रचार भावना की बू आ जाती है। प्रगतिवाद पर कुछ लोगों ने आक्षेप लगाया है कि वह मार्क्सवाद के प्रचार के लिये साहित्य की रचनाकरता है।

3- प्रगतिवादी काव्य ज्यों ज्यों आगे बढ़ता गया, प्रचारात्मक बनता गया। परिणाम स्वरूप उसके काव्य तत्व निर्बल होते गये। काव्य स्वरूप को लेकर प्रगतिवादी कवियों में ही मतभेद हो गया और वे दो वर्गों में विभाजित हो गये। सन् 1950 के लगभग प्रगतिवादी आन्दोलन के समाप्त होने का यह भी एक कारण रहा।[1]

प्रगतिवाद के पतन के कारणों की ओर इंगित करते हुये डा० त्रिवेदी ने लिखा है-" इस अधिवेशन के पश्चात प्रगतिशील आंदोलन का संचालन-सूत्र वामपंथी लेखकों तथा साहित्यकारों के हाथ में खिसक आया जो आगे चलकर उसके विघटन का प्रमुख कारण सिद्ध हुआ। शासकीय सूत्रों के नियंत्रण और दमन के कारण स्थानीय शाखाएं तो विच्छिन्न थी ही, वामपंथी संकीर्णता के कारण अखिल भारतीय तथाप्रान्तीय प्रगतिशील लेखक संघ का अवशिष्टत्व भी दिन ब दिन क्षीणपड़ने लगा।"[2]

प्रगतिवाद के पतन का एक कारण तो त्रिवेदी जी ने बताया और दूसरा कारण अमृतराय जी बताते हैं-" लेखकों में आपस में मैत्री और सद्भावना का लोप सा होने लगा और उसकी जगह कटुता और आपसी संदेह ने ले ली, वातावरण में भयानक घुटन पैदा हो गईऔर आजादी से सांस लेना मुश्किल हो गया। लोग डरे, सहमे मुँह पर ताला जड़े घूमते थे कि कहीं बोले से ऐसी कोई बात न निकल जाय कि मैं कायर या सुधारवादी या क्रांति का दुश्मन न करार दिया जाऊं इसलिए सबसे भला है चुप। यही चीज लिखने में भी हुई। मेरी कलम लिखीं कोई गलत, सुधारवादी, कमजोर चीज न निकल जाय जिसे लेकर मेरी खिल्ली उड़ाई जाय या कहा जाय कि प्रगतिशील लेखक संघ को तुम जैसे कायरों की जरूरत नहीं है।"[3]

- -

1- प्रगतिवादी काव्य साहित्य-डा० कृष्ण लाल हंस- पृ०- 379
2- प्रगतिवादी समीक्षा-डा० रामप्रसाद त्रिवेदी- पृ०-112
3- मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल- पृ०- 33। से उद्धृत

प्रगतिवाद पर एक आक्षेप लगाया धर्मवीर भारती जीने उनकाकहना है कि "हिन्दोस्तान की कुछ ऐसी बदकिस्मती रही कि यहाँ प्रगतिवाद का प्रवेश तब हुआजब विदेशों में उसका दिवाला निकल चुका था। विदेशों की इसउतरने को हमने बड़े चाव से पहना, जबकि हमारे अपने साहित्य में किसी भी प्रगतिवाद से सौ गुनी शक्तिशाली प्रवृत्तियाँ पनप रही थीं।"[1] रामेश्वर वर्मा को प्रगतिवाद से मात्र इतनी शिकायत है-" मैं प्रगतिवाद के उन शब्दों का विरोधी हूँ जो मार्क्सवाद के व्यापक संदेश को समझे बिना, रूसी साहित्य का अध्ययन किये बिना, प्रगतिवाद के खिलाफ गुहार मचाते हैं।"[2]

प्रगतिवादी आन्दोलन के विघटन का कारण निर्देश करते हुएहंसराज रहबरने लिखा है-

"आदर्शवाद को तो छोड़ा गया, लेकिन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को सिद्धांत के रूप में अपनाया नहीं गया। अतएवनये समाज का निर्माण करने वालेमिहनतकश जनता और मजदूर वर्ग को नये साहित्य का नायक और मुख्य पात्र बनाने के बजाय चोर, बदमाश गुण्डा, आवारा , रण्डी, रण्डी का दलाल आदि नकारात्मक तत्वों को नायक अथवामुख्य पात्र बनाकर सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक मान्यताओं और नैतिकता की अवहेलना की गई। इससे साहित्य और राजनीति में अराजकता का प्रादुर्भाव हुआ। प्रगतिशील आन्दोलन अंत तक मुख्य रूप से इसी नकारात्मकता को हमियनवाद और अराजकता का प्रतिनिधित्व करता रहा जिससे भीतरी असंगतियाँ बढ़ी और यही असंगतियाँ उसके विघटन का कारण बनीं।"[3]

रहबर जी की ये बात तो ठीक है कि आदर्शवाद से भी हाथ धोया प्रगतिवाद ने औरद्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को भी नहीं समझ सका। और ये बात ठीक है कि मार्क्सवाद के जो सिद्धांतथे उसका ठीक ठीक प्रादुर्भाव नहीं हो सका न ही साहित्यकार उसे ठीक से समझ सके बजायसक कु. और व्यवस्थित वातावरण के अराजकता को बढ़ावामिला। लेकिन ये

- -

1- प्रगतिवाद एक समीक्षा-धर्मवीर भारती
2- राष्ट्रीय स्वाधीनता और प्रगतिशील साहित्य-रामेश्वर शर्मा
3- प्रगतिवाद पुनर्मूल्यांकन -हंसराज रहबर- पृ0- 11-12

बात की मजदूर को नायककी जगह चोर और गुण्डा बना दिया जहाँ तक मेरा विचार है ये बात ठीक नहीं, वैसे तो ठीक ढंग से मजदूरों का चरित्र चित्रण नहीं हो सका किन्तु इतना ज्यादा बुरा भी नहीं हुआ।

प्रगतिवाद के लिये कुछ आक्षेप और लगाये गये जो इस प्रकार है-" हमने जिस प्रकार "धम्मपद" और "गीता" को घोल घालकर पी लिया था, कबीर और नानक की साखियों को जिस प्रकार चाट गये, ठीक उसी प्रकार हमारी बातूनी प्रगतिशीलता लेनिन की सौंधी चरपरी सूक्तियों का चर्वण कर रही है---------" जीविका विहीन लाखों लाख शिक्षित तरुणों का आक्रोश इनमें अचर्चित हो रह गया है। साम्प्रदायिकता की पूतना शिशु राष्ट्र को खुले आम अपना जहरीला दूध पीला रही है और हम बूढ़े प्रगतिवादी लाल गोमुखी के अंदर हाथ डाले लेनिन का नाम जपते चले जा रहे हैं।"[1]

कुछ लोगों ने प्रगतिवाद पर जो जबर्दस्त आरोप लगाया है वह है प्रापगैण्डा का उनका कहना है कि "साहित्य के साथ प्रोपैगैण्डा शब्द का प्रयोग करना विशेषकर जबकि साहित्य में "अमरकलाकारों" की भरमार हो और हमारा सारा साहित्य "चिरन्तन" और "शाश्वत" हो उनकी दृष्टि में ऐसा जघन्य अपराध है जिसके लिए पाठक प्रगतिवादियों को कभी क्षमा नहीं कर सकते।"[2] इस आक्षेप का जवाब शिवदान सिंह चौहान ने दिया-"प्रगतिवादियों ने जब कभी भी उसका प्रयोग किया है तब ऐसे सामान्य अर्थ में कि उसमेंकिसी को विशेष आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि साहित्य को प्रोपैगैण्डा कह कर उन्होंने उसके उत्कृष्ट भावना-प्रधान, कल्पनात्मक और कलात्मक गुणों की अवहेलना नहीं की, न उनका बहिष्कार ही आवश्यक समझा है।[3]

इस प्रकार प्रगतिवाद पर अनेक आरोप लगाये गये लेकिन ये बात नहीं कि प्रगतिवाद में कमियाँ ही कमियाँ थीं। हर साहित्य में कुछ न कुछकमियाँ होती हैं, अच्छाइयों और बुराइयों का मिला जुला रूप होता है साहित्य, और साहित्य ही क्या कोई भी कला हो उसके दो पहलू होते है। साहित्य में भी आलोचक होते हैं और वह अपने विचारों की कसौटी

- -

1- लेनिन और भारतीय साहित्य में संग्रहीत- नागार्जुन-लिखित लेनिन और भारतीय साहित्य से उद्धृत- पृ0-24

2- इलाचन्द जोशी

3- प्रगतिवाद- शिवदान सिंह चौहान- क्या साहित्य प्रापैगण्डा है।-पृ0-10

पर कसते हैं सबके अपने अपने विचार होते हैं और अच्छा-बुरा वह अपनी समझ की तुला पर तोलते हैं। प्रगतिवाद ने समाज और साहित्य को बहुत कुछ दिया। साहित्य को एक नया मोड़ दिया और कला को जीवन के लिये बनाया उसे आम जनता से जोड़ा ये बात अलग है कि ज्यादा आगे नहीं जा सका और न ही भारत में समाजवाद का विकास हो सका। भारत में समाजवाद की हिमायत तो खूब की गई किन्तु उसके लागू नहीं किया गया और इसलिये ऐसे साहित्य को भी ज्यादा प्रभाव नहीं मिल पाया।

आधार- ग्रन्थ की सूची

। काव्य रचनायें ।

1-	कबीर ग्रन्थावली	कबीर दास	
2-	कामायनी	जयशंकर प्रसाद	
3-	कुकुरमुत्ता	सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"	लोक भारती प्रकाशन [illegible]- 1942
2-	मानव	भगवतीचरण वर्मा	विशाल भारत बुक डिपो कलकत्ता- 1940
3-	अपरा	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	साहित्यकार संसद प्रयाग दसवाँ संस्करण- 1965
4-	किसान	मैथिलीशरण गुप्त	साहित्य सदन-झाँसी सम्वत्- 1974
5-	त्रिशूल तरंग	त्रिशूल	प्रताप पुस्तक माला, कानपुर 1919
6-	मिट्टी और फूल	नरेन्द्र शर्मा	भारती भण्डार, इलाहाबाद
7-	जीवन के गान	शिवमंगल सिंह सुमन	प्रदीप कार्यालय-मुरादाबाद 1941
8-	जागृत भारत	पं० माधव शुक्ल	बी०बी० शुक्ल
9-	हुंकार	श्री श्रीमरामधारी सिंह दिनकर	श्री अजन्ता प्रेस पटना, सप्तम संस्करण- 1951
10-	विधवा	राजाराम शुक्ल	स्त्रीदर्पण-कानपुर
11-	भारत भारती	मैथिलीशरण गुप्त	

उपन्यासों की सूची

1-	निमन्त्रण	भगवतीप्रसादवाजपेयी	युगारम्भ प्रकाशन 1936
2-	दादा कामरेड	यशपाल	1941
3-	गोदान	प्रेमचन्द	सरस्वती प्रेस 1935-36
4-	देशद्रोही	यशपाल	विप्लव कार्यालय 1942-43

कहानी

1-	पिंजरे की उड़ान	यशपाल	विप्लव कार्यालय लखनऊ 1939
2-	वो दुनिया	यश पाल	" " " 1941
3-	तर्क का तूफान	यशपाल	" " " दूसरा संस्करण 1945
4-	ये, ये, बहुतेरे	अंचल	मायो प्रिन्टिंग वर्क्स इलाहाबाद- 1941

निबन्ध

1-	तुम्हारी क्षय	राहुल सांकृत्यायन	किताब महल इलाहाबाद 1954
2-	न्याय का संघर्ष	यशपाल	विप्लव, लखनऊ 1939
3-	साम्यवाद ही क्यों	राहुल सांकृत्यायन	किताब महल इलाहाबाद 1934
4-	मार्क्सवाद	यशपाल	विप्लव कार्यालय लखनऊ 1940
5-	देवताओं की छाया में।एकांकी।	उपेन्द्रनाथ अश्क	नीलाभ प्रकाशन इलाहाबाद द्वितीय संस्करण- 1940

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र०	ग्रन्थ	लेखक	प्रकाशन
1-	आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ	नामवर सिंह	किताब महल दारागंज-प्रयाग 1951
2-	आधुनिक हिन्दी साहित्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ	डॉ० नगेन्द्र	गौतम बुक डिपो प्रथमसंस्करण 1951
3-	आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ	डा०जगदीश नारायणत्रि त्रिपाठी	प्रथम संस्करण
4-	आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिन्दी साहित्य	कृष्ण [illegible]	आर्यबुकडिपो दिल्ली-प्रथम सं०-1972
5-	आधुनिक साहित्य	नन्द दुलारे बाजपेयी	भारतीभंडार इलाहाबाद-प्रथमसं०-2008
6-	आधुनिक हिन्दीकथासाहित्य	डॉ० हरदयाल	आदर्शसाहित्य प्रकाशन दिल्ली-प्रथम सं०- 1972
7-	[illegible]हिन्दीसाहित्य की विचारधारा पर पाश्चात्य प्रभाव	डॉ०[illegible]रिकृष्णपुरोहित	उपमा प्रकाशन ,उदयपुर
8-	आधुनिकहिन्दी नाटकों में संघर्ष तत्व	डा०राजकाशीनाथ गायकवाड़	पुस्तक संस्थान,कानपुर 1975
9-	छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृति पृ०भूमि	डा०कमला प्रसाद पांडे	रचना प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1972
10-	छायावादोत्तर हिन्दी कविता	डा०रमाकान्त शर्मा	साहित्य सदन देहरादून प्रथम संस्करण 1970
11-	नागार्जुनजीवन औरसाहित्य	डा० प्रकाश चन्द्र भट्ट	सेवा सदन प्रकाशन ,प्रथमसं०-1974
12-	नया हिन्दी काव्य	डा०शिवकुमार मिश्र	अनुसंधान प्रकाशन 1965
13-	नरेन्द्रशर्मा और उनकाकाव्य	लक्ष्मीनारायण शर्मा	नेशनल पब्लिशिंग हाउस,प्रथम सं०-1967
14-	प्रेमचन्द की उपन्यास कला का उत्कर्ष"गोदान"	डा०कृष्ण देव शारी	प्रथम संस्करण- 1975
15-	[illegible]तिवादीकाव्यसाहित्य	डा० कृष्णलाल हंस	मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ [illegible]मी प्रथम संस्करण 1971
16-	[illegible]हिन्दी कविता	डा०दुर्गाप्रसाद झाला	अभिनव प्रकाशन 1967

17– प्रगतिवाद की रूपरेखा — मन्मथनाथ गुप्त — आत्माराम एण्ड संस 1952

18– प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें — डा०रामविलास शर्मा — विनोद पुस्तक मंदिर, प्रथम सं०–1954

19– प्रगतिशील साहित्य के मानदण्ड — डा० रांगेयराघव — सरस्वती पुस्तक सदन, प्रथमसं०–

20– प्रगतिशील आलोचना — रवीन्द्रनाथश्रीवास्तव — साहित्य भवन [illegible] 1962

21– प्रगतिवाद — शिवदान सिंह चौहान — प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद, प्रथम सं०–1946

22– पाश्चात्य काव्य शास्त्र मार्क्सवादी परम्परा — डा० मक्खनलाल शर्मा — सम्पाद[illegible] सम्पादक डा०नगेन्द्र दिल्ली विश्वविद्यालय 1966

23– प्रगतिवाद — शिवकुमार मिश्र — प्रथम संस्करण

24– प्रग[illegible] काव्य — उमेशचन्द्र मिश्र — ग्रंथम रामबाग, कानपुर, प्रथम सं०–198[illegible]

25– प्रगतिवादी काव्यसाहित्य — डा०कृष्ण लाल हंस — मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ [illegible] प्रथम सं०– 1971

26– मार्क्सवादी साहित्य चिंतन इतिहास तथा सिद्धांत — [illegible] मिश्र — मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ [illegible] भोपाल–प्रथमसं०– 1973

27– मार्क्सवाद और उपन्यासका[illegible] यथार्थ — डॉ०भारतनाथ मिश्र — लोक भारती प्रकाशन प्रथम सं०–1972

28– महापंडित राहुल सांकृत्या–यन — डा०कैलाशचन्द्र आनन्द — शारदा प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1973

29– भाषासंस्कृति औरसाहित्य–डा०रामविलास शर्मा

30– राष्ट्रीयस्वाधीनता और [illegible] साहित्य — राम[illegible] शर्मा — मानव भारती प्रकाशन 1953

31– [illegible] की कहानियाँ [illegible] और शिल्प — चन्द्रभानु सोनवणे — पंचशील प्रकाशन, जयपुर–प्रथमसं०–1981

32– लेनिन और भारतीय साहित्य — नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली 1970

33– साहित्य का [illegible] — डा० नगेन्द्र — नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथमसं०–1982

34– समाज और सा[illegible] — [illegible]

35– [illegible] समस्यायें एवं [illegible] — के०पी० भटनागर — हिन्दुस्तान बुक हाउस, कानपुर

36– साहित्य का उद्देश्य — मुंशी प्रेमचन्द — 1936 जुलाई

37– [illegible] में मार्क्सवादी चेतना — जनेश्वर वर्मा — ग्रन्थम प्रथम सं०– 1974

38-	हिन्दीसाहित्य के प्रमुखवाद और उनके प्रवर्तक	विश्वम्भरनाथ उपाध्याय	सरस्वती पुस्तक सदन-प्रथमसं0-सम्वत् 2009 ।आगरा।
39-	हिन्दी उपन्यास समाज-शास्त्रीय विवेचन	डा0चंडीप्रसाद जोशी	अनुसंधान प्रकाशन 1962
40-	हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ	डा0शशिभूषण सिंहल	विनोद पुस्तक मंदिर प्रथम सं0-1970
41-	हिन्दीउपन्यास और यथार्थवाद	डा0त्रिभुवन सिंह	हिन्दी प्रचारकपुस्तकालय चतुर्थसं0-1955
42-	हिन्दीगद्य साहित्य पर समाजवाद काप्रभाव	डा0शंकर लाल जायसवाल	सरस्वती प्रकाशन प्रथम सं0- 1973
43-	हिन्दीकथा साहित्य पर सोवियत क्रांति काप्रभाव	डा0 पुरुषोत्तम बाजपेयी	प्रथम संस्करण 1976
44-	हिन्दी कविता में युगान्तर	प्रो0 सुधीन्द्र	आत्माराम एण्ड संस दिल्ली प्रथम सं0- 1950
45	हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास	सं0डा0 रघंबलाल शर्मा सहायक सं0डा0कैलाशचन्द्र भाटिया	नागिरी प्रचारिणी सभा-चतुर्दश भाग काशी - 1985
46-	हिन्दी की मार्क्सवादी कविता	डा0 सम्पत ठाकुर	प्रगति प्रकाशन आगरा, प्रथम सं0- 1978
47-	हिन्दी की प्रगतिशील कविता	रणजीत	हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली प्रथम संस्करण- 1971
48-	हिन्दी साहित्य	.भ	भारतीय हिन्दी परिषद् प्रयाग प्रथम सं0- 1979
49-	हिन्दी उपन्याससामाजिक संदर्भ	डा0बालकृष्ण गुप्त	अभिलाषा प्रकाशन, कानपुर, प्रथमसं0-1978
50-	हिन्दीउपन्यास में वर्ग भावना	प्रतापनारायण टंडन	नवभारत प्रेस, लखनऊ, प्रथम सं0- 1956
51-	हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन	डा0शांतिगोपाल पुरोहित	साहित्य सदन देहरादून-प्रथमसं0-1964
52-	हिन्दीएकांकियों में सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति	डा0 म0के0 गाडगिल	पुस्तक संस्थान, कानपुर 1976

53- हिन्दुस्तान की कहानी   जवाहर लाल नेहरू   पत्रिका में उद्धृत

54- कांग्रेस का इतिहास   डा० पट्टाभि सीतारमय्या
दूसरा खण्ड-प्रथम बार।

पत्र-पत्रिकाएँ

1- हंस
2- विश्वामित्र
3- सुकवि
4- विप्लव
5- [illegible]

***